प्राकृतिक भूगोल की पृष्ठभूमि

(A BACKGROUND OF PHYSICAL GEOGRAPHY)

[भूगोल तथा भूगर्भ की इण्टरमीडियट, बी०, ए०, बी० एस-सी०, एम० ए० तथा एम० एस-सी० कक्षाओं के निमित्त]

Janardan Prasad Srivastava M.A.

रचयिता

जनार्दन प्रसाद श्रीवास्तव एम० ए०, एम० एस-सी०

सम्पूर्ण ग्रन्थ के भूमिका लेखक

डा० रामलोचन सिंह पी-एच० डी० (लन्दन)

अध्यक्ष भूगोल विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

'उदधि' खण्ड के भूमिका लेखक

डा० सितांशु मुकर्जी, पी० एच० डी०

अध्यक्ष भूगोल विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय

'अन्तरिक्ष' खण्ड के भूमिका लेखक

डा० पी० दयाल, पी० एच० डी०

अध्यक्ष भूगोल विभाग, पटना विश्वविद्यालय

'भूसैद्धान्तिकी' खण्ड के भूमिका लेखक

डा० विद्यासागर दुबे, पी० एच० डी०

आचार्य भूगर्भ विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्राप्ति स्थान

सरोज प्रकाशन ५४१ कटरा प्रयाग

तथा

अम्बिका प्रकाशन जौनपुर

तीन खण्डों का मूल्य ५)

प्रथम संस्करण १९५५ चारों खण्डों का मूल्य ७)

भूमिका.

हमारे स्वतन्त्र भारत में हिन्दी के सर्वमान्य भाषा हो जाने पर भी इस भाषा मे वैज्ञानिक विषयों पर लिखी गई पुस्तकों की कमी है। इस दिशा म श्री जनार्दन प्रसाद श्रीवास्तव प्रयत्नशील दिखलाई पड़ते हैं। हिन्दी में भूगोल की अनेक पुस्तकें लिखकर श्रीवास्तव जी ने विषय की काफी सेवा की है।

वर्तमान समय मे, विशेषकर देश में हिन्दी के प्रसार के कारण भूगोल के विद्यार्थियों को प्राकृतिक भूगोल के अध्ययन में अधिक कठिनाई उठानी पड़ती है। और प्राकृतिक भूगोल जैसे वैज्ञानिक तथा जटिल विषय पर हिन्दी मे पुस्तकों का अभाव अधिक खटकता है। श्रीवास्तव जी ने अपने अध्ययन-काल में भूगोल के साथ २ भूगर्भ-शास्त्र का भी अध्ययन किया है। अत. वे प्रस्तुत पुस्तक लिखने के उपयुक्त अधिकारी हैं। इस पुस्तक में प्राकृतिक भूगोल के प्रायः प्रत्येक अङ्ग पर यथेष्ठ प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। कालिज के विद्यार्थी इससे विशेष लाभान्वित होंगे।

पुस्तक की भाषा सामान्य विद्यार्थी के लिये कुछ विलक्ष्ट अवश्य हो गई है। श्रीवास्तव जी ने अँग्रेजी शब्दों का रूपान्तर करने म संस्कृत से अधिक सहायता ली है। भूगोल की पुस्तकों में रेखा-चित्रों की बहुलता अनिवार्य है। इस दृष्टिकोण से भी यह पुस्तक सराहनीय है। अधिक उचित होता, यदि विषय-सामग्री के साथ ही साथ सन्दर्भ भी दे दिये जाते।

मेरी हार्दिक शुभ-कामना है कि श्रीवास्तव जी अपनी साधना में सफल हों।

राम लोचन सिंह
प्रधानाध्यापक, भूगोल-विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

काशी
अक्षय-नौमी
सन १९५५ ई०

लेखक की ओर से

निवेदन

राष्ट्रभाषा हिन्दी में उच्च-कक्षाओ के योग्य भूगोल विषयक उत्तम ग्रन्थो का नितान्त अभाव है। दूसरी ओर, हिन्दी क्षेत्र के अनेक विश्वविद्यालयो में इस विषय के पठन-पाठन का उपक्रम हिन्दी माध्यम द्वारा ही हो रहा है। ऐसी अवस्था मे मैंने अमर भारती के एक अकिञ्चन सेवक के नाते 'प्राकृतिक भूगोल की पृष्ठभूमि' प्रस्तुत करने का तुच्छ प्रयास किया है।

× × ×

इस ग्रन्थ को मैंने चार खण्डो मे बॉट दिया है—(१) स्थलमडल (२) जलमडल, (३) वायुमडल तथा (४) सिद्धान्त एव वाद। इनके शीर्षक है—क्रमश अवनि, उदधि, अन्तरिक्ष तथा भूसैद्धान्तिकी।

आज से छै वर्ष पूर्व जब मै रौबर्टसन कालिज जबलपुर मे अध्यापन का कार्य करता था, तभी मैंने 'जलधि' शीर्षक एक पुस्तिका लिखी थी। किन्ही मानवजन्य परिस्थितियो के कारण उसका प्रकाशन सभव न होसका। प्रस्तुत द्वितीय खड 'उदधि' जलधि का ही सक्षिप्त एव सशोधित रूप है। इसी प्रकार सन् १९५०-५१ में नागपुर विश्वविद्यालय की एम० ए० कक्षा का अध्यापन कार्य करते समय मैंने 'भूसैद्धान्तिकी' शीर्षक एक ग्रन्थ लिखा था। इसमे मैंने भूगोल एव भूगर्भ शास्त्र के प्राय. सभी सिद्धान्तो की रूपरेखाये प्रस्तुत करने की चेष्टा की थी। विन्ध्य-प्रदेश शासन ने इस ग्रन्थ पर 'लाल-पुरस्कार' प्रदान किया था। प्रस्तुत चतुर्थ खण्ड 'भूसैद्धान्तिकी' की काट-छाँट है। मेरा एक विचार और था—जलवायु-विज्ञान सम्बन्धी पचम खण्ड प्रस्तुत करने का। इसके अन्तर्गत जलवायु के वृत्तो (Phonomena) की—विशेषकर ससार के जलवायु-विभागो की—विवेचना होती, किन्तु ऐसी दशा में यह ग्रन्थ इस विषय के हिन्दी के अन्य ग्रन्थो की तुलना मे असाधारण रूप से बडा होजाता। अतएव, मुझे यह विचार त्याग देना पडा।

प्रस्तुत पुस्तक के कुछ अश सपरिवर्तित रूप मे विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे भी प्रकाशित होचुके है—उदाहरण के लिये भूसैद्धान्तिकी के अनेक प्रकरण 'विज्ञान' (विज्ञान परिषद, प्रयाग) मे।

× × ×

इस कृति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नाकित हैं :—

(१) ग्रन्थारम्भ मे विस्तृत विषय-सूची दी गई है, जिससे पाठक को अन्तवस्तु का सरलता से बोध होसके।

(२) विषय का प्रतिपादन अत्यन्त सक्षेप मे किया गया है। आधुनिक प्रवृत्ति के अनुरूप तो यह है ही, परीक्षा की दृष्टि से भी यह उपयोगी है।

(३) भौगोलिक तथ्य अत्यन्त सरल एव स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किये गये हैं।

(४) उदाहरण यथासंभव भारतवर्ष से ही लिये गये हैं।

(५) स्पष्टीकरण के लिये अधिक से अधिक चित्रो की व्यवस्था की गई है। हिन्दी की वर्तमान भूगोल विषयक पुस्तको में किसी मे भी इतने चित्र नही हैं।

(६) नवीन से नवीनतम वृत्तो (Phenomena) एव सिद्धान्तो का समावेश कर दिया है।

(७) भूगोल में नियत पाठ्यक्रमो और परीक्षा मे पूछे गये प्रश्नो को केन्द्र मानकर इस कृति की रचना हुई है।

(८) सर्वत्र राष्ट्रभाषा का व्यवहार किया गया है। प्रयुक्त भाषा सस्कृत-मयी एव प्राञ्जल होते हुए भी सर्वत्र बोधगम्य है।

(९) विषय विन्यास मेरा अपना है।

(१०) परिच्छेदो अथवा खण्डो के अन्त मे विभिन्न परीक्षाओ मे पूछे गये प्रश्नो की सूची दे दी गई है।

× × ×

मेरे सक्षेप मे लिखने का एक कारण यह भी है, कि यदि मै अधिक विस्तार से लिखता तो यह स्वाभाविक ही था कि पारिभाषिक शब्द भी अधिक मात्रा मे आते जिससे ग्रन्थ की क्लिष्टता बढ जाती। पुस्तक को यथासभव सरल एव सुबोध बनाने के लिये मैंने अपनी मौलिक कृति का पाँच बार पुनरीक्षण (Revision) किया है। क्लिष्टता की दुहाई देनेवाले पाठको के लिये भले ही मैंने अन्तर्वस्तु का इस प्रकार प्रस्तुतीकरण सरल कर दिया हो, किन्तु यदि आप मेरे सच्चे हृदय से पूछे तो मै यह अनुभव करता हूँ कि मैंने पुस्तक को जितना ही बोधगम्य बनाने का प्रयास किया है, अन्तर्वस्तु यथार्थता से उतनी ही दूर हटती चली गई है। भविष्य मे जब पाठक पारिभाषिक शब्दो से यथेष्ट परिचित हो जायँगे—संभवत. तब मै अपनी मूल कृति प्रस्तुत कर सकूँ।

× × ×

प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली के सम्बन्ध में मै दो शब्द कहना चाहूँगा। वर्तमान समय मे आलोचना की यह निराली प्रणाली निकली है, कि पारिभाषिक शब्दो की आड लेकर किसी भी कृति की निन्दा करना। मैंने भौगोलिक शब्दो के हिन्दी समानार्थी अधिकाशत डा० रघुवीर के महाकोश से लिये है। इस महाकोश के शत प्रतिशत शब्द न सही, तो अधिकाश निश्चितत यथार्थ अर्थ के द्योतक है। शेष शब्दो का स्थान कालान्तर मे, उपयुक्त शब्द स्वयं ले लेगे। जब भी मेरे समक्ष पारिभाषिक शब्दो की समस्या आई, मैंने अनेक विद्वानो एव सस्थाओ से सहायता की प्रार्थना की, किन्तु कोई माई का लाल सहायता के लिये आगे न बढा-हाँ विनाशात्मक आलोचना (Destructive criticism) के लिये सभी आगे है। जहाँ तक मेरे सीमित ज्ञान का सम्बन्ध है, इस समग्र भारतवर्ष मे, उच्च-विज्ञानो के पारिभाषिक शब्दो के लिए डा० रघुवीर के महाकोश के अतिरिक्त कोई अन्य सहायक ग्रन्थ अस्तित्व मे नही है। केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकारो (मध्य प्रदेश के अतिरिक्त), सम्मेलन, नागरी-प्रचारिणी आदि द्वारा प्रकाशित शब्दावलियाँ नितान्त अल्प और निम्न स्तर के छात्रो के लिये ही उपयोगी है।

एक सज्जन ने मुझसे शिकायत की कि आपने जान-बूझकर क्लिष्ट शब्द प्रयुक्त किये है, Erosion के लिये आप 'कटाव' का प्रयोग कर सकते थे पर आपने 'अपक्षरण' जैसा क्लिष्ट शब्द प्रयुक्त किया है। मैंने उनसे नम्र निवेदन किया कि भूगोल मे Erosion से थोडे ही भिन्न अर्थ मे और भी अनेक शब्द प्रयुक्त होते है जैसे Corrasion, Abrasion आदि, उनके लिये आप कौनसे शब्द प्रयुक्त करेगे। तब उन्होने डा० रघुवीर के महाकोश की उपयुक्तता स्वीकार कर ली। भूगोल एव भूगर्भशास्त्र के अधिकारी विद्वान् डा० रघुवीर की शब्दावाली का समर्थन ही नही अपितु सस्तुति भी करते है। भारतीय भौमिकीय आपरीक्षण विभाग (Geological Survey of India) के सचालक डाक्टर एम० एस० कृष्णन् की ऐतिहासिक भौमिकी पर प्रामाणिक रचना का अभिनवकाल मे हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ है। यह अनुवाद उन्ही की विदुषी कन्या ने, जो मद्रासी होते हुए भी हिन्दी की कुशल विद्वान है, किया है। उसमे भी डा० रघुवीर के कोश का उपयोग किया गया है। डा० कृष्णन जैसे भूगर्भ एव प्राकृतिक भूगोल के शिखर के विद्वान द्वारा डा० रघुवीर के महाकोश का समर्थन एव उपयोग--प्रस्तुत पुस्तिका मे प्रयुक्त शब्दावली के पक्ष मे सबसे बडा पोषक

(Support) है। अल्पज्ञो की आलोचना के भय से पुस्तक को बाजारू बनाना मुझे स्वीकार नही।

× × ×

भाषा के विषय मे भी मेरा अपना दृष्टिकोण है। मेरी यह दृढ धारणा है कि भूगोल ही नही, किसी भी वैज्ञानिक विषय के अध्ययन के लिये पाठको को अपना स्तर ऊँचा करना होगा—ये वैज्ञानिक विषय सर्वजन सुलभ होने के लिये स्वय अपना स्तर नीचा न करेंगे। बोलचाल की भाषा मे किसी गभीर विषय पर वैज्ञानिक स्तर की पुस्तक लिखना असभव है। जिसने भी इस दिशा मे थोडा भी प्रयास किया है, उसने इसका अनुभव अवश्य किया होगा। फिर भी, यदि किसी सज्जन को मेरी भाषा क्लिष्ट लगे तो वे अँग्रेजी मे भूगोल के प्रमाणिक ग्रन्थ—Woolridge, S W and Morgan R S.-The Physical Basis of Geography: An outline of geomorphology का मुलाहिजा फरमावे और फिर कहे कि मेरी कृति वास्तव मे क्लिष्ट है।

× × ×

इस ग्रन्थ की रचना मे मेरी अन्य सीमाये भी रही है। उदाहरण के लिये अध्यापन कार्य करते समय मैंने यह अनुभव किया है, कि बी० ए० कक्षा के कला के छात्रो के मस्तिष्क मे विज्ञान एव गणित के तथ्य कठिनता से प्रविष्ट होते है। मैंने शिला सम्बन्धी प्रथम प्रकरण टिरैल की शिलाशास्त्र (Petrology) के आधार पर तैयार किया था, किन्तु जब मैंने देखा कि कला के छात्रो को शिलाओ के नाम तक नही याद होते—सरचना आदि की बात तो अलग रही—तब मैंने उसे अलग कर दिया और प्रस्तुत परिच्छेद लिखा। मुझे इससे तनिक भी सन्तोष नही। फिर भी, वर्तमान परिस्थितियो मे, मैंने ग्रन्थ का श्रीगणेश—छात्रो की दृष्टि मे क्लिष्ट प्रकरण से न कर अपनी दृष्टि मे नितान्त असन्तोषप्रद प्रकरण से ही करना उचित समझा। भविष्य मे, जब पाठको के हृदय से क्लिष्टता का भूत निकल जायगा, मै शिलाविषयक अपने प्रथम प्रयास को प्रस्तुत करूँगा।

पुस्तक के विस्तार को घटाने के लिये मैंने वर्णनात्मक भाग को अत्यन्त सक्षेप मे दिया है जैसे मैदान, पठार अथवा झील की मानवीय महत्ता। इन विषयो पर मोटे-मोटे ग्रन्थ लिखे जा सकते है। शब्दो की यह मितव्ययता मैंने भौगोलिक सिद्धान्तो के विवेचन मे नही की है। अनेक कारणो से, जिनमे कुछ का उत्तर-

दायित्व मुझ पर भी है—इस पुस्तक के प्रकाशन मे असामान्य रूप से दीर्घकाल लगा है। फिर भी मुद्रण सम्बन्धी अनेक त्रुटियाँ रह गई है। इसका एक कारण यह भ था, कि मेरे आदेशो के विपरीत, अन्तिम प्रूफ मुझे दिखलाये बिना ही पुस्तक छाप दी गई। सहृदय पाठको से यही निवेदन है कि वे इस समय क्षीर-नीर विवेक से काम ले और त्रुटियो के लिये मुझे क्षमा प्रदान करे। दूसरे सस्करण मे इन त्रुटियो का परिहार अवश्य कर दिया जायगा।

× × ×

हिन्दी मे अपने ढग का यह प्रथम ग्रन्थ हो सकता है, किन्तु मौलिकता का मिथ्या अभिमान मै नही करना चाहता। वस्तुत इस प्रकार का कोई ग्रन्थ सर्वांशत मौलिक हो भी नही सकता। अँग्रेजी के अनेक प्रामाणिक ग्रन्थो मे जो बिखरा पडा है—मै उसे ही सक्षिप्त, क्रमबद्ध तथा यथासभव भारतीय उदाहरणो द्वारा पुष्टकर व्याख्यान के रूप मे अपने छात्रो को देता हूँ। ये व्याख्यान ही प्रस्तुत पुस्तिका की आधारभूत सामग्री है। स्थानाभाव के कारण उन्हे और भी सक्षेप मे प्रस्तुत किया गया है।

जिन कृतियो से सहायता ली गई है, उनकी सूची यत्र-तत्र दे दी गई है। भौतिक भूगोल के क्षेत्र मे मुझे फिलिप लेक ने सबसे अधिक प्रभावित किया है। उनकी रचना मेरी दृष्टि मे सर्वोत्कृष्ट एव अनुपम है। कदाचित मेरी यह कृति उनकी छाया से मुक्त नही रह सकी है। उनके प्रति मेरा ऋण इतना छोटा नही है कि आभार-प्रदर्शन से मार्जित हो जाय।

× × ×

आदरणीय प्रिन्सिपल श्री हृदयनारायणसिहजी एम० एल० सी० से मुझे प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला है। उन्हे धन्यवाद देना धृष्टता होगी। टी० डी० डिग्री कालिज जौनपुर के पुस्तकाध्यक्ष श्री रणञ्जयसिह मेरे ऊपर विशेष कृपालु रहे है। उन्ही के सौजन्य से मुझे अधिकाश सहायक ग्रन्थ सुलभ हो सके है। अनेक देवी-देवताओ ने पुस्तक के प्रणयन मे अन्य रीतिया से सहयोग दिया है। कु० सुषमा सिनहा, श्रीरामचन्द्र वर्मा तथा श्री सतीशचन्द्र ने रेखाचित्रो के निर्माण मे, श्री शमशेरबहादुर सिह, श्री राजेन्द्रप्रसाद मोदी तथा कुमारी प्रभात सरकार ने लेखन कार्य मे तथा मेरी सुयोग्य छात्रा कु० रूबिना कोलम्बोवाला ने अन्तर्वस्तु के सम्बन्ध मे सहायता दी है। ये सभी मेरे हार्दिक धन्यवाद के पात्र है।

सरस्वती-विहार नागपुर के सचिव डा० लोकेशचन्द्रजी डी० लिट० का

में विशेषरूप् से आभारी हूँ। इस ग्रन्थ में प्रयुक्त सम्पूर्ण पारिभाषिक शब्दावली आपकी अनन्य अनुकम्पा का अंगमात्र है।

श्रद्धेय गुरुवर डा० रामलोचनसिंह पी-एच० डी० (लन्दन), अध्यक्ष भूगोल विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने अपना अमूल्य समय देकर पुस्तक को आद्योपान्त पढा, सशोधन किये, मूल्यवान सुझाव दिये तथा भूमिका लिखने की कृपा की। उनके प्रति मैं अपनी सादर श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

पाठको से यह प्रार्थना है कि वे इस कृति की न्यूनताये दोष एव अभाव तथा अपने अमूल्य सुझाव निसकोच मुझे सूचित करदे, जिससे अगले सस्करण में सुधार किया जा सके। इस कृपा के लिये मैं उनका अत्यन्त आभारी रहूँगा।

मेरी इस साधना द्वारा विद्यार्थी-वर्ग का यदि कुछ भी लाभ होसका, तो मुझे हार्दिक सन्तोष होगा।

—जनार्दन प्रसाद श्रीवास्तव

प्रयाग

ज्वाहर-जयन्ती १९५५

प्रथम खण्ड

अवनि

[THE LITHOSPHERE]

चचाई प्रपात

समर्पण

परम पूज्य पिता जी के चरण-करलों

में

अनुक्रमणिका

प्रथम परिच्छेद

शिलायें (Rocks)

शिला की परिभाषा

सामान्यत 'शिला' शब्द से कठोर पदार्थ का आभास होता है, किन्तु भूगोल एवं भूगर्भशास्त्र मे 'शिला' का अर्थ बडा व्यापक है। इसके अन्तर्गत भूपर्पटी के समस्त ठोस पदार्थ आ जाते है, चाहे वे कठोर हो अथवा कोमल। शिला की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है —

'भूपर्पटी से निकला हुआ कोई भी प्राकृतिक एव ठोस पदार्थ 'शिला' है, चाहे वह कणाश्म (Granite) के समान कठोर हो अथवा मृत्तिका (Clay) के समान मृदुल।'

शिलाओं का वर्गीकरण

शिलाओं के तीन प्रमुख भेद हैं:—

(१) आग्नेय शिलाये (Igneous Rocks)
(२) निसादीय अथवा जलज शिलाये (Sedimentary Rocks)
(३) परिवर्तित अथवा रूपान्तरित शिलाये (Metamorphic Rocks)

आग्नेय शिलायें (Igneous Rocks)

विद्वानो ने पृथ्वी की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे अनेक विचारधाराये प्रस्तुत की है। इन विचारधाराओ मे अधिकाँश इस विषय मे एकमत है कि पृथ्वी किसी समय तरल अवस्था मे थी। इस तरल पदार्थ के घनीभवन से जो शिलाये सबसे पहले बनी, उन्हे हम प्राथमिक (Primary) अथवा आग्नेय (Igneous) शिलाये कहते है। अन्य शब्दो मे, हम उन शिलाओ को आग्नेय शिलाये कहते है, जो द्रव के घनीभूत होने से बनी है। इन शिलाओ का मणिभीय (Crystalline) होना स्वाभाविक ही है।

आग्नेय शिलाओं का वर्गीकरण

आग्नेय शिलाओ के वर्गीकरण के अनेक आधार हो सकते है :-

(१) स्थिति के अनुसार वर्गीकरण

पृथ्वी के अभ्यन्तर मे अनेक ऐसे कक्ष है, जिनमे शिलाद्रव अथवा लावा भरा हुआ है। अनेक कारणो से (जैसे ऊपर के दबाव के घट जाने से) यह लावा भूपृष्ठ की ओर अग्रसर होता है। जैसा कि चित्र १ से स्पष्ट होगा, लावा भूपर्पटी के निर्बल भागो से अर्थात् सन्धियो (Joints) एव तल्प-तलो (Bedding planes) से होता हुआ ऊपर उठता है। जब यह लावा पर्पटी को फोडकर ऊपर आ जाने मे समर्थ होता है, तब हम यह कहते है कि ज्वालामुखी का उद्गार हुआ है। ऊपर उठता हुआ लावा तीन स्थितियो मे घनीभूत हो सकता है :—

(१) या तो वह बिना ऊपर उठे कक्ष ही मे जम जाता है।

(२) अथवा वह भूपृष्ठ की ओर प्रवाहित होते समय मार्ग मे तल्प-तलो, विदरो अथवा सन्धियो मे घनीभूत हो जाता है।

(३) अथवा वह भूपृष्ठ के ऊपर आकर जम जाता है। इस आधार पर हम आग्नेय शिलाओ को तीन वर्गो मे बॉट सकते है—
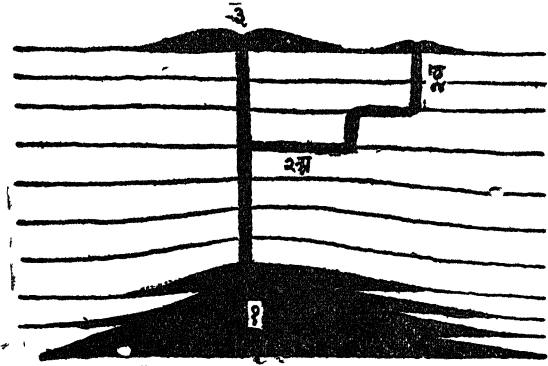
चित्र १—अग्नेय शिलाओ का वर्गीकरण

(१) अधोघनित शिलाये (Plutonic Rocks)—जब लावा पृथ्वी के अभ्यन्तर मे स्थित कक्ष मे अथवा बहुत गहरे घनीभूत होता है, तब जो शिलाये बनती है, उन्हे हम अधोघनित शिलाये (Plutonic Rocks) कहते है (चित्र १ मे १)। इसदशा मे लावा बहुत धीरे ठण्डा होता है, अतएव इन शिलाओ मे मणिभ (Crystalls) पूर्णरूप से विकसित होते है। इसका उदाहरण कणाश्म (Granite) है।

(२) उपाधोघनित (Hypabyssal Rocks)—जब लावा मार्ग मे सन्धियो (Joints) अथवा तल्प-तलो मे घनीभूत होता है, तब जो शिलायें अस्तित्व मे आ जाती है, उन्हे हम उपाधोघनित (Hypabyssal Rocks) कहते है। उपाधोघनित शिलाओ के पुन दो विभाग किए जा सकते है —

(१) रालभित्ति (Dyke)—लम्बवत् सन्धियो मे घनीभूत लावा को हम रालभित्ति (Dyke) कहते है। (चित्र १ मे २ ब)

(२) क्षैतिज विदरो अथवा तल्प-तलो (Bedding planes) में घनीभूत लावा को हम रालपट्ट (Sill) कहते है। (चित्र १ मे २ अ)

यह तो स्पष्ट ही है कि अधोघनित शिलाये उपाधोघनित शिलाओ की तुलना मे कम मणिभीय होगी। इनके बनने मे लावा अपेक्षाकृत जल्दी ठण्डा होता है।

उदाहरण—कासिताश्म (Dolerite)

(३) जब लावा भूपृष्ठ पर आकर घनीभूत होता है, तब उससे जो शिला बनती है, उसे हम ज्वालामुखीय शिला (Volcanic Rock) कहते है (चित्र १ मे ३)। इस दशा मे लावा बहुत शीघ्रता से ठण्डा होता है, फलत जो शिला बनती है, उसमे मणिभ नही होते है। ऐसी शिलायें अमणिभीय (Non-Crystalline) अथवा काँचीय (Glassy) होती है। उदाहरण असिताश्म (Basalt)।

(२) भूपृष्ठ के सन्दर्भ मे वर्गीकरण :—

पृथ्वी के धरातल के सन्दर्भ मे आग्नेय शिलाओ को दो विभागो मे बाँटा जा सकता है —

(१) बहिर्वर्ती शिलाये (Extrusive Rocks)—ये भूपृष्ठ के ऊपर पाई जाती है। उदाहरण—असिताश्म (Basalt)।

(२) अन्तर्वर्ती शिलाये (Intrusive Rocks)—ये भूपृष्ठ के नीचे पाई जाती है। कभी कभी जब अपक्षरण द्वारा इनके ऊपर का आवरण नष्ट हो जाता है, तब ये भूपृष्ठ पर प्रकट हो जाती है। उदाहरण—कणाश्म (Granite)

(३) संरचना के आधार पर वर्गीकरण

शिलाओ में वर्तमान सैकजा (Silica) की मात्रा के विचार से आग्नेय शिलाओ के चार भेद किए जा सकते है —

(१) आम्लिक आग्नेय शिलाये (Acid Igneous Rocks)—इनमे सैकजा की मात्रा (भार मे) ६५ प्रतिशत से अधिक होती है।

(२) माध्यमिक आग्नेय शिलायें (Intermediate Igneous Rocks)—इनमे सैकजा की मात्रा ५५%से ६५%तक होती है।

(३) क्षारीय आग्नेय शिलाये (Basic Igneous Rocks)—इनमे सैकजा की मात्रा ४५%से ५५%तक होती है।

(४) अतिक्षारीय आग्नेय शिलाये (Ultra-basic Igneous Rocks) इनमे सैकजा की मात्रा ४५%से कम होती है।

आम्लिक आग्नेय शिला का उदाहरण कणाश्म (Granite) है ओर क्षारीय आग्नेय शिला का असिताश्म (Basalt)। सामान्यत आम्लिक शिलाये हल्के वर्ण की होती है और उनमे ऋतुक्षरण (Weathering) अपेक्षाकृत कम होता है। इसके विपरीत क्षारीय शिलाये अधिकतर गहरे रग की होती है और वे ऋतुक्षरण से शीघ्र प्रभावित होती है।

निसादीय अथवा जलज शिलायें (Sedimentary Rocks)

निसादीय शिलाये वे शिलाये है, जो पूर्ववर्ती शिलाओ के अवसादो से बनती है। ये पूर्ववर्ती शिलाये पृथ्वी के इतिहास की आरभिक अवस्था मे केवल आग्नेय शिलाये थी, किन्तु कालान्तर मे इनका स्थान सभी प्रकार की शिलाओ ने ले लिया। जल, हिमानी, वायु आदि अभिकर्ता इन शिलाओ का अपक्षरण करते है और फिर अपक्षरित पदार्थ का परिवाहन करके अन्यत्र कही स्तरो के रूप मे सचित कर देते है। इस प्रकार अस्तित्व मे आई हुई शिलाओ को हम निसादीय शिलाये (Sedimentary Rocks) कहते है। इनका दूसरा नाम जलज शिलाये भी है, जो भ्रामक है क्योकि इनकी रचना केवल जल की क्रिया से नही होती है, वरन् हिमानी, वायु आदि अभिकर्ता भी इनकी सृष्टि के लिए उत्तरदायी है। स्तरो मे व्यवस्थित पाये जाने से इन्हे स्तृत शिलायें (Stratified Rocks) भी कहते है। यह नाम भी पूर्णत. यथार्थ नही क्योकि निसादीय शिलाओ के अन्तर्गत जीवो के कर्परो (Shells) और ककालो (Skeletons) तथा पेड-पौदो के अवशेषो से बनी शिलाये भी आती है जिनमे स्तर नही पाए जाते।

भूपर्पटी के अधिकाँश भाग पर निसादीय शिलाओ का आवरण है। ये धरातल का लगभग ७५ प्रतिशत भाग ढके हुए है। यद्यपि इनका विस्तार इतना अधिक है, तथापि इनसे भूपर्पटी का केवल ५ प्रतिशत भाग निर्मित है। इससे स्पष्ट है कि इनकी गहराई बहुत कम है।

जलज शिलाओं का वर्गीकरण

जलज शिलाओ के वर्गीकरण के दो आधार हो सकते है—(१) सरचना तथा (२) उत्पत्ति।

(१) संरचना के अनुसार वर्गीकरण

सरचना की दृष्टि से जलज शिलाओ को निम्नलिखित चार विभागो में बाँटा जा सकता है —

विभाग	सरचना	उदाहरण
१ सैकतमय (Arenaceous)	सिकता अथवा बालू कण (Sand particles)	बालुकाश्म (Sandstone)
२ मृण्मय (Argillaceous)	मृत्तिका (Clay)	जम्बशिला (Shale)
३ चूर्णमय (Calcareous)	कैलशियम कार्बोनेट Calcium Carbonate	चूने का पत्थर (Limestone)
४ प्रागारमय (Carbonaceous)	कार्बन (Carbon)	जीर्णक (Peat), बभ्रु अगार (Lignite) कोयला (Coal)

कुछ निसादीय शिलाये ऐसी है, जो उपर्युक्त वर्गीकरण मे नही आती है—

संपिण्ड (Conglomerate)—अष्टीला (Pebbles) जैसे शिलाओ के गोलाकार टुकडो के परस्पर चिपक जाने से यह शिला बन जाती है।

संकोणाश्म (Breccia)—ये शिला पत्थर के नोकदार टुकडो के परस्पर चिपक जाने से बन जाती है।

(२) उत्पत्ति के अनुसार वर्गीकरण

उत्पत्ति के विचार से जलज शिलाओ को निम्नलिखित विभागो मे बाँटा जा सकता है :—

(१) **सागरीय निक्षेप** (Marine Deposits)—ये शिलाये सागर अथवा महासागर मे निक्षेपित होती है।

(२) झील निक्षेप (Lacustrine Deposits)—ये शिलाये झीलो मे निक्षेपित होती है।

(३) सरिता निक्षेप (Riverine Deposits)—सरिताओ के बाढ क्षेत्र मे ऐसी शिलाये बन जाती है।

(४) वायु निक्षेप—(Aeolian Deposits)—वायु द्वारा परिवाहित सिकता कण एकत्र होकर कठोर चट्टानो मे परिणत हो जाते है। उदाहरणार्थ लौयस (Loess)।

(५) हिमानी निक्षेप (Glacial Deposits)—हिमनदियो द्वारा निक्षेपित पदार्थ ससाद्रित होकर शिलाओ का रूप ले लेता है। हिमानी-निक्षेप का एक उदाहरण दीर्घकूटिका (Drumlin) है, जो उल्टी नाव की आकृति का हिमनदी कृत निक्षेप है। विशेष विवरण के लिए हिमनदी का प्रकरण देखिए।

(६) रासायनिक निक्षेप (Chemically formed Deposits)—ये शिलाये रासायनिक प्रक्रियाओ के फलस्वरूप बन जाती है। उदाहरणार्थ—यदि पानी मे कार्बन डाइ आक्साइड घुला हो तो उसमे चूने के पत्थर को घोल लेने की क्षमता आ जाती है, यह घुला हुआ चूने का पत्थर अनेक रूपो मे निक्षेपित होता है जैसे चूने के पत्थर की कन्दराओ मे छत से लटकते हुए स्तम्भ पाए
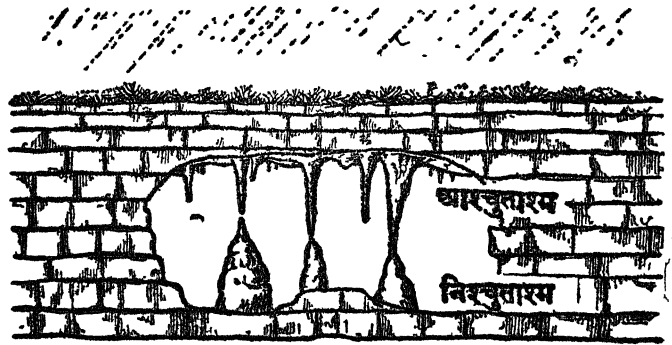
आश्चुताश्म (Stalactites) एव निश्चुताश्म (Stalagmites)

जाते है, जिन्हे च्यावाश्म (Stalagtite) कहते है और फर्श पर स्थापित स्तम्भ भी पाए जाते है, जिन्हे निश्चुताश्म (Stalagmite) कहते है। विशेष विवरण के लिये भूमिगत जल का प्रकरण देखिए।

(७) अवयवी अथवा आगिक निक्षेप (Organic Deposits)–जानवरो (जैसे मूँगे का कीडा) तथा पेड पौदो के अवशेषो से इन शिलाओ का निर्माण होता है।

(३) परिवर्तित शिलायें (Metamorphic Rocks)

कभी २ ताप दबाव अथवा रासायनिक प्रक्रियाओ के कारण आग्नेय और जलज शिलाओ मे इतना अधिक परिवर्तन हो जाता है, कि उनके अनेक मौलिक लक्षण लुप्त हो जाते है और नवीन लक्षण प्रकट हो जाते है। इन्हे तब हम परिवर्तित शिलाये (Metamorphic Rocks) कहते है। उदाहरण—

(१) ताप (Heat) के माध्यम द्वारा चूने का पत्थर (Limestone) सगमरमर (Marble) मे परिणत हो जाता है।

ताप
चूने का पत्थर (Limestone) → सगमरमर (Marble)

(२) दबाव (Pressure) के कारण जम्बशिला (Shale) सुभाजा (Schist) मे परिणत हो जाती है

दबाव
जम्बशिला (Shale) → सुभाजा (Schist)

सामान्यत परिवर्तित शिलाये मणिभीय (Crstalline) होती है। इस दृष्टि से इनमे और आग्नेय शिलाओ मे यह अन्तर है, कि इनमे मणिभ समानान्तर स्तरो मे व्यवस्थित रहते है और आग्नेय शिलाओ मे उनकी कोई व्यवस्था नही होती।

शिलाओ मे परिवर्तन की क्रिया (Metamorphism) ऋतुक्षरण (Weathering) की ठीक उल्टी है। इन दोनो क्रियाओ से शिलाओ मे अन्तर हो जाते है—परिवर्तन द्वारा साधित अन्तर सृजनात्मक होता है और ऋतुक्षरण द्वारा साधित अन्तर विनाशकारी। ऋतुक्षरण की क्रिया के कारण सुन्दर-सुन्दर शिलाये भद्दी लगने लगती है और कालान्तर मे वे नष्ट-भ्रष्ट होकर धूलि मे परिणत हो जाती है। इसके विपरीत परिवर्तन से चूने के पत्थर जैसी काली भद्दी और अनाकर्षक शिला सगमरमर जैसी सुन्दर एव नयनाभिराम शिला मे परिणत हो जाती है।

शिलाओं में परिवर्तन (Metamorphism) के भेद

शिलाओ मे होने वाले परिवर्तन का वर्गीकरण दो आधारो पर किया जा सकता है.—

(१) अभिकर्ता (Agency) के अनुसार

(२) प्रभावित होने वाले क्षेत्र के विस्तार के अनुसार

(१) अभिकर्ता के अनुसार

(१) **तापीय परिवर्तन** (Thermal Metamorphism)—इस दशा में परिवर्तन का मुख्य कारण ताप होता है, जैसे चूने के पत्थर का सगमरमर में परिणत हो जाना—

चूने का पत्थर $\xrightarrow{\text{ताप}}$ सगमरमर

(२) **गत्यात्मक परिवर्तन** (Dynamic Metamorphism)—इस दशा मे परिवर्तन का मुख्य कारण दबाव होता है, जैसे जम्बशिला (Shale) का सुभाजा (Schist) मे परिणत हो जाना—

जम्बशिला (Shale) $\xrightarrow{\text{दबाव}}$ सुभाजा (Schist)

(२) प्रभावित होनेवाले क्षेत्र के विस्तार के अनुसार

(१) **संस्पर्शीय परिवर्तन** (Contact Metamorphism)—भूपर्पटी से जब लावा ऊपर उठता है, तब वह अपने चारो ओर की शिलाओ को प्रभा-

चित्र ३- संस्पर्शीय परिवर्तन (CONTACT METAMORPHISM)
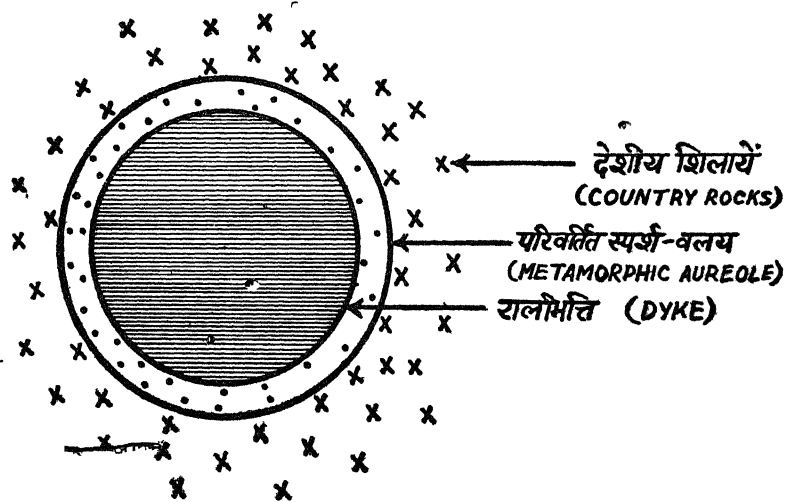
वित करता है। उष्ण लावा के सस्पर्श से चारो ओर की चट्टाने झुलस जाती है। यही नही, लावा की धाराये भी उनमे प्रविष्ट हो जाती है और इस प्रकार रासायनिक प्रक्रियाये भी घटित होती है। रालभित्ति के चारो ओर स्थित परिर्वतित शिला के कटिबन्ध को परिर्वतित स्पर्श वलय (Metamorphic aureole) कहते है। सौराष्ट्र मे अनेक अध शैल (Bathyliths) पाये जाते है। उनके चारो ओर सस्पर्शीय परिवर्तन के प्रमाण मिलते है।

(२) **प्रादेशिक परिवर्तन** (Regional Metamorphism)—कभी २ परिवर्तन की क्रिया बडे विस्तृत क्षेत्र मे होती है। उदाहरण के लिये जब भजित पर्वत (Folded Mountains) बनते है, तब भूपर्पटी के एक वृहद् कटिबन्ध की शिलाओ मे परिवर्तन होता है। हिमालय पर्वत का मध्यवर्ती अक्ष ऐसी ही परिर्वतित शिलाओ से बना है।

परिवर्तित शिलाओं का वर्गीकरण

परिर्वतित शिलाओ के वर्गीकरण के अनेक आधार हो सकते है—

(१) मूल शिलाओ के आधार पर

(२) परिवर्तन के अभिकर्ता (Agency of metamorphism) के अनुसार

(३) प्रभावित होने वाले क्षेत्र की प्रकृति और विस्तार के अनुसार।

(१) मूल शिलाओं के आधार पर

मूल शिलाओ के आधार पर परिर्वतित शिलाओ के दो विभाग किए जा सकते है—

(१) **परि-जलज शिलायें** (Meta-sedimentary Rocks)—उन परिर्वतित शिलाओ को कहते है, जो जलज शिलाओ के परिवर्तन से बनती है जैसे सगमरमर

चूने का पत्थर ——————————> सगमरमर

(जलज शिला) (परि-जलज शिला)

(२) **परि-अग्नेय शिलाये** (Meta-Igneous Rocks)—उन परिर्वतित शिलाओ को कहते है, जो आग्नेय शिलाओ के परिवर्तन से बनती है जैसे सर्पिजशिला (Serpentine)

श्यामाश्म (Gabbro)—— ——>सर्पिजशिला (Serpentine)
(आग्नेय शिला) परि-आग्नेय शिला

(२) परिवर्तन के अभिकर्ता के अनुसार

इस दृष्टि से परिवर्तित शिलाओ को दो वर्गों मे बाँटा जा सकता है—

(१) **तापीय परिवर्तन** (Thermal Metamorphism) की शिलायें—जैसे सगमरमर

ताप
चूने का पत्थर ——————> सगमरमर

(२) **गत्यात्मक परिवर्तन** (Dynamic Metamorphism) की शिलाये—जैसे सुभाजा (Schist)

जम्बशिला (Shale)————————>सुभाजा (Schist)

(३) प्रभावित होने वाले क्षेत्र के विस्तार के अनुसार

इस आधार पर परिवर्तित शिलाओ के दो विभाग किए जा सकते हैं—

(१) **संस्पर्शीय परिवर्तन की शिलायें**—जैसा कि पूर्व मे उल्लेख हो चुका है, सस्पर्शीय परिवर्तन मे उष्ण शिला-द्रव अथवा लावा अन्य ठोस शिलाओ का सस्पर्श करते हुए ऊपर उठता है, जिससे वे झुलस जाती है और कभी कभी उनमे लावा की धारायें भी प्रविष्ट हो जाती है, जिससे रासायनिक प्रक्रियाये भी घटित हो जाती है। इसका एक उदाहरण चूने के पत्थर मे प्रविष्ट रालभित्ति (Dyke) है। रालभित्ति के किनारे के निकट चूने का पत्थर सगमरमर मे परिणत हो जाता है। यह सस्पर्शीय परिवर्तन का ही फल है।

(२) **प्रादेशिक परिवर्तन की शिलायें**—जब परिवर्तन की प्रक्रिया विस्तृत प्रदेश मे घटित होती है, तब जो परिवर्तित शिलाये बनती है, उन्हे हम प्रादेशिक परिवर्तन की शिलाये कहते है। उदाहरणार्थ पैन्सिलवानिया (सयुक्त राष्ट्र अमेरिका) मे पर्वतकारक बलो (Orogenic forces) के दबाव से तथा घर्षण के ताप से विस्तृत क्षेत्र मे चूने का पत्थर सगमरमर मे और जम्बशिला (Shale) शिलापट्ट (Slate) मे परिणत हो गई है।

परीक्षाओं में पूछे गये प्रश्न

1. Suggest a classification of rocks of the earth's crust and give a brief account of their mode of origin. (Agra B. A. 1953.)

2. Discuss the nature and mode of origin of the chief types of rocks (Allahabad B A. 1951.)

3. What are the distinguishing characterstics and modes of formation of igneous, metamorphic and sedimentary rocks ?

(Agra B A, Part I, 1955.)

4. Classify different kinds of rocks. How would you distinguish each of them ? Account for the economic importance of igneous rocks.

(Agra B. A. 1955.)

5. Describe the mode of origin and chief characteristics of sedimentary rocks. Give their common varieties and economic uses.

(Agra B A. 1952.)

6 Classify sedimentary rocks and state their chief characteristics and uses

(Banaras B. A. and B. Sc. 1951.)

7. Discuss the process of origin and characteristic features of the major classes of sedimentary rocks. (Banaras B. A. and B. Sc. 1953.)

8. What do you understand by metamorphism in rocks? State the various ways, it is brought about giving examples. (Agra B. A. 1948.)

9. Write notes on—

(a) Igneous Rocks. (Ajmer Inter. 1949.)

(b) Sedimentary Rocks.

(Allahabad B.A 1952 & Nagpur Inter. 1951.)

(c) Metamorphism.

(Banaras B. A. and B. Sc. 1951.)

(d) Dyke (Banaras B.A. & B.Sc. 1951.)

द्वितीय परिच्छेद

भूपर्पटी की गतियाँ

निम्नाकित सारिणी भूपर्पटी की गतियो का सरल वर्गीकरण प्रस्तुत करती है—

भूपर्पटी की गतिय

पर्वतकारक (Orogenic) —ये गतियाँ उन बलो के कारण होती है, जो क्षैतिज दिशा मे क्रियाशील होते हैं। इन गतियो के फलस्वरूप निम्नलिखित प्रक्रियाये घटित होती है —

(१) **भजन** (Folding)
(२) **विभजन** (Faulting)
(३) **विभजन** (Warping)

महाद्वीपकारक (Epeirogenic).—ये गतियाँ उन बलो के कारण होती है, जो लम्बवत् दिशा मे क्रियाशील होते है। इन गतियो के फलस्वरूप धरातल के समतल मे परिवर्तन हो जाते है। इन्हे पुन दो उपविभागो मे बाँटा जा सकता है.—

(१) **आकस्मिक गतियाँ**—इनके फलस्वरूप धरातल का भाग विशेष अचानक ऊपर उठ जाता है या नीचे धँस जाता है।

(२) **मन्द एवं दीर्घकालीन गतियाँ** इनके फलस्वरूप धरातल मे मन्द वेग से दीर्घकाल मे अधोगति अथवा निमज्जन (Subsidence), ऊर्ध्वगति अथवा उन्मज्जन (Elevation), अथवा समतल के दोलन (Oscillations of level) होते है।

भू पर्पटी की गतियो का वर्गीकरण

समुद्वर्तन (Diastrophism) शब्द के अन्तर्गत भूपर्पटी की समस्त गतियाँ आ जाती है।

भूपर्पटी की गतियो को हम मोटे तौर पर दो प्रमुख विभागो मे बाँट सकते है :—

१—पर्वतकारक गतियाँ (Orogenic or Mountain- Building Movements)।

२—महाद्वीपकारक (Epeirogenic or Continent-Building Movements)

इनकी विवेचना बाँये पृष्ठ पर दी गई सारिणी मे की गई है।

१. पर्वतकारक गतियाँ (Orogenic Movements)

पर्वतकारक गतियाँ उन बलो के कारण होती है जो क्षैतिज दिशा मे क्रियाशील होते है। इन गतियो से भजन (Folding) विभगन (Faulting) और विभजन (Warping) होता है।

(१) भंजन (Folding)

जब शिलाओ के क्षैतिज स्तरो पर दो विपरीत दिशाओ से दबाव पडता है, तब उनमे मोड पड जाते है। यही भजन (Folding) है। चित्र ६ से यह कथन स्पष्ट होगा। इन मोडो या भजो (Folds) के ऊपर उठे हुए भागो को हम भज-चाप (Anticline) कहते है और नीचे धँसे हुए भागो को भज-द्रोणी (Syncline)।

भंजन-क्रिया (Folding) का वर्गीकरण

भजन की मुख्य प्रकारे निम्नलिखित है—

(१) सम्मित भजन (Symmetrical Folding)—जब प्रत्येक भज के दोनो बाहु समान रूप से झुके रहते है।
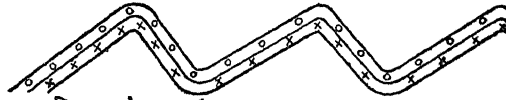
(२) असम्मित भजन (Asymmetrical Folding)—जब प्रत्येक भज का एक बाहु दूसरे की अपेक्षा कम या अधिक झुका रहता है।
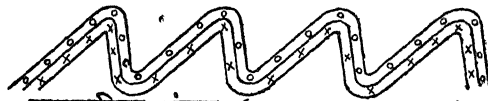
(३) एकप्रवणिक भजन (Monoclinal Folding)—जब प्रत्येक भज का एक बाहु लम्बवत (Vertical) होता है।

(४) समाभिनत भजन (Isoclinal Folding)—जब प्रत्येक भज के दोनो बाहु परस्पर समानान्तर होते है।

(५) शायी भजन (Recumbert Folding)—जब भज के दोनो बाहु प्राय. क्षैतिज होते है। स्पष्ट है, कि इसके निर्माण के लिए एक दिशा से लगने वाला पार्श्विक दबाव अपने विपरीत दिशा से लगने वाले पार्श्विक दबाव से बहुत अधिक होगा।
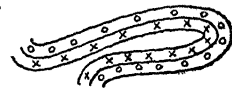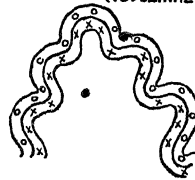
(६) व्यजनाकार भजन (Fan Folding)—जब पार्श्विक दबाव के
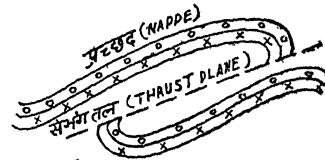
चित्र-४ भंजन-क्रिया (FOLDING) का वर्गीकरण

आधिक्य से भजित क्षेत्र का मध्यवर्ती भाग ऊपर उठ जाता है और मेहराब जैसी आकृति बन जाती है।

संभग तल (Thrust Plane) तथा प्रच्छद (Nappe)

कभी २ जब भजन की क्रिया सम्पन्न होती ह, तब पश्विक दबाव के अधिक्य से पर्पटी मे दरार पड जाती है और उसके अनुरूप पर्पटी का एक खण्ड फिसलकर दूसरे खण्ड के ऊपर चढ जाता है। इस प्रकार फिसलने की गति को हम (Thrust) कहते है और वह जिस समतल के अनुरूप होती है उसे सभग तल (Thrust Plane) कहते है। पर्पटी के उस खण्ड को जो ऊपर चढ जाता है, प्रच्छद (Nappe) कहते है। Nappe शव्द फ्रान्सीसी भोषा का है कौर इसका शाव्दिक अर्थ है—मेज का बिछावन।

(२) विभंगन Faulting)

कभी-कभी वृहद् पार्श्विक दबाव के कारण कठोर शिलास्तर मुडने के स्थान पर टूट जाते है और इस प्रकार एक दरार अस्तित्व मे आ जाती है। इस क्रिया को हम विभगन (Faulting) कहते है और इस दरार को विभग समतल (Fault Plane)। जैसा कि चित्र ५ से स्पष्ट होगा। दबाव के कारण विभग समतल के एक पार्श्व के शिलास्तर दूसरे पार्श्व के शिलास्तर की अपेक्षा ऊपर उठ जाते है। सक्षेप मे, भूपर्पटी की ऐसी दरार अथवा विदर को जिसके एक पार्श्व के शिलास्तर दूसरे पार्श्व के शिलास्तरो की अपेक्षा ऊपर उठ जाते है हम विभग (Fault) कहते है।

विभगन की प्रक्रिया एव वर्गीकरण के समझने के लिये कुछ शब्द विशेष जान लेना समीचीन होगा—

(१) विभग समतल (Fault Plane)—उस समतल को कहते है, जिसके अनुरूप शिलास्तरो की गति होती है।

(२) विभग समतल का अभिनति कोण (Dip)—विभग-समतल क्षैतिज-दिशा के प्रति जो कोण बनाता है, उसे हम विभग-समतल का अभिनति कोण (Dip of the Fault Plane) कहते है।

(३) ऊपर उठा हुआ खण्ड (Upthrown side) ओर नीचे धँसा हुआ खण्ड (Downthrown side).–ऊपर उठा हुआ खण्ड शिलास्तर का वह भाग है, जो विभग-समतल की दूसरी ओर के शिलास्तर की अपेक्षा ऊपर उठा रहता है। वास्तव मे, क्षेत्र (Field) मे यह निर्धारित करना कि शिलास्तर के कौन से भाग मे गति हुई है बडा कठिन है।

(४) लम्बित-भित्ति (Hanging Wall)—विभग-समतल के ऊपरी पृष्ठ को लम्बित-भित्ति (Hanging Wall) कहते है।

(५) पद-भित्ति (Foot Wall)--विभग समतल के निचले पृष्ठ को पद-भित्ति (Foot Wall) कहते हैं।

विभंगों का वर्गीकरण (Classification of Faults)

विभगो की प्रमुख प्रकारे निम्नाँकित है--

(१) सामान्य विभग (Normal Fault)--इसमे लम्बित भित्ति (Hanging Wall) धँसे हुए खण्ड की ओर होती है।
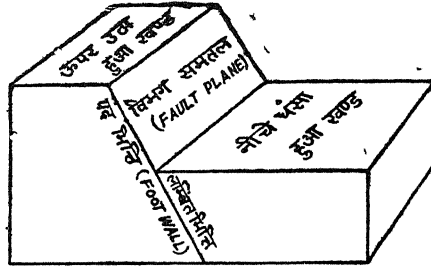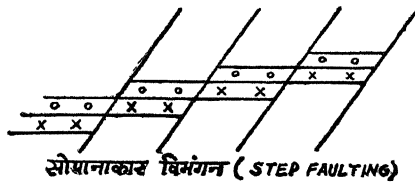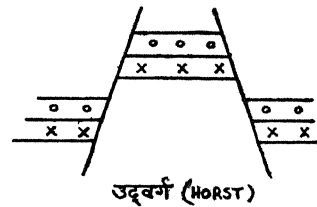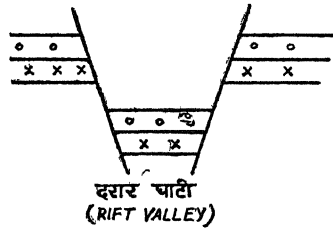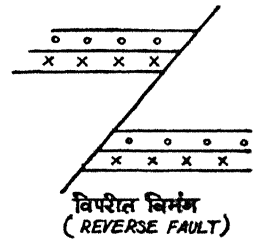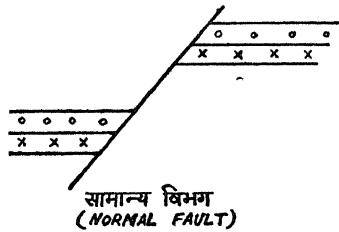
चित्र ५--विभगो का वर्गीकरण

(२) विपरीत विभग (Reverse Fault)—इसमे लम्बित भित्ति ऊपर उठे हुए खण्ड की ओर होती है।

(३) दरार घाटी (Rift Valley or Graben)—दो सामान्य विभगो के मध्य मे धँसे हुए स्थलखण्ड को हम दरार घाटी (Rift Valley) कहते है।

(४) उद्वर्ग (Horst)—यह दरार घाटी का ठीक उल्टा है। जब दो सामान्य विभगो के मध्य का स्थलखण्ड ऊपर उठ जाता है, तब उसे हम उद्वर्ग (Horst) कहते है।

(५) सोपानाकार विभगन (Step Faulting)—जब अनेक उत्तरोत्तर एव समानान्तर विभगो मे ऊपर उठने या नीचे धँसने की गति एक ही दिशा मे होती है, तब उसे हम सोपानाकार विभगन (Step Faulting) कहते है।

(३) विभंजन (Warping)

कभी २ महाद्वीपकारक गतियो के फलस्वरूप भूपृष्ठ के वृहत् क्षेत्र मुड कर ऊपर उठ जाते है या नीचे धँस जाते है। ऐसे क्षेत्र सैकडो मील लम्बे और चौडे होते है। ऊपर उठे हुए क्षेत्र को हम भू-चाप (Ge-anticline) कहते है और नीचे धँसे हुए क्षेत्र को भूद्रोणी (Geosyncline)। इस प्रकरण के पूर्वाश मे भज-चाप (Anti-cline) एव भज-द्रोणी (Syncline) का उल्लेख हो चुका है। यहाँ पर इनका भेद स्पष्ट कर देना उचित होगा। भज-चाप अथवा भज-द्रोणी मे शिलाओ के अपेक्षाकृत बहुत कम (अर्थात् लगभग दो तीन) स्तर प्रभावित होते है, किन्तु भूद्रोणी अथवा भूचाप मे भूपर्पटी की वृहत् मोटाई निहित होती है। उत्तरी अमेरिका का पश्चिमी मैदान भूचाप (Ge-anticline) का द्योतक है और बाल्टिक सागर भू-द्रोणी (Geo-syncline) का। यहाँ पर यह उल्लेख कर देना उचित होगा कि भूचाप अथवा भूद्रोणी मे अनेक छोटे २ भज (Folds) एव विभग (Faults) विद्यमान हो सकते है।

महाद्वीपकारक गतियाँ (Epeirogenic Movements)

महाद्वीपकारक गतियाँ उन बलो के कारण होती है, जो लम्बवत दिशा मे क्रियाशील होते है। इनसे धरातल के समतल मे अन्तर हो जाते है, अर्थात् वह ऊपर उठ जाता है अथवा नीचे धँस जाता है।

महाद्वीपकारक गतियो को पुन दो उपविभागो मे विभाजित किया जा सकता है—(१) आकस्मिक (Sudden) एव (२) मन्थर (Slow)।

(१) आकस्मिक गतियाँ (Sudden Movements)

आकस्मिक गतियो से भूकम्प होते हैं, जिनसे भूपृष्ठ के समतल में अन्तर हो जाते हैं। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं —

(क) उन्मज्जन (Elevation)

(१) सन् १८८५ ई० के न्यूजीलेण्ड के भूकम्प से धरातल का कुछ भाग ९ फुट ऊपर उठ गया।

(२) सन् १८२२ ई० के चिली के भूकम्प से तट रेखा ३ फुट से लेकर ४ फुट तक ऊपर उठ गई।

(ख) निमज्जन (Subsidence)

(३) सन् १८९१ ई० के जापान के भूकम्प से धरातल का कुछ भाग एक ओर २० फुट नीचे धँस गया।

(४) सन् १८१९ ई० के कच्छ के भूकम्प से २००० वर्गमील का वृहत् क्षेत्र १२ से लेकर १५ फुट तक नीचे धँस गया और अन्तर्देशीय सागर (Inland Sea) मे परिणत हो गया। साथ ही साथ ६०० वर्ग मील का अन्य क्षेत्र ऊपर उठ गया। इस ईश्वरनिर्मित बाँध को आज भी हम 'अल्लाह-बाँध' कहते हैं।

(२) मन्थर एवँ दीर्घकालीन गतियाँ (Slow and Secular Movements)

इनसे धरातल मे तीन प्रकार के अन्तर होते हैं —

(क) धीरे-धीरे ऊपर उठना (Elevation)

(ख) धीरे-धीरे नीचे धँसना (Subsidence)

(ग) समतल के दोलन (Oscillations of Level) —अर्थात् एकान्तर पर धरातल का ऊपर उठना और नीचे धँसना। यह क्रिया भी क्रमश धीरे-धीरे होती है।

(क) समतल का उन्मज्जन (Elevation of Level)

इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे है —

(१) बिलूचिस्तान के मेकरान तट पर सागर समतल से १०० फुट की ऊँचाई पर स्थित क्षेत्र मे महासागरीय जीवो के कर्पर (Shells) उपलब्ध हुए हैं।

(२) काठियावाड के तट पर कणुकाश्म (Miliolite) नामक एक चूने का पत्थर पाया जाता है। इसका नाम (Miliolite) इसलिये पडा कि इसकी रचना कणुक (Miliota)नाम के पादछिद्रि (Foraminifer) के अवशेषो से हुई है। यह तो निर्विवाद है कि कणुक केवल सागर मे पाये जाते है, स्थल मे नही। उक्त प्रदेश मे चोटीला नाम के पर्वत की ११७३ फुट ऊँची चोटी पर कणुकाश्म (Miliolite) पाया गया है।

(३) पूर्वीतट पर उडीसा, आन्ध्र और मद्रास मे अनेक स्थानो मे उन्मज्जन हुआ है। इन क्षेत्रो मे सागर-समतल से ५० से लेकर १०० फुट की ऊँचाई तक सामुद्रिक जीव चूर्णप्रावारा (Mollusca) के कर्पर पाये गये है।

(४) इसी प्रकार स्कॉटलैण्ड मे भी तट के उन्मज्जन के चिह्न मिले है।

(ख) समतल का निमज्जन (Subsidence)

इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे है —

(१) सन् १८७८ ई० मे जब बम्बई द्वीप के पूर्वी तट पर खुदाई अथवा उत्खनन (Excavation) का कार्य हो रहा था, तब वहाँ पृथ्वी मे धँसे हुए बहुत से वृक्ष पाये गये। ३० एकड के क्षेत्र मे ३८२ वृक्ष मिले, जिनमे २२३ अपनी मूलस्थिति मे लम्बवत् खडे थे। ये वृक्ष उच्चतम ज्वार के समतल से ३३ फुट नीचे पाये गए। स्पष्ट है, कि इस दशा मे धरातल कम से कम ३३ फुट नीचे धँस गया है।

(२) इसी प्रकार वालीमुकम की खाडी मे टिन्नवैली तट पर एक अन्य धँसे हुए बन का पता चला है।

(३) पाण्डिचेरी के जीर्णक-निक्षेप (Peat Deposits) धरातल के निमज्जन के द्योतक है। यह निमज्जन प्रातिनूतन (Pleistocene) और अभिनव (Recent) काल मे हुआ है।

(४) ब्रिटिश द्वीप समह मे भी निमज्जन के प्रमाण मिलते है, जिनसे विदित होता है कि निकट पूर्वकाल मे उत्तरी सागर का दक्षिणी भाग 'निम्न समतल का बन' (Low Lying Forested Area) था।

(ग) समतल का दोलन (Oscillation of Level)

इसका एक सुन्दर उदाहरण नेपिल्स मे सिरापिस का मदिर (Temple of Serapis) है। इस मदिर के खण्डहर के अध्ययन से यह विदित होता है

कि यहाँ के धरातल मे निमज्जन और उन्मज्जन दोनो ही गतियाँ क्रम से घटित हुई हैं। इस मदिर मे तीन खम्भे है। धरातल से लेकर १२ फुट की ऊँचाई
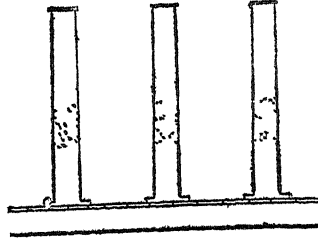
चित्र ६—सिरापिस के मन्दिर के खण्डहर

तक ये खम्भे चिकने हैं। फिर १२ फुट से लेकर २१ फुट ऊँचाई तक इनमे सामुद्रिक जीवो द्वारा निर्मित छिद्र वर्तमान है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उक्त मदिर २१ फुट के चिह्न तक समुद्र मे डूबा हुआ था, १२ फुट के चिह्न तक ये खम्भे ज्वालामुखीय धूलि (Volcanic Dust) मे धँसे हुए थे, जिससे सामुद्रिक जीव इसमे छेद न कर सके। कालान्तर मे यह मदिर धरातल के उन्मज्जन के कारण समुद्र से बाहर निकल आया।

परीक्षाओं में पूछे गये प्रश्न

1 Describe the main types of earth-movements and the relief features they give rise to on the earth's surface. (Agra B A 1951)

2. What is Diastrophism and how does it effect landforms ? Give examples and explain the most common landforms associated with it (Agra B. A. 1949.)

3. Write notes on—(a) Rift Valley. (Allahabad M A 1953, Banaras B A. and B Sc 1949 1950 and 1952 ; Agra B A Part I, 1955.)

(b) Ge-anticline (Allahabad M A 1950.)

(c) Folding (Nagpur Inter. Supple. 1951.)

(d) Nappe (Agra B. A. 1953 ; Lucknow M. Sc Geology 1951)

(e) Syncline (Agra B A. Part I, 1955)

तृतीय परिच्छेद

भूकम्प

१. भूकम्प क्या है ?

भूपृष्ठ के किसी भाग के यकायक कॉप जाने को हम 'भूकम्प' कहते है।

२ भूकम्प के कारण

भूकम्प आने के प्रमुख कारण निम्नलिखित है—

(१) ज्वालामुखी
(२) पृथ्वी का सिकुडना
(३) भूसन्तोल का सिद्धान्त
(४) विभगन की प्रक्रियाये
(५) डा० रीड का सिद्धान्त
(६) पृथ्वी के अन्दर गैसो का फैलना
(७) कृत्रिम भूकम्प के कारण

(१) ज्वालामुखी

ज्वालामुखी के विस्फोट के समय यह अत्यन्त स्वाभाविक है, कि उसका निकटवर्ती क्षेत्र कॉप उठे। कभी-कभी ज्वालामुखी के क्षेत्र मे विस्फोट हुए बिना ही भूकम्प आ जाता है। यह इस प्रकार होता है। पृष्ठ से सैकडो मील नीचे पृथ्वी के अन्दर लावा विद्यमान है। द्रवित शिलाओ का नाम ही लावा है। कभी २ ऊपर के दबाव के घट जाने से या अन्य किसी कारण-वश यह लावा धरातल की ओर बढता है। जैसा कि चित्र—७ क द्वारा स्पष्ट है, यह लावा निर्बल भाग अर्थात् दरारो और सन्धियो से होता हुआ ऊपर उठता है। यदि इसके मार्ग मे कोई कठोर शिलाखण्ड आ जाता है, तो वह ऊपर नही जा पाता। शिलाखण्ड के विरुद्ध उसकी शक्ति क्रमश सचित होती रहती है। कालान्तर मे ऐसी अवस्था आ जाती है, कि उसकी सचित शक्ति शिलाखण्ड को हिला देती है। इस प्रकार शिलाखण्ड के ऊपर धरातल मे 'भूकम्प' आ जाता है।

आधुनिक अनुसन्धान इस धारणा के विरुद्ध है। इनके अनुसार भूपर्पटी मे बहुत से तेजोद्गर पदार्थ (Radio-active Substances) वर्तमान है।

(२) पृथ्वी का सिकुड़ना

अनेक विद्वानो की यह धारणा है, कि विकिरण (Radiation) की क्रिया द्वारा पृथ्वी का तापक्रम क्रमश घटता जा रहा है। ताप के क्षीण होने से

(क) ऊपर उठते हुए लावा के दबाव से पृथ्वी काँप उठती है।

(ख) पृथ्वी से ताप का विकिरण होता है जिससे वह सिकुड़ती है।

(ग) पृथ्वी के अन्दर गैसों का फैलना।
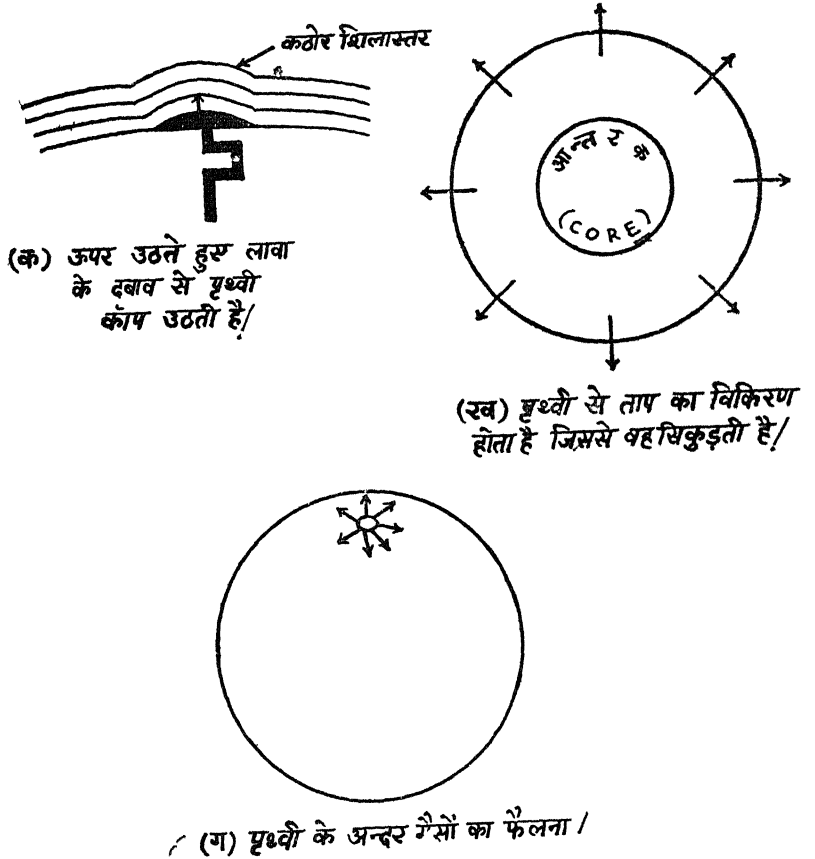
चित्र ७—भूकम्प के कुछ कारण

पृथ्वी सिकुडती है। संकोचन के समय भूपृष्ठ के अनेक भाग काँप जाते हैं। अन्य शब्दो मे वहाँ भूकम्प आ जाता है।

उनका वियोजन (Disintegration) होता रहता है, जिससे बहुत बडे परिमाण मे ताप उद्विकसित होता है। यह ताप विकिरण द्वारा खोये हुए ताप की पूर्त्ति कर देता है। तब पृथ्वी के सिकुडने का प्रश्न ही कहाँ रहा ?

(३) भूसन्तोल (Isostasy) का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी का सबसे बाहरी स्तर अपने नीचेवाले स्तर पर ठीक उसी प्रकार तैर रहा है जैसे पानी मे कॉर्क तैरता है। बाहरी स्तर के दो खण्ड चित्र ८ मे प्रदर्शित किये गए हैं—एक पर्वतीय क्षेत्र का द्योतक है, दूसरा महासागर का। नदियाँ पर्वतो को घिसती रहती हैं और
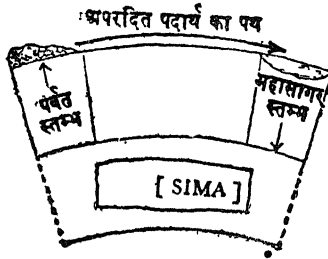
चित्र ८—भूसन्तोल के व्यतिक्रम से भूकम्प का आना

घिसे हुए पदार्थ को सागर मे एकत्र करती रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि पर्वतीय भाग का भार क्रमश घटता रहता है और महासागरीय भाग का भार बढता रहता है। भार घट जाने से पर्वतीय भाग ऊपर उठता है और भार बढ जाने से महासागरीय भाग नीचे धँसता है। भूपर्पटी के विभिन्न भागो के इस प्रकार ऊपर उठने और नीचे धँसने से भी भूकम्प आ जाते हैं।

(४) विभगन (Faulting) की प्रक्रियायें

जब भूपर्पटी के किसी भाग पर दो विपरीत दिशाओ से दबाव लगता है, तो उसमे मोड पड जाते है। भूगोल मे इसे भजन (Folding) कहते हैं। कभी २ शिलाओ के कठोर होने से तथा दबाव की मात्रा अधिक होने से शिलाखण्ड मे दरार पड जाती है और एक खण्ड दूसरे खण्ड के ऊपर दरार के अनुरूप चढ जाता है। भूगर्भशास्त्र मे इस क्रिया को विभगन कहते हैं। यह अनेक प्रकार का होता है। जब कभी भी विभगन की प्रक्रिया

(६) पृथ्वी के अन्दर गैसो का फैलना

कभी कभी पृथ्वी के अन्दर विद्यमान गैसो के फैलने से (चित्र ७ ग) अथवा ानी के भापमे परिणत होने से उत्पन्न हुए दबाव के कारण भी भूकम्प आ जाते है।

(७) कृत्रिम भूकम्प के कारण

कृत्रिम भूकम्प का कारण मनुष्य है। हिरोशिमा मे जब एटम बम का धडाका हुआ, तो पृथ्वी कॉप उठी। रेल के चलने से प्राय रेलमार्ग और पुल मे कम्पन होता है।

३ भूकम्प का वर्गीकरण

भूकम्प का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया जा सकता है। कारण के आधार पर भूकम्प की दो श्रेणियाँ की जा सकती है—

(१) कृत्रिम अथवा मनुष्यकृत भूकम्प—जैसे बम-विस्फोट के कारण किसी भूभाग का कॉप जाना। इस प्रकार के भूकम्प महत्त्वहीन और नगण्य है।

(२) प्राकृतिक भूकम्प—ये प्राकृतिक कारणो से होते है। इन्हे पुन. दो विभागो मे बॉटा जा सकता है—(अ) कुछ भूकम्पो का सम्बन्ध ज्वालामुखी के उद्‌गार से होता है। जापान मे आने वाले भूकम्प इसी प्रकार के है। (आ) भूपर्पटी मे होने वाली गतियो के फलस्वरूप भी भूकम्प होते है। भारतवर्ष मे आने वाले अधिकॉश भूकम्प इसी श्रेणी के है। ज्वालामुखी से सम्बन्धित भूकम्प इतने विनाशकारी नही होते, जितने भूपर्पटी की गतियो के कारण आने वाले भूकम्प होते है।

स्थिति के अनुसार भूकम्प की दो श्रेणियाँ की जा सकती है—(१) स्थल में आने वाले भूकम्प तथा (२) समुद्र के गर्भ मे आने वाले भूकम्प, यद्यपि कारण की दृष्टि से इनमे कोई भेद नही है।

समुद्र के गर्भ मे जब भूकम्प होता है, तो उससे बडी भयानक लहरे उत्पन्न होती है, जो तटीय नगरो को बहुत हानि पहुँचाती है। जापान मे इन लहरो को ट्यूनामिस (Tsunamis) कहते है।

४. भूकम्प की प्रक्रिया

भूकम्प का उद्‌गम (Seismic Focus) धरातल से प्राय पचास-साठ

मील नीचे होता है। उद्गम से भूकम्प की लहरे पृष्ठ की ओर अग्रसर होती है। ये लहरे तीन प्रकार की होती है।—

(१) प्राथमिक (Primary or P) अथवा अनुदैर्ध्य (Longitudinal) लहरे—इनका गति-वेग सबसे अधिक होता है। इनका औसत वेग ३ ३ मील प्रति सैकण्ड है। भूपृष्ठ पर ये सबसे पहले पहुँचती है।
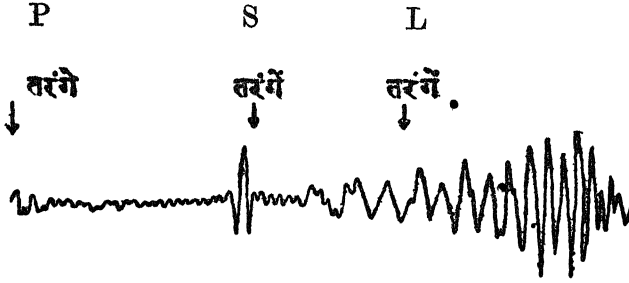
चित्र ९—भूकम्प की तरगे

(२) गौण (Secondary or S) अथवा अनुप्रस्थ (Transverse) लहरे—इनका गतिवेग प्राथमिक लहरो का लगभग आधा होता है और ये उनके पीछे २ चलती है। प्राथमिक लहरो की तुलना मे इनसे क्षति अधिक होती है।

(३) पृष्ठ की लहरे (Surface or L Waves)—जब प्राथमिक और गौण लहरे धरातल पर पहुँच जाती हैं, तब पृष्ठ की लहरें अस्तित्व मे आती है। इनका गतिवेग सबसे कम होता है, किन्तु इनसे क्षति बहुत होती है।

भूकम्प की लहरे सामान्यत. धरातल के उस स्थान पर सबसे पहले पहुँचती है, जो उद्गम के ठीक ऊपर होता है। इस बिन्दु को भूकम्पशास्त्र (Seismology) मे अभिकेन्द्र (Epi-centre) कहते है। प्राय अभिकेन्द्र में भूकम्प के आघात की मात्रा सबसे अधिक होती है।

भूकम्प की लहरे पृथ्वी की आन्तरिक रचना पर भी प्रकाश डालती है। इस सम्बन्ध मे हम आगे विचार करेंगे।

भूकम्प-लेखक (Seismograph)—नामक यत्र से हमे इन लहरो का ज्ञान होता है। चित्र मे भूकम्प-लेखक प्रदर्शित किया गया है। भूकम्प आने के पूर्व इसमे लगी पेन्सिल कागज पर अपने आप चलने लगती है और उसमें ये लहरे अकित हो जाती है। चित्र ९ मे भूकम्प की लहरे दिखलाई गई है।

इन अको के अध्ययन से आने वाले भूकम्प के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकाले जाते हैं और उसके विषय में भविष्यवाणी की जाती है।

भूकम्प लेखक के अकनो से ज्ञात होता है कि पृथ्वी के किसी न किसी भाग
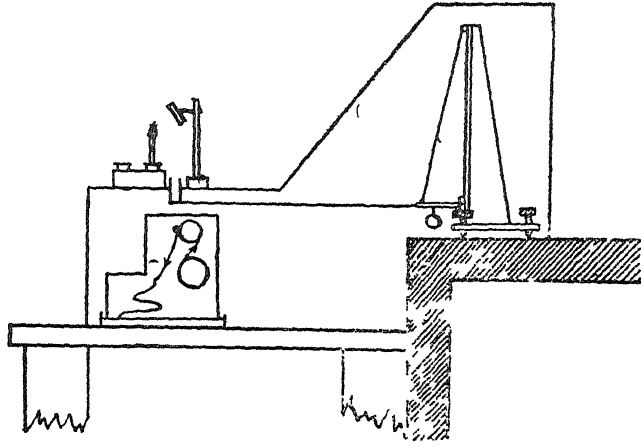
चित्र १०—भूकम्पमापक (Seismograph)

में भूकम्प नित्य ही आते रहते हैं। ये भूकम्प इतने हल्के होते हैं कि, हमें उनका अनुभव नही होता।

भूकम्प मानचित्रो मे दो प्रकार की रेखाये प्रयुक्त होती है —

(१) भूकम्प समकालीन रेखाये (Homo-seismal Lines)—ये वे कल्पित रेखाये है, जो उन स्थानो को मिला देने से बन जाती है, जहाँ भूकम्प का अनुभव एक ही समय होता है।

(२) भूकम्प समाघात रेखाये (Iso-seismal Lines)—ये वे कल्पित रेखाये है, जो उन स्थानो को मिला देने से बनती है, जहाँ भूकम्प के आघात की मात्रा समान हो।

५ भूकम्प और पृथ्वी की आन्तरिक रचना

विज्ञान के इतने उन्नतिशील होने पर भी हमारे पास पृथ्वी के अभ्यन्तर के अध्ययन के लिये कोई भी विश्वसनीय साधन नही है। सछिद्रण (Bore hole) द्वारा अधिक से अधिक दस मील की गहराई का अध्ययन किया जा सकता है। पृथ्वी का अर्ध-व्यास चार हजार मील है। इसे दृष्टि मे रखते हुए दस मील की

सख्या अत्यन्त नगण्य है। पृथ्वी के अन्तर के सम्बन्ध मे आधुनिक अध्ययन भूकम्प की लहरो पर ही आधारित है। तरगो की गति के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे जिन स्तरो मे होकर आई है, उनकी सरचना, घनत्व आदि क्या है। यह कथन इस उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। मान लीजिए किसी लडके को यह आदेश दिया जाय कि वह मैदान मरुस्थल और कीचड प्रत्येक मे एक मील दौडे। स्पष्ट है, कि वह मैदान की दूरी
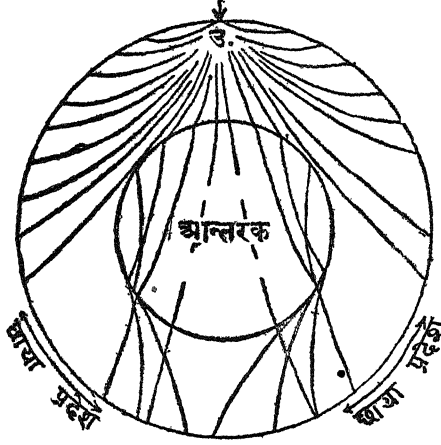
चित्र ११—पृथ्वी मे भूकम्प की तरगो के पथ

शीघ्र ही पूरी कर लेगा। मरुस्थल मे उसे अपेक्षाकृत अधिक समय लगेगा और कीचड मे तो पैर फसने के कारण उसे बहुत समय लग जायगा। अतएव यदि हमें यह ज्ञात हो कि लडके को दौडने मे कितना समय लगा तो हम तुरन्त ही यह बतला सकते है कि वह मैदान मे दौडा है या मरुस्थल मे या कीचडमे। ठीक यही दशा भकम्प की लहरो की भी है। उनके अध्ययन से हम पृथ्वी की आन्तरिक रचना का अनुमान लगा सकते है। प्रकाश की किरणो की भाति भूकम्प की लहरो मे भी वर्त्तन (Refraction) होता है अर्थात् ऐसे तल पर जहाँ दो विभिन्न घनत्व के स्तर मिलते है, वे मुड जाती है। पृथ्वी के अन्तर के सम्बन्ध मे निष्कर्ष निकालते समय इसका भी विचार किया जाता है। लहरे जितनी बार मुडेगी, स्तर के उतने ही विभेदन होगे।

६. भूकम्प का वितरण

(१) पृथ्वी में

जैसा कि चित्र १२ द्वारा स्पष्ट है पृथ्वी पर भूकम्प की दो पेटियाँ विद्यमान हैं—
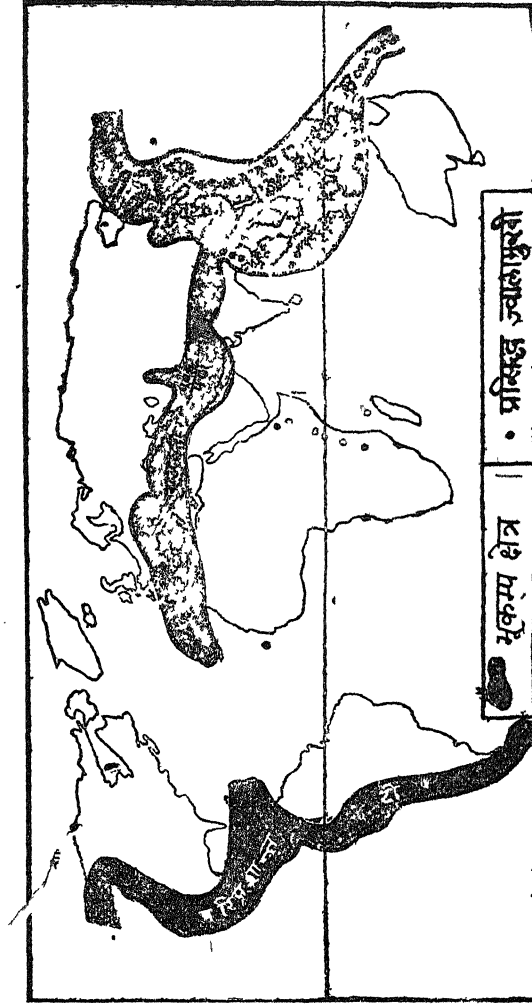
चित्र १२—पृथ्वीपर भूकम्प का वितरण

(१) परिप्रशान्त पेटी (Circum Pacific Belt)—यह पेटी प्रशान्त महासागर के चारो ओर तट पर वर्तमान है।

(९) मध्य जगत पेटी (Mid World Belt)—यह पेटी दक्षिणी योरप, उत्तरी अफ्रीका और मध्य एशिया से गुजरती है और आगे जाकर प्रशान्त पेटी मे मिल जाती है।

(२) भारतवर्ष में

चित्र १३ मे भारतवर्ष के भूकम्प के कटिबन्ध प्रदर्शित किये गए है—

(१) सबसे उत्तर मे महत्तम आघात का क्षेत्र (Zone of maximum intensity) है। यहाँ भूकम्प सबसे अधिक आते है और उनसे क्षति भी बहुत अधिक होती है।

(२) बीच मे साधारण आघात का कटिबन्ध (Zone of compa-

चित्र १३—भारतवर्ष मे भूकम्प की पेटियाँ
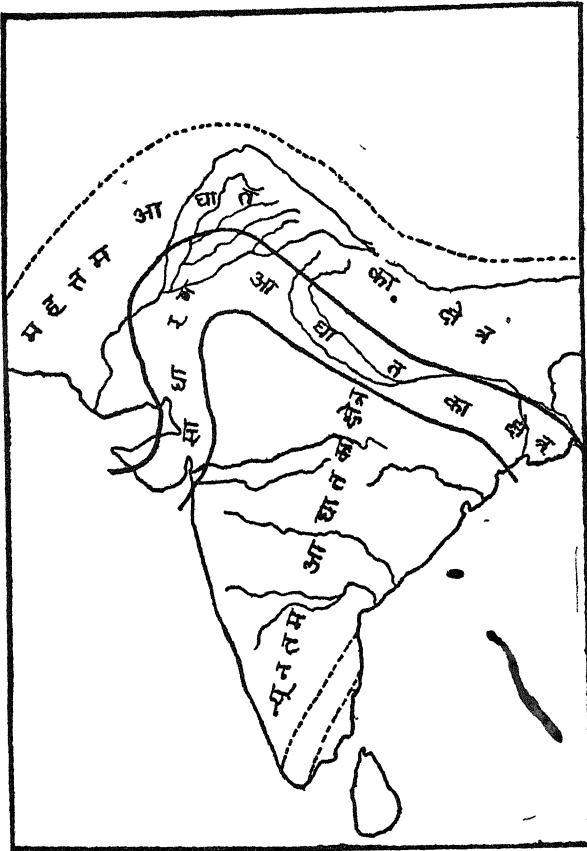
rative intensity) है। यहाँ भूकम्प अपेक्षाकृत कम आते हैं और उनसे हानि भी साधारण होती है।

(३) दक्षिण में न्यूनतम आघात का कटिबन्ध (Zone of minimum intensity) है। इस क्षेत्र में भूकम्प बहुत ही कम आते हैं और उनसे क्षति भी बहुत कम होती है।

उपर्युक्त कथन से प्रकट है कि भारतीय उपमहाद्वीप में भूकम्प की दृष्टि से उत्तरी भारत विशेषकर पाकिस्तान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यहाँ भूकम्प बहुत आते हैं और उनसे हानि भी बहुत होती है। अनुभव द्वारा भी इसकी पुष्टि होती है। क्वेटा, बिहार और आसाम के भूकम्प अभी विस्मृत नही हुए हैं। भूकम्प की दृष्टि से दक्षिणी भारत महत्त्वहीन है। उत्तरी भारत मे भूकम्प अधिक आने के अनेक कारण है। हिमालय पर्वत के ऊपर उठने की क्रिया अभी समाप्त नही हुई है। उसके ऊपर उठने से निकटस्थ क्षेत्र का कॉप जाना स्वाभाविक ही है। मुख्य सीमास्थित विभग (Main Boundary Fault) पर शिलाखण्डो के ऊपर उठने और नीचे जाने की गतियाँ होती रहती है। इसके अतिरिक्त उत्तरी भारत की शिलाओ का भूसन्तोल विपयक सन्तुलन (Isostatic Equilibrium) अभी तक नही हो सका है।

७ भूकम्प का प्रभाव

भूकम्प के प्रभाव का वर्णन करने के लिये मोटे ग्रन्थ लिखे जा सकते है और वास्तव मे लिखे भी गए है। यहाँ पर सकेतमात्र ही पर्याप्त होगा। विशेष अध्ययन के लिये भारतीय भूगर्भ आपरीक्षण विभाग द्वारा प्रकाशित अभिलेख एव सस्मरण (Records and Memoirs of the Geological Survey of India) बहुमूल्य है।

(१) हानियाँ

(१) भूकम्प से धन-जन का बहुत विनाश होता है। इस सम्बन्ध मे कुछ कहना व्यर्थ है। आसाम के विगत भूकम्प की स्मृति अभी ताजी है। जन-विनाश का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इटली के सन् १९०८ के भूकम्प मे जिसकी अवधि केवल २३ सैकण्ड थी, डेढ लाख से भी अधिक व्यक्ति काल के गाल मे चले गए। सम्पत्ति के विनाश का अनुमान जापान के सन् १९२३ के भूकम्प से लगाया जा सकता है। यद्यपि इसकी अवधि भी कुछ सैकण्ड ही थी, तथापि अप्रत्याशित रूप से इसके कारण जो आग लगी, केवल उससे पन्द्रह खरब डालर की सम्पत्ति स्वाहा हो गई।

(२) भूकम्प के कारण प्रशान्त महासागर में स्थित क्रैकेटोआ नामक टापू सदा के लिये समुद्र के गर्भ में समा गया और उसके साथ ही उसकी समस्त सम्पत्ति धन, जन, जीव, पादप अनन्त में विलीन हो गए।
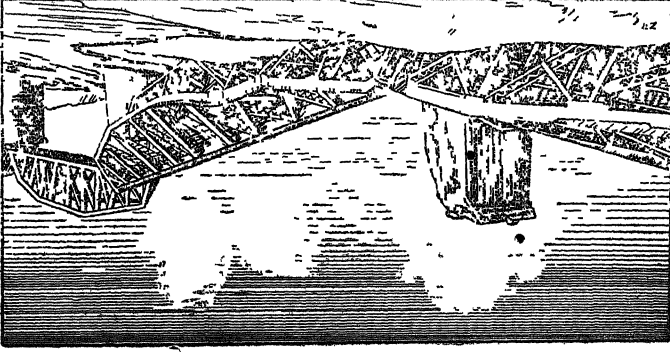
चित्र १४—भूकम्प के फल स्वरूप पुल का टूट जाना

(३) भूकम्प में मकान नष्ट हो जाते हैं, पेड उखड जाते है, पुल टूट जाते हैं, (चित्र १४) नदियो मे बाढ आ जाती है, पृथ्वी फट जाती है, (चित्र १५) दरारो से गरम पानी, गन्धकमय गैसे आदि निकलने लगती है, स्थलसर्पण (Landslide) के कारण सडके अवरुद्ध हो जाती है, रेल की पटरियाँ टेढी हो जाती है, रेल मार्ग धँस जाता

चित्र १५—भूकम्प के कारण पृथ्वी का फट जाना

है और अनेक विचित्र घटनाये होती है—जैसे बिहार के भूकम्प में अनेक घण्टाघरो मे मरोड पड गई थी। कभी २ भूकम्प के कारण झरनो के पानी का रग, तापक्रम तथा वेग बदल जाता हैं।

(४) समुद्रान्तर भूकम्प का उल्लेख तो ऊपर हो ही चुका है। ट्यूनामिस तटीय क्षेत्रो मे विनाश ढा देती है। समुद्र के जहाज उलट-पलट जाते है।

(२) लाभ

भूकम्प से केवल हानियाँ ही नही है, वरन् कुछ लाभ भी है जैसे—

(१) पृथ्वी के अन्दर के अनेक बहुमूल्य खनिज ज्वालामुखीय भूकम्प द्वारा धरातल पर आ जाते है। यदि भूकम्प न हो तो मनुष्य को उनका पता भी न चले।

(२) लावा द्वारा निर्मित भूमि कृषि की दृष्टि से बडी उपजाऊ होती हैं। दक्षिणी भारत की काली मिट्टी, जो कपास की उपज के लिए आदर्श है, इसका उदाहरण है।

(३) भूकम्प के कारण कभी २ पृथ्वी का कोई भाग अचानक ऊपर उठ जाता है। समुद्र मे नवीन द्वीप बन जाते हैं। पृथ्वी के धँस जाने से झीलें अस्तित्व मे आ जाती है। सन् १८१९ के कच्छ के भूकम्प मे इस प्रकार एक झील और एक बाँध बन गया था। भूकम्प से हुए स्थलसर्पण (Landslide) द्वारा घाटियाँ पट जाती है और इस प्रकार कभी २ नदी के पथ के अवरुद्ध हो जाने से झीले बन जाती हैं। गढवाल की गोहना नामक झील इसी प्रकार बनी है।

(४) भूकम्प की लहरो के अध्ययन से हमे पृथ्वी की आन्तरिक रचना का ज्ञान होता हैं। इसका उल्लेख ऊपर हो चुका हैं।

८.—अभिनवकालीन भारतीय भूकम्प

हाल मे आए हुए भारतीय भूकम्पो मे मुख्य ये है—

(१) कच्छ (१६ जून १८१९)—इससे प्राय समस्त भारत प्रभावित हुआ। कलकत्ता तक मे इसके आघात का अनुभव किया गया। केवल भुज नगर मे दो सहस्त्र व्यक्ति काल कवलित हुए। अहमदाबाद मे सुलतान अहमद की विशाल मस्जिद, जिसे बने ४५० साल हो चुके थे, नष्ट हो गई। इस भूकम्प मे धरातल के ऊपर उठने से एक बाँध बन गया, जिसे अल्लाह बाँध की सज्ञा दी गई है। साथ ही पृथ्वी के धँसने से एक झील भी अस्तित्व में आ गई।

(२) आसाम—(१२ जून १८९७)—१,७५०,००० वर्गमील के क्षेत्र मे इसका अनुभव किया गया। इसका अभिकेन्द्र शिलॉग के पठार मे था। शिलॉंग गोलपारा, गोहाटी, तथा नौगॉव नगरो को बडी क्षति हुई। इसका भयानक-प्रभाव कलकत्ता पर भी पडा, जिससे १६०० व्यक्तियो की जाने गईं। उत्तरा-घातो (Aftorshocks) की श्रखला दीर्घकाल तक चलती रही।

(३) काँगडा—(४ अप्रैल १९०५)—इसने १,६२५,००० वर्गमील के क्षेत्र को प्रभावित किया और इससे बीस हजार व्यक्ति मरे। काँगडा धर्मशाला आदि नगर बिल्कुल नष्ट हो गए।

(४) बिहार (१५ जनवरी १९३४)—इसने १,९००,००० वर्ग मील के क्षेत्र को प्रभावित किया। अनेक स्थानों मे पृथ्वी फट गई और लोग उसके गर्भ में समा गए। कम से कम १०,००० व्यक्ति मरे।

(५) क्वेटा (३१ मई १९३५)—इसने लगभग एक लाख वर्गमील के क्षेत्र को प्रभावित किया। लगभग २५००० व्यक्ति मरे। क्वेटा नगर को अपरिमित क्षति हुई।

(६) आसाम (१५ अगस्त १९५०)—इतिहास के पाँच सबसे भयानक भूकम्पो मे इसकी गणना की जाती है। इससे १५,२००वर्गमील का क्षेत्र तथा ४,६२,००० व्यक्ति प्रभावित हुए। इसका अनुभव आसाम, द० पू० तिब्बत, उत्तरी बरमा तथा द० प० चीन तक किया गया। पूना की भूकम्प प्रयोगशाला के अनुसार इसका अभिकेन्द्र २९° उ० ९७° पू० था। मुख्याघात चार मिनट से आठ मिनट तक ही रहा, किन्तु उत्तराघातो की श्रखला कई दिनो तक चलती रही। इसके कारण स्थल-सर्पण (Land slides) बहुत हुए, सरिताओ—विशेष्कर ब्रह्मपुत्र की सहायक नदियो के पथ के अवरुद्ध हो जाने से अनेक भागो मे भयानक बाढ आई। आघात की तीव्रता की तुलना मे जनसख्या की हानि अपेक्षाकृत कम ही हुई। इस भूकम्प से लगभग एक सहस्र व्यक्ति मरे। सम्पत्ति की इससे विशेष हानि हुई। ऐसा अनुमान किया जाता है, कि इस भूकम्प से एक करोड से अधिक की सम्पत्ति नष्ट हो गई। इसने लगभग एक लाख मकानो को तथा छै चाय के बगीचो को हानि पहुँचाई।

उपर्युक्त भूकम्पो मे से अधिकॉश विभगन (Faulting) के कारण हुए है।

९ पूर्वोपाय

उपर्युक्त अध्ययन द्वारा हम यह जान गए कि किन क्षेत्रो मे भूकम्प अधिक आते हैं और किनमे कम। हमे इसका भी ज्ञान हो गया कि भूकम्प का

प्रभाव किन प्रदेशो मे अधिक होता है। अब प्रश्न यह है कि भूकम्प से बचने का उपाय क्या है। भूकम्प-लेखक (Seismograph) से भूकम्प की पूर्व सूचना तो मिल सकती है, किन्तु भूकम्प से रक्षा का उपाय क्या है ? यद्यपि विज्ञान ने इतनी उन्नति कर ली है, तथापि भूकम्प के रोकने में वह नितान्त असमर्थ है। समस्या यह है, कि भूकम्प के क्षेत्रो मे किस पदार्थ के मकान बनाये जाँय, जिन्हे भूकम्प प्रभावित न कर सके।

ऐसी रचनाये जिन्हे भूकम्प प्रभावित न कर सके, दो प्रकार के पदार्थों से बनाई जा सकती है—

(१) या तो उनका निर्माण स्थिति-स्थापक (Elastic) पदार्थों से किया जाय, जो भूकम्प की लहरो से काँप भले ही जाँय किन्तु टूटे नही। बाँस और कागज के मकान इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते है। जापान मे इनका प्रयोग बहुत होता है।

(२) अन्यथा इन्हे ऐसे दृढ पदार्थ से बनाया जाय, जिस पर भूकम्प की लहरो का कोई भी प्रभाव न पड सके। आधुनिक काल मे इस्पात और कॉक्रीट के समुचित मिश्रण द्वारा इस प्रकार के मकान बनाये गए है। इस प्रकार के मकान केवल धनी व्यक्ति ही बनवा सकते है—उनका व्यय उठाना साधारण जनता के वश की बात नही है।

परीक्षाओं में पूछे गये प्रश्न

1 Account for the origin of earthquakes and also for the existing belts of their occurrence in the world (Agra B. A. Part I, 1955.)

2. What are the causes of earthquakes ? Describe their geographical distribution on the globe and state, giving examples, how they have influenced human activities. (U. P. Inter. 1953.)

3. Discuss Earthquakes under the following heads—

(a) Causes.
(b) Nature of earthquake waves.
(c) Distribution. (Agra B. A. 1953.)

4. What are the causes and effects of earthquakes ? Draw a map of India to show the distribution of earthquakes

(Nagpur Inter. Supple. 1951)

5 State what you know of earthquakes, their characteristics, geographical distribution and influence on human activities (U. P Inter. 1936)

6. Write an essay on earthquakes with special reference to India. (Lucknow M. Sc. Geol. 1950.)

7 What do you understand by Diastrophism ? Give a full and reasoned account of the phenomena (terrestrial and marine) produced by earthquakes, with reference to the recent Assam and Japan earthquakes. (Agra B. A 1955.)

8. Write notes on—

(a) Epicentre of an earthquake.

(Agra B. A 1948 ; Banaras B A. and B Sc 1949, 1951 and 1952.)

(b) Earthquakes.

(Agra B. A. 1949 ; Ajmer Inter. 1951.)

(c) Iso-seismal lines.

(Banaras B.A. & B.Sc. 1949 and 1951.)

चतुर्थ परिच्छेद

ज्वालामुखी की क्रिया

(VULCANICITY)

१. विषय प्रवेश

वे सभी वृत्त (Phenomena) जो पृथ्वी के अभ्यन्तर से भूपृष्ठ की ओर प्रवाहित होने वाले लावा की गति से सम्बन्धित है, ज्वालामुखी की क्रिया के अन्तर्गत आते है।

ज्वालामुखी की क्रिया के दो विभाग किये जा सकते है —

(१) अन्तर्वर्ती (Intrusive)—जो पृथ्वी के अन्दर होती है।

(२) बहिर्वर्ती (Extrusive)—जो पृथ्वी के धरातल पर होती है।

अन्तर्वर्ती क्रिया के कुछ प्रमुख रूप अध शैल (Batholiths) कुकुच्छैल (Laccoliths) मसूर शैल (Phacolites) न्युदुब्ज शैल (Lopoliths) रालोत्थ एव वर्तुलोत्थ (Stocks and bosses) रालपट्ट (Sills) तथा रालभित्ति (Dykes) है। इनकी विस्तृत विवेचना आगे की गई है।

बहिर्वर्ती क्रिया के अन्तर्गत ज्वालामुखी (Volcanoes) विदर-प्रवाह (Fissure flows), गरम सोते (Hot springs), गेसर (Geysers) तथा वातिमुख (Fumaroles) आते है। इनका वर्णन भी आगे किया गया है।

२. बहिर्वर्ती वृत्त (Extrusive Phenomena)

(१) ज्वालामुखी (Volcanoes)

(क) परिभाषा

परिभाषा—भूर्पपटी के उन प्राकृतिक छिद्रो एव विदरो को जिनसे लावा (द्रवित शिलाये), भाप एव गैसे निकलती है, हम ज्वालामुखी कहते है।

(ख) वर्गीकरण

उद्‌गमन (Eruption) के विचार से ज्वालामुखियो के तीन प्रमुख भेद किये जा सकते हैं।

(१) विस्फोटीय ज्वालामुखी (Explosive Volcanoes)
(२) उत्स्यन्दी अथवा शान्त ज्वालामुखी (Effusive Volcanoes)
(३) मिश्रित ज्वालामुखी (Mixed Volcanoes)

(१) विस्फोटीय ज्वालामुखी (Explosive Volcanoes)

जैसा कि इसके नाम से प्रकट है इस श्रेणी के ज्वालामुखियो का मुख्य लक्षण यह है कि इनमे धडाके के साथ विस्फोट होता है। इनके मुँख से मुख्यत खण्डित शिलाये और गैसे निकलती है। उद्‌गमन के पदार्थो मे लावा, भस्म (Ash) तथा अवस्कर (Scorea) की मात्रा बहुत कम होती है। जापान का फ्यूजीयामा नामक ज्वालामुखी इसका उदाहरण है।

(२) शान्त ज्वालामुखी (Effusive Volcanoes)

इस प्रकार के ज्वालामुखी के मुख से केवल लावा एव गैसे शान्तिपूर्वक अर्थात् बिना शब्द किये हुए बाहर निकलते है। इनका मुख्य लक्षण यही है कि इनमे धडाका नही होता। इसका उदाहरण सिसिली का स्ट्रोमबोली (Stromboli) नामक ज्वालामुखी है।

(३) मिश्रित ज्वालामुखी (Mixed Volcanoes)

जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है—इस प्रकार का ज्वालामुखी उपर्युक्त दोनो श्रेणियो का मिश्रण है अर्थात् इस ज्वालामुखी मे कभी विस्फोट के साथ लावा निकलता है तो कभी शान्तिपूर्वक।

(ग) ज्वालामुखीय शंकु (Volcanic Cones)

ज्वालामुखी के उद्‌गार से निकला हुआ पदार्थ भूपृष्ठ पर शकु के रूप मे एकत्रित हो जाता है। इसे ही हम ज्वालामुखीय शकु (Volcanic Cones) कहते है ये शकु तीन प्रकार की होती है —

(१) आँगारिक शकु (Cinder Cones)—ये विस्फोटीय ज्वालामुखी के उद्‌गार से बनती है। इनमे खण्डित शिलाओ की मात्रा अधिक होती है। आकृति मे ये परिपूर्ण शकु (Perfect Cones) से मिलती जुलती है। इनके किनारे सीधे नही होते वरन् नतोदर प्रवण (Concave slope) का निर्माण करते है। चित्र १६ (अ तथा ब) से यह कथन स्पष्ट होगा।

(२) लावा निर्मित शकु (Lava Cones)—ये शान्त ज्वालामुखी के उद्गार से बनती है। इनकी रचना मुख्यत लावा-प्रवाह से होती है। इनमे खण्डित शिलाये नही होती। लावा की सरचना के अनुसार इनकी आकृति मे विभेदन पाये जाते है —
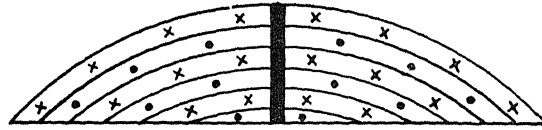
चित्र १६—ज्वालामुखीय शकु

(१) आम्लिक शकु (Acid cones)—यदि लावा आम्लिक हुआ अर्थात् उसमे सिलिका की मात्रा ६५ प्रतिशत से अधिक हुई तो वह काफी गाढा होता है जिससे वह प्रपाती प्रवण वाली गुम्बद (Steep sided dome) का रूप ले लेता है।

(२) क्षारीय शकु (Basic cone)—यदि लावा क्षारीय हुआ अर्थात् उसमे सिलिका की मात्रा ६५ प्रतिशत से कम हुई तो वह काफी पतला होता है, जिससे वह दूर तक बह जाता है। अतएव क्षारीय शकु का व्यास अधिक होता है और प्रवण (Slope) मन्द (Gentle) होता है। अन्य शब्दो मे यह शकु आकृति मे ढाल (Shield) से मिलती-जुलती है।

(३) मिश्रित शंकु (Mixed cone)—ये मिश्रित उद्‌गमन से बनती है। जब विस्फोटीय उदगमन होता है, तब खण्डित शिलाओ का एक स्तर एकत्र हो जाता है, तदन्तर जब शान्त उद्‌गमन होता है तब लावा का दूसरा स्तर बन जाता है। इस प्रकार एकान्तर पर खण्डित शिलाओ और लावा के अनेक स्तर अस्तित्व मे आ जाते है। चित्र १६ (ङ) से यह कथन स्पष्ट होगा।

(घ) उद्‌गमन के पदार्थ

ज्वालामुखी के उद्‌गमन से जो पदार्थ बाहर निकलते है उनके तीन मुख्य विभाग किये जा सकते है —

(१) ठोस पदार्थ

ज्वालामुखियो के अधिकाँश उद्‌गार विस्फोटीय होते है। विस्फोट द्वारा खण्डित शिलाये दीर्घमात्रा मे वायुमण्डल मे ऊपर उछाल दी जाती है। इनमे से कुछ तो ज्वालामुखी के मुख मे पुन प्रविष्ट हो जाती है, किन्तु अधिकाँश ज्वालामुखी (Crater) के चारो ओर के क्षेत्र को ढक लेती है। ज्वालामुखीय उद्‌गार की आरम्भिक अवस्था मे खण्डित शिलाओ की मात्रा अधिक होती है, क्योकि पृथ्वी के अभ्यन्तर से ऊपर उठने वाला लावा भूपर्पटी को तोड फोड कर ऊपर आता है, किन्तु कालान्तर मे लावा के अश की मात्रा बढ जाती है। ज्वालामुखी के उद्‌गार से निकलने वाले ठोस पदार्थ कई प्रकार के होते है —

(१) घनीभूत लावा के छोटे नुकीले टुकडो को अश्मक (Lapilli) कहते है।

(२) खण्डित शिलाओ के अपेक्षाकृत बडे और नुकीले टुकडो को जो लावा द्वारा परस्पर चिपके रहते है, ज्वालामुखीय सकोणाश्म (Volcanic Breccia) कहते है।

(३) खण्डित पदार्थ के बहुत छोटे-छोटे टुकडो और चूर्ण को ज्वालामुखीय अगार (Volcanic cinder) अथवा ज्वालामुखीय भस्म (Volcanic Ash) कहते है।

(४) खण्डित पदार्थ के सूक्ष्मतम अश को ज्वालामुखीय धूलि (Volcanic Dust) कहते है।

(५) सकेन्द्रित धूलि (Concentrated Dust) को (Tuff) कहते है।

(६) ज्वालामुखीय बम—ये घनीभूत लावा के गोल अथवा रुचिफलाकार

(Pear shaped) पिण्ड होते हैं। जब, ज्वालामुखी का उद्गार होता है, तब तरल लावा हवा में ऊपर फेक दिया जाता है। भूमि पर गिरते समय यह लावा गोल या रुचिफलाकार पिण्डो का रूप ग्रहण कर लेता है।

(७) ज्वालामुखीय पक (Volcanic Mud)—कभी-कभी ज्वालामुखी के उद्गार के पश्चात् मूसलाधार वर्षा होती है, जिससे ज्वालामुखीय धूलि कीच अथवा पक के रूप मे प्रवाहित होने लगती है। इस प्रवाह से बडी हानि होता है। सन् ७९ ई० मे विसूवियस के उद्गार के अनन्तर ज्वालामुखीय पक के प्रवाह से हरकुलेनियम (Herculaneum) नामक नगर पूर्णत. नष्ट-भ्रष्ट हो गया था।

(२) द्रव पदार्थ

जैसा कि पूर्व मे उल्लेख हो चुका है, सरचना की दृष्टि से लावा के दो मुख्य भेद है —(१) आम्लिक (Acid) एव (२) क्षारीय (Basic)।

आम्लिक लावा—इसमे सिलिका की मात्रा अधिक होती है, अतएव यह काफी गाढा होता है। यह धीरे-धीरे प्रवाहित होता है और घनीभूत होने के पहले दूर तक नही जा पाता। इसका द्रवणाक (Melting Point) अधिक होता है।

(२) क्षारीय लावा—इसमे सिलिका की मात्रा ६५ प्रतिशत से कम होती है अतएव यह अपेक्षाकृत पतला होता है, जिससे घनीभूत होने के पूर्व यह मीलो बह जाता है। इसका द्रवणाक अपेक्षाकृत कम होता है।

कभी-कभी जमे हुए लावा का ऊपरी धरातल चिकना भी होता है, किन्तु अधिकतर वह खुरदुरा अथवा विषम होता है। यदि लावा कोलतार के समान गाढा हुआ तो वह अत्यन्त शीघ्र शीतल होने से रज्जु जैसी कुण्डलाकार आकृति ग्रहण कर लेता है। ऐसे लावा को हम रज्जु-राल (Ropy Lava) कहते है।

कभी-कभी लावा (आम्लिक और क्षारीय दोनो) मे से गैसो के बाहर निकलने से उनके बाहरी पृष्ठ मे छोटे २ से छेद बन जाते है। ऐसे छिद्रमय लावा को हम छिद्रिष्ट लावा (Spongy Lava) कहते है। जब इन छिद्रो की सख्या बहुत अधिक होती है, तब हम उसे अवस्कर (Scorea) कहते है। जब यह संख्या और भी अधिक होती है, जिससे लावा इतना हल्का हो जाता है, कि वह पानी मे तैरने लगता है, तब हम उसे अवस्कर (Scorea) न कहकर झामक (Pumice) कहते है।

(३) गैसीय पदार्थ

ज्वालामुखी के उद्गार से जो गैसे बाहर निकलती है, उनमे प्रमुख ये है—

हाइड्रोजन सलफाइड
(Hydrogen Sulphide),
सलफर डाइऑक्साइड,
(Sulphur Dioxide),
सलफर ट्राइआक्साइड,
(Sulphur Trioxide),
हाइड्रोक्लोरिक एसिड
(Hydrochloric Acid),
हाइड्रोजन फ्लोराइड
(Hydrogen Fluoride),
कार्बन मोनो ऑक्साइड
(Carbon Monoxide),
कॉर्बोनिक एसिड
(Carbon Acid),
कार्बन डाइऑक्साइड
(Carbon Dioxide),
जलवाष्प
(Water vapour),
अमोनियम क्लोराइड
(Ammonium Chloride),
नाइट्रोजन
(Nitrogen),
हाइड्रोजन
(Hydrogen),
आक्सीजन
(Oxygen) इत्यादि ।

इनमे हाइड्रोजन क्लोराइड, हाइड्रोजन सल्फाइड, कार्बन डाइऑक्साइड, सलफर डाइऑक्साइड एव हाइड्रोजन विशेष उल्लेखनीय है। ज्वालामुखी के उद्गार से निकली हुई भाप बहुधा द्रवीभूत होकर जलवर्षा का रूप ले लेती है। इसका प्रमाण यह है कि अनेक ज्वालामुखियो के उद्गार के अनन्तर जलवृष्टि हुई है। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि भाप प्रचुर परिमाण मे निकलती है।

कभी-कभी ज्वलनशील गैसे (Inflammable gases) जैसे हाइड्रोजन आदि इतनी आधिक मात्रा मे निसृत होती है कि उनके जलने से विशालकाय लव (Flame) उत्पन्न हो जाती है । इस सम्बन्ध मे कभी-कभी भ्रम भी हो जाता है । ज्वालामुखी के उद्गार से निकलने वाले शिलाओ के टुकडे अत्यधिक गरम हो जाने से लाल हो जाते है और बहुधा ऊपर निर्मित होने वाले मेघो पर उनकी छाया पडने से लव का आभास होता है ।

ज्वालामुखी से निकलने वाली गैसे अधिकाँशत वायुमण्डल मे विलीन हो जाती है । कभी-कभी उनसे निकटवर्ती शिलाओ मे रासायनिक प्रक्रियाये

(Chemical Reactions) घटित हो जाती है। जिसके फलस्वरूप अनेक खनिज (जैसे गन्धक आदि) सचित हो जाते है।

(२) विदर प्रवाह (Fissure Flows)

कभी-कभी ज्वालामुखी के उद्गार से भूपृष्ठ मे चित्र १७ के अनुरूप लम्बी
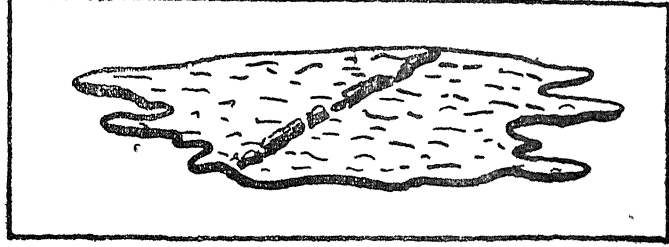
चित्र १७—विदर प्रवाह

और परस्पर समानान्तर दरारे बन जाती है। इन दरारो मे से लावा का शान्त निस्राव होता है। बहुधा इस प्रकार से निकले हुए लावा की बाढ से भूमि फट जाती है और पठार बन जाते है। इसका उदाहरण दक्षिणी भारत का काली
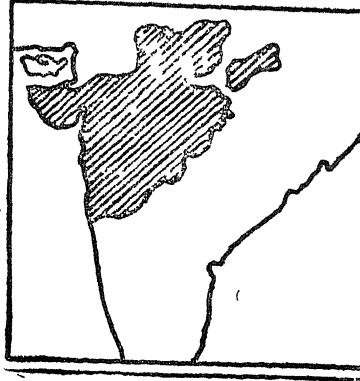
चित्र १८—दक्षिणी भारत का काली मिट्टी का प्रदेश

मिट्टी का प्रदेश चित्र १८ है। इसका क्षेत्रफल लगभग २ लाख वर्गमील है। भूगर्भवेत्ताओ का कथन है कि आरम्भ मे इसका क्षेत्रफल ५ लाख वर्गमील के लगभग था किन्तु कालान्तर मे विभगन (Faulting) के कारण शेष भाग अरब सागर मे धँस गया।

(३) गरम सोता (Hot Spring)

जब भूपर्पटी से गरम पानी निरन्तर निसृत होता है, किन्तु वह स्तम्भ के रूप में ऊपर नहीं उठता, तब हम उसे गरम सोता (Hot spring) कहते हैं। गरम सोते ऐसे क्षेत्रों में पाये जाते हैं, जहाँ कभी भी ज्वालामुखी का उद्गार नहीं हुआ है, किन्तु ज्वालामुखीय क्षेत्रों में ये बहुलता से पाये जाते हैं।

(४) गेसर (Geyser)

ये उष्ण जल के ज्वालामुखी हैं। इनमें पानी स्तम्भ के रूप में बाहर निकलता है। इन स्तम्भों की ऊँचाई दो सौ फुट तक पाई गई है। इनसे गरम पानी सदैव नहीं निकलता वरन् रुक-रुक कर निकलता है। ऐसी धारणा है कि भूपर्पटी के अन्दर पतले संकरे लम्बवत् स्तम्भ के रूप में भरा हुआ पानी
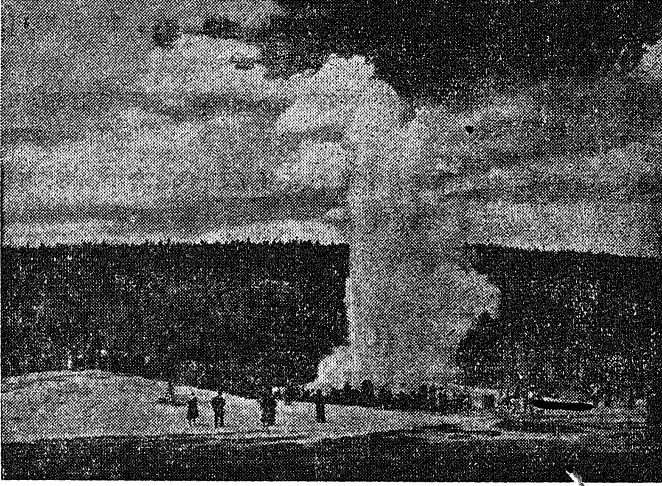
चित्र १९—ओल्ड फेथफुल गेसर

जब नीचे से गरम होता है तब भाप के दबाव से वह स्तम्भ के रूप से ऊपर उछलता है। काँच की नली में पानी भरकर और उसे नीचे से गरम करके इस कथन की प्रायोगिक पुष्टि की जा सकती है। न्यूजीलैंड में गेसर बहुत पाये जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के यैलोस्टोन पार्क (Yellowstone park) में भी गेसर बहुलता से पाये जाते हैं।

(५) वातिमुख अथवा सोलफातारा (Solfatara)

ज्वालामुखी के उदगार के बहुत दिनो बाद जब उसके मुख से लावा और राख निकलना बन्द हो जाता है, तब भी कभी-कभी उसके मुख से भाप और अनेक प्रकार की गैसें निकला करती है। जब ऐसी दशा होती है, तब हम यह कहते है कि अमुख ज्वालामुखी ने 'सोलफातारा अवस्था' प्राप्त कर ली है। 'सोलफातारा' शब्द सोलफातारा नामक नेपिल्स के एक ज्वालामुखी से लिया गया है, जिसका पिछला उद्गार सन् ११९८ ई० मे हुआ था। इसका एक अन्य उदाहरण बिलूचिस्तान का कोहि-सुल्तान है। बगाल की खाडी मे स्थित बैरेन द्वीपसमूह (Barren Islands) मे वातिमुख (Solfataras) बहुत पाये जाते है।

(६) पक ज्वालामुखी (Mud Volcano)

जब किसी ज्वालामुखी के मुख से लावा के स्थान पर पकमय जल स्रवित होता है, तब हम उसे पक ज्वालामुखी (Mud volcano) कहते है। पक ज्वालामुखी निम्नाँकित क्षेत्रो मे पाये जाते है।

(१) जहाँ ज्वालामुखी की क्रिया समाप्त हो रही हो। उदाहरणार्थ सिसली एव न्यूजीलैंड।

(२) जहाँ पृथ्वी के धरातल के नीचे भूगर्भ मे गैसे विद्यमान हो, जैसे बरमा और बाकू के पेट्रोलियम के क्षेत्रो मे।

(३) जहाँ भूगर्भ मे विद्यमान सडी हुई बनस्पति से उत्पन्न गैसो के कारण पक ऊपर उठने को बाध्य होता है जैसे मिसीसिपी का डेल्टा, बिलूचिस्तान आदि।

कभी-कभी जब गेसर मृत्तिका (Clay) के स्तरो मे से प्रवाहित होकर ऊपर उठता है, तब उसका पानी गन्दा हो जाता है और वह पक ज्वालामुखी सदृश प्रतीत होता है।

अब यह निश्चित रूप से सिद्ध हो चुका है कि पक ज्वालामुखी की उत्पत्ति का कारण पेट्रोलियम वाहक शिलास्तरो मे से निकलने वाली गैसे है। ज्वालामुखी की प्रक्रिया से इसका कोई भी सम्बन्ध नही है। अतएव 'पक ज्वालामुखी' नाम ही अशुद्ध है।

३—अन्तर्वर्ती वृत्त (Intrusive Phenomena)

जैसा कि पूर्व मे उल्लेख हो चुका है, इसके अन्तर्गत अध शैल (Bathylith) कुकुच्छैल (Laccoliths), मसूरशैल (Phacolites), न्युदुब्ज शैल

(Lopoliths), रालोत्थ एव वर्तुलोत्थ (Stocks and. bosses), रालभित्ति (Dykes) तथा रालपट्ट (Sill) आदि स्थल के रूप आते हैं।

(१) अधःशैल (Bathylith)

ये घनीभूत लावा के विशालकाय अन्तर्वर्ती पिण्ड हैं। इनकी आकृति प्राय
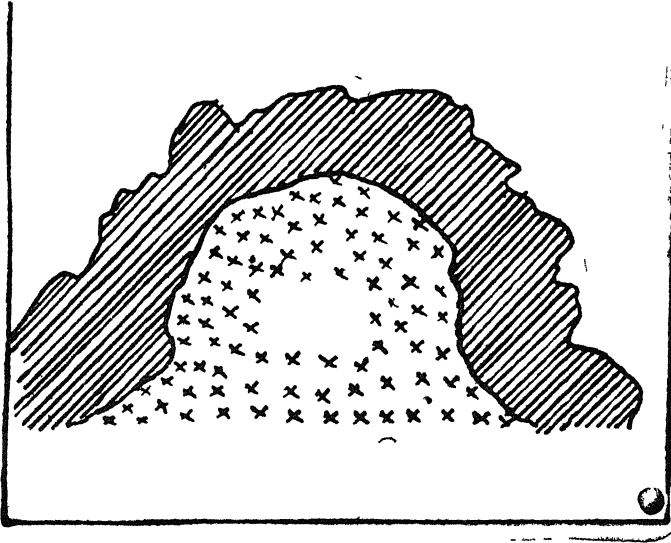
चित्र २०—अध शैल (Bathlith)

गुम्बदाकार होती है। इनके पार्श्व धरातल में बहुत गहराई तक धँसे रहते है। इनका आधार भूमिगत होने से दृष्टिगोचर नही होता। इनका विस्तार सहस्रो वर्गमील के क्षेत्र में होता है। जहाँ तक सरचना का सम्बन्ध है, प्राय ये कणाश्म (Granite) से बने होते है। उदाहरण—आयरलैण्ड का 'महान कणाश्म पुज' (Great Granite Mass), राजस्थान का 'एरिनपुरा का कणाश्म' (Erinpura Granite)।

(२) रालोत्थ एवं वर्तुलोत्थ (Stocks and bosses)

गुम्बद सदृश आकृति के अपेक्षाकृत छोटे-छोटे पिण्डो को रालोत्थ तथा वर्तुलोत्थ (Stocks and bosses) कहते हैं। दान्ता नामक पूर्वकालीन भारतीय देशी राज्य मे ये बहुलता से पाये जाते हैं।

(३) मसूर शैल (Phacolites)

इनकी आकृति वीक्ष (Lens) से मिलती जुलती हैं। ये भजित क्षेत्रो
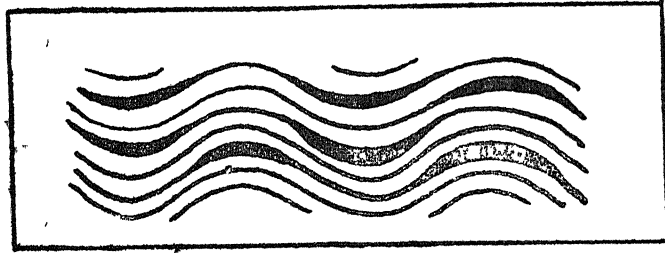
चित्र २१—मसूर शैल (Phacolites)

(Folded Regions) मे पाये जाते है। जैसा कि चित्र २१ से स्पष्ट होगा ये चाप एव द्रोणी के मध्यवर्ती भाग मे लावा के घनीभूत होने से बन जाते है।

(४) कुकुच्छैल (Laccolites)

भूगर्भ से ऊपर उठने वाला लावा जब पर्पटी को फोडकर बाहर निकलने मे असमर्थ होता है, तब वह अपने दबाव से जलज शिलाओ द्वारा निर्मित भूपर्पटी
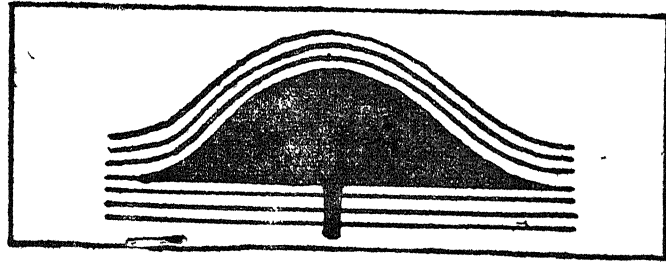
चित्र २२—कुकुच्छैल (Laccolites)

के बाहरी स्तर को गुम्बद के रूप मे मोड देता है और उसके अन्दर घनीभूत हो जाता है। चित्र २२ से यह कथन स्पष्ट होगा। इसे कुकुच्छैल (Laccolite) कहते है। इसकी तुलना फोडे से की जा सकती है। जब ऊपर की जलज शिलाये घिस जाती है, तब यह भूपृष्ठ पर प्रकट हो जाता है।

(५) रालभित्ति (Dykes) एवं (६) रालपट्ट (Sills)

इनका उल्लेख पूर्व मे हो चुका है। रालपट्ट (Sills) वे अन्तर्वर्ती आग्नेय

पिण्ड है, जो जलज शिलाओ के तल्प-तलो (Bedding planes) मे लावा के घनीभूत हो जाने से अस्तित्व मे आ जाते है।

रालभित्ति (Dykes), जैसा कि नाम से प्रकट है दीवाल जैसे अन्तर्वर्ती आग्नेय पिण्ड है, जो लम्बवत् सन्धियो (Vertical Joints) मे लावा के घनीभूत हो जाने से बन जाते है।

४ ज्वालामुखी की क्रिया के कारण
(The Causes of Vulcanism)

ज्वालामुखी की क्रिया के कारणो का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षको के अन्तर्गत करेगे —

(१) ताप की उत्पत्ति

(२) तरल लावा की उत्पत्ति

(३) लावा का ऊपर उठना

(४) गैसो एव भाप का उद्गम

(१) ताप की उत्पत्ति

ज्वालामुखी मे ताप निम्नलिखित कारणो से होता है —

(१) भूतापीय (Geothermal)—यह सर्वमान्य सत्य है कि पृथ्वी का अभ्यन्तर अत्यन्त उष्ण है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि ज्वालामुखी का अधिकाँश ताप आद्य (Primordial) एव मौलिक है। ज्यो-ज्यो हम पृथ्वी के अन्दर प्रवेश करते है त्यो-त्यो तापक्रम बढता जाता है। प्रत्येक एक किलोमीटर की गहराई पर तापक्रम ३° सें० बढ जाता है। ताप की इस क्रमिक वृद्धि को हम 'भूतापीय प्रवणता' (Geothermal Gradient) कहते है। यह सर्वत्र समान नही है। भूपृष्ठ के विभिन्न भागो मे इसका मूल्य विभिन्न है। ताप की इस वृद्धि का कारण पृथ्वी के अन्तर का उष्ण होना ही है।

(२) रासायनिक प्रक्रियाये (Chemical Reactions)—पृथ्वी के अन्दर अनेक रासायनिक प्रक्रियाये होती रहती है, जिनसे ताप का उद्भव होता है।

(३) तेजोद्गिरण की क्रिया (Radio Activity)—पृथ्वी के अन्दर अनेक तेजोद्गर पदार्थ (Radio-active Substances) विद्यमान है। इनके वियोजन से दीर्घ मात्रा मे ताप विकसित होता है।

(२) तरल लावा की उत्पत्ति

इसके सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि भूपर्पटी की शिलाओ के भारी दबाव के कारण पृथ्वी के अन्दर शिलाये तरल अवस्था मे नही रह सकती, क्योकि दबाव के बढ जाने से उनका द्रवणाक (Molting Point) बढ जाता है। कभी-कभी भूपर्पटी मे घटित होने वाली क्रियाओ से (जैसे भजन (Folding), विभगन (Faulting) अथवा अपक्षरण (Erosion) के कारण) भूपर्पटी का दबाव क्षीण हो जाता है। दबाव के घट जाने से द्रवणाक भी घट जाता है और तब ठोस शिलाये पिघल जाती है।

(३) तरल लावा का ऊपर उठना

लावा के ऊपर उठने के दो मुख्य कारण है :—

(१) भूपर्पटी की गतियाँ

(२) गैसो एव भाप का दबाव

भूपर्पटी की गतियो के कारण कभी-कभी दबाव घट जाता है। तरल लावा मे विद्यमान भाप एव गैसे भी दबाव के घट जाने से फैलती है और लावा को उसी प्रकार ऊपर फेक देती है जैसे सोडावाटर की बोतल के मुह में लगी हुई डाट के हटाने पर पानी ऊपर उछलता है।

(४) गैसों और भाप का उद्गम

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया, लावा के ऊपर उठने मे गैसो का विशेष हाथ रहता है। ज्वालामुखो के उद्गार से जो गैसे निकलती है, उनका ८० से ९५ प्रतिशत अश भाप होती है। अन्य उल्लेखनीय गैसो मे हाइड्रोजन, गन्धकमय गैसें, कार्बन डाइऑक्साइड तथा विभिन्न हाइड्रोकार्बन है। ऐसा विश्वास किया जाता है, कि ये सभी गैसे लावा मे वर्तमान रहती है। इसके अतिरिक्त भूमिगत-जल (Underground water) से भी भाप बनती है। जो ज्वालामुखी समुद्र के निकट पाये जाते है, उनमे निश्चित रूप से सागरजल से भाप उपलब्ध होती है। किन्ही क्षेत्रो मे, जब ऊपर उठता हुआ लावा चूने के पत्थर के सस्पर्श मे आता है तब उसमे कार्बन डाइ ऑक्साइड की मात्रा बढ जाती है। यही कारण है कि यह गैस ज्वालामुखीय क्षेत्रो मे बहुत पाई जाती है।

५ ज्वालामुखियों का वितरण

चित्र २३ मे पृथ्वी के क्रियाशील एवं अभिनवीकाल मे क्रियाशील ज्वालामुखी

प्रदर्शित किये गये है। इसके अध्ययन से यह विदित होता है कि---

(१) ज्वालामुखी का वितरण बहुत कुछ भूकम्प की पेटी से मिलता जुलता
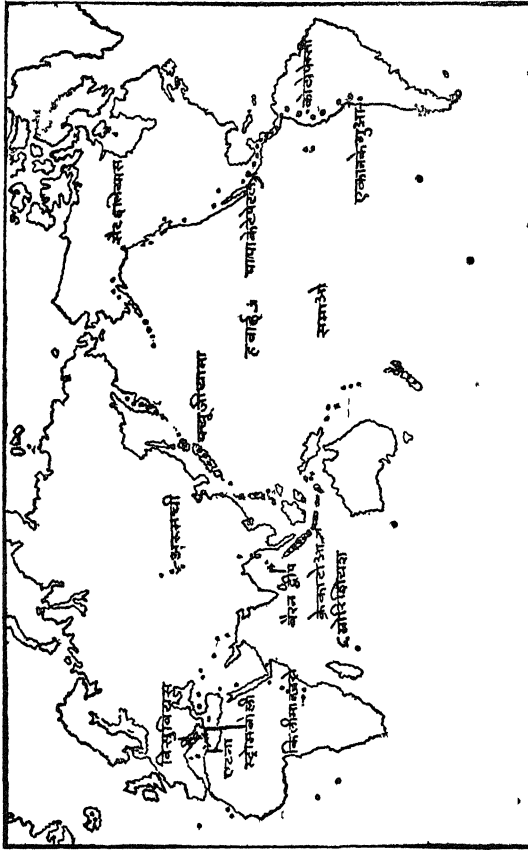
चित्र २३---संसार मे ज्वालामुखियो का वितरण

है। इन दोनो मे मुख्य अन्तर ये है :---(१) हिमालय प्रदेश मे भूकम्प बहुत आते है, किन्तु वहाँ ज्वालामुखियो का अभाव है तथा (२) आइसलैण्ड भूकम्प की पेटी मे नही आता, किन्तु वहाँ ज्वालामुखी बहुत पाये जाते है।

(२) वर्तमान ज्वालामुखी सागर अथवा महासागर के निकट पाये जाते है।

(३) ज्वालामुखी ऐसे क्षेत्रो मे पाये जाते है, जहाँ अभिनवकाल मे भूपर्पटी से गति हुई हो, उदाहरणार्थ जहाँ नवीन पर्वत बने हो।

ससार मे ज्वालामुखी का वितरण तीन बडी और एक छोटी पट्टी के रूप मे हुआ है —

बड़ी पेटिया

• (१) प्रशान्त महासागर के पूर्वी तट पर रॉकी एव एण्डीज पर्वतो के अनुरूप एक पेटी है।

(२) दूसरी पेटी प्रशान्त के पश्चिमी तट पर जापान, फिलिपाइन आदि द्वीपो के अनुरूप है।

(३) तीसरी पेटी मध्य-जगत मे नवीन भजित पर्वत श्रेणियो के अनुरूप चली गई है।

छोटी पेटी

इसका विस्तार पूर्वी अफ्रीका से लेकर दक्षिणी पश्चिमी एशिया तक है।

६ ज्वालामुखी का मानवीय महत्त्व

१ विनाश-कर्य अथवा हानियाँ

ज्वालामुखी का आकस्मिक उद्‌गार हो जाने से धन-जन की प्रचुर हानि होती है। लावा के प्रवाह से गॉव के गॉव चौपट हो गये है। ज्वालामुखी से निकलने वाली विषैली गैसो से भी बडा विनाश होता है। उदाहरण के लिये उत्तरी अमेरिका के यैलोस्टोन पार्क (Yellow stone park) मे ज्वालामुखी मे निकलनेवाली विषैली गैस के कारण वहाँ पर विचरण हेतु आने वाले जगली जानवर विशेषकर भालू अपनी जान गवॉ बैठते है। जावा मे भी इस प्रकार का एक क्षेत्र है, जिसे ठीक ही 'मृत्यु की घाटी' (Death Valley) की सज्ञा दी गई है। कभी-कभी ज्वालामुखी से निकलने वाली राख और धूलि से नीचे के गॉव और नगर पूर्णत दब जाते है। पौम्पेई एव हरकुलैनियम नामक रोमन नगर विसूवियस के उद्‌गार से निकलने वाली राख से दबकर भूगर्भ मे विलीन हो गये है। अब ज्वालामुखी का उद्‌गार सागर-नितल मे होता है, तब उसके फलस्वरूप सागरजल मे बडी भयानक लहरे उठती है और उनसे मछली एव अन्य सामुद्रिक जीवजन्तु विनष्ट हो जाते है। जलयानो को भी उनसे विशेष क्षति पहुँचती है।

(२) लाभ

ज्वालामुखी से होने वाले प्रमुख लाभ निम्नॉकित है :—

१ इनके उद्‌गार से उपजाऊ भूमि की सृष्टि होती है।

(१) लावा के अक्षरण से बनी हुई भूमि कृषि की दृष्टि से बडी **उपजाऊ**

होती है। इसका भारतीय उदाहरण दक्षिण का काली मिट्टी का प्रदेश है, जो कपास के उत्पादन के लिये आदर्श है।

(२) ज्वालामुखीय राख से निर्मित भूमि भी बडी उर्वर होती है। यही कारण है कि एटना और विसूवियस के पर्दों पर हरे भरे खेत और बगीचे पाये जाते है।

(३) ज्वालामुखीय प्रदेशो से प्रवाहित होने वाली नदियाँ अपने साथ उर्वर उन्मृदा लाती हैं, जिसे वे नीचे के मैदानो मे बिछा देती है। उदाहरणार्थ नील नदी अबीसीनिया से ज्वालामुखीय अवसाद (Sediments) बहाकर लाती है और उसे मिश्र मे बिछा देती है।

२. ज्वालामुखी के उद्गार से भूगर्भ मे विद्यमान खनिज पदार्थ धरातल पर आ जाते हैं।

यदि ज्वालामुखी न हो तो ये बहुमूल्य पदार्थ मनुष्य को कभी सुलभ ही न हो। ज्वालामुखी से मनुष्य को खनिज-पदार्थ अनेक रीतियो से प्राप्त होते है —

(१) बहुत से खनिज द्रवित अवस्था मे ज्वालामुखी के उद्गार के साथ धरातल पर आ जाते है।

(२) यदि गरम पानी मे कुछ गैसे घुली हुई हो तो उसमे कुछ खनिजो को घोल लेने की क्षमता आ जाती है। उदाहरण के लिये गन्धक के अनेक यौगिक गरम पानी मे घुल जाते है। ये खनिज भूपृष्ठ पर पुन निक्षेपित हो जाते है।

(३) रासायनिक प्रक्रियाओ के फलस्वरूप अनेक पदार्थों के निक्षेप बन जाते है।

(४) विदरो मे धातुओ के निक्षेप बन जाते है। मीसा, चाँदी, ताँबा आदि धातुये प्राय सदरो (Veins) मे ही पाई जाती है।

(५) लावा निर्मित शिलाओ से अनेक अच्छे इमारती पत्थर निकाले जाते है।

३ ज्वालामुखी की क्रिया से धरातल के रूप में परिवर्तन हो जाते हैं।

यह उल्लेख तो पूर्व मे हो ही चुका है, कि ज्वालामुखी से भूकम्प आ जाते है और कभी-कभी उनके साथ-साथ भूपर्पटी का कोई भाग ऊपर उठ जाता है और कोई भाग नीचे धँस जाता है। इस सम्बन्ध मे कच्छ में अल्लाह बाँध और अन्तर्देशीय सागर बन जाने का उल्लेख किया जा चुका है। लावा के निक्षेप से

कभी-कभी पठार भी बन जाते है जैसे दक्षिणी भारत का काली मिट्टी का प्रदेश। ज्वालामुखियो (Extinct Volcanoes) के मुख मे (Crater) पानी भर जाने से झीले बन जाती है। ज्वालामुखी के उद्गार से बन जाने वाले स्थल एव जल के विभिन्न रूपो का विस्तृत विवेचन अन्तर्वर्ती एव बहिर्वर्ती वृत्तो के अन्तर्गत हो चुका है।

परीक्षाओं में पूछे गये प्रश्न—

1 Give an account of volcanic activity under the following heads—

(a) Causes of vulcanism
(b) Landforms associated with it and
(c) Distribution of volcanoes.

(Agra B. A. 1952).

2. Describe with examples relief features associated with vulcanism. (Agra B. A. 954).

3 Discuss the topographical features which result from volcanic activity.

(Banaras B A. and B, Sc. 1952).

4. Describe the various types of landforms associated with volcanic landscape. Give examples from India and the adjacent countries, wherever possible. (Agra M. A. 1950).

5 What is a volcano ? Describe the various kinds of volcanic cones. (Nagpur Inter. 1951).

6. Write notes on—

(a) Lava. (Allahabad B. A. 1950
(b) Geyser.
(Agra B. A. 1948 and '53; U. P. Inter. (1947
(c) Volcanoes (U. P. Inter. 1944
(d) Thermal spring. (Allahabad M. A. 1953).
(e) Mud volcano
(Allahabad M.A. 1953, Agra B.A. 1953).
(d) Fissure Eruption.
(Banaras B. A. and B. Sc. '49 and '53).

पंचम परिच्छेद

नदी का कार्य

१. भूमिका

नदी द्वारा सम्पन्न भौगोलिक क्रिया के तीन अग हैं—(१) अपक्षरण अथवा उत्खनन (Erosion) (२) अपनयन अथवा परिवाहन (Transportation) तथा (३) निक्षेपण अथवा सचयन (Deposition)। यह तथ्य तो सर्वविदित है, कि नदी के बहाव से उसके किनारे कटते रहते है। यही अपक्षरण है। टूटे हुए किनारो के पदार्थ को वह अपने साथ आगे बहा ले जाती है। यही परिवाहन है। फिर इस पदार्थ को वह समुद्र अथवा झील मे जमा कर देती है। यही निक्षेपण है।

२ अपक्षरण (Erosion)

नदी का अपक्षरण दो प्रकार का होता है —(१) रासायनिक अपक्षरण (Chemical Erosion) तथा (२) भौतिक अथवा यॉत्रिक अपक्षरण (Mechanical Erosion)। नितल के घुलनशील पदार्थ नदी के जल मे घुल जाते है। घोल की यह रासायिनिक प्रक्रिया रासायनिक अपक्षरण का एक रूप है। किनारो का कटना यॉत्रिक अपक्षरण का उदाहरण है।

नदी की दशा मे रासायनिक अपक्षरण की अपेक्षा यॉत्रिक अपक्षरण कही अधिक महत्वपूर्ण है। यॉत्रिक अपक्षरण के पुन दो भेद किये जा सकते है — (१) पार्श्विक (Lateral) अपक्षरण तथा (२) लम्बवत् (Vertical) अपक्षरण। नदी का अपने किनारो का काटना पार्श्विक अपक्षरण है। इससे नदी चौडी होती है। दूसरी ओर नदी के नितल का कटना लम्बवत् अपक्षरण है। इससे नदी की गहराई बढती है।

यॉत्रिक अपक्षरण की मात्रा अनेक प्रतिकारको पर निर्भर है —

(१) नदी जल की रचना—निर्मल जल से शिलाओ का अपक्षरण बहुत कम होता है। नदी जल मे विद्यमान ककड, पत्थर, रेत आदि स्थल के काटने मे औजार अथवा यत्र का कार्य करते है। अतएव नदी-जल मे ये जितनी अधिक मात्रा मे विद्यमान होगे, अपक्षरण भी उतना ही अधिक होगा।

(२) अपक्षरित होने वाले स्थलखण्ड के कणो का पारस्परिक सम्बन्ध—

नदी जिस स्थलखण्ड का अपक्षरण करती है, यदि उसका निर्माण करने वाले कण परस्पर सम्बद्ध रहते है, तो वह सरलता से नही कटता। दूसरी ओर असम्बद्ध कणो से निर्मित शिलाखण्ड शीघ्र ही अपक्षरित हो जाता है।

(३) नदी का वेग—अपक्षरण शक्ति और नदी के वेग का सम्बन्ध निम्नलिखित सूत्र द्वारा निर्धारित होता है —

अपक्षरण शक्ति ∝ (नदी का वेग)²

इससे स्पष्ट है, कि जब नदी का वेग चौगुना हो जाता है, तब अपक्षरण-शक्ति दूनी हो जाती है। दोनो मे वर्गमूल का सम्बन्ध है।

नदी का वेग दो प्रतिकारको पर निर्भर है—

(१) प्रवण अथवा ढाल—प्रवण जितना प्रपाती (Steep) होगा, नदी का वेग भी उतना ही अधिक होगा।

(२) जल का आयतन—नदी मे जल का आयतन जितना अधिक होगा, वेग भी उतना ही अधिक होगा।

३. नदी के अपक्षरण का मूल सिद्धान्त

नदी के अपक्षरण के लिये यह आवश्यक है कि उसमे भार (Load) के रूप मे ककड, पत्थर रेत आदि हो। जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है, ये अपक्षरण के यत्र का कार्य करते है। स्पष्ट है, कि नदी मे भार की मात्रा जितनी अधिक होगी, अपक्षरण भी उतना ही अधिक होगा। प्रत्येक नदी अपने साथ अधिक से अधिक जितना भार ले जा सकती है उसकी निश्चित सीमा होती है, उससे अधिक भार ढोने मे वह असमर्थ होती है। यह कथन एक उदाहरण से स्पष्ट होगा—मान लीजिये कोई नदी अधिक से अधिक २०० टन का भार वहन कर सकती है। यह भी मान लीजिये वह अपने साथ १०० टन का भार पहले से ला रही थी और पथ मे अपक्षरण के कारण भार की मात्रा बढकर ३०० टन हो जाती है। प्रकट है, कि इस दशा मे नदी अपने साथ केवल २०० टन भार ले जावेगी, शेष १०० टन छूट जावेगा। हाँ, यह हो सकता है कि वह अपने साथ जो भार ला रही थी और अपक्षरण से जो नवीन भार उसे मिला—इन दोनो मे अदला बदली हो जावे। जब नदी अधिकतम भार वहन करती है, तब उससे अपक्षरण नही होता, क्योकि वह कुछ अपक्षरण करती भी है तो उतना ही सचयन हो जाता है, अतएव फल शून्य होता है।

सक्षेप मे —

(१) जब नदी मे भार नही होता, तब अपक्षरण भी नही होता।

(२) जब नदी मे भार की मात्रा अधिकतम होती है, तब भी अपक्षरण नही होता।

इन दोनो सीमाओ के बीच मे एक ऐसी अवस्था होती है—जब अपक्षरण अधिकतम होता है। इस अवस्था के पूर्व अपक्षरण क्रमश बढता है और इसके पश्चात् क्रमश क्षीण होता है।

यही अपक्षरण का मूलसिद्धान्त है।

४ नदी-पथ का अनुक्रमण

(Grading of the river channel)

उपर्युक्त सिद्धान्त के आधार पर नदी अपने पथ के ढाल को भार के अनुसार व्यवस्थित करती रहती है अर्थात् जब नदी पथ के किसी अश के ऊपरी भाग मे पहुँचने वाला भार—

(१) उसके अधिकतम भार के बराबर होता है, तब न अपक्षरण होगा और न सचयन अथवा अपक्षरण और सचयन, दोनो समान मात्रा मे होगे। इससे नदी पथ के अंग विशेष के ढाल पर कोई प्रभाव न पडेगा, वह पूर्ववत् बना रहेगा।

(२) उसके अधिकतम भार से अधिक होता है, तब नदी अधिकतम भार को तो बहा ले जाती है और अतिरिक्त भार वहाँ सचित हो जाता है, जिससे उसका ढाल बढ जाता है। ढाल के बढ जाने से नदी का वेग भी बढ जाता है। धीरे धीरे नदी का वेग इस प्रकार व्यवस्थित हो जाता है, कि वह ऊपर से आने वाले भार के ले जाने मे ठीक समर्थ होती है।

(३) उसके अधिकतम भार से कम होता है, तब नदी मे वहाँ सचयन की अपेक्षा अपक्षरण अधिक होता है, जिससे उसका ढाल घट जाता है। ढाल के घट जाने से नदी का वेग क्षीण हो जाता है। धीरे-धीरे नदी का वेग इस प्रकार व्यवस्थित हो जाता है, कि वह ऊपर से आने वाले भार को ले जाने मे ठीक समर्थ होती है।

चित्र २४ मे उपर्युक्त तीनो दशाये प्रदर्शित की गई है। प्रथम दशा मे हम यह कहते है कि नदी मे अनुक्रमण (Gradation) हुआ, द्वितीय दशा मे पुञ्जीकरण (Aggradation) और तृतीय दशा मे निम्नीकरण (Degradation)।

उपर्युक्त सभी दशाओ मे हमने यह पहले से मान लिया था कि नदी पथ
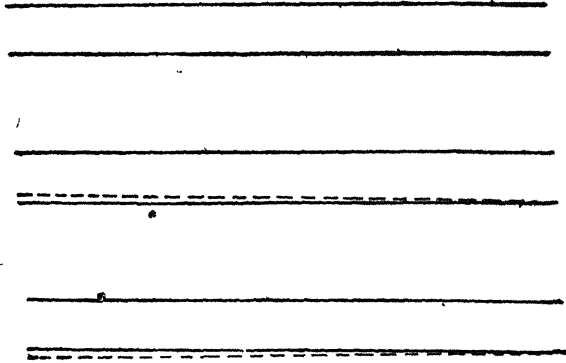
चित्र २४—नदी पथ का अनुक्रमण (Gradation)

के अग विशेष का ढाल तथा उसके जल का आयतन और वेग एकरूप (Uniform) है और भार के पदार्थ भी एक ही आकार-प्रकार के है।

५. जल के अपक्षरण का वक्र

(Curve of water erosion)

मान लीजिये एक ऐसा ढाल है जो सर्वत्र एकरूप है और एक सी शिलाओ से बना है। इस ढालका ऊपरी सिरा किसी पर्वत पर स्थित है और निचला सिरा समुद्र तट पर है। अब यह कल्पना कीजिये कि इस ढाल के ऊपरी भाग मे किसी नदी का उद्भव होता है और वह ढाल के अनुरूप बहती है। ऊपरी भाग मे नदी को प्राप्त होने वाला जल वहाँ पर होने वाली वर्षा का जल होगा अतएव उसका आयतन सीमित होगा। ज्यों-ज्यो नदी समुद्र की ओर बढती है, त्यो-त्यो जल की मात्रा बढ़ती जाती है क्योकि उसमे स्थानीय वृष्टि के अतिरिक्त ऊपर के ढाल का जल भी बह आता है। इसके अतिरिक्त पार्श्वों से सहायक नदियाँ भी मिलती है। अन्य शब्दो मे, आरम्भ मे नदी मे भार की मात्रा बिल्कुल नही होती, जिससे अपक्षरण भी नही होता, आगे बढने पर नदी-नालो के मिलने से उसके भार में क्रमश वृद्धि होती है। भार के बढ जाने से अपक्षरण की मात्रा भी बढ जाती है। अपक्षरण की वृद्धि एक निश्चित सीमा तक होती है। जब भार अधिकतम हो जाता है, तब अपक्षरण रुक जाता है अथवा अपक्षरण और सचयन समान हो जाते हैं। यह अवस्था ढाल के निचले भाग मे आती है। सक्षेप मे, ढाल की

चोटी पर अपक्षरण बिल्कुल नही होता और निचले भाग मे अपक्षरण और सचयन समान हो जाते है। अतएव इन दोनो स्थानो के मध्य मे कोई ऐसा स्थान अवश्य होता है, जहाँ अपक्षरण अधिकतम होता है। उसके ऊपर और नीचे दोनो ही दिशाओ मे अपक्षरण क्रमश घटता जाता है। पूर्व मे हम अपक्षरण के मूलभूत सिद्धान्त की विवेचना कर चुके है। उससे भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे थे। इस प्रकार के अपक्षरण का पूर्ववर्ती ढाल पर यह प्रभाव पडता है, कि वह नतोदर प्रवण (Concave Slope) मे परिणत हो जाता है। चित्र २५
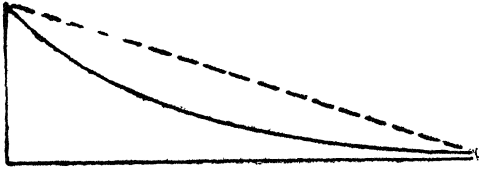
चित्र २५——जल के अपक्षरण का वक्र

से यह कथन स्पष्ट होगा। इसे ही हम जल के अपक्षरण का वक्र कहते है।

वह वक्र क्रमश विकसित होता रहता है। जब हम इसकी तुलना पूर्ववर्ती ढाल से करते है, तब हमे विदित होता है कि इसके ऊपरी भाग का प्रवण निचले भाग की तुलना मे प्रपाती है। इसका कारण यह है कि ऊपरी भाग मे अपक्षरण

चित्र २६——अपक्षरण–वक्र का विकास

अधिक हुआ है और निचले भाग मे सचयन। इस प्रवृत्ति का परिणाम यह होगा कि ढाल का ऊपरी भाग क्रमश प्रपाती होता चला जायगा और निचला भाग क्रमश मन्द (Gentle) होता चला जायगा। अन्य शब्दो मे अपक्षरण का विन्दु क्रमश ऊपर बढता जायगा। चित्र २६ मे अपक्षरण के वक्र की विभिन्न उत्तरोत्तर अवस्थाये प्रदर्शित की गई है।

६. जलविभाजक (Watershed) की आकृति

पूर्व परिच्छेद से यह स्पष्ट है कि, जल के अपक्षरण से जो ढाल बनता है, वह नतोदर आकृति का होता है। यदि नदी का उद्गम जल-विभाजक के सर्वोच्च शिखर पर स्थित हो, तो चित्र २७ के अनुसार उसका ऊपरी भाग नोकदार होगा। किन्तु प्रकृति मे नदी का उद्गम कभी भी जल-विभाजक के शिखर पर
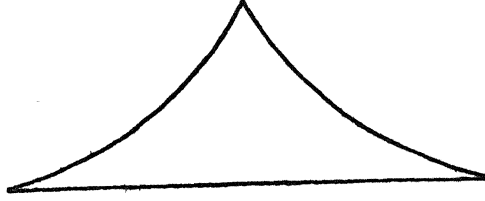
चित्र २७—नोकदार जलविभाजक

नही होता। वह शिखर से थोडे नीचे ढाल पर कही स्थित होता है। यह आवश्यक भी है, क्योकि नदी की उत्पत्ति के लिये जलभण्डार की आवश्यकता है। यदि नदी का उद्गम जल विभाजक के शिखर पर स्थित होता, तो वहां जल का साधन केवल स्थानीय वर्षा होती, जो नदी-प्रवाह के लिये पर्याप्त न होती। वास्तव मे नदी-उद्गम के ऊपर का जल-विभाजक का भाग स्पज का कार्य करता है, अर्थात् वह पानी को सोखता रहता है और फिर झरने के रूप मे उसे क्रमश प्रदान करता है। एक बार की जलवृष्टि मे सचित जलराशि के समाप्त होने के पूर्व दूसरी जलवृष्टि हो जाती है। यही क्रम चलता रहता है और नदी का उद्गम कभी सूखने नही पाता। सक्षेप में, जब नदी-उद्गम जल

चित्र २८—उन्नतोदर जलविभाजक

विभाजक के शीर्ष पर स्थित नही होता, तब उसके ऊपर जल विभाजक की आकृति उन्नतोदर होती है।

७ नदियों के उद्गम का पीछे की ओर कटना

कोई भी नदी अपने उद्गम के ऊपर अपक्षरण करने मे असमर्थ होती है, किन्तु घाटियो मे यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि उद्गम के पीछे भी उन विस्तार हो। यह कथन एक उदाहरण से स्पष्ट होगा। चित्र २९ मे एक पर्वत प्रदर्शित किया गया है, जिसमे भेद्य शिला के स्तर अभेद्य शिला के स्तरके ऊपर स्थित है। भेद्य शिला वर्षा के जल को सोखती रहती है। यह जल 'A' पर स्रोत के रूप मे प्रवाहित होता है। यही स्रोत नदी का उद्गम है। अपक्षरण वक्र,
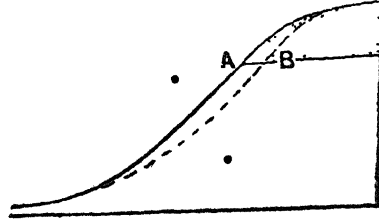
चित्र २९—नदी की के उद्गम का पीछे की ओर कटना

जिसका पूर्व मे उल्लेख हो चुका है, A से आरम्भ होता है और कालान्तर मे जब वह पूर्णत विकसित हो जाता है, तब 'A' पर ढाल बडा प्रपाती हो जाता है। इसका फल यह होता है कि जलवृष्टि से 'A' के ऊपर का भाग भी कटन लगता है, जिससे 'A' पर स्थित स्रोत पीछे की ओर खिसकने लगता है। जैसा कि चित्र २९ से स्पष्ट होगा कुछ काल के अनन्तर 'A' पर स्थित स्रोत B पर पहुँच जाता है। इस प्रकार नदी उद्गम के पीछे की ओर कटती रहती है। इस क्रिया से कभी-कभी नदियो का अपहरण (River capture) भी हो जाता है। इसकी विवेचना अगले परिच्छेद मे की गई है।

८ नदी अपहरण
(River capture)

जब दो नदियाँ पास-पास बहती है,तब कभी-कभी ऐसा होता है, कि अधिक अपक्षरण करने वाली नदी ऊपर की ओर काटते-काटते (through head-ward erosion)
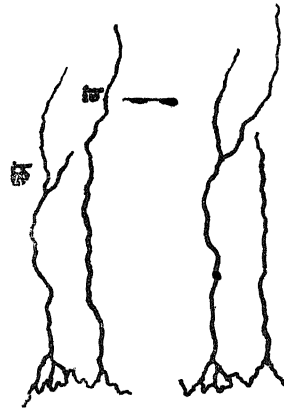
चित्र ३०—नदी अपहरण

कम अपक्षरण करने वाली नदी से मिल जाती है और उसके जल को छीन लेती है। चित्र ३० से यह कथन स्पष्ट होगा।

९ नदी की घाटी का विकास

नदी के ऊपरी भाग मे सचयन की तुलना मे अपक्षरण अधिक होता है और निचले भाग मे सचयन की तुलना मे अपक्षरण कम होता है। अन्य शब्दो मे नदी अपने पथ के ऊपरी भाग मे घाटी को गहरा करती है—इसी आधार पर उसे 'घाटी क्षेत्र' (Valley tract) कहते है। अपने पथ के निचले भाग मे नदी उन सब पदार्थों को, जिनका वह परिवाहन करती है, फैला देती है, जिससे मैदान बन जाते है। इसी आधार पर नदी पथ के इस भाग को मैदानी क्षेत्र' (Plain tract) कहते है। शनै-शनै निक्षेप स्थल मे वृद्धि होती जाती है जिससे मैदानी क्षेत्र ऊपर की ओर फैलता जाता है—और घाटी क्षेत्र सकुचित होता जाता है।

(१) घाटी क्षेत्र (Valley Tract)

जैसा कि पूर्व मे उल्लेख हो चुका है नदी-पथ के ऊपरी भाग मे सचयन की अपेक्षा अपक्षरण अधिक होता है। इसका फल यह होता है कि नदी की घाटी गहरी होती जाती है। यदि अपक्षरण का कार्य केवल नदी द्वारा सम्पन्न होता, तो उसकी घाटी के पार्श्व लम्बवत् रहते किन्तु अन्य अभिकर्ता जैसे तुषार,

चित्र ३१—नदी की घाटी का क्रमश चौडा होना

वर्षा आदि किनारो को काटते रहते है, जिससे नदी की घाटी V—आकृति की हो जाती है। किनारो के ढाल लम्बवत् अपक्षरण और पार्श्विक (Lateral) अपक्षरण के तुलनात्मक मूल्य पर निर्भर करते है अर्थात् यदि पार्श्विक अपक्षरण अधिक होता है, तो ढाल मन्द होता है, दूसरी ओर यदि लम्बवत् अपक्षरण अधिक होता है तो ढाल प्रपाती होता है। ढाल की आकृति बहुत कुछ शिलाओ की सरचना और जलवायु पर भी निर्भर करती है। कठोर शिलाओ की अपेक्षा मृदुल शिलाये शीघ्रता से घिसती है। इसी प्रकार कम वर्षा के क्षेत्रो की अपेक्षा अधिक वर्षा क्षेत्रो मे पार्श्विक अपक्षरण अधिक होता है, जिससे घाटी V—आकृति की हो जाती है। इन सम्बन्ध मे कॉलैरैडो नदी की

निदरियों (Canyons) का उल्लेख उचित होगा। 'कोलम्बिया' के अर्ध-मरुस्थलीय प्रदेश में कैलोरैडो नदी की घाटी बहुत अधिक गहरी और संकरी है।
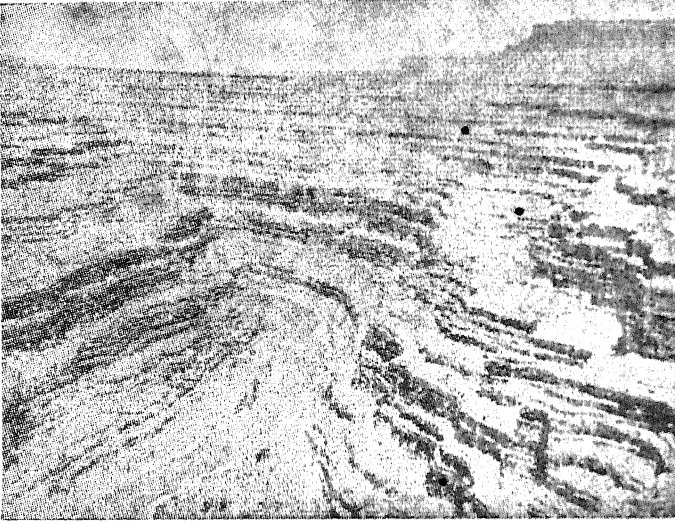
चित्र ३२—निदरी (Canyon)

यहाँ पर घाटी के दोनों किनारे दीवाल की भांति लम्बवत् हैं। स्पष्ट है, कि यहाँ पर वर्षा के अभाव में पार्श्विक अपक्षरण बिल्कुल नहीं होता। नदी के प्रवाह से केवल लम्बवत् अपक्षरण होता है जिससे घाटी गहरी होती चली गई है।

(२) मैदानी क्षेत्र

जैसा कि पूर्व में उल्लेख हो चुका है नदी-पथ के निचले भाग में अपक्षरण की अपेक्षा संचयन अधिक होता है। इसका फल यह होता है कि घाटी की गहराई क्रमशः घटती जाती है और नदी में बाढ़ की प्रवृत्ति विकसित होती जाती है। नदी के प्रवाह में थोड़ी सी भी बाधा आने पर वह घूमकर बहने लगती है। नदी के घूम जाने से जो वक्र बन जाते हैं उन्हें हम प्रवाह-मोड़ अथवा मियनडर (Meander) कहते हैं। एशिया माइनर में मियनडर नाम की एक नदी

है, जो लहरांती हुई अर्थात् इस प्रकार के वक्र बनाती हुई बहती है। इसी नदी के नाम के आधार पर Meander शब्द बना है। चित्र ३३ मे यह
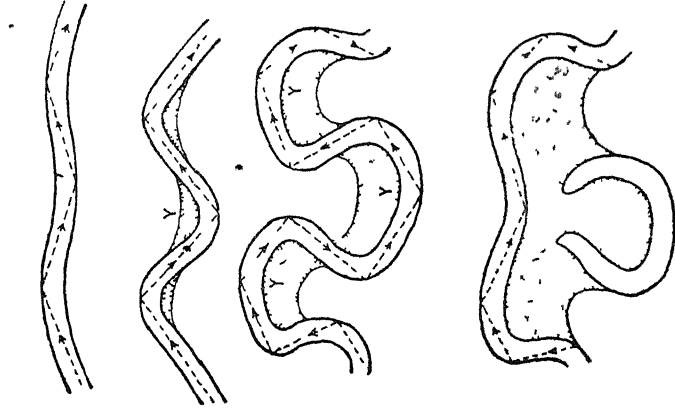
चित्र ३३—-प्रवाह—मोडो का विकास

कथन स्पष्ट होगा कि वक्राकार नदी—-पथ मे पानी की धारा नतोदर तट पर टकराती है जिससे वह कट जाता है, दूसरी ओर यह अपक्षरित पदार्थ उन्नतोदर तट पर एकत्र होता है। इस प्रकार नतोदर तट के निरन्तर कटने और उन्नतोदर तट पर निरन्तर निक्षेपण होने से वक्रता की मात्रा क्रमश बढती जाती है। चित्र ३३ मे वक्रता की वृद्धि की विभिन्न उत्तरोत्तर अवस्थाये प्रदर्शित की गई है। इस प्रकार कालान्तर मे वक्र लगभग वृत्ताकार हो जाता है। इस दशा मे कभी-कभी बाढ के समय वक्र के वे दोनो भाग जो अत्यन्त निकट होते है मिल जाते है और नदी पुन सीधे बहने लगती है। वक्र का वह भाग जो छूट कर अलग हो जाता है, झील मे परिणत हो जाता है। ऐसी झील को हम वृषभ-धनु-झील (Ox-Bow lake) कहते है क्योकि उसकी आकृति बैल के जुए सदृश होती है।

चित्र ३४—मैदान मे प्रवाहित होनेवाली नदी का अनुप्रस्थ प्रच्छेद

मैदानी क्षेत्र मे वृषभ-धनु-झीले निरन्तर बनती रहती है और नदी के पथ मे विवर्तन होते रहते है। इन पार्श्विक विवर्तनो से चौडा और लगभग

समतल मैदान अस्तित्व मे आ जाता है। इस मैदान के किनारों पर भूमि ऊपर उठी रहती है। चित्र ३४ मे इस प्रकार का मैदान प्रदर्शित किया गया है। चित्र से स्पष्ट होगा कि इस मैदान मे प्रवाहित होने वाली नदी का नितल धरातल की अपेक्षा बहुत कम गहरा है। यह स्वाभाविक ही है, क्योंकि नदी के मैदानी भाग मे अपक्षरण की तुलना मे सचयन अधिक होता है।

बाढ के समय नदी का जल किनारो के ऊपर चढ जाता है और घाटी-तल (Valley floor) मे फैल जाता है। अतएव इसे बाढ का मैदान (Flood plain) कहते है। बाढ की दशा मे नदी के पथ (Channel) मे जल का प्रवाह तीव्र वेग से होता है, किन्तु बाढ के मैदान मे जल प्राय स्थिर रहता है। प्रवाह-वेग के इस विभेदन के कारण नदी पथ के दोनो किनारो पर कीचड जमा हो जाता है। बाढ के समाप्त होने पर नदी-धारा का जल नीचे आ जाता है और बाढ के मैदान का शेष जल या तो नदी की धारा मे आकर

चित्र ३५—पूर-तटो (Leves) का बनना

चित्र ३६—निक्षेपण द्वारा नदी-तल का बाढ के मैदान से ऊपर उठ जाना

मिल जाता है या उसे पृथ्वी सोख लेती है। नदी पथ के किनारो पर एकत्रित कीचड यथावत् स्थिर रहता है, जिससे नदी-तट बाढ के मैदान की अपेक्षा ऊपर उठा रहता है (चित्र ३५)। जब नदी पुन अपनी सामान्य दशा मे आ जाती है, तब निक्षेपण से उसका नितल फिर ऊँचा होने लगता है। फलत यद्यपि किनारे पहले की अपेक्षा ऊँचे होते है, तथापि नितल की अपेक्षा उनकी ऊँचाई पूर्ववत ही रहती है, क्योंकि नितल भी ऊपर उठ जाता है। फिर बाढ आती है और फिर किनारे ऊँचे होते है। बाढ के समाप्त होने पर निक्षेपण से नदी का नितल फिर ऊँचा होता है। यही क्रम चलता रहता है। कालान्तर मे नदी का नितल बाढ से मैदान की अपेक्षा ऊँचा हो जाता है, यद्यपि किनारो से वह नीचा ही रहता है। स्पष्ट है कि ऐसी दशा मे बाढ की सभावना बहुत अधिक होती है। नदी द्वारा निर्मित इन प्राकृ-

तिक बाँधो को, जिन्हे कृत्रिम रीति से सुदृढ किया जा सकता है पूर-तट (Levees) कहते है। उत्तरी अमरीका की मिसीसिपी, इटली की पो तथा चीन की ह्वागहो नदियो मे पूर तट पाये जाते है। यदि पूर तट को कृत्रिम रूप से सुदृढ न किया जाय तो नदी की धारा मे विवर्तन होते रहेगे। बाढ की दशा मे नदी इन तटो को तोडकर आस पास के प्रदेश मे विनाश का दृश्य उपस्थित कर सकती है। ह्वागहो मे यही होता है। इसीलिये उसे 'चीन का शोक' कहते है।

१० नदी का कायाकल्प

(Rejuvenation of River)

यह तो पूर्व मे उल्लेख हो ही चुका है कि मैदानी भाग मे नदी का लम्बवत् अपक्षरण समाप्त हो जाता है। ऐसी अवस्था आ जाने के बाद कभी-कभी ऐसा होता है कि आकस्मिक असाधारण वर्षा से नदी जल का आयतन बढ जाता है अथवा भूपर्पटी की गतियो से नदी-तल का ढाल प्रपाती हो जाता है, जिससे लम्बवत् अपक्षरण पुन आरम्भ हो जाता है। इसे हम नदी का कायाकल्प कहते है।

११ नदी के उत्तल

(River Terraces)

नदी मे कायाकल्प हो जाने से उसका पथ गहरा हो जाता है जिससे बाढ का मैदान नदी तल की तुलना मे यथेष्ठ ऊँचा हो जाता है और वह नदीकी घाटी के ऊपर दोनो ओर मच सदृश प्रतीत होता है। इस प्रकार के मचो को हम उत्तल (Terrace) कहते है।

चित्र ३७—उत्तल (Terraces)

कालान्तर मे लम्बवत् अपक्षरण पुन समाप्त हो जाता है और फिर पार्श्विक अपक्षरण से नवीन बाढ का मैदान निर्मित होता है। यह तो स्पष्ट ही है, कि इस नवीन बाढ के मैदान का धरातल पुराने बाढ के मैदान के धरातल से बहुत नीचा होगा। इसके पश्चात् यदि किसी कारण नदी का पुन कायाकल्प होता है और उसमें पुन लम्बवत् अपक्षरण आरम्भ होता है, तो

पुन नवीन् उत्तल बन जाते है। इस प्रकार उत्तलो की क्रमिक शृंखला बन-सकती है।

१२ प्रवर्धित प्रवाह-मोड़
(Incised Meanders)

यदि बाढ के मैदान मे प्रवाह-मोड बनाती हुई किसी नदी का कायाकल्प हो जाता है तो उसके प्रवाह मोड गहरे हो जाते है यद्यपि उनकी वक्र आकृति पूर्ववत् बनी रहती है। इस प्रकार के गहरे प्रवाह मोड को हम प्रवर्धित प्रवाह मोड (Incised Meanders) कहते है।
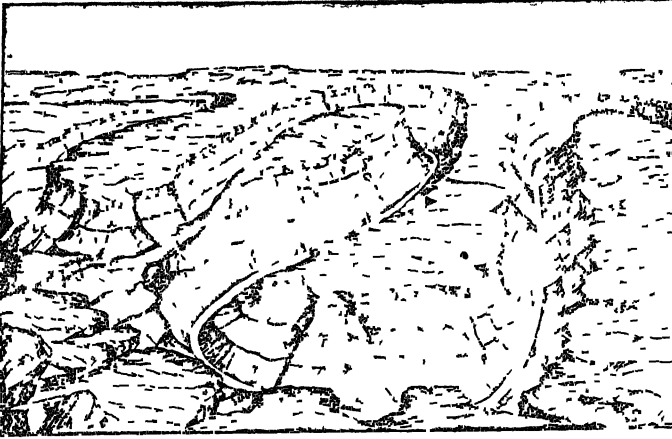
चित्र ३८—प्रवर्धित प्रवाहमोड (Incised Meanders)

१३ परिवाहन (Transportation)

नदी का जल अपने साथ अपक्षरित पदार्थ को बहा ले जाता है। यही परि-वाहन है। यह पदार्थ विविध आकार-प्रकार का होता है। जो पदार्थ घुलनशील है, वे नदीजल मे घुल जाते है और उनका परिवाहन घोल के रूप मे होता है। इस श्रेणी के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के लवण और रासायनिक यौगिक आते है। जिन पदार्थो का घनत्व पानी से कम होता है, वे तैरते हुए परिवाहित होते है, जैसे लकडी के टुकडे, घास-फूस आदि। अन्य पदार्थो मे—जो आकार मे कुछ बड़े होते है वे नितल पर लुढकते हुए चलते है जैसे पत्थरो के टुकडे, सूक्ष्म कण निलम्बित अवस्था (Suspension) मे प्रवाहित होते है। अधिक बड़े

टुकडो को नदी बहा ले जाने मे असमर्थ होती है और वे छूट जाते है। बाढके समय उनका परिवाहन होता है। नदी अपने साथ अधिक से अधिक कितना बडा पत्थर का टुकडा बहा ले जा सकता है—यह अनेक प्रतिकारकों पर निर्भर है जैसे—(१) धारा का वेग (२) पत्थर के टुकडे की आकृति, घनत्व एव सरचना। यदि समान रचना और घनत्व के छोटे बडे अनेक आकारो के बहुत से गोलाकार पत्थर हो, तो नदी द्वारा जो सबसे बडा पत्थर परिवाहित होगा उसके व्यास मे और प्रवाह-वेग मे यह सम्बन्ध होगा —

प्रवाह वेग ∝ (परिवाहित होने वाले बडे से बडे पत्थर के टुकडे का व्यास)^{२}

अर्थात् यदि नदी का वेग दूना हो जाता है, तो वह चौगुने व्यास के पत्थर को परिवाहित कर सकेगी। इसी प्रकार नदी द्वारा परिवाहित भार का आयतन और प्रवाह वेग मे निम्नाँकित सम्बन्ध है—

प्रवाह वेग ∝ (आयतन^{६}

अर्थात् यदि प्रवाह-वेग दूना हो जाता है, तो वह २^{६} = २ × २ × २ × २ × २ × २ = ६४ गुणे भार का परिवाहन करेगा।

नदी का प्रवाह-वेग उसके पथ की आकृति आकार एव ढाल तथा उसमे विद्यमान पानी के आयतन पर निभर है। यदि आकृति और ढाल स्थिर रहते है, तो पानी के आयतन के बढ जाने से प्रवाह-वेग बढ जाता है। इसी प्रकार यदि पथ की आकृति और जल का आयतन स्थिर रहता है, तो ढाल के बढ जाने से प्रवाह-वेग बढ जाता है। यदि आयतन और ढाल स्थिर रहते है, तो टेढे-मेढे पथ से प्रवाहित होने वाली नदी की तुलना मे सीधी नदी का प्रवाह-वेग अधिक होता है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि नदी के प्रत्येक भाग मे प्रवाह-वेग एक सा नही होता है। घर्षण (friction) के कारण नितल और पार्श्वों मे प्रवाह-वेग मध्य-भाग की अपेक्षा कम होता है।

यह तो पूर्व मे उल्लेख हो ही चुका है कि प्रत्येक नदी अधिक से अधिक एक निश्चित मात्रा का भार वहन कर सकती है। यदि वास्तविक भार इससे कम होता है, तो अपक्षरण द्वारा उसमे वृद्धि होती है। यदि वास्तविक भार इसके बराबर होता है, तो अपक्षरण अथवा सचयन कुछ भी नही होता। यदि वास्तविक भार इससे अधिक होता है तो शेष भार छूट जाता है, जिससे सचयन होता है।

ससार भर की नदियाँ महासागरो मे प्रतिवर्ष अपरिमित पदार्थ डालती रहती है। यह आगणन किया गया है कि केवल सयुक्त राष्ट्र अमेरिका की नदियाँ प्रतिवर्ष कम से कम ८० करोड़ टन पर्दार्थ परिवाहित करती है।

१४ निक्षेपण (Deposition)

नदी के कार्य के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अपक्षरण और सचयन परस्पर पूरक प्रक्रियाये है। जो दशाये एक के लिये अनुकूल है, वे ही दूसरे के लिये प्रतिकूल है। उदाहरण के लिये ढाल के बढ जाने से अथवा जल के आयतन के बढ जाने से अथवा प्रवाह वेग के बढ जाने से अपक्षरण बढ जाता है, दूसरी ओर इनके घट जाने से निक्षेपण बढ जाता है। निक्षेपण सम्बन्धी अनेक बातो का विचार अपक्षरण के अन्तर्गत हो चुका है। यहाँ पर केवल नदी द्वारा सचित स्थल और जल के निक्षेपो की रूपरेखाये प्रस्तुत की जा रही है।

(१) स्थल के निक्षेप

नदी के स्थल-निक्षेपो के प्रमुख रूप कछारी व्यजन (Alluvial Fan), कछारी मैदान (Alluvial Plain), बाढ का मैदान (Flood Plain) पूर-तट (Levees) तथा उत्तल (Terraces) है। इनमे से कुछ का उल्लेख अपक्षरण के अन्तर्गत हो चुका है।

(२) जल के निक्षेप

समुद्र अथवा झील मे गिरने के पूर्व नदियो का वेग क्षीण हो जाता है, जिससे निक्षेपण होता है। यदि उस समुद्र अथवा झील मे लहरे और धाराये इतनी प्रबल नही होती कि वे नदी द्वारा सचित अवसाद को बहा ले जा सके तो नदी-मुख पर डेल्टा का सृजन होता है। डेल्टा के सम्बन्ध मे आगे विस्तृत विवेचना की गई है। सचयन सतत रूप से होता रहता है जिससे डेल्टा क्रमश समुद्र की दिशा मे आगे बढता रहता है। नदी मुख पर सचित पदार्थ नदी की धारा के बहने मे बाधक होता है, जिससे मुख्य धारा से अनेक शाखाये, फूट निकलती है। इन्हे हम वितरक-धाराये (Distributaries) कहते है। प्रत्येक वितरक-धारा मे मुख्य धारा की तुलना मे जल की मात्रा कम होती है। इसका फल यह होता है, कि निक्षेपण की मात्रा बढ जाती है। इन वितरक धाराओ मे से बहुत सी अत्यन्त मन्द होती है क्योकि उनमे भार अधिक होता है और ढाल की मात्रा कम होती है। इससे उनके बीच मे रेत के टापू बन जाते है, जिन्हे हम सैकत-दण्ड (Sand bar) कहते है।

१५ नदी के पथ की विभिन्न अवस्थायें

नदी के उद्गम से लेकर अन्त तक के पथ को तीन भागो मे बाँटा जा सकता है —

(१) ऊपरी अथवा पर्वतीय भाग,
(२) मध्य अथवा मैदानी भाग,
(३) निचला अथवा डेल्टा का भाग।

(१) ऊपरी अथवा पर्वतीय भाग

नदी का उद्गम बहुधा पर्वतो मे होता है अतएव आरम्भ मे वह पर्वतीय प्रदेश मे प्रवाहित होती है। इस क्षेत्र मे वह प्रपाती प्रवणो के मध्य मे होकर बहती है। नदी की इस अवस्था का प्रमुख लक्षण यह है कि उसमे जल प्रपात (Waterfalls), प्रपातिका (Cascades) तथा द्रुतवाह (Rapids) बहुत पाये जाते है और लम्बवत् अपक्षरण से घाटी गहरी होती रहती है। प्रपातो मे नदी-जल काफी ऊँचाई से नीचे गिरता है, प्रपितिका मे श्रृखलावत् बहुत से प्रपात होते है और द्रुतवाह मे पानी गहरी और सकरी प्रदरी (Gorge) मे होकर बहता है।

जलवृष्टि के कारण नदी का उद्गम क्रमश पीछे खिसकता रहता है। इस कथन की विस्तृत विवेचना 'नदियो के उद्गम का पीछे की ओर कटना' शीर्षक के अन्तर्गत हो चुकी है।

नदी के अपक्षरण-कार्य का अधिकाँश भाग पर्वतीय भाग मे ही सम्पन्न होता है। नदी के साथ बहने वाले पत्थरो के टुकडे इसमे विशेष सहायक होते है। वे अपनी रगड से नितल को घिसते रहते है। अन्य शब्दो मे वे नदी के अपक्षरण के लिये यत्र का कार्य करते है। नदी की इस अवस्था मे उसका वेग अधिक होता है जिससे अपक्षरण बहुत होता है। अपक्षरण के इन यत्रो पर भी रगड का प्रभाव कुछ कम नही पडता। नितल के विरुद्ध निरन्तर घिसते-घिसते ये क्रमश आकृति मे गोल और आकार मे छोटे होते जाते है।

नदी के जल मे जब भँवर पडती है, तब पत्थरो के छोटे-छोटे असम्बद्ध टुकडे उसमे चक्कर खाते है, जिससे नितल मे गोल गड्ढे बन जाते है। इन्हे हम कुम्भगर्त (Pot Holes) कहते है। कालान्तर मे अनेक निकटवर्त्ती कुम्भ गर्त परस्पर जुड जाते है। इससे नदी के लम्बवत अपक्षरण मे सहायता मिलती है।

नदी के लम्बवत अपक्षरण की मात्रा बहुत-कुछ नितल की शिलाओ की प्रकृति पर निर्भर है। मृदुल शिलाओ की तुलना मे कठोर शिलाये बहुत कम घिसती है। इसका एक सुन्दर उदाहरण नियागरा का जल प्रपात (Waterfall) है। इस नदी का तल नियागरा नामक कठोर चूने के पत्थर की

शिलाओ से बना है। इनके नीचे जम्बशिला (Shale) और बालुकाश्म (Sandstone) के मृदुल स्तर है। प्रपात से गिरने वाला जल बौछार के रूप मे नीचे की मृदुल शिलाओ से टकराता है। चित्र ३९ से यह कथन स्पष्ट होगा। फल यह होता है कि नीचे के शिलास्तर ऊपर की अपेक्षा अधिक कट जाते है। इस प्रकार ऊपरी कठोर शिला के स्तर आगे बढे हुए निरालम्ब लटकते रहते है और कालान्तर मे अपने वृहद् भार के कारण टूट कर गिर पडते है। इस प्रकार की क्रिया का फल यह होता है कि प्रपात क्रमश पीछे की ओर खिसकता रहता है।
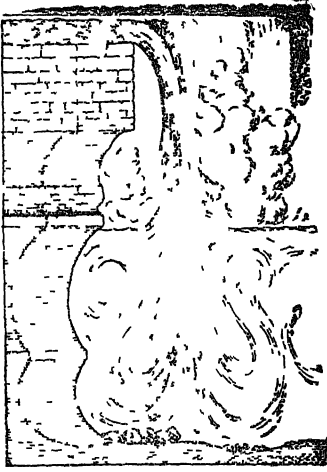
चित्र ३९—नियागरा जलप्रपात

नदी के अपक्षरण मे जलवायु का महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। इसका एक सुन्दर उदाहरण कौलेरेडो नदी के (Canyons) है। ये ऐसी गहरी घाटियाँ है, जिनके पार्श्व मीलो ऊँचे है और प्राय लम्बवत् है । ये ऐसे प्रदेशो मे पाये जाते है, जहाँ वर्षा बहुत कम होती है। इनके बनने का कारण यही है कि जलवृष्टि न होने से पार्श्विक अपक्षरण (Lateral Erosion) नही होता अतएव घाटियो के पार्श्व सीधे रहते है।

उपर्युक्त दशा विशेष परिस्थिति मे पाई जाती है। सामान्यत हवा, वर्षा, स्थल-सर्पण (Land slide) और सहायक नदियो के अपक्षरण से नदी की इस अवस्था मे भी घाटी क्रमश चौडी होती है, यद्यपि लम्बवत् अपक्षरण से घाटी का गहरा होना कही अधिक महत्वपूर्ण है।

प्रत्येक नदी की लम्बवत् अपक्षरण की एक निश्चित सीमा होती है, जिससे अधिक काटने मे वह असमर्थ होती है। यह तो स्पष्ट ही है कि किसी भी सहायक नदी का नितल मुख्य नदी के नितल से गहरा नही हो सकता। यदि ऐसा सभव हो तो प्रवाह की दिशा ही उलट जाय अर्थात् सहायक नदी के मुख्य नदी मे विलीन होने के स्थान पर मुख्य नदी सहायक नदी मे प्रवाहित होने लगे। किसी भी नदी के लम्बवत् अपक्षरण की निम्नतम सीमा को

हम आधार-तल (Base Level) कहते हैं। जब नदी का लम्बवत् अपक्षरण चरम सीमा को पहुँच जाता है, तब हम यह कहते हैं कि नदी ने अपना आधार-तल प्राप्त कर लिया है। जिस प्रकार सहायक नदी का आधार-तल मुख्य नदी का नितल होता है, उसी प्रकार मुख्य नदी का आधार-तल उस सागर अथवा झील का समतल होता है, जिसमे वह गिरती है। सक्षेप मे किसी भी नदी का आधार-तल उसके मुहाने का समतल होता है।

(२) मध्य अथवा मैदानी भाग

नदी के ऊपरी और मध्य भाग मे यही मुख्य भेद है कि ऊपरी भाग में लम्बवत् अपक्षरण से घाटी गहरी होती रहती है और मध्य भाग मे पार्श्विक अपक्षरण से चौड़ी।

नदी के ढाल के घट जाने से प्रवाह-वेग भी क्षीण हो जाता है। नदी पथ की आकृति ढाल के घटने के वेग पर निर्भर है। यदि ढाल बहुत ही धीरे-धीरे घटता है तो नदी लहराती हुई बहती है। यदि ढाल अपेक्षाकृत जल्दी और एक रूप से (Uniformly) घटता है तो नदी का पथ सीधा रहता है, यद्यपि शिलाओ की सरचना का प्रभाव तो पडता ही है।

नदी पथ के मध्य भाग मे प्रवाह-वेग के घट जाने से अवसादो (Sediments) का निक्षेपण आरम्भ हो जाता है। नदी द्वारा सचित अवसाद काँप
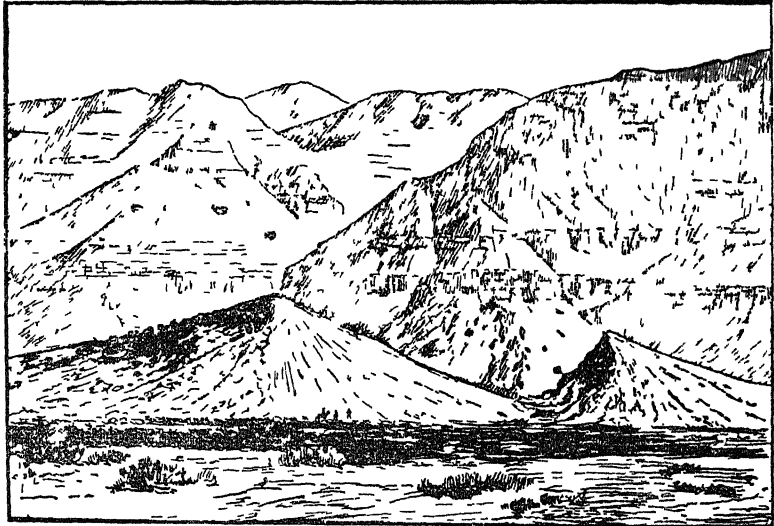
चित्र ४०—कछारी व्यजन (Alluvial fan)

कछार अथवा जलोढ मृदा (Alluvium) कहलाते है। प्रपाती पर्वतो के पदो पर—विशेषकर कम वर्षा के प्रदेशो मे—कॉप के निचय व्यजन (Fan) की आकृति ग्रहण करले ते है। इन्हे हम कछारी-व्यजन (Alluvial Fan) कहते है। बहुत से कछारी व्यजनो के परस्पर मिल जाने से कछारी मैदान (Alluvial Plain) अस्तित्व मे आ जाते है। पूर्व मे यह उल्लेख हो चुका है कि नदी अपने पथ के मध्य भाग मे लहराती हुई बहती है। इसी सन्दर्भ मे वृषभ-धनु झीलो (Ox-bow Lakes) की निर्माण-क्रिया भी स्पष्ट की गई है। नदी के मैदानी भाग मे पूर तट (Levees) और उत्तल (Terraces) बनते है। इनके बनने की क्रिया का वर्णन पृष्ठ ६३-६४ मे हो चुका है।

३ निचला अथवा डेल्टा का भाग

ज्यो-ज्यो नदी उस झील अथवा सागर के निकट पहुँचती है जिसमे उसे आत्मसमर्पण करना है, त्यो-त्यो उसमे जल का आयतन घटता जाता है और उसका वेग मन्द होता जाता है। समुद्र अथवा झील मे बडे आकार के पत्थर के टुकडे पहले जमा हो जाते है, अपेक्षाकृत छोटे टुकडे और रेत के कण आगे जाकर एकत्र हो जाते है तथा निलम्बित (Suspended) एव सूक्ष्मतम पदार्थ एक पक ओर आगे जाकर बैठ जाते है। ये निक्षेप तिकोनी
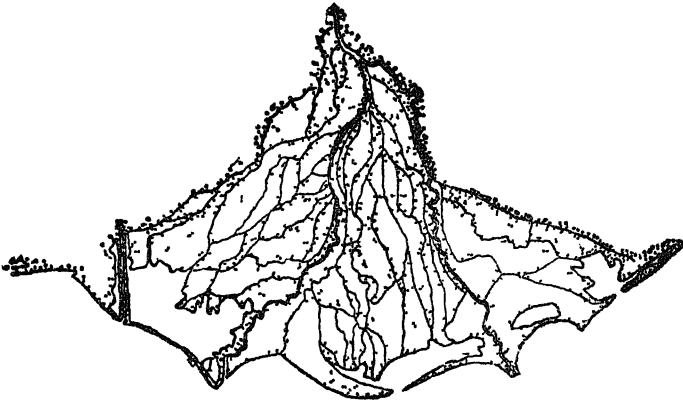
चित्र ४१—नील नदी का डेल्टा

आकृति के ढाल के रूप मे एकत्र होते है ओर इनके कारण नदी का प्रवाह कई धाराओ मे विभाजित हो जाता है। ज्यो-ज्यो ये धाराये आगे बढती है

त्यों-त्यों उनकी पारस्परिक दूरी बढती जाती है और नवीन धारायें फूट निकलती हैं। चित्र ४१ एवं ४२ से यह कथन स्पष्ट होगा। इस प्रकार नदी के डेल्टा भाग का निर्माण होता है। ग्रीक भाषा में डेल्टा नाम का एक अक्षर है। नील नदी का निचला मैदान आकृति में इस अक्षर (डेल्टा) से मिलता
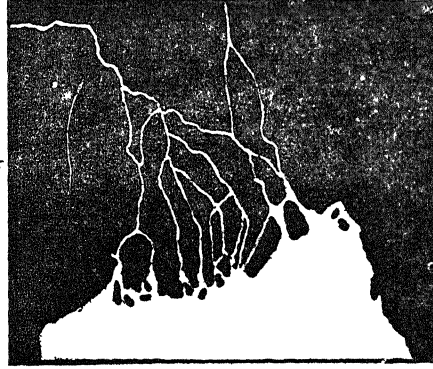
चित्र ४२—गगा नदी का डेल्टा

जुलता है। इसी साम्य के आधार पर ग्रीक भूगर्भवेत्ताओं ने इस शब्द को गढा है और अब यह भूगोल में सामान्य हो गया है।

सक्षेप में, डेल्टा नदी के निक्षेप द्वारा सागर अथवा झील में निर्मित उस त्रिभुजाकार समतल मैदान को कहते हैं, जिसमें नदी का जल अनेक धाराओं में विभाजित होकर बहता है। गगा-नदी का डेल्टा राजमहल के थोड़े दक्षिण से आरम्भ हो जाता है। डेल्टा का ढाल इस तथ्य पर निर्भर करता है कि मुख्य धारा का प्रवाह-वेग किस गति से घटता है। यदि वह जल्दी-जल्दी घटता है, तो डेल्टा ढालू होगा, यदि वह धीरे-धीरे घटता है तो डेल्टा का ढाल मन्द होगा।

उत्तम डेल्टा के बनने के लिये निम्नलिखित दशाओं की पूर्ति आवश्यक है—

(१) नदी का पथ लम्बा होना चाहिये और उसमें बहुत सी सहायक नदियाँ मिलनी चाहिये जिससे सागर में काफी मात्रा में अवसाद एकत्र हो सके।

(२) सागर में लहरें धारायें और ज्वार भाटा प्रबल न होना चाहिये अन्यथा सागर जल की ये गतियाँ नदी द्वारा एकत्रित अवसाद को बहा ले जायेंगी।

(३) नदी के निचले पथ को समतल मैदान में स्थित होना चाहिये। इससे उसका प्रवाह अत्यन्त मन्द होगा और नदी का पकमय जल सागर के

लवणमय जल से पूर्ण रूप से मिल सकेगा, जिससे पर्क अथवा कीचड नीचे बैठ जायगा। इसके विपरीत यदि नदी का प्रवाह तेज हुआ तो अवसाद समुद्र मे बहुत आगे बढ जायँगे और डेल्टा न बन सकेगा।

डेल्टा की प्रगति

नदी द्वारा समुद्र मे निक्षेपण निरन्तर होता रहता है जिससे डेल्टा समुद्र की की ओर क्रमश बढता रहता हैं।

डेल्टा और एस्चुअरी

जब नदी द्वारा समुद्र मे एकत्रित अवसाद के स्थिर रहने की दशाये अनुकूल होती हैं, तब डेल्टा बनता है। इन दशाओ का उल्लेख ऊपर हो चुका है। यदि किसी नदी-मुख पर होने वाली सागर-जल की गतियाँ एकत्रित अवसाद को बहा भी ले जाती हो, तो भी यदि निक्षेपण का वेग अपनयन (Removal) से अधिक होता है तो डेल्टा बनता है। इस प्रकार का डेल्टा पूर्ण विकसित न होने के कारण अनियमित होता है।

दूसरी ओर जब समुद्र मे धाराये और ज्वार भाटा इतने प्रबल होते हैं कि वे नदी द्वारा अर्पित अवसाद को सचित होने के पूर्व बहा ले जाते हैं, तब एस्चुअरी (Estuary) बनती है। एस्चुअरी बनने की एक और दशा हो सकती है। नदी के मुहाने पर समुद्रतट के धँस जाने से तब तक एस्चु-अरी बनी रह सकती है, जब तक अवसादो के निक्षेप डेल्टा निर्माण के लिये अपर्याप्त रहते है।

परीक्षाओं में पूछे गये प्रश्न--

1. Describe the chief characteristics of the three stages in the life history of a river and the landforms associated with them.

(Agra B. A. 1953).

2. Describe the work of a river in its different stages. (Nagpur Inter. 1951).

3. Describe in detail the work of running water in the development of landforms and explain the various stages of river drainage

(Agra B. A. 1949).

4. What do you understand by 'River profile'? Discuss fully the effect of this on the development of a river vally. (Allahabad B A 1949).

5. How are waterfalls formed? Describe the process, taking the Niagara falls as the example.

(Allahabad B. A. 1948).

6. Write notes on—

(a) River Capture.

(Agra B A. 1950 and 1955; Banaras B A. and B. Sc, 1949, 1951 and 1952; Allahabad B. A. 19`2, Ajmer Inter. 1952; Lucknow M. Sc. Geology 1930).

(b) Formation of waterfalls

(Allahabad B. A. 1951).

(c) Delta formation.

(Allahabad B A. 1951).

(d) Meandering.

(U.P. Inter. 1946 and Ajmer Inter. 1952).

(e) Grade level of river.

(Agra B. A. 1948; Ajmer Inter. 1952).

(f) Estuary. (U. P. Inter 1947).

(g) Delta. (U. P. Inter 1951).

(h) Ox-bow Lake.

(U.P. Inter. 1952; Nagpur Inter. 1951).

(i) Incised Meanders.

(Banaras B A and B Sc. 1950 and 1952, I. A S. Compet 1953; Agra M.A 1950)

(j) Recession of waterfalls.

(I.A.S. Compet 1953; Agra M.A. 1950).

(k) Alluvial fan. (Allahabad M. A. 1953).

(l) River Terraces.

(Allahabad M. A. 1951 and 1952).

षष्टम् परिच्छेद

प्रवाह व्यवस्थायें

(DRAINAGE SYSTEMS)

प्रवाह व्यवस्था के कुछ प्रमुख प्रकार निम्नाँकित हैं –

(१)) अनुगामी प्रवाह (Consequent Drainage)
(२) उत्तरगामी प्रवाह (Subsequent Drainage)
(३) विपरीतगामी प्रवाह (Obsequent Drainage)
(४) पूर्वगामी प्रवाह (Antecedent Drainage)
(५) अध्यारोपित प्रवाह (Super-imposed Drainage)
(६) वृक्षाकार प्रवाह (Dendritic or Insequent Drainage)
(७) समदिश प्रवाह (Trellic Drainage)
(८) त्रिज्यात्मक प्रवाह (Radial Drainage)
(९) अन्तर्देशीय प्रवाह (Inland Drainage)
(१०) भूमिगत प्रवाह (Underground Drainage)

१ अनुगामी नदियाँ (Consequent Streams)

समुद्र के गर्भ से जब धरातल का कोई भाग ऊपर उठकर आ जाता है, तब उसमें सर्वप्रथम जो प्रवाह-व्यवस्था स्थापित होती है, उसकी नदियाँ ढाल के अनुरूप बहती है। इन्हे हम अनुगामी नदियाँ कहते है, क्योंकि इनका पथ आरम्भिक स्थल की दशाओ का अनुगमन करता है।

२ उत्तरगामी नदियाँ (Subsequent Streams)

अनुगामी नदी की उन सहायक नदियो को जो ढाल के प्रति प्राय समकोण बनाती हुई बहती है, हम उत्तरगामी नदी कहते है। इनका नाम उत्तरगामी इसलिये पडा कि ये बाद मे अस्तित्व मे आती है।

३ विपरीतगामी नदियाँ (Obsequent Streams)

उत्तरगामी नदियो की उन सहायक नदियो को जो आरम्भिक अनु-

चित्र ४३- प्रवाह- व्यवस्थायें
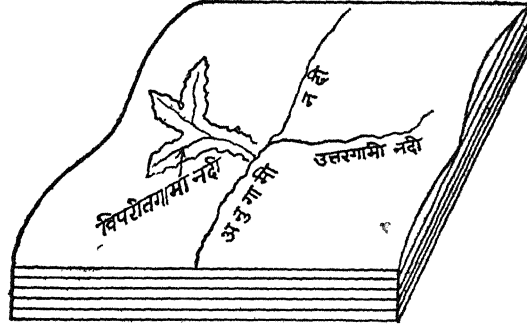
(क) अनुगामी उत्तरगामी तथा विपरीतगामी प्रवाह
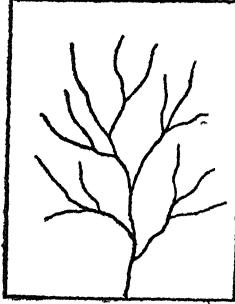
(ख) वृक्षाकार प्रवाह
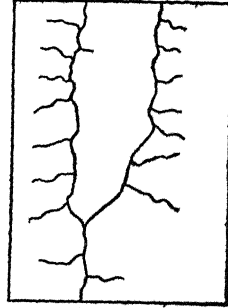
(ग) समदिश प्रवाह
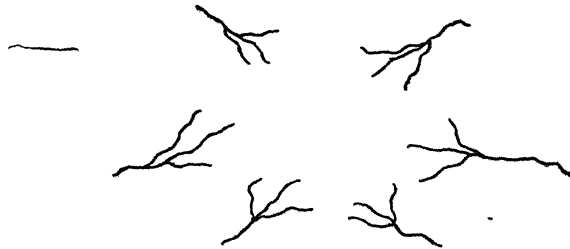
(घ) त्रिज्यात्मक प्रवाह

गामी नदियो की विपरीत दिशा मे प्रवाहित होती है, हम विपरीत गामी नदी कहते है।

(४) पूर्वगामी नदियाँ

(Antecedent Streams)

ऐसी नदी को जिसके पथ पर बाधक के रूप मे पर्वत का उदय होता है, किन्तु फिर भी वह अपने पथ को पूर्ववत स्थिर रखती है, हम पूर्वगामी नदी (Antecedent Stream) कहते है। यह बात कठिनता से समझ मे आती है कि पर्वत के उदित हो जाने पर भी नदी अपना प्रवाह-पथ स्थिर रख सकती है, किन्तु यह असम्भव नही है। पर्वत धीरे-धीरे ऊपर उठते है। यदि पर्वत के ऊपर उठने का वेग (Speed) ओर नदी द्वारा सम्पन्न कटाव का वेग समान हो तो नदी के प्रवाह मे पर्वत के ऊपर उठ आने से कोई बाधा न पहुँचेगी। सिन्ध, ब्रह्मपुत्र, सतलज आदि नदियाँ इसी प्रकार की नदियाँ है। जब हिमालय पर्वत अस्तित्व मे न आया था, तब भी ये नदियाँ वर्तमान हिमालय के उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवाहित होती थी। हिमालय पर्वत उठकर अस्तित्व मे आ गया किन्तु इनके प्रवाह-पथ यथावत् बने रहे । इसका कारण यह था कि हिमालय जितना ऊपर उठता था ये नदियाँ उसी मात्रा मे उसे काट देती थी। इसका प्रमाण यह है कि जहाँ ये नदियाँ हिमालय को पार करती है, वहाँ इनकी घाटियो के पार्श्व मीलो ऊँची और प्राय लम्बवत् भित्तियो से बने है।

(५) अध्यारोपित नदियाँ

(Super imposed Rivers)

यदि कोई नदी किसी प्रकार के निक्षेप से पूर्णत दब जाती है और फिर कालान्तर मे निक्षेप के ऊपर नवीन नदी बहने लगती है, तब इस नवीन नदी को हम अध्यारोपित नदी (Super-imposed Stream) कहते है, क्योकि उसकी स्थापना प्राचीन नदी के ऊपर हुई है। अध्यारोपण अनेक रीतियो से होता है—उदाहरण के लिये कभी-कभी आग्नेय-क्रिया[1] से निकला हुआ लावा नदियो को पाट देता है। कालान्तर मे जब लावा-निक्षेप के ऊपर नवीन प्रवाह-व्यवस्था स्थापित होती है, तब लावा से दबी हुई नदियो के ऊपर नवीन नदियाँ बहने लगती है। इसी प्रकार हिमानीजन्य एव सागरीय निक्षेपो से अध्यारोपण सभव है।

---

1 Igneous Activity

६ वृक्षाकार नदियाँ (Insequent or Dendritic Streams)

ऐसे क्षेत्रो मे जिनका निर्माण एक ही प्रकार की शिलाओ और मिट्टियो से होता है (उदाहरण के लिये कणाश्म (Granite) के क्षेत्र मे) नदी के प्रवाह के पथ मे सरचना से कोई बाधा नही पहुँचती। ऐसे प्रदेश मे प्रवाहित होने वाली मुख्य नदी वृक्ष के तने के सदृश प्रतीत होती है, और उसकी सहायक नदियाँ डालियो की भाति। चित्र ४३ ख से यह कथन स्पष्ट होगा। ऐसी प्रवाह व्यवस्था को हम वृक्षाकार प्रवाह व्यवस्था (Dendritic Drainage System) कहते हैं।

७ समदिश नदियाँ (Trellic Streams)

यह प्रवाह-व्यवस्था उन क्षेत्रो मे विकसित होती है, जहाँ कठोर और मृदुल दोनो प्रकार के शिलास्तर धरातल मे एकान्तर पर पाये जाते है। मृदुल शिलाये सरलता से घिस जाती है, किन्तु कठोर शिलाये ऊपर उठी रहती है। इस प्रकार मृदुल शिलास्तरो मे घाटियाँ बन जाती है और कठोर शिलास्तर जल विभाजक के रूप मे खडे रहते है। स्पष्ट है कि ऐसे क्षेत्र मे प्रवाहित होने वाली नदियाँ परस्पर समानान्तर होगी। इन्हे हम समदिश नदियाँ (Trellic Streams) कहते है।

८ त्रिज्यात्मक नदियाँ (Radial Streams)

जब भौमिकीय रचना गुम्बदाकार (Dome like) होती है, तब नदियाँ चारो दिशाओ मे वृत्त की त्रिज्याओ के सदृश प्रवाहित होती है। ऐसी प्रवाह व्यवस्था को हम त्रिज्यात्मक प्रवाह-व्यवस्था कहते है।

९ अन्तर्देशीय नदियाँ (Inland Streams)

जब किसी क्षेत्र मे प्रवाहित होने वाली मुख्य और सहायक नदियाँ समुद्र तक पहुँचने में असमर्थ होती है और वे किसी ऐसी झील मे गिरती है, जिसका समुद्र से कोई सम्बन्ध नही होता, तब हम उन्हे अन्तर्देशीय नदियाँ (Inland Streams) कहते है और उस क्षेत्र को अन्तर्देशीय प्रवाह-क्षेत्र (Inland-Drainage Area) कहते है।

१० भूमिगत नदियाँ (Underground Streams)

चूने के पत्थर के प्रदेशो मे भूपृष्ठ के नीचे पूर्ण प्रवाह-व्यवस्थाये पाई गई है। यही भूमिगत-प्रवाह है। ये नदियाँ वे सभी कार्य करती है, जो धरातल की

नदियाँ करती है। इनकी विस्तृत विवेचना 'कार्स्ट भूदृश्य' (Karst Landscape.) के प्रकरण में की गई है।

परीक्षाओं में पूछे गये प्रश्न

1. 'As the Indus passes through Gilgit in Kashmir, the river itself is only 3,000 feet above its delta, but the precipitous walls by which it is confined rise to heights of nearly 20,000 feet' How do you account for this fact? Discuss fully with the help of diagrams. (Agra M. A. 1948).

2. Write notes on—

   (a) Super-imposed Drainage
   (Agra B. A 1952, U P. Inter. 1945, Allahabad M. A. 1951 and 1952).

   (b) Antecedent Drainage.
   (Agra B A Part 1, 1955; U. P Inter. 1945; Lucknow M. Sc. Geol. 1948 & '52; Banaras B A. & B. Sc 1949, '51 & '53).

   (c) Radial Drainage (U. P. Inter. 1946).

   (d) Obsequent Streams. (Agra M A 1950).

सप्तम् परिच्छेद

हिमनदियाँ और उनका कार्य

(GLACIERS AND GLACIATION)

१. हिमनदी की परिभाषा

हिमनदी (Glacier) हिम (Ice) एव शीन (Snow) के

चित्र ४४—प्रातिनूतन हिमयुग मे उत्तरी अमरीका का हिमवरण

मिश्रण का प्रवाह है। यह गुरुत्वाकर्षण (Gravity) के कारण प्रवाहित होती है। इसकी तुलना गाढ़े द्रव के प्रवाह से की जा सकती है।

भूगोल मे हिम-नदियो के अध्ययन का विशेष महत्व है। वर्तमान हिम-नदियो और उनकी क्रियाओ के विवेचन-विश्लेषण से तथा पूर्वकालीन हिम-नदियो के अवलोकन-अभ्ययन से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि पृथ्वी के इतिहास मे अनेक बार हिम-युग हुए है अर्थात् विशेष विशेष युगो मे भूपृष्ठ के भाग-विशेष हिम से आच्छादित थे। चित्र ४४ मे प्रातिनूतन (Pleistocene) हिमयुग मे उत्तरी अमेरिका का हिमावरण प्रदर्शित किया गया है। भूसैद्धान्तिकी मे हिमयुगो के कारणो पर प्रकाश डाला गया है।

२ हिम-नदी की उत्पत्ति

हिमनदी के निर्माण के लिये निम्नलिखित दशाओ की पूर्ति आवश्यक है —

(१) शीतऋतु मे हिमवृष्टि (Snowfall) प्रचुर परिमाण मे होना चाहिये।

(२) हिमनदी के उद्‌गम के स्थल का तापक्रम इतना कम होना चाहिये कि वाष्पीकरण न हो सके। तापमान के कम होने के लिये निम्नलिखित दो दशाओ मे से कम से कम एक आवश्यक है —

(i) वह ध्रुवीय प्रदेश मे स्थित हो।

(ii) वह बहुत ऊँचाई पर स्थित हो।

(३) धरातल की आकृति ऐसी होनी चाहिये कि उसमे हिम का चिपिट-निक्षेप (Flat Deposition) हो सके।

३ हिमनदियों की संरचना

हिम नदियो की हिम (Ice) शीन (Snow) से बनती है। पर्वतो पर हिम-रेखा के ऊपर शीन शुष्क एव चूर्ण अवस्था मे गिरती है। इसका कारण यह है, कि उसका तापक्रम हिमॉक (Freezing point) से बहुत कम होता है। ग्रीष्म ऋतु मे सौरताप से पृष्ठ की शीन का कुछ भाग पिघल जाता है और इस प्रकार अस्तित्व मे आया हुआ जल नीचे च्यवित होता है। यह जल नीचे की वायु को हटा देता है, जिससे बुलबुले बन जाते है। तापक्रम के घट जाने से यह जल दुबारा घनीभूत होता है। पानी के दुबारा जमने से जो नवीन पदार्थ बनता है, उसके लिये अँग्रेजी या हिन्दी भाषा मे कोई उपयुक्त शब्द नही है। फ्रासीसी भाषा मे उसे 'नेवे' (Neve) कहते है। अन्य शब्दो मे नेवे शीन और हिम के बीच की अवस्था है। बुलबुलो के बाहुल्य से नेवे अपारदर्शक (Opaque) हो जाता है। निरन्तर हिमवृष्टि से ऊपर का भार

११

बढता रहता है। वृहद् भार के कारण वायु का बहुत सा भाग बाहर निकल जाता है। इस प्रकार नेवे हिम (Ice) मे परिणत हो जाती है।

४ हिमधाव (Avalanche)

ये शीन के विशालकाय पिण्ड होते है, जो गिरि-शिखरो से बडे वेग के साथ नीचे लुढकते है। इनके कारण वायु-भार मे अचानक परिवर्तन हो जाते है, जिससे तूफान आ जाते है। शीतकाल के हिमधाव (Avalanches) शुष्क एव चूर्ण शीन से बने होते है। इनसे हानि अपेक्षाकृत कम होती है, किन्तु जब हिम पिघलती है और हिमधाव मे जल की मात्रा होती है तब उसके साथ शिलाओ और मिट्टी का बहुत सा भाग प्रवाहित होता है, जिससे उसके पथ मे पडने वाले समस्त पदार्थ—मकान, पेड-पौधे आदि सभी कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जाते है। हिमधाव केवल ऊँचे पर्वतो मे पाये जाते है।

चित्र ४५—ग्रीनलैण्ड की हिमटोपी

५ हिमनदियों का वर्गीकरण

भौगोलिक दृष्टि से हिम नदियो के तीन मुख्य भेद है –

(१) घाटीवाली हिम नदियाँ (Valley Glaciers)—इन्हे पर्वत अथवा आल्प्स हिमनदी (Mountain or Alps Glacier) भी कहते है, क्योकि ये पर्वतो पर पाई जाती है और आल्प्स पर्वत मे इनका विशेष अध्ययन हुआ है। जैसा कि इनके नाम से प्रकट है, ये पर्वतीय क्षेत्रो मे पाई जाती है और पूर्व निर्मित घाटियो मे होकर बहती है। इनके प्रवाह का कारण
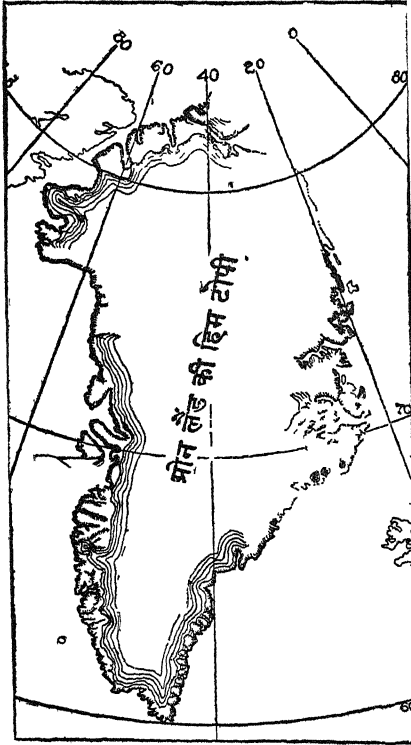
गुरुत्वाकर्षण (Gravity) ही है। चित्र ४५ और ४६ मे घाटी वाली हिमनदियाँ प्रदर्शित की गई है।

(२) हिमस्तर (Ice-sheet) अथवा हिम-टोपी (Ice-cap) हिम के उस विस्तृत एव मोटे आवरण को जो किसी विशाल क्षेत्र को ढक लेती है, हिम-स्तर अथवा हिमटोपी कहते है। हमे यह ज्ञात है कि अण्टार्कटिका महाद्वीप के ऊपर हिम का मोटा आवरण है। स्थलखण्ड को तो यह ढके हुए है ही, जल मे भी इसका विस्तार है। इसका क्षेत्रफल लगभग ५० लाख वर्गमील है । ग्रीनलैण्ड की हिमटोपी का विस्तार ७ लाख वर्गमील है और बीच मे इसकी मोटाई ८००० फुट से भी अधिक है।

(३) पर्वतपदीय हिमनदी (Piedmont Glacier)—ये हिम नदियाँ पर्वतो के पदो पर स्थित मैदानो मे बन जाती है। ऊपर से नीचे की ओर बहने वाले दो अथवा अधिक हिम प्रवाहो के सम्मिलिन से इनका

चित्र ४७—मलासपीना हिमनदी

निर्माण होता है। अलास्का मे ये बहुत पाई जाती है। इस सम्बन्ध मे मलासपीना नामक हिमनदी विशेष उल्लेखनीय है। इसका क्षेत्रफल लगभग १५०० वर्ग मील है।

६ हिमनदी के प्रवाह का वेग

हिम-नदी का गति-वेग निम्नलिखित प्रतिकारको पर निर्भर है—

(१) प्रवाहित होने वाली हिम की मोटाई-हिम जितनी अधिक मोटी होगी, प्रवाह का वेग भी उतना ही अधिक होगा।

(२) धरातल की आकृति—यह तो स्पष्ट ही है कि धरातल जितना ही चिकना होगा, प्रवाह-वेग भी उतना ही अधिक होगा।

(३) धरातल का ढाल—यह भी स्वाभाविक है, कि धरातल जितना अधिक ढालू होगा, हिम-नदी का वेग भी उतना ही अधिक होगा।

(४) हिम नदी मे विद्यमान जल की मात्रा—हम जानते है कि हिम जल मे तैरती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि हिम की अपेक्षा जल का घनत्व अधिक होता है। अतएव जल के विद्यमान होने से हिमनदी का भार बढ जाता है, जिससे गुरुत्वाकर्षण भी बढ जाता है। अन्य शब्दो मे हिमनदी मे जल की मात्रा जितनी अधिक होगी, उसका प्रवाह-वेग भी उतना ही अधिक होगा।
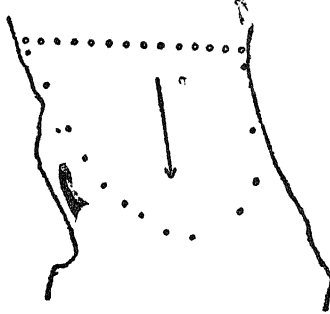
चित्र ४८—हिमानी की गति

(५) तापक्रम—विशेष सीमाओ के अन्दर तापक्रम जितना अधिक होगा, हिमनदी का वेग भी उतना ही अधिक होगा।

(६) हिमनदी के ऊपरी पृष्ठ की आकृति—हिमनदी का ऊपरी पृष्ठ जितना अधिक झुका होता है, हिमनदी का गति-वेग उतना ही अधिक होता है।

जब कोई हिमनदी घाटी मे होकर बहती है, तब उसके पार्श्वों और नितल पर घाटी सस्पर्श करती है जिससे वहाँ घर्षण (Friction) उत्पन्न हो जाता है। यह घर्षण हिमनदी की गति के विपरीत दिशा मे कार्य करता है। फल यह होता है कि हिमनदी के पार्श्वों और नितल मे गति मन्द हो जाती है किन्तु मध्यवर्ती भाग मे वह यथावत् बनी रहती है, जिससे हिमनदी के अग्रभाग मे "जिह्वा" निकल आती है। चित्र ४८ से यह कथन स्पष्ट होगा।

जे० डी० फोर्बेज ने यह ज्ञात किया कि ग्रीष्म एव शरद ऋतु मे फ्रास की मेर डे ग्लेस नामक हिमनदी का गतिवेग मध्य मे प्रति दिन २० से २७ इच था और पार्श्वों मे १३ से १९½ इच।

७ हिमविदर तथा हिमपात

(Crevasses and icefalls)

यदि हिमनदी की घाटी सर्वत्र एकरूप (Uniform) हो अर्थात् वह सभी भागो मे समान रूप से चौडी हो, उसका नितल चिकना-चपाट हो और उसका ढाल मन्द एव नियमित हो, तो उसकी हिम टूटती नही है। इसके विप-

रीत यदि ढाल अकस्मात् प्रपाती हो जाता है अथवा घाटी यकायक सकरी हो जाती है, तो उससे हिमनदी का गतिवेग प्रभावित होता है, जिससे उसकी हिम खडित हो जाती है।

चित्र ४९—हिमविदर एव हिमपात

उदाहरण के लिये, यदि किसी मन्द प्रवण (Gentle Slope) वाली घाटी का ढाल अचानक प्रपाती हो जाता है तो उसमे प्रवाहित होने वाली हिमनदी को, ढाल के आकस्मिक परिवर्तन के कारण, बडी जोर का झटका लगता है, जिससे उसमे लम्बवत् विदर उत्पन्न हो जाते है। इन विदरो को हम हिमविदर (Crevasses) कहते है और खण्डित हिमानी के टुकडो को हिमपात (Ice-fall)। यदि आगे चलकर ढाल पुन मन्द हो जाता है, तो हिमानी के खण्ड पुन परस्पर चिपक जाते है और विदर बन्द हो जाते है।

८ हिमनदी का भौगोलिक कार्य

(१) अपक्षरण

नदी की भाति हिमनदी के अपक्षरण की मात्रा भी निम्नलिखित प्रतिकारको पर निर्भर है—(१) धरातल की प्रकृति अर्थात् उसका चिकना अथवा खुरदरा होना (२) नितल की शिलाओ की सरचना एव कठोरता (३) ढाल की मात्रा (४) प्रवाह का वेग आदि। नदी और हिमनदी मे अपक्षरण सम्बन्धी एक उल्लेखनीय अन्तर यह है कि नदी के अपक्षरण की मात्रा उसमे विद्यमान जल के आयतन के अनुसार होती है ओर हिमनदी के अपक्षरण की मात्रा उसकी हिम की मोटाई के अनुसार होती है।

चित्र ५०—गह्वरा (Cirque)

हिमनदी के अपक्षरण के सम्बन्ध मे निम्नलिखित विशिष्ट शब्दो का ज्ञान आवश्यक है—

(१) गह्वर (Cirque or Corrie)—ये आरामकुर्सी की आकृति के गड्डे होते है जो घाटियो के शीर्ष पर स्थित होते है। इनमे हिमनदियो का जन्म और पालनपोषण होता है। जिस प्रकार भूद्रोणी (Geo-syncline) को पर्वतो का पलना कहा जाता है, उसी प्रकार इन्हे भी हिमानी का पलना कहा जा सकता है।
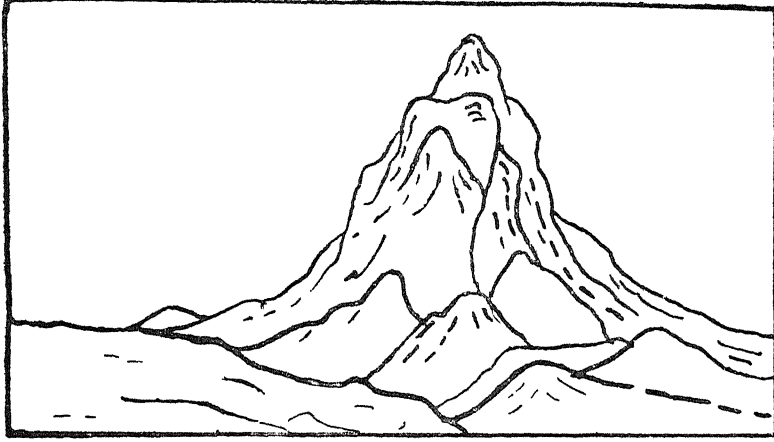
चित्र ५१—शृग (Horn)

(२) शृग (Horn)—जब तीन अथवा अधिक हिमनदियाँ अपने शीर्षों की दिशा मे अपक्षरण (Headward Erosion) करती है, तो उनकी गह्वराये (Cirqves) परस्पर मिल जाती है। इस प्रकार प्रपाती एव नुकीली चोटियाँ अस्तित्व मे आ जाती है, जिन्हे हम शृग (Horn) कहते है। दक्षिणी आल्प्स मे इस प्रकार की एक चोटी पाई जाती है, जिसका नाम मैटरहौर्न (Matterhorn) है। इसी शब्द के आधार पर 'Horn' (शृग) शब्द बना है। हिमालय प्रदेश मे बद्रीनाथ के मदिर के पास शिवलिग का शिखर भी इसी आकृति का है।

(३) हिमस्था (Nunatak)—उन शिलाखण्डो को कहते है, जो चारो ओर से हिम से घिरे रहते है। बहुधा ये दो हिमनदियो अथवा हिमटोपियो

चित्र ५२—हिमस्था (Nunatak)

के दो खण्डो के बीच मे स्थित होते हैं। हिम के विस्तृत क्षेत्र मे ये द्वीप सदृश प्रतीत होते हैं। हिमनदियो के पार्श्विक अपक्षरण से ये क्षीण होते रहते है। इसके अतिरिक्त पाला एव हिमधाव भी इनका विनाश करते रहते हैं। कालान्तर मे केवल सकीर्ण टीले शेष रह जाते हैं।

चित्र ५३—भीम सोपान

(४) भीम सोपान (Cyclopean Stairs or Giant's Stairways) घाटीवाली हिमनदियोसे प्रभावित क्षेत्रो मे कभी-कभी सीढियो जैसी भौम्याकृति पाई जाती है। ये सीढियाँ घाटी की समस्त चौडाई मे फैली रहती है और इनकी ऊँचाई १०० से लेकर १००० फुट तक पाई जाती है। बहुधा उत्तलो के ऊपरी धरातल पर अनियमित गडढे पाये जाते है। ये सीढियाँ दो

कारणो से बन जाती हैं—(१) विभगन (Faulting) के कारण तथा (२) शिलाओं की सरचना के विभेदन के कारण।

(५) सरेखाये (Striae)—हिमनदी के निचले भाग में बहुत से शिलाखण्ड फसकर चिपक जाते है। जब हिमनदी प्रवाहित होती है तब ये धरातल को खुरचते चलते है। इस प्रकार खरोच द्वारा भूपृष्ठ पर समानान्तर रेखाये बन जाती है, जिन्हे हम सरेखाये (Striae) कहते है। स्पष्ट है, कि इनकी दिशा हिमानी-प्रवाह के अनुरूप होती है।

(६) अविपृष्ठ (Roches Moutonees)—जब हिमनदी के पथ
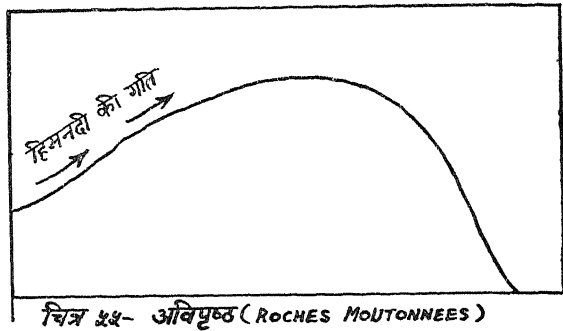
चित्र ५५- अविपृष्ठ (ROCHES MOUTONNEES)

मे कोई वृहद शिलाखण्ड अथवा टीला पडता है, तो उसके प्रवाह से उस शिलाखण्ड अथवा टीले के पिछले भाग का ढाल मन्द पड जाता है किन्तु अगले भाग का ढाल यथावत् प्रपाती बना रहता है। पिछले ढाल का धरातल हिमानी-प्रवाह से चिकना हो जाता है और उसमे सरेखाये (Striae) बन जाती है। इस प्रकार के हिमानी अपक्षरित टीलो को हम अविपृष्ठ (Roches-Moutonees) कहते है।

(७) लम्बित घाटियाँ (Hanging Valleys)—जब कोई सहायक हिमनदी किसी मुख्य हिमनदी मे मिलती है, तब उसका नितल मुख्य हिमनदी की अपेक्षा ऊँचा रहता है। इस प्रकार लम्बित घाटियाँ (Hanging-Valleys) अस्तित्व मे आ जाती है।

(८) फियर्ड (Fiord)—ये समुद्र तट पर पाई जाने वाली ऐसी घाटियाँ है, जिनका निर्माण नदी के अपक्षरण अथवा विभगन (Faulting) आदि किसी भी रीति से हो सकता है किन्तु बाद मे हिमनदियो के अपक्षरण से
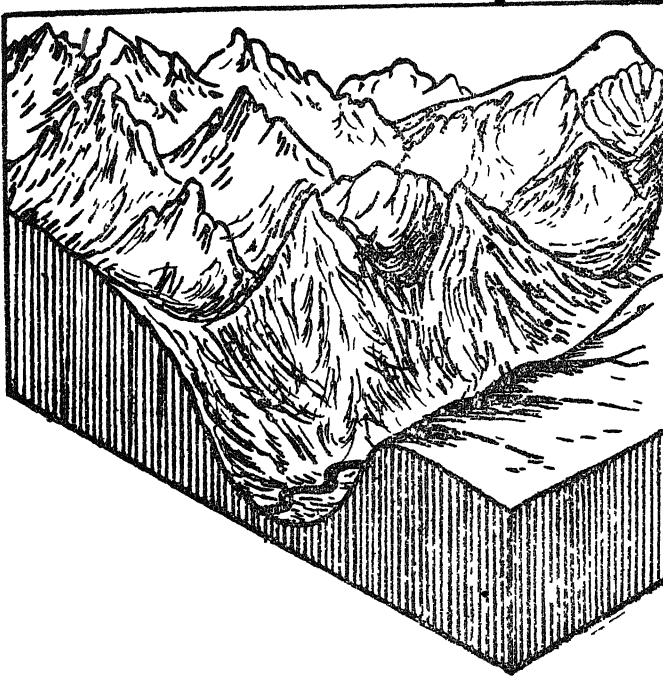
चित्र ५६—हिमनदी की घाटी

वे U आकृति ग्रहण करलेती है और अन्त मे जलमग्न हो जाती है। चित्र ५७ मे नौरवे के फियर्ड (Fiords) प्रदर्शित किये गये है।

(२) परिवाहन

(Transportation)

जब हिमनदी बहती है, तब वह अपने साथ मिट्टी, पत्थर आदि बहुत से पदार्थ परिवाहित करती है। हिमनदी द्वारा परिवाहित पदार्थ को हम हिमोढ'

चित्र ५७—नारवे के फियर्ड

(Moraine) कहते है। यह पाँच प्रकार का होता है —

(१) पार्श्विक हिमोढ (Lateral Moraine)—हिमनदियो के पार्श्वों के अनुरूप जो पदार्थ परिवाहित और एकत्रित होता रहता है, उसे हम पार्श्विक हिमोढ (Lateral Moraine) कहते है।
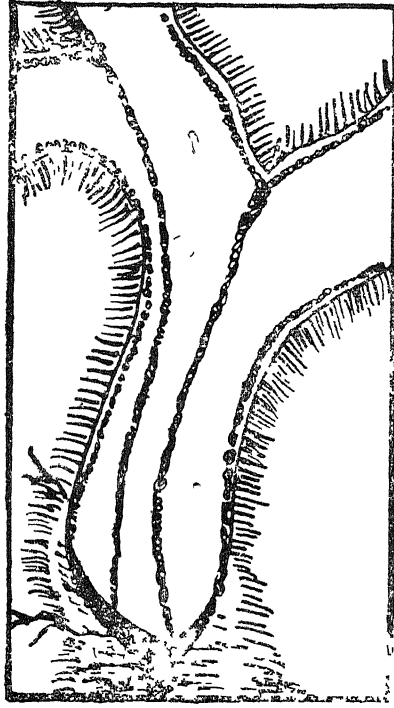
चित्र ५८—पार्श्विक, मध्य यव एन्त्य हिमोड

(२) मध्यवर्ती हिमोढ (Medical Moraine)—जब दो हिमनदियो का सगम होता है तब उनके पार्श्विक हिमोढ उनके पथो के मध्य मे परस्पर मिल जाते है, जिसे हम मध्यवर्ती हिमोढ (Medical Moraine) कहते है। चित्र ५८ से यह कथन स्पष्ट होगा। प्रकट है, कि पार्श्विक हिमोढ को ही विशेष परिस्थिति मे मध्यवर्ती हिमोढ कहते है।

(३) अन्त्य हिमोढ़—(Terminal Moraine)—हिमनदी के पिघलकर नष्ट हो जाने पर जो परिवाहित पदार्थ उसके पथ के अन्त मे एकत्र हो जाता है, उसे हम अन्त्य हिमोढ (Terminal Moraine) कहते है।

(४) भूमि हिमोढ (Ground Moraine)—हिमनदी के नितल मे मिट्टी एव शिलातत्व फस जाते है और हिमनदी के साथ-साथ वे भी घिसटते रहते है। प्रत्येक हिमनदी अपने साथ शिलातत्व की एक निश्चित मात्रा ही परिवाहित कर सकती है, उससे अधिक नही। यदि शिलातत्व की मात्रा अधिक हो जाती है, तो अतिरिक्त शिलातत्व छूट जाते है और जब उनके ऊपर से

हिम नदी प्रवाहित होती है, तब वे पिसकर चूर्ण हो जाते है। इस प्रकार अस्तित्व मे आये हुए हिमोढ को हम 'भूमि-हिमोढ' (Ground Moraine) कहते है ।

(३) निक्षेपण अथवा संचयन

हिमनदी द्वारा सम्पन्न निक्षेपण के कुछ प्रमुख रूप निम्नलिखित है —

(१) गण्डमृद (Till)—हिमनदियो द्वारा सञ्चित शिलाओ के छोटे-छोटे टुकडो के निक्षेप को गण्डमृद (Till) कहते है। इनमे स्तर नही होते।

चित्र ५९—दीर्घ-कूटिकाये (Drumlins)

(२) गण्डमृदाश्म (Tillite)—भूगर्भशास्त्र की दृष्टि से प्राचीन गण्डमृद (Till) को जिसकी शिलाये सघनित और ससाद्रित हो जाती है, गण्डमृदाश्म (Tillite) कहते है।

(३) दीर्घकूटिका (Drumlin)—उल्टी नाव की आकृति के हिमानी-निक्षेप को दीर्घकूटिका (Drumlin) कहते है। इनकी दीर्घ-अक्ष (Larger axis) हिमनदी की गति के समानान्तर होती है। इनमे स्तर नही पाये जाते। इनका निर्माण अधिकाँशत मृत्तिका (Clay) द्वारा होता है। बहुधा इनके समूह के समूह पाये जाते है।

(४) उखा-हिमोढ (Kettle Moraine)—उखली की आकृति के गडढो मे भरे हुए हिमानी-निक्षेप को उखा-हिमोढ कहते है।
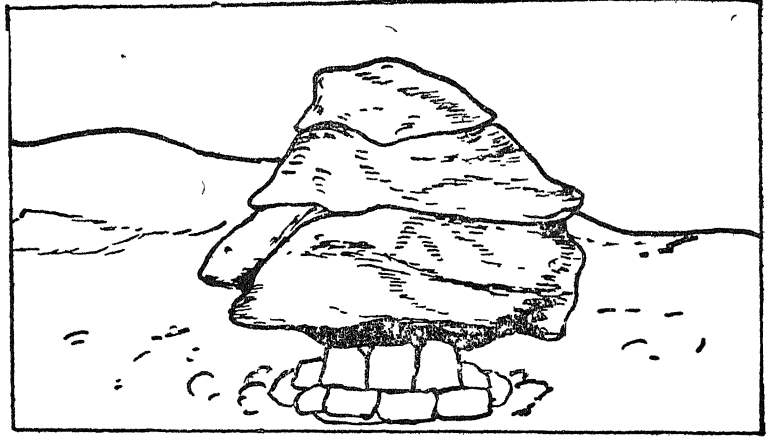
चित्र ६०—अपोढ (Erratic)

(५) अपोढ (Erratic)—हिमानी-अपक्षरण से खण्डित हुई शिलाओ के विशालकाय टुकडे कभी-कभी सैकडो मील स्थानान्तरित हो जाते है। इन्हे हम अपोढ (Erratics) कहते है।

९ हिमानी द्वारा प्रभावित क्षेत्र
(Glaciated Regions)

हिमनदी के अपक्षरण, परिवाहन और निक्षेपण के अध्ययन के अनन्तर हिमानी द्वारा प्रभावित क्षेत्र का वर्णन करना बडा सरल कार्य हो जाता है।
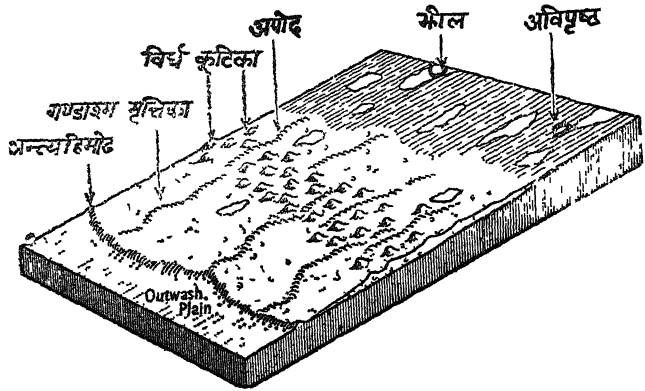
चित्र ६१—हिमानी द्वारा प्रभावित क्षेत्र

वास्तव मे ऐसे प्रदेश मे वे सभी विशेषताये मिलेगी, जिनका ऊपर उल्लेख हो चुका है ।

१० नदी-हिम्य निक्षेप

(Fluvio-glacial Deposits)

हिम-नदियो द्वारा दो प्रकार के निक्षेप बनते है —

(क) हिमानी निक्षेप (Glacial Deposits)—ये स्वय हिमनदी के निक्षेप होते है। इनका वर्णन पूर्व मे हो चुका है।

(ख) नदी हिम्य निक्षेप (Fluvio glacial Deposits)—ये हिम-नदियो के अन्दर बहने वाली नदियो के निक्षेप होते है।

नदी निक्षेप के कुछ प्रमुख रूप निम्नलिखित है —

(१) कटिका (Esker)—जैसा कि चित्र ६२ से स्पष्ट है, ये लम्बे, सकरे, घुमावदार बाँध होते है। इनकी रचना अधिकाशत रेत और ककर (Gravel) से होती है। आयरलैण्ड की भाषा मे (Esker) का अर्थ पथ होता है। हिमनदी द्वारा प्रभावित प्रदेश प्राय विषम और दलदली होते है। ऐसे प्रदेशो मे कूटिका (Esker) ही आवागमन के साधन होते
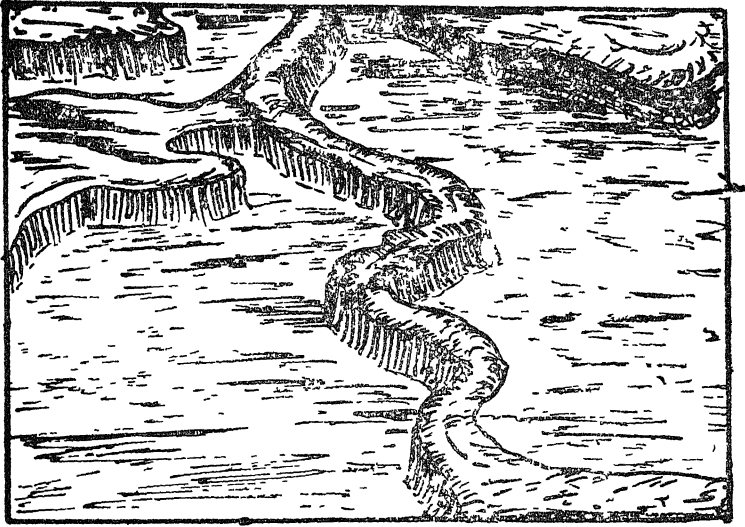
चित्र ६२—कूटिका (Esker)

है। अतएव इनका नाम Esker बडा सार्थक है। इनकी ऊँचाई कम अर्थात् कुछ सौ फुट ही होती है, किन्तु इनकी लम्बाई ५ मील से लेकर २० मील तक पाई गई है। ढाल के अकस्मात मन्द हो जाने से हिमानी के निचले भाग मे प्रवाहित होने वाली नदी के पदार्थ निक्षेपित हो जाते हैं और कूटिका का रूप ग्रहण कर लेते है।

(२) ककतगिरि (Kames)—ये गोलाकार पहाडियाँ होती है। इनके किनारे ढालू होते है। इनकी रचना पार्श्विक एव भूमि हिमोढ से होती है। बहुधा ये निक्षेप अध-हिमानीसरिताओ (Sub-glacial Streams) के निकास (Outlet)पर बन जाते है। इनकी सरचना मुख्यत रेत और ककर से होती है।
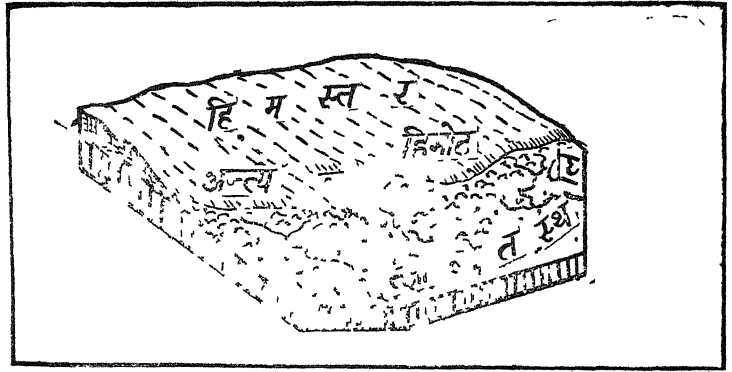
चित्र ६३—उत्क्षालित स्थली (Outwash Plain)

(३) उत्क्षालित स्थली(Outwash Plains)—हिमनदी की हिम के पिघलने से बहुत सी नदियाँ अस्तित्व मे आ जाती है। इन नदियो के कछारी मैदान (Alluvial Plain) को हम उत्क्षालित स्थली कहते है। इनकी रचना मे अन्त्य-हिमोढ का कुछ भाग रहता है, जो विस्तृत क्षेत्र मे फैल जाता है। शिलाओ के सूक्ष्म कण आगे बढ जाते है और अपेक्षाकृत स्थूल टुकडे हिम के निकट रह जाते है।
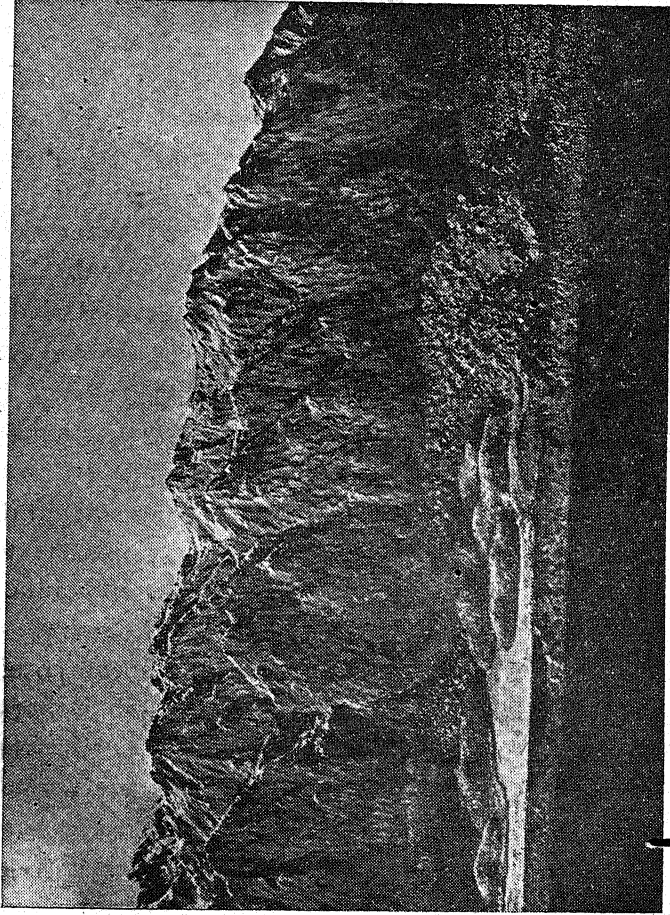
चित्र ३४—कंकतगिरि (Kam)

११ भारतवर्ष में पूर्वकालीन हिमयुग

भारतवर्ष में कम से कम तीन हिमयुगों के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं :—

१ धारवार युग

दक्षिणी भारत में पाये जाने वाले कालड्रग संपिण्ड (Kaldrug Conglo merate) के अष्टीलाओं (Pebbles) में बने हुए खुरच के चिन्ह, हिमनदी की क्रिया के सबसे प्राचीन प्रमाण हैं। आर० बी० फुट के अनुसार ये धारवार युग के हैं।

२ गोण्डवाना युग

फिर उडीसा की तलचीर शिलाओ (Talchir beds) मे जो निम्न गोण्डवाना युग (Lower Gondwana Period) की है हिमानी के चिह्न मिलते है। इनके निचले भागों मे गण्डाश्म के स्तर (Boulder beds) पाये जाते हैं, जो हिमयुग का अकाट्य प्रमाण है। अन्य क्षेत्रो मे भी जैसे हजारा, शिमला, साल्ट रेञ्ज (Salt Range), राजस्थान तथा मध्य-प्रदेश आदि मे इस युग की शिलाओ मे गण्डाश्म के स्तर (Boulder beds) पाये जाते है। उत्तर प्रांगार युग (Upper Carboniferous Period) के इस हिमयुग की पुष्टि गोण्डवानालैण्ड के अन्य भागो (जैसे आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका) के भौमिकीय इतिहास से भी होती है। तलचीर शिलाओ के ऊपर कोयले के स्तर पाये जाते है। कोयले के निर्माण के लिये सुप्रचुर वनस्पति (Luxurious Vegetation) होना आवश्यक है। ऐसे बन केवल उष्ण जलवायु मे ही सभव है। अतएव उत्तर प्रागार युग (Upper Carbonifrous Period) के उपरान्त जलवायु उष्ण हो गया। इसके बाद जलवायु पुन शीतल हो गया, जैसा कि इस काल की पचेत शिलाओ (Panchet Rocks) के अध्ययन से विदित होता है। इन शिलाओ मे बालुकाश्म (Sandstone) के अन्दर अ-विबन्धित स्फतीय (Undecomposed Felspars) के कण पाये जाते है। यदि जलवायु उष्ण होता तो स्फतीय विच्छिन्न अवश्य हो जाते। इनका विच्छिन्न न होना इस बात की पुष्टि करता है, कि इस युग मे जलवायु शीतल था। पचेत शिलाओ के ऊपर लाल वर्ण के बालुकाश्म (Sandstone) पाये जाते है। इनमे अयसिय पदार्थ (Ferruginous Matter) का बाहुल्य मरुस्थलीय जलवायु (Arid Climate) का द्योतक है। सक्षेप मे, गोण्डवाना युग के आरम्भ मे जलवायु शीतल था, फिर वह उष्ण हुआ, इसके पश्चात फिर शीतल हुआ और अन्त में फिर उष्ण हो गया।

३. प्रातिनूतन हिमयुग

(Pleistocene Ice Age)

भारतवर्ष में घटित होने वाला सबसे हाल का हिमयुग प्रातिनूतन युग (Pleistocene Period) मे हुआ। यह हिमयुग ससार-व्यापी

था। इसके प्रमाण योरप और अमेरिका मे तो मिलते ही है, इसके प्रभाव से प्रायद्वीपीय भारत का जलवायु भी अपेक्षाकृत शीतल हो गया। हिमालय प्रदेश के पादपो [जैसे विषपत्र तालीश (Rhododendron arboreum)]
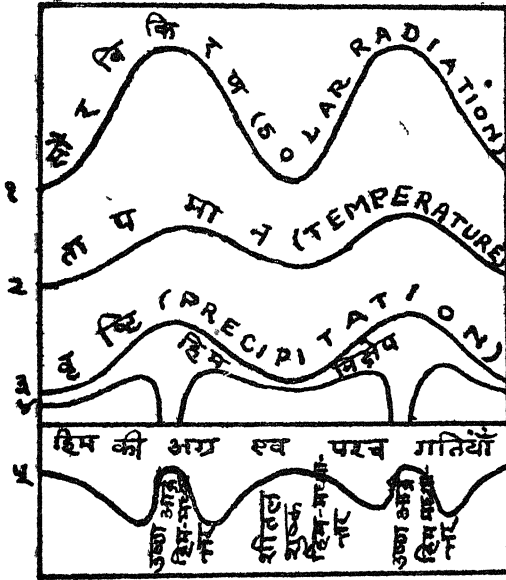
चित्र ६५—प्रतिनूतन काल की हिमनदियो अग्र एव पश्च गतियाँ

एव जीवो [जैसे चिपिटश्रृ ग छाग (Capra hylocrius)] नामक जगली बकरी) का नीलगिरि मे पाया जाना इसकी पुष्टि करता है। हिमालय-प्रदेश मे तो हिमयुग के सभी चिह्न मिलते है। शिवालिक युग के स्तनधारी जीवो का विनाश इसी हिमयुग ने किया। यह हिमयुग लगातार नही हुआ। प्रमाणो से विदित होता है, कि इस युग मे हिमानीय जलवायु, (Glacial Climate) चार बार हुआ है और उनके बीच मे तीन अन्तर्हिमानीय युग (Interglacial Periods) हुए है। विशेष विवरण के लिये .. भूसैद्धान्तिकी का 'हिमयुगों के कारण' शीर्षक परिच्छेद देखिये।

परीक्षाओं में पूछे गये प्रश्न :—

1. Explain the origin of a glacier and describe the constructive and destructive work done by it (Agra B. A. Part 1, 1955).

2. Describe in some detail the landforms associated with glacial or fluvio-glacial erosion. Illustrate with examples (Agra B. A. 1954)

3. Give a graphic account of the work of glaciers with regard to erosion, transporation and deposition. (Agra B. A 1953).

4. What do you understand by Pleistocene Ice Age? Point out some of its major physiographic effects on Europe and North America.
(Agra B. A. 1952),

5- Give an illustrated account of the typical features of a glaciated landscape.
(Agra B A 1951).

6. Give an account of glacier and its work with regard to erosion, transportation and deposition. (Agra B. A. 1947).

7. Describe the chief features of glaciated scenery and show how it differs from non-glaciated topography. (Allahabad B. A 1951).

8. What are the chief types of glaciers? Give examples with special reference to present and past glaciations. (U. P. Inter. 1939).

9. Describe with sketches the work of a glacier and the features developed by it on the landscape.
(Nagpur Inter. 1952).

10. Describe the important features of a glaciated region (Banaras B A. & B. Sc. 1951).

11. Describe and discuss the characterstic features of glaciated topography.
(Banaras B. A. and B. Sc. 1950).

12. Describe the important features of a recently glaciated region.
(Banaras B. A. and B. Sc. 1949).

13. Write notes on—

(a) Cirque.
(Agra B. A. 1952 and 1955 ; Allahabad B. A. 1952 ; Lucknow M. Sc. Geology 1949).

(b) Terminal Moraine.
(Agra B. A. 1948; Ajmer Inter. 1949; U. P. Inter 1945).

(c) Roche Moutonnees. (Agra B. A. 1952).

(d) Sheep rock. (U. P. Inter. 1948).

(e) Glacier. (U. P. Inter, 1948).

14. Comment on—

(a) Nunatak. (Agra M. A. 1948).

(b) Ice-sheet. (Banaras B A. & B.Sc. 1956).

(c) Medial Moraine.
(Banaras B. A. and B Sc. 1952).

(d) Corries. (Allahabad M. A. 1951).

(e) Moraines.
(Nagpur Inter. 1951; Ajmer Inter. 1951; Banaras B. A. and B. Sc. 1950).

(f) Fiord. (U. P. Inter. 1949 and '52).

अष्टम् परिच्छेद

पवन का कार्य

अन्य प्राकृतिक अभिकर्त्ताओ के सदृश वायु द्वारा भी अपक्षरण, परिवाहन एव निक्षेपण की प्रक्रियाये सम्पन्न होती है। इस दृष्टि से जल और वायु के कार्यो मे यह साम्य है, कि ये दोनो अभिकर्त्ता स्वय अपक्षरण कम करते है, किन्तु ककड, पत्थर, बालू आदि के माध्यम से अधिक। ये पदार्थ स्थल के काटने के लिये यत्र अथवा ओजार का कार्य करते है। दोनो ही दशाओ मे वनस्पति अपक्षरण की क्रिया मे बाधक होती है।

२ अपक्षरण (Erosion)

वायु द्वारा सम्पन्न अपक्षरण मुख्यत यॉत्रिक रूप से (Mechanically) ही होता है। रासायनिक ऋतुक्षरण (Chemical weathering) से जलज शिलाओ के कण परस्पर असम्बद्ध हो जाते है, जिससे अपक्षरण मे सुविधा होती है। यही कारण है कि जम्बशिला (Shale) ओर बालुकाश्म (Sandstone) वायु के अपक्षरण से शीघ्र प्रभावित होने है।

अपक्षरण की मात्र। अनेक प्रतिकारको पर निर्भर है —

(१) **वायु का वेग**—यह तो स्पष्ट ही है, कि हल्की हवाओ से यॉत्रिक अपक्षरण बहुत कम होगा। यॉत्रिक अपक्षरण के महत्वपूर्ण होने के लिये वायु का प्रबल होना अनिवार्य है। मरुस्थलो मे चलने वाली आँधियो से यात्रिक अपक्षरण बहुत होता है। इन ऑधियो मे जो ककड पत्थर अथवा रजकण फस जाते है, वे अपक्षरण के ओजार का कार्य करते है।

चित्र ६६—उच्छैल (Crag)

(२) **ऊँचाई और पत्थर के टुकड़ों का आकार**—छोटे आकार के धूलिकण वायु मे ऊपर ऊपर प्रवाहित होते है, किन्तु अपेक्षाकृत बडे शिलाखण्ड पृथ्वी पर वायु के साथ

लुढकते चलते है । अतएव, यह स्वाभाविक है, कि वायु द्वारा सम्पन्न अपक्षरण धरातल के निकट सबसे अधिक होता है और ऊँचाई के साथ उसकी मात्रा घटती जाती है। सामान्यत धरातल से ४ फुट की ऊँचाई तक घर्षण अधिक होता है। अपक्षरण की मात्रा के इस विभेदन के कारण उच्छैल (Crags) अस्तित्व मे आ जाते है। चित्र ६८ मे इसे प्रदर्शित किया गया है। इसके देखने से यह स्पष्ट है कि अपक्षरण ऊपर की अपेक्षा धरातल के निकट अधिक हुआ है। यदि वायु सदैव एक ही दिशा मे चलती है, तो उच्छैल का निचला भाग केवल एक ओर घिस जाता है। यदि ऋतुओ के अनुसार वायु की दिशा मे परिवर्तन होते रहते है, तो उच्छैल का निचला भाग चारो ओर से घिसता है। इस प्रकार के अपक्षरण का एक सुन्दर उदाहरण ट्रान्स-कैस्पियन रेलवे (Trans-Caspian Railway) के अनुरूप गडे हुए तार के खम्भो का घिस जाना है। ग्यारह वर्ष की अवधि मे उनकी मोटाई आधी रह गई है।

(३) **शिलाओं की कठोरता**—कोमल शिलाये कठोर शिलाओ की अपेक्षा अधिक घिसती है। इस तथ्य की पुष्टि सिनाय प्रायद्वीप के भूदृश्य से होती है। यहाँ पर पाई जाने वाली सामान्य चट्टान बालुकाश्म (Sandstone) है, जिसमे मैगनीज के सघनन (Concretions) मिलते है। मैगनीज के

चित्र ६७—सिनाय प्रायदीप का भूदृश्य

की तुलना मे बालुकाश्म कोमल होता है। इसका फल यह हुआ है कि दीर्घकाल के अपक्षरण से बालुकाश्म घिसकर नष्ट हो गया है, किन्तु मैगनीज के सघनन यथावत खडे है। यही नही उनकी आड मे बालुकाश्म के छोटे-छोटे भाग भी अपक्षरित होने से बच गए है। चित्र ६७ से यह कथन स्पष्ट होगा।

(४) **शिलाओ की सरचना तथा जलवायु सम्बन्धी प्रतिकारक**—कठोर शिलाओ के अपक्षरण मे तापक्रम के विभेदन, ओस और सन्धियाँ (Joints) भी वायु की सहायता करते है। सन्धियो मे भरे हुए ओसकण जब तापक्रम के क्षीण होने से घनीभूत होते है, तब उनका आयतन बढ जाता है, जिससे सन्धियाँ अधिक चौडी हो जाती है और कभी-कभी शिलाये खण्डित हो जाती है।

टूटे हुए पत्थर के टुकडो को वायु उडा ले जाती है। इस प्रकार कठोर शिला का स्तर नष्ट होता रहता है और कालान्तर मे नीचे की कोमल शिला के
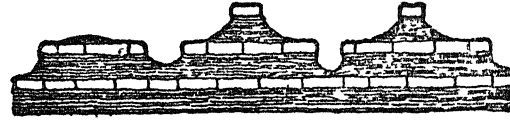
चित्र ६८—वायु अपक्षरण डे शिलाओ की सरचना का प्रभाव

स्तम्भो के ऊपर केवल उनकी टोपियाँ शेष रह जाती है। धीरे-धीरे ये भी नष्ट हो जाती है और नीचे की कठोर शिला का दूसरा स्तर प्रकट हो जाता है ऐसे प्रदेशो मे जहाँ कठोर और कोमल शिलाये एकान्तर पर पाई जाती है, अपक्षरण का यही क्रम चला करता है। चित्र ६८ से यह कथन स्पष्ट होगा।

वायु और जल द्वारा सम्पन्न अपक्षरण की तुलनात्मक मात्रा के विषय मे विद्वानो मे मतभेद है। कुछ विद्वानो का यह कहना है कि मरुस्थल तक में वायु की अपेक्षा जल द्वारा अपक्षरण अधिक होता है। सभव है, यह उक्ति ऊँचे प्रदेशो के लिये यथार्थ हो, किन्तु निचले क्षेत्रो में वायु का प्रभाव अधिक होता है।

ऐसे प्रदेशो मे जिनमे अपक्षरण की मात्रा अधिक होती है, किन्तु संचयन अपेक्षाकृत कम होता है, धरातल पर नग्न अथवा अनावृत शिलास्तर प्रकट हो जाते है, जिससे वह प्रदेश पथरीले मरुस्थल मे परिणत हो जाता है ।

वायु के अपक्षरण के तीन अग है—(१) उठान (Deflation) (२) अपघर्षण (Abrasion) तथा (३) साधन-नाश (Atrition)। वायु द्वारा धूलि कणो का उठा ले जाना ही उठाना (Deflation) है। इसकी विस्तृत विवेचना परिवाहन शीर्षक के अन्तर्गत की गई है। उडते हुए धूलि-कणो से जो कटाव अथवा अपक्षरण होता है, उसे अपघर्षण (Abrasion) कहते है। कालान्तर मे, वायु के अपक्षरण मे औजार का कार्य करने वाले धूलि-कण स्वय घिसकर सूक्ष्म हो जाते है। यही साधन-नाश (Atrition) है।

३ परिवाहन (Transportation)

वायु रेत और धूलि के कणो को एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर ले जाती है। सूक्ष्म और हल्के कण हवा मे लटकते रहते है और उसी अवस्था मे परिवाहित होते है। भारी आकार के कण धरातल पर लुढकते चलते है। मध्यवर्ती आकार एव भार के कण कभी हवा मे उडते हुए चलते है और कभी धरातल पर लुढकते हुए। आँधियो मे फस जाने से कभी कभी बडे आकार के पत्थर भी हवा मे उडते है, किन्तु आँधी के समाप्त होते ही वे धरातल पर गिर पडते है और वायु के अनुसार लुढकते हुए चलते है। इस प्रकार के कण न जाने कितनी बार हवा मे उडते है और कितनी बार धरातल पर लुढकते है।

भारी कणो को प्रभावित न करके सूक्ष्म कणो का वायु द्वारा उडा ले जाना 'उठान' (Deflation) कहलाता है। यह क्रिया जलवायु के प्रत्येक कटिबन्ध मे होती है, किन्तु मरुस्थलो मे यह विशेष उल्लेखनीय है। पेट्री ने आगणन किया है कि पिछले २६०० वर्षो मे नील नदी के डेल्टा से वायु द्वारा कम से कम ८ फुट मोटा स्तर उठाया जा चुका है।

अर्ध-मरुस्थलीय प्रदेशो मे वायु के परिवाहन से गड्ढे और झीले बन जाती है। इस प्रकार एक बडा गड्ढा सयुक्त राष्ट्र अमेरिका के व्योमिग प्रदेश मे बन गया है। यह ९ मील लम्बा, ३ मील चौडा व ३०० फुट गहरा है। इसे 'बडा खोखला' (Big Hollow) कहते है। इसके अध्ययन से विदित होता है कि इस दशा मे कम से कम १० अरब टन रेत और धूल का परिवाहन हुआ है। उठान की क्रिया (Deflation) जुते हुए खेतो और कछारी मैदानो मे विशेष रूप से होती है क्योकि ऐसे क्षेत्रो मे सूक्ष्म आकार के असम्बद्ध कण ऊपर रहते है।

वायु द्वारा प्रति वर्ष कितना पदार्थ अपक्षरित और परिवाहित होता है— इसका अभी तक सही अनुमान नही लगाया जा सका है । इसमे सन्देह नही कि यह मात्रा बहुत अधिक होगी। उड्डेन (Udden) ने पश्चिमी देशो मे आने वाली धूलि की आँधियो के अध्ययन मे यह निष्कर्ष निकाला है, कि वे एक वर्ष मे लगभग ८५ करोड टन धूलि को लगभग डेढ हजार मील परिवाहित करती है । छोटे आकार के कण और अधिक दूर तक परिवाहित होते है। सहारा मरुस्थल के रेत के कण दक्षिणी और मध्य योरप तक पहुँच जाते है। कभी-कभी तो वे ब्रिटिश द्वीप समूह तक चले जाते है। सन् १९०३ ई० मे ब्रिटिश द्वीप समूह के विभिन्न भागो मे रक्त वर्ण की जो जलवृष्टि हुई थी— वह अफ्रीका से परिवाहित धूलिकणो के कारण ही थी । आस्ट्रेलिया के धूल के तूफान डेढ हजार मील लम्बा पथ तय करके न्यूजीलैण्ड मे पहुँच जाते है । राजस्थान का मरुस्थल प्रतिवर्ष लगभग १०० वर्गमील आगे बढ रहा है और आगरा और मथुरा जिले उससे बुरी तरह से प्रभावित हो रहे है। ज्वालामुखीय धूलि और भी अधिक दूर तक परिवाहित होती है। इसके दो कारण है— (१) एक तो उसके कण बहुत सूक्ष्म होते है (२) दूसरे उद्गार के समय वह ऊपर उछाल दी जाती है जहाँ धरातल की अपेक्षा वायु का वेग अधिक होता है। क्रैकोटोआ के विस्फोट के सूक्ष्मतम धूलिकणो ने धरातल पर बैठ जाने के पूर्व पृथ्वी की अनेक परिक्रमाये कर ली थी । इसके कुछ धूलिकण तीन वर्ष तक वायुमण्डल मे विचरण करते रहे।

४ निक्षेपण

(Deposition)

वायु द्वारा जो पदार्थ परिवाहित होता है, वह धरातल पर कही न कही सचित अवश्य होता है। कभी-कभी वायु के पथ मे बाधा आ जाने से वह आगे नही बढ पाता। यदि वायु के पथ मे बाधा न हुई तो वह उस समय तक परिवाहित होता रहता है, जब तक वायु का वेग क्षीण नही हो जाता। वायु-वेग के घट जाने से भी ये पदार्थ छूटकर धरातल पर गिर पडता है।

निक्षेपण मे भी एक प्रकार का क्रम होता है । अपेक्षाकृत बडे आकार के पदार्थ पहले सचित होते है। छोटे धूलिकण आगे बढ जाते है। दूरी के साथ-साथ सचित पदार्थ आकार मे सूक्ष्म होते जाते है।

यह तो पूर्व मे उल्लेख हो ही चुका है कि ऐसे प्रदेशो मे जिनमे निक्षेपण की तुलना मे अपक्षरण अधिक होता है पथरीले मरुस्थल अस्तित्व मे आ जाते है। इसके विपरीत ऐसे क्षेत्रो मे जिनमे अपक्षरण से निक्षेपण अधिक होता है, दो अन्य प्रकार के मरुस्थल अस्तित्व मे आ जाते है—(१) बालू के मरुस्थल तथा (२) दोमट (Loam) के मरुस्थल। इनमे अन्तर्वस्तु का भेद दो कारणो से है—(१) मूल शिला की रचना के अन्तर तथा (२) आकार के अनुसार सचित पदार्थो की क्रमिक व्यवस्था। अब हम इनकी विवेचना करेगे।

(१) बालू के मरुस्थल

बालू के मरुस्थल का धरातल विषम होता है। इसमे बालुका-कूटो (Sand-dunes) की श्रृंखलाये पाई जाती है और उनके बीच मे गड्ढे होते है। जब वायु के पथ मे कोई बाधा (जैसे नागफनी की झाडियाँ) आ जाती है, तो परिवाहित पदार्थ उससे टकरा कर वही गिर जाता है। बाधा अथवा अवरोधक के एक ओर बालू के कण इसी प्रकार एकत्र होते रहते है। कालान्तर मे बालू का ढेर इतना ऊँचा हो जाता है कि वह अवरोधक की चोटी तक पहुँच जाता है, और उसके बाद बालू के कण उसके पीछे गिरने लगते है। विकसित बालू का ढेर वायु के पथ मे और भी बडा बाधक बन जाता है और निक्षेपण की क्रिया उस समय तक चलती रहती है, जब तक बालू का ढेर छोटी पहाडी का रूप नही ले लेता। ऐसी पहाड़ी मे वह पार्श्व जिस पर वायु टकराती है मन्द प्रवण होता है और पीछे का ढाल प्रपाती होता है। वायु के प्रवाह के कारण बालू की पहाडी की आकृति अर्ध-चन्द्राकार हो जाती है। बालू के इस प्रकार के निक्षेप को 'बरखन' (Barkhan) की सज्ञा दी गई है।
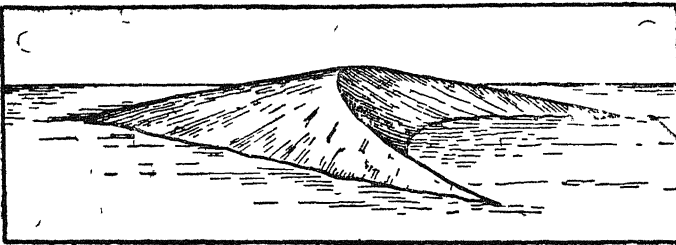
चित्र ६९—बरखन (Barkhan)

यदि वायु की दिशा सदैव एक सी रहती है, तो 'बरखन' उत्तरोत्तर आगे खिसकता रहता है, किन्तु यदि वायु की दिशा मे अन्तर होते रहते है, तो वह अनियमित एव आकृतिहीन हो जाता है। कभी-कभी बहुत से बरखन परस्पर मिल जाते है, जिससे उनकी अर्धचन्द्राकार आकृति नष्ट हो जाती है और वे लम्बे टीलो का रूप ग्रहण कर लेते है। राजस्थान के मरुस्थल मे ऐसे टीले बहुत पाये जाते है।

बालुका-कूटो के गतिशील होने से मरुस्थल भी आगे बढता रहता है। वर्तमान समय मे भारत सरकार के समक्ष यह महत्वपूर्ण सामयिक समस्या प्रस्तुत है कि वह राजस्थान के मरुस्थल की प्रगति को किस प्रकार रोके। उत्तर प्रदेश के आगरा और मथुरा जिले बुरी तरह से प्रभावित हो रहे है और यदि उचित कदम न उठाया गया तो कालान्तर मे समस्त उत्तर प्रदेश मरुस्थल में परिणत हो जायगा।

(२) लौयस के मरुस्थल

वायु द्वारा सचित दोमट (Loam) के निक्षेपो को 'लौयस' की सज्ञा दी गई है। इसके कण रेत से छोटे होते है किन्तु मृत्तिका (Clay) से बडे। इसका रग पीला अथवा हल्का भूरा होता है। उगलियो से दबाने से यह आटे की भाति पिस जाता है और हाथ मे चिपक जाता है। यदि किसी पानी के बर्तन मे लौयस डाल दी जाय, तो वह घुल जाती है। वेध्य (Permeable) होने के कारण यह वर्षाजल को सोख लेती है। यह धरातल की विषमताओ को ढके रहती है और गड्ढो मे इसकी मोटाई काफी होती है। चूने के पत्थर के सदृश इसमे भी लम्बवत् ढाल पाये जाते है।

अमरीका, योरप और मध्य एशिया मे लौयस के क्षेत्र मरुस्थल-प्रदेश की सीमा के बाहर भी पाये जाते है। वे ऐसे स्थलो मे भी पाये जाते है, जहाँ यथेष्ट वर्षा होती है। लौयस के निक्षेपो मे जानवरो के अवशेष पाये गये है, जिनसे विदित होता है कि जब उसका निर्माण हुआ, तब जलवायु वर्तमान काल की अपेक्षा अधिक शुष्क थी।

एशिया मे 'लौयस' का विस्तार लगभग २ अरब ३० हजार वर्ग मील है। इसका अधिकाँश भाग चीन मे पाया जाता है। यहाँ पर इसकी मोटाई सैकडो फुट से लेकर हजारो फुट तक है। सयुक्त राष्ट्र अमरीका के पश्चिमी भाग में पाया जाने वाला लौयस का आवरण भी काफी मोटा है। इसके अतिरिक्त

लौयस के निक्षेप अलास्का, जर्मनी, और फ्रास मे भी पाये जाते है। इन प्रदेशो मे मरुस्थल नही है और ऐसा अनुमान किया जाता है, कि हिमानीकृत बालू के परिवाहन से वे अस्तित्व मे आये है।

परीक्षाओं में पूछे गये प्रश्न

1. Discuss fully the characteristics of wind erosion. (Allahabad M. A. 1950).

2. How does the work of wind compare and and contrast with that of running water (Banaras B. A. and B Sc. 1949).

3. Write notes on—
   - (a) Barkhan. (Agra B A. 1953 & '55).
   - (b) Dunes. (BanarasB.A. & B.Sc. 1953).
   - (c) Canyon. (U. P. Inter. 1947)
   - (d) Loess. (Agra B.A. 1952; U.P. Inter. '36 & '43).
   - (e) Desert Scenery. (Agra B. A. 1949 and 1951; Ajmer Inter. 1952).
   - (f) Wind as denuding agent. (Ajmer Inter. 1951).

———

नवम् परिच्छेद

भूमिगत जल

(UNDERGROUND WATER)

१ भूमिगत जल का उद्गम

पृथ्वी के धरातल पर गिरने वाला वर्षा का जल तीन भागो मे विभाजित हो जाता है—

(१) कुछ अश नदी-नालो द्वारा बह जाता है।

(२) कुछ अश वाष्पीकरण (Evoporation) द्वारा वायुमण्डल मे पुन लौट जाता है।

और (३) कुछ अश पृथ्वी सोख लेती है। वर्षा-जल का यह भाग भूपर्पटी के ऊपरी स्तर मे च्यवित होकर 'भूमिगत जल' बन जाता है।

२ जल-पटल (Water Table)

भूमिगत जल के सन्दर्भ मे शिलाओ के दो भेद किये जा सकते है :—

(१) भेद्य शिलाये (Pervious Rocks)—वे शिलाये है, जिनमे पानी प्रवेश कर सकता है।

(२) अभेद्य शिलाये (Impervious Rocks)—वे शिलाये है, जिनमे पानी का प्रवेश सभव नही है।

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि भेद्य शिला (Pervious Rock) और रन्ध्री शिला (Porous Rock) मे अन्तर है। प्राय मणिभीय शिलाओ (Crystalline Rocks) के मणिभ अन्त पाशबद्ध (Interlocked) होते है, जिससे उनमे तनिक भी रन्ध्रता (Porosity) नही होती, किन्तु कभी-कभी उनमे सन्धियाँ (Joints) पाई जाती है, जिनमे जलपारण सभव होता है। अन्य शब्दो मे ऐसी शिलाये रन्ध्री (Porous) न होते हुए भी भेद्य (Pervious) है। इसके विपरीत बहुत सी मृण्मय शिलाये (Argillaceous Rocks) स्पष्टत रन्ध्री (Porous) होते हुए भी अभेद्य (Impervious) होती है क्योकि उनके रन्ध्र (Pores)

इतने सूक्ष्म होते है कि उनमे जल का प्रवेश सभव नही होता। इसके अतिरिक्त तल-आतति (Surface Tension) भी जलपारण मे बाधक होती है। ऐसी शिलाओ को जिनमे जल का पारण सभव है और जो जल को धारण कर सकती है हम 'जलभरा' (Aquifer) कहते है।

गहराई के साथ दबाव बढता जाता है, जिससे भूपृष्ठ के अतिशय नीचे की शिलाओ के रन्ध्र बन्द हो जाते है। इसके अतिरिक्त भेद्य शिलाओ के नीचे प्राय अभेद्य शिलाये पाई जाती है। इन कारणो से पृथ्वी द्वारा सोखा हुआ जल अनिश्चित गहराई तक नही पहुँचता। च्यवित जल की निचली सीमा के ऊपर शिलाओं का कुछ भाग जल से सतृप्त (Saturated) रहता है। इस सतृप्ति (Saturation) के ऊपरी समतल को हम जल-पटल
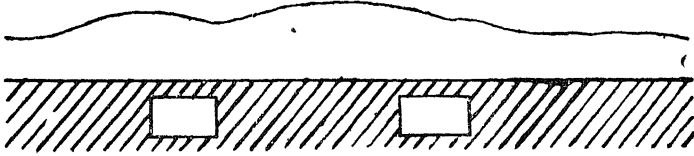
चित्र ७०—जल-पटल (Water Table)

(इस चित्र मे आडी रेखा वाला भाग जल द्वारा सतृप्त स्तर का द्योतक है और उसकी ऊपरी सीमा जल-पटल प्रदर्शित करती है)।

(Water Table) कहते है। जल पटल धरातल का स्पर्श कर सकता है, किन्तु प्राय उससे कुछ फुट नीचे ही रहता है। जब कुंआ खोदा जाता है तब उसमे जल-पटल तक पानी भर जाता है।

यदि सभी शिलाओ मे रन्ध्र (Pore), सन्धियाँ (Joints), विभाजक समतल (Divisional Planes) तथा जलपारण के अन्य साधन समान रूप से पाये जाते, तो भूपृष्ठ के सभी भागो मे समान मात्रा में पानी नीचे च्यवित होता। ऐसी दशा मे जल पटल-पटल की (Table) भाति क्षैतिज होता। किन्तु वास्तविकता यह नही है। कही पानी कम च्यवित होता है, कही अधिक। इसके निम्नलिखित कारण है :—

(१) रन्ध्रो की सख्या और आकार मे विभेदन—

(२) सन्धियो और विभाजक समतलो की सख्या और आकार मे विभेदन।

(३) वर्षा मे विभेदन।

अतएव, जल-पटल नाम अशुद्ध है।

उपर्युक्त विभेदनो' के कारण बहुधा दो प्रकार के क्षेत्र अस्तित्व में आ जाते हैं—(१) एक तो वे जिनमे भूमिगत जल की बहुलता होती है और (२) दूसरे वे जिनमे भूमिगत जल अपेक्षाकृत कम मात्रा मे होता है। यह प्राकृतिक नियम है कि जल सदैव ऊँचे समतल से नीचे समतल की ओर प्रवाहित होता है। पृथ्वी के नीचे भी भूमिगत जल ऊँचे समपटल से नीचे समपटल की ओर प्रवाहित होता है।

३ जल- संचयन को प्रभावित करने वाले प्रतिकारक

जल-सचयन को निम्नलिखित दो प्रतिकारक प्रभावित करते हैं —
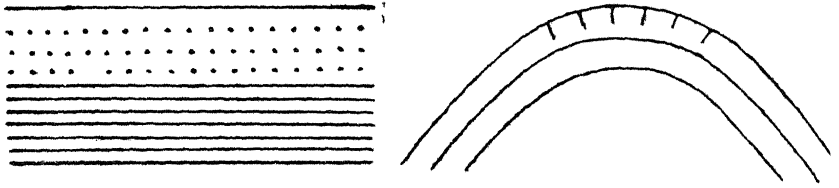
चित्र ७१—दबाव का प्रभाव   चित्र ७२—सरचना का प्रभाव

(१) **दबाव**— ऊपर की शिलाओ के दबाव से कभी-कभी नीचे की शिलाओ के रन्ध्र बन्द हो जाते है।

(२) **भौमिकीय**—सरचना (Geological Structuse)—यदि भौमिकीय सरचना चाप सदृश हुई तो शिलाओ के मध्यवर्ती अक्ष पर आतति (Tension) के कारण विदर (Fisssures) उत्पन्न हो जाते हैं। (चित्र ७२)

इसके विपरीत यदि भौमिकीय सरचना द्रोणी सदृश हुई तो सन्धियाँ सिकुड जाती है।

४ जलपटल का भौम्याकृति और ऋतुओं से सम्बन्ध

जैसा कि चित्र ७३ से स्पष्ट है जलपटल समोच्च रेखाओ के अनुरूप होते है।

यहाँ पर भेद्य टोपी के निचले सिरे पर निर्झर विद्यमान है।

जल-पटल ऋतुओ के अनुसार ऊँचा-नीचा होता रहता है अर्थात् गर्मियो मे वह नीचे चला जाता है और वर्षा ऋतु मे ऊपर उठ जाता है। किन्तु एक निश्चित सीमा से नीचे वह कभी नही जाता। इस सीमा को सतृप्ति का स्थायी

समतल (Permanent Level of Saturation) कहते हैं।
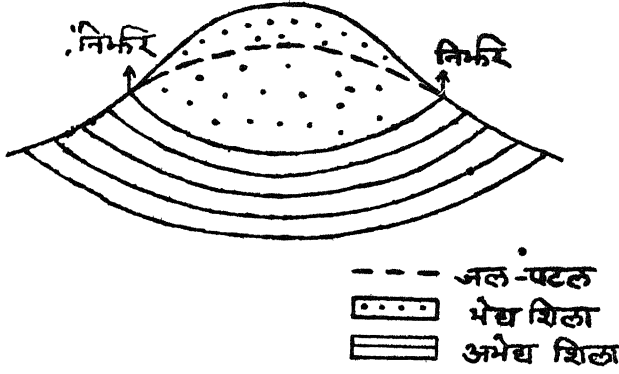
चित्र ७३—जलपटल का भौम्याकृति से सम्बन्ध

जलपटल के उच्चावचन (Fluctuations) का प्रभाव कुँओ और निर्झरो के जल की मात्रा पर पडता है। यदि कोई कुँआ खोदा जाता है और उसकी गहराई जलपटल के वर्षा-ऋतु के समतल से थोडे ही नीचे होती है, तो गर्मियो मे वह सूख जाता है। इसके विपरीत सतृप्ति के स्थायी समतल से गहरा कुँआ वर्ष भर पानी से भरा रहता है।

५ पातालतोड़ कुँआ और निर्झर

(Artesian Wells and Springs)

(१) पातालतोड़ कुआँ

यदि किसी स्थान मे भेद्य और अभेद्य शिलाओ की व्यवस्था चित्र ७४ के अनुसार हो तो स्पष्ट है कि वर्षा का जल भेद्य शिला मे एकत्र होता रहेगा और यदि चित्रानुसार सछिद्रण (Bore-hole) किया जावे, तो वहाँ पर पातालतोड़ कुँए के रूप मे जल ऊपर की ओर प्रवाहित होगा।
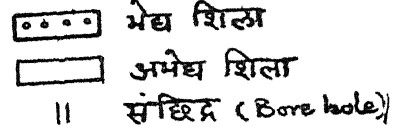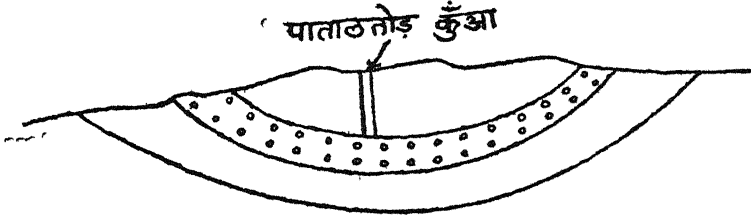
चित्र ७४—पातालतोड कुआँ

(२) निर्झर

चित्र ७५ मे ऐसे स्थानो पर निर्झरो की उत्पत्ति, जहाँ पर जल-पटल भूपृष्ठ का स्पर्श करता है, स्वय स्पष्ट है। अतएव उस पर प्रकाश डालने की कोई आवश्यकता नही है।

६ भूमिगत जल का भौगोलिक कार्य

(१) अपक्षरण

भूमिगत जल बडे ही मन्द वेग से बहता है। इस कारण उससे यान्त्रिक अपक्षरण बहुत कम होता है। हाँ, परोक्ष रूप से इसके कारण स्थल-सर्पण (Land Slides) हो जाते है, जिनमे कुछ न कुछ अपक्षरण तथा निक्षे-

चित्र ७५—निर्झरो (Shrings) की उत्पत्ति
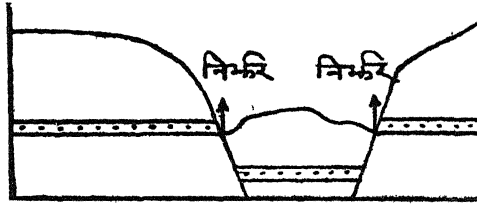
पण अवश्य होता है। जब भूमि काफी झुकी होती है और उसका ऊपरी भाग पानी से सतृप्त होता है तब स्थल-सर्पण बहुत होते है। वास्तव मे ऐसी

दशा मे भूमिगत जल उपस्नेहन पदार्थ (Lubricating Substance) का कार्य करता है अर्थात् उससे ऊपर के शिलाखण्ड के सर्पण मे सुविधा होती है। पर्वत-पदो पर स्थल-सर्पण द्वारा जो पत्थरो के टुकडे और मिट्टी आदि एकत्र हो जाती है--उसे हम शैलखण्ड (Talus) अथवा सपात (Scree) कहते है। जल से सतृप्त भूमि का इस प्रकार नीचे की ओर खिसकना मृदा-प्रवाह (Solifluction) कहलाता है। भूमिगत नदी-नालो द्वारा थोडा-बहुत यॉत्रिक अपक्षरण भी होता है। इसकी विवेचना 'कार्स्ट-भूदृश्य' के प्रकरण मे हो चुकी है।

घोल (Solution)

यद्यपि भूमिगत जल से यॉत्रिक अपक्षरण बहुत कम होता है, तथापि रासायनिक अपक्षरण की दृष्टि से वह बहुत महत्वपूर्ण है। विशेषकर घोल द्वारा उससे बहुत अपक्षरण होता है। यह कार्य चूने के पत्थर के क्षेत्र मे विशेष उल्लेखनीय है। जब पानी मे कार्बन डाइ-आक्साइड घुली होती है, तब उसमे चूने का पत्थर घुल जाता है। वर्षा का जल जब धरातल पर गिरता है, तब वायुमण्डल की कार्बन डाइ-आक्साइड उसमे घुल जाती है। फल यह होता है कि चूने के पत्थर के प्रदेश मे घोल के फलस्वरूप एक विशेष प्रकार का भू- दृश्य उपस्थित हो जाता है। इसकी विस्तृत विवेचना कार्स्ट-भूदृश्य शीर्षक प्रकरण मे की गई है।

शिलाओ के भूमिगत घोल से निम्नलिखित रूपवैय अस्तित्व मे आजाते है --
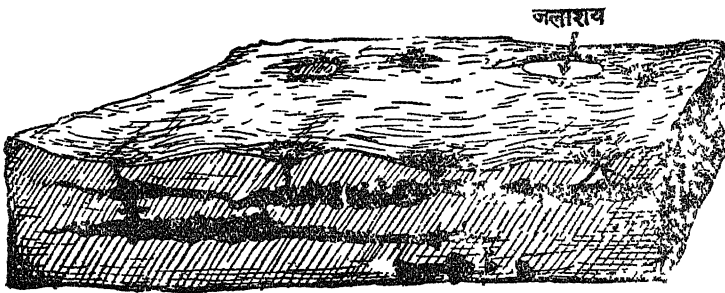
चित्र ७६--कार्स्ट भूदृश्य

(१) निगिर छिद्र (Swallow holes)

(२) सकुण्ड (Uvala)

(३) राजकुण्ड (Polje)
(४) चूर्ण कूट (Hum)
(५) निसुरंगा (Ponor)
(६) भूमिगत कन्दरायें (Underground caves)
(७) आश्चुनाश्म एवं निश्चुनाश्म (Stalactites and Stalagmites)
(८) अन्धी घाटियाँ (Blind Valleys)
(९) प्राकृतिक सेतु (Natural Bridges)

इनकी विस्तृत विवेचना 'कार्स्ट भूदृश्य' के प्रकरण मे की गई है।

(२) परिवाहन (Transportation)

भूमिगत जल घुले हुए पदार्थों को अपने साथ बहा ले जाता है और अन्त मे कही न कही उनका निक्षेपण भी कर देता है। कभी-कभी भूमिगत स्रोतो द्वारा वे सागरो अथवा झीलो मे पहुच जाते है। घुले हुए पदार्थों का कुछ भाग अवसादो के अन्तराल मे जम जाता है, जिससे वे परस्पर चिपक जाते है। तलज शिलाओं के बनने मे इस क्रिया का बडा महत्व है। सबद्ध करने वाले पदार्थों मे कैलशियम कार्बोनेट (Calcium Carbonate), सिलिका (Silicon Dioxide) तथा फैरिक ऑक्साइड (Ferric Oxide) प्रमुख है।

(३) निक्षेपण
(Deposition)

अवसादो के अन्तराल मे होने वाले निक्षेपण का उल्लेख तो ऊपर हो ही चुका है। इनके अतिरिक्त भी निक्षेपण द्वारा अनेक नवीन रूप निर्मित होते है। निक्षेपण निम्नलिखित कारणो से होता है--

(१) कार्बन डाइ आक्साइड और अन्य घुली हुई गैसो के निकल जाने से—जब ये गैसे विद्यमान होती है, तब घुलनशीलता बढ जाती है। इनके निकल जाने से निक्षेपण होता है।

(२) वाष्पीकरण से घोल का सकेन्द्रण (Concentration) बढ जाता है जिससे पदार्थ का कुछ भाग घोल से निकलकर निक्षेपित हो जाता है।

(३) तापक्रम का घटना—तापक्रम के बढ जाने से घुलनशीलता बढ जाती

है और तापक्रम के घट जाने से घुलनशीलता घट जाती है। अतएव, तापक्रम के क्षीण होने पर निक्षेपण होना स्वाभाविक ही है।

(४) दबाव का घटना——वायुभार के घट जाने से भी निक्षेप हो जाते हैं।

(५) रासायनिक प्रक्रियायें——ये अनेक प्रकार की होती हैं और कभी-कभी इनसे निक्षेप बन जाते हैं।

भूमिगत जल द्वारा सम्पन्न निक्षेपण के कुछ रूपधेय निम्नांकित हैं :——

(१) **आश्चुताश्म** तथा **निश्चुताश्म** (Stalactites and Stalagmites) चूने के पत्थर के प्रदेश में पाई जाने वाली कन्दराओं में ऊपर से च्यवित होने वाले चूने के घोल की बूँदों के सूख जाने से कभी-कभी दो प्रकार के स्तम्भ बन जाते हैं। जो स्तम्भ छत से लटकता रहता है उसे आश्चुताश्म
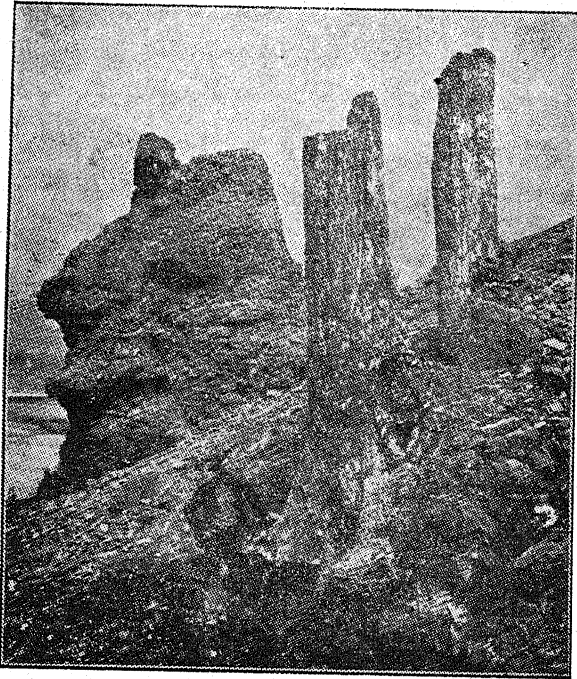
चित्र ७७——अश्मीभूत काष्ठ (Petrified wood)

(Stalactite) कहते है और जो नीचे भूमि पर स्थापित हो जाता है, उसे निश्चुताश्म (Stalagmite) कहते है। इसे पृष्ठ ९ मे प्रदर्शित किया गया है।

(२) **गुहाग्रन्थि** (Geode)—कभी-कभी शिलाओ मे विद्यमान गड्ढो मे भूमिगत जल भर जाता है। इस निक्षेपण का एक विशेष रूप होता है, उदाहरणार्थ सैकजा (Silica) निक्षेप के मणिभ कभी-कभी कंघा के दाँत जैसे प्रतीत होते है। इन्हे हम गुहाग्रन्थि (Geode) कहते है।

(३) **प्रतिस्थापन** (Replacement)—कभी-कभी जब भूमिगत जल के घोल मे अन्य पदार्थ घुलते है, तब उसी मात्रा मे घुले हुए पदार्थ अलग हो जाते है और उनका निक्षेप बन जाता है। प्रतिस्थापन की यह क्रिया अणु प्रति अणु (Molecule by molecule) होती है जिसमे घुले हुए पदार्थ के रूप मे कोई अन्तर नही होता, केवल सरचना बदल जाती है। इस क्रिया द्वारा कभी-कभी पेडा के तने शिला मे परिणत हो गए है, जिन्हे हम अश्मीभूत काष्ठ (Petrified Wood) कहते है।

(४) **संघनन** (Concretions)—किसी ठोस कण को केन्द्र मानकर उसके चारो ओर निक्षेप होने से सघनन बन जाते है। उदाहरण के लिये भारतवर्ष मे पाया जाने वाला ककड। इसमे केन्द्रीय कण के चारो ओर कैलशियम कार्बोनेट सचित होता है ।

परीक्षाओं में पूछे गये प्रश्न :—

1. Give a graphic account of the work of Underground Water with regard to erosion trans portation and deposition. (Agra B. A. 1952).

2. Give an account of Underground Water and its work with regard to erosion, transportation and deposition.

(Agra B A. 1947 and Ajmer Inter. 1952).

3. Describe the work of Underground Water. Explain the formation of different types of springs.
(Nagpur Inter. Supple. 1951

4 Write notes on—

(a) Water Table (Allahabad B A. '50 & '53).

(b) Petrification (Allahabad B. A. 1951)

(c) Underground Water.
(Ajmer Inter 1950).

(d) Artesian Well.
(Nagpur Inter Supple 1950 .

(e) Springs. (Agra B A. 1954).

दशम् परिच्छेद

अपक्षरण चक्र

(CYCLE OF EROSION)

१. स्थलखण्ड के जीवन की अवस्थायें

जिस प्रकार मनुष्य के जीवन मे विभिन्न अवस्थाये होती है, ठीक उसी प्रकार प्रत्येक स्थलखण्ड के जीवन मे भी अवस्थाये होती है। जब हम किसी स्थलखण्ड का क्रमबद्ध अध्ययन करते हैं तब हमे विदित होता है, कि उसके रूप मे क्रमश परिवर्तन होते रहते है। यह कथन एक उदाहरण से स्पष्ट होगा। मान लीजिये महाद्वीपजनक बलो के कारण सागर-नितल का कुछ भाग ऊपर उठ आता है। आरम्भ मे इसका धरातल प्राय समतल होगा और उसमे विषमताये बहुत कम होगी। धीरे-धीरे उसके धरातल पर विभिन्न प्राकृतिक अभिकर्ताओ का प्रभाव पडने लगेगा—उदाहरणार्थ वर्षा के कारण उसमे प्रवाह-व्यवस्था (Drainage system) स्थापित हो जायगी। फिर धीरे-धीरे नदियो की घाटियाँ गहरी होना आरम्भ होगी। एक निश्चित अवधि के अन्त मे नदियो के लम्बवत अपक्षरण की क्रिया समाप्त हो जायगी
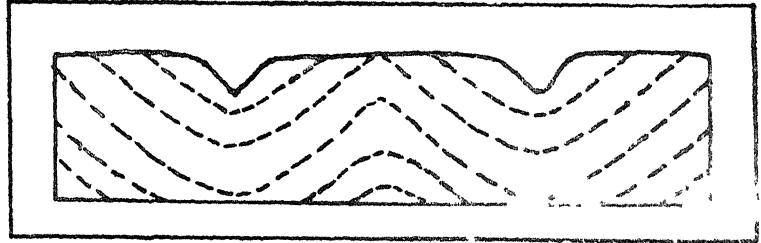
चित्र ७८—अपक्षरण-चक्र का विकास

और पार्श्विक अपक्षरण बढने लगेगा। इसका प्रभाव घाटियो के मध्य मे स्थित उपरिष्ट भागो पर पडेगा और उनकी ऊँचाई क्रमश क्षीण होने लगेगी

अन्त मे, पर्वत घिसकर प्राय समतल हो जायेगे। पर्वतो के इस अन्तिम अवस्था के रूप को हम 'समतलप्राय' (Peneplain) कहते है।

उपर्युक्त परिच्छेद मे एक विशिष्ट स्थल-खण्ड के जीवन के इतिहास की विभिन्न क्रमिक अवस्थाओ का दिग्दर्शन कराया गया है। यही अपक्षरण-चक्र (Cycle of Erosion) का सिद्धान्त है। आरम्भ मे जब स्थलखण्ड समुद्र के गर्भ से ऊपर उठता है, तब उसमे न्यूनतम विषमताये होती है, जो उसकी युवावस्था प्रदर्शित करती है। जब विषमताये बढते-बढते अधिकतम
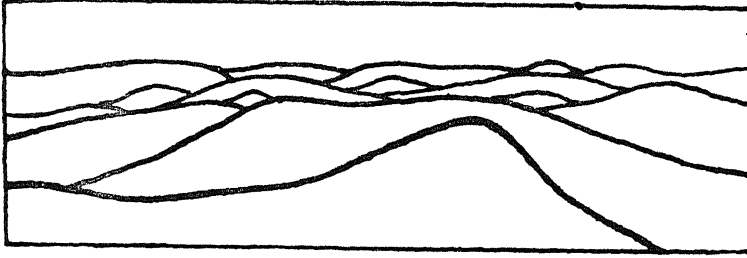
चित्र ७९—स्थलखण्ड की प्रौढावस्था

हो जाती है, तब हम यह कहते है कि स्थलखण्ड की प्रौढावस्था (Mature stage) आ गई। प्रौढावस्था के अनन्तर वृद्धावस्था आती है। वृद्धावस्था मे विषमताये पुन क्षीण हो जाती है।

निम्नाँकित तालिका से उपर्युक्त कथन और भी स्पष्ट होगा—

१ आरम्भिक रूप	इसमे विषमताये न्यूनतम होती है	युवावस्था (Youth)
२ अनुक्रमिक रूप	इसमे विषमताये विकसित रूप मे होती है।	प्रौढावस्था (Maturity)
३ अन्तिम रूप	इसमे विषमताये पुन क्षीण हो जाती है।	वृद्धावस्था (Old-age)

चित्र ८० मे नदी के जीवन की विभिन्न अवस्थाये प्रदर्शित की गई है। जब हम किसी भूखण्ड अथवा भूदृश्य का शास्त्रीय अध्ययन करते है, तब हमे यह जानना परम आवश्यक होता है, कि उसकी अवस्था क्या है। विकास-क्रम की अवस्था के अतिरिक्त हमे दो बातो का ज्ञान और होना चाहिये --(१) सरचना तथा (२) अपक्षरण का अभिकर्ता। विशेष प्रकार की शिलाओ मे विशेष प्रकार का दृश्य विकसित होता है। इस कथन की पुष्टि कार्स्ट-भूदृश्य
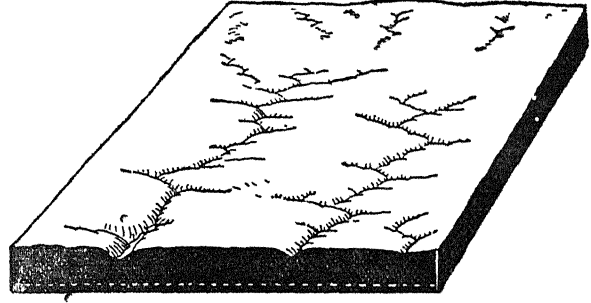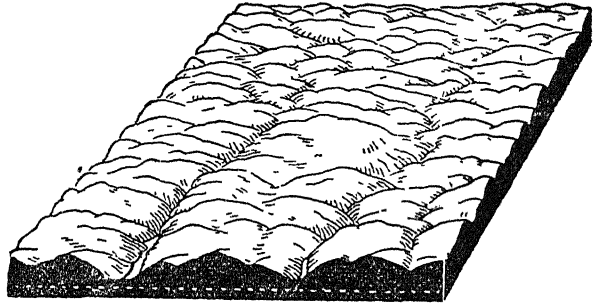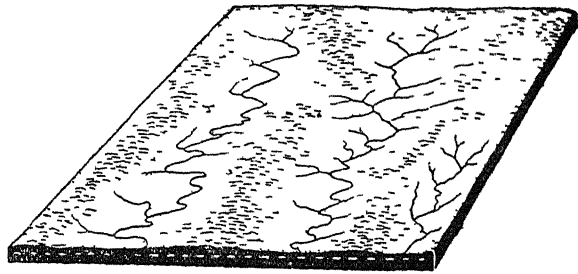
चित्र ८०—स्थलखड के जीवन की विभिन्न अवस्थाये

के अध्ययन से होती है। कार्स्ट-भूदृश्य का विकास केवल चूने के पत्थर के क्षेत्र मे होता है। चूने के पत्थर मे दो उल्लेखनीय गुण होते है—(१) एक तो उसमे लम्बवत् सन्धियाँ होती है और (२) दूसरे वह ऐसे जल मे जिसमे कार्बन डाइऑक्साइड घुली हो, घुल जाता है। इन्ही दोनो गुणो के कारण
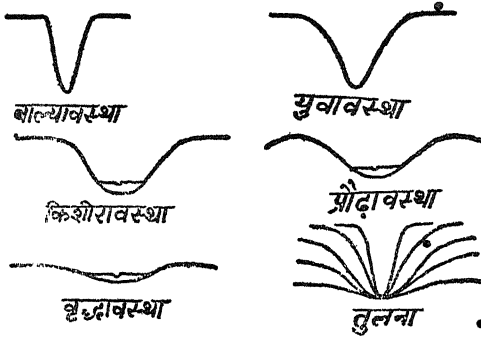
चित्र ८१—नदी के जीवन की विभिन्न अवस्थाये

चूने के पत्थर के क्षेत्र मे कार्स्ट-भूदृश्य विकसित होता है। इसकी विस्तृत विवेचना बारहवे प्रकरण मे की गई है।

दृश्य के विकास मे अपक्षरण के अभिकर्ता का भी विशेष प्रभाव पडता है। उदाहरणार्थ, हिमनदियो के प्रकरण मे हमने यह ज्ञात किया कि हिमनदियो से प्रभावित प्रदेशो मे पाई जाने वाली घाटियाँ U आकृति की होती है और पर्वत नुकीले होते है। अतएव हम किसी दृश्य को देखकर यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि उसका निर्माण किस अभिकर्ता की क्रिया से हुआ है।

सक्षेप मे किसी दृश्य का विकास मुख्यत तीन प्रतिकारको के अनुसार होता है—(१) सरचना (Structure) (२) अपक्षरण अथवा निक्षेपण का अभिकर्ता तथा (३) विकास-क्रम की अवस्था। अतएव डैविस की यह उक्ति उचित है—'भूदृश्य सरचना, प्रक्रिया एव अवस्था का सयुक्त फल है।'[1]

२. भौम्याकारिकी (Geomorphology) में अपक्षरण चक्र की महत्ता

पॉवेल, गिलबर्ट प्रभृति विद्वानो ने अपक्षरण-चक्र के विषय मे मौलिक विचार प्रकट किये थे, किन्तु उसे व्यवस्थित रूप देने का श्रेय डैविस ही को है। भौम्याकारिकी जगत मे डैविस और उनके अनुयायिओ की देन अमूल्य है। इस सम्बन्ध मे इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि अपक्षरण-चक्र प्राकृतिक भूगोल के आधुनिक अध्ययन की आधार-शिला है।

---

1 'Landscape is a function of structure, process and stage' —(Davis)

'अपक्षरण-चक्र' के सिद्धान्त ने मृत पदार्थों में नवीन जीवन फूंक दिया है और नीरस विषय को सरस कर दिया है। अब हम जब किसी भूखण्ड को देखते हैं तो हमारे हृदय में यह भावना उठती है कि उसके जीवन का विकास हुआ है और हो रहा है। अभी तक हम लोग स्थलखण्डों का अध्ययन संरचना के आधार पर करते थे। अपक्षरण-चक्र ने हमें नवीन आधार प्रदान किया है। स्थलखण्डो का वर्गीकरण और अध्ययन अब हम जननिक (Genetic) आधार पर करते हैं। भूगोल को अपक्षरण-चक्र की अवधारणा की एक बहु-मूल्य देन यह भी है कि उसने भूगोल-वेत्ता के कार्य को बहुत संक्षिप्त कर दिया है। इस अवधारणा के प्रस्तुतीकरण के पूर्व हमें जब किसी स्थलखण्ड का वर्णन करना पडता था, तब हम उसके प्रत्येक अंग का चित्रांकन करते थे। अब यदि हमें केवल इतना बतला दिया जाता है, कि अमुक प्रदेश की जरावस्था है, तो हम उसके विषय मे सब कुछ जान लेते हैं।

३. 'अपक्षरण-चक्र' की बाधायें

अपक्षरण-चक्र के क्रमिक विकास में कभी-कभी निम्नलिखित कारणों से बाधा पड जाती है —

(१) भूपर्पटी की गतियाँ

(२) ज्वालामुखीय प्रक्रिया

(३) जलवायु के परिवर्तन

(१) भूपर्पटी की गतियाँ

यदि भूपर्पटी की गति के कारण कोई क्षेत्र नीचे धँस जाता है, जिससे उसका धरातल अपने आधार-तल (Base Level) के निकट पहुँच जाता है, तो उससे भविष्य में सम्पन्न होने वाले अपक्षरण का कार्य घट जाता है और उसकी अवस्था में अकस्मात् परिवर्तन हो जाता है।
यह कथन निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट होगा—

मान लीजिये किसी नदी की युवावस्था है। इस दशा में वह लम्बवत् अप-क्षरण द्रुत-वेग से करेगी। अब यदि अकस्मात् उसका नितल नीचे धँस जाता है और वह उसके आधार-तल पर पहुँच जाता है, तो उसका लम्ब-वत् अपक्षरण समाप्त हो जाता है। अन्य शब्दों में उसकी वृद्धावस्था आ

जाती है। मानव-जीवन मे भी कभी-कभी इस प्रकार अवस्था के आकस्मिक परिवर्तन हो जाते है। यह देखा गया है कि आकस्मिक तीव्र मानसिक आघात लगने से युवको और युवतियो के बाल सफेद हो गये है, जो वृद्धावस्था का चिह्न है।

इसके विपरीत यदि भूपर्पटी की गति के कारण कोई स्थल-खण्ड अकस्मात ऊपर उठ जाता है, तो उसकी अवस्था घट जाती है। यदि किसी ऐसी नदी का नितल जो आधार-तल पर पहुंच चुकी हो अकस्मात ऊपर उठ जाता है, तो उसके लम्बवत अपक्षरण की क्रिया पुन आरम्भ हो जाती है। अन्य शब्दो मे नदी वृद्धावस्था से पुन युवावस्था मे आ जाती है। मानव-जीवन मे कायाकल्प (Rejuvenation) भी तो इसी प्रकार होता है।

(२) ज्वालामुखी की प्रक्रिया

ज्वालामुखी की प्रक्रिया भी स्थलखण्डो के जीवन को प्रभावित करती है। इस सम्बन्ध मे केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

मान लीजिये कोई नदी वृद्धावस्था मे है अर्थात् उसका नितल आधार-तल के निकट पहुंच चुका है। अब ज्वालामुखी के उद्‌गार से उसकी घाटी पट जाती है और कालान्तर मे लावा के निक्षेप पर पूर्वकालीन नदी के पथ के ठीक ऊपर नवीन नदी बहने लगती है। प्रकट है कि इस नवीन नदी मे लम्बवत अपक्षरण द्रुत वेग से होगा क्योंकि उसकी युवावस्था है। इस प्रकार वृद्धा नदी युवती मे परिणत हो जाती है।

३ जलवायु के परिवर्तन

नदी की वृद्धावस्था में उसका लम्बवत् अपक्षरण समाप्त हो जाता है मान लीजिये इस अवस्था के प्राप्त हो जाने पर जलवायु के परिवर्तनो के फलस्वरूप जलवृष्टि की मात्रा बढ जाती है। नदी मे पानी के आयतन के बढ जाने से लम्बवत् अपक्षरण पुन आरम्भ हो जायगा। अन्य शब्दो मे नदी का कायाकल्प हो जायगा अथवा वह वृद्धावस्था से पुन यौवनावस्था मे आ जायगी।

इसी प्रकार जलवायु के अकस्मात शुष्क हो जाने से युवती सरिता की वृद्धावस्था आ सकती है।

४ सामान्य अपक्षरण चक्र का विकास

(Development of Normal Cycle of Erosion)

अपक्षरण का कार्य वायु, हिमानी सागर-जल आदि सभी करते है किन्तु

इनमें सबसे अधिक सामान्य अभिकर्ता बहता हुआ जल है। अतएव, हम बहते हुए जल के 'अपक्षरण-चक्र' को सामान्य अपक्षरण का चक्र (Normal cycle of erosion) कहते हैं।

किसी भी आकृति और संरचना के धरातल में अपक्षरण-चक्र आरम्भ हो सकता है, किन्तु हम विषय के सुगम प्रतिपादन के लिये धरातल का सरलतम रूप लेंगे। ऐसा धरातल समुद्र के गर्भ से ऊपर उठा हुआ मैदान है। इसके पृष्ठ में केवल वे विषमतायें होंगी जो उसके मूल रूप में थी। धीरे-धीरे इस धरातल पर वर्षा आदि के कारण प्रवाह-व्यवस्था (Drainage system) स्थापित होगी। आरम्भ में नदियां पृष्ठ की विषमताओं अथवा पूर्ववर्ती ढाल के अनुरूप प्रवाहित होंगी। इस प्रकार अनुगामी नदियों और घाटियों का विकसित होना अपक्षरण-चक्र की प्रथम अवस्था है।

नदियों के मध्य के उभार जिन्हें अंतराप (Interfluve) कहते हैं आरम्भ में चौड़े होंगे और उनकी चोटी भी विस्तृत होगी। पार्श्विक अपक्षरण के कारण जैसे-जैसे नदियों की घाटियां चौड़ी होती जायेंगी, वैसे-वैसे ये उभार भी
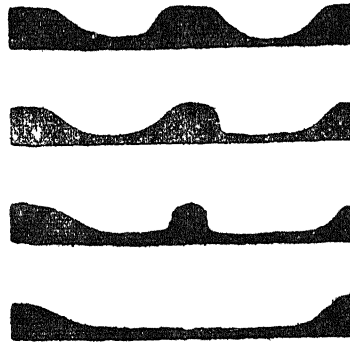
चित्र ८२—अन्तरापों के पतन की विभिन्न अवस्थायें

संकीर्ण होते चले जायेंगे और उनकी चोटियाँ भी संकरी होती चली जायँगी। कालान्तर में, धरातल की आरम्भिक अवस्था के सभी चिह्न लुप्त हो जायँगे। जब ऐसी अवस्था आ जाती है, तब हम यह कहते हैं कि अपक्षरण-चक्र की प्रौढ़ावस्था (Maturity) आ गई। इस अवस्था का जल्दी अथवा देर से आना निम्नांकित प्रतिकारकों पर निर्भर है—

(१) नदियों की पारस्परिक दूरी—यह जितनी कम होगी प्रौढ़ावस्था उतनी ही जल्दी आयगी।

(२) सहायक नदियों का विकास—सहायक नदियाँ जितने वेग से बढ़ेंगी, प्रौढावस्था उतनी ही जल्दी आयगी। सहायक नदियों का विकास जलवायु एवं शिलाओं की संरचना पर निर्भर है। वर्षा के अधिक होने और शिलाओं के कोमल होने से अपेक्षाकृत अधिक सहायक नदियाँ बनती हैं।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है, कि अपक्षरण की प्रौढावस्था और प्रवाह-व्यवस्था की अनुक्रमण-अवस्था एक ही वस्तु नहीं है। प्रवाह-व्यवस्था की अनुक्रमण अवस्था आ जाने का अर्थ यह होता है कि मुख्य एवं सहायक नदियों ने आधार-तल (Base-Level) को प्राप्त कर लिया है। सामान्यतः अपक्षरण-चक्र की प्रौढावस्था में यह कथन सही होता है, किन्तु सदैव नहीं।

अपक्षरण-चक्र की आरम्भिक अवस्था में जलवायु अथवा अन्य कारणों
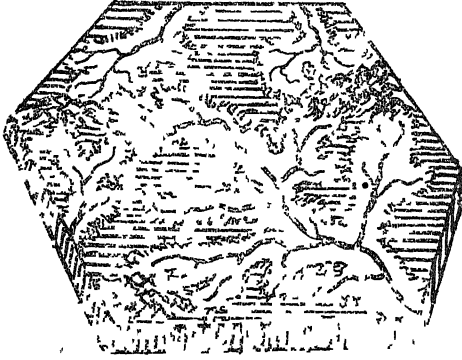
चित्र ८३—समतलप्राय (Peneplain)

से थोड़े बहुत विभेदन हो भी सकते हैं, किन्तु इसकी अन्तिम अवस्था में भूदृश्य सर्वत्र एकसा होता है। घिसते-घिसते पर्वत लगभग समतल हो जाते हैं, उनके ढाल मन्द पड़ जाते हैं और उनमें कठोर शिलाओं के अवशिष्ट भाग टीलों का रूप ग्रहण कर लेते हैं। अपक्षरण-चक्र की अन्तिम अवस्था के धरातल के इस रूप को डेविस ने समतलप्राय (Peneplain) का नाम दिया है। उस पर स्थित टीले अतिसहिष्णु गिरि (Monadnocks) कहलाते हैं।

परीक्षाओं में पूछे गये प्रश्न :—

1. Discuss carefully the idea of geographical cycle as developed by W. M Davis To what ex-

tent is this idea valuable in interpreting river valleys. (Agra B A 1951)

2 Discuss with illustrations the importance of the conception of the normal cycle of erosion in the study of landforms (Agra M. A. 1947).

3 Discuss briefly the principle of the cycle of erosion Point out the importance of the contribution of Davis to the concept of such a cycle

(Allahabad M A 1947).

4. When a river is born, it is old As it grows, it becomes younegr.' Explain the paradox

(Agra B. A. Part 1, 1955)

5 Write notes on—

(a) Peneplain

(U. P Inter. 1935, Nagpur Inter Supple. 1950; Agra B A. Part 1, '55).

(b) Cycle of erosion. (U P. Inter 1945).

(c) Rejuvenated river. (U. P Inter 1949).

(d) Normal cycle of erosion

(Allahabad M A '52, Agra M A '49).

(e) Youthful Drainage.

(Banaras B A and B. Sc. 1950)

———

ग्यारहवां परिच्छेद

भूरूप के विकास में जलवायु का प्रभाव

यह तो पूर्व मे उल्लेख हो ही चुका है कि भूदृश्य• शिलाओ की सरचना, अपक्षरण का अभिकर्ता और भूखण्ड की अवस्था का सयुक्त फल है। इनके अतिरिक्त जलवायु का भी भूदृश्य के विकास मे महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। इस अध्ययन के लिये हम पृथ्वी को निम्नाँकित प्रदेशो मे बाँट लेगे—

(१) विषुवतीय एव मानसूनी प्रदेश—इसमे तापक्रम अधिक रहता है और वर्षा भी बहुत होती है।

(२) उष्णप्रदेशीय शुष्क प्रदेश—इसमे तापक्रम अधिक रहता है किन्तु वर्षा कम होती है।

(३) शीतोष्ण प्रदेश—इसमे तापक्रम और वर्षा दोनो ही न बहुत अधिक होते है और न बहुत कम ही।

(४) ध्रुवीय प्रदेश—इसमे तापक्रम बहुत कम होता है। वर्षा हिमवृष्टि के रूप मे होती है।

(१) विषुवतीय प्रदेश

विषुवतीय प्रदेश मे अत्यधिक वर्षा होती है और वनस्पति भी सुप्रचुर होती है। तापक्रम सदैव ऊँचा रहता है। उष्णता, आर्द्रता और पेड-पौधो एव पत्तियो के सडने से बने अम्लो के कारण शिलाओ का क्षरण वेग से होता है। यही कारण है कि इन प्रदेशो मे भूमि का स्तर, जो क्षरित शिलाओ से बना होता है, काफी मोटा होता है। इन क्षेत्रो के पूर्ण विकसित भूखण्ड जो अधिकतर अनावृत्त होते है बडी शीघ्रता से नष्ट होते है और उनकी नोके घिस कर गोल होने लगती है। वनस्पति के घने आवरण के कारण आबद्ध पदार्थ सरलता से नही हटता और जल प्रवाह की व्यवस्था होते हुए भी पर्वतो के ढाल उन्नतोदर होते है।

(२) उष्ण प्रदेशीय शुष्क प्रदेश

उष्ण प्रदेशीय मरुस्थलो मे जल का अभाव होता है। इन प्रदेशो मे वनस्पति भी नही पाई जाती। पेडो की जडो के कारण ही भूमि के कण परस्पर सम्बद्ध

रहते है। वनस्पति के न होने से वे अबद्ध हो जाते है। अबद्ध शिलाकण सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाये जा सकते है। अतएव इन प्रदेशो मे वायु द्वारा अपक्षरण और परिवाहन बहुत होता है। शिलाये मुख्यत तापक्रम के विभेदन के कारण नष्ट होती है। टूटी हुई शिलाओं के टुकडे नुकीले होते है और पर्वतो का धरातल विषम होता है। वर्षा, वायु और गुरुत्वाकर्षण द्वारा अबद्ध पदार्थ नीचे चला जाता है और गड्ढो मे भर जाता है। उसे समुद्र तक पहुचने के लिये कोई भी साधन सुलभ नही होते क्योकि इन प्रदेशो मे नदियाँ तो होती नही है। अबद्ध शिलाकणो से टीले और निचली पहाडियाँ कभी-कभी पूर्णत ढक जाते है और केवल ऊँचे पहाडो की चोटियाँ ही इनमे अनावृत्त रहती है। तापक्रम के विभेदन के कारण अबद्ध शिलाकण और भी टूटते रहते है और फिर वे वायु द्वारा विस्तृत मैदानो मे बिखरा दिये जाते है। इन प्रदेशो का मुख्य लक्षण अबद्ध शिला- कणो से निर्मित विस्तृत मैदान है, जिनमे अर्ध-चन्द्राकार एव अन्य आकृतियोके बालू के टीले पाये जाते है। इनकी विस्तृत विवेचना 'वायु का कार्य' शीर्षक प्रकरण मे की गई है।

(३) शीतोष्ण प्रदेश

इन प्रदेशो मे जहाँ कही भी सामान्य वर्षा होती है, वहाँ अपक्षरण का अधिकाँश कार्य नदियो द्वारा सपन्न होता है। ऋतुक्षरण मुख्यत दो रीतियो से होताहै (१) यांत्रिक क्रिया—यह पाला अथवा तुषार द्वारा सपन्न होती है। (२) रासायनिक क्रिया अथवा घोल की क्रिया—जब पानी मे कार्बन डाइआक्साइड घुली होती है, तब उसमे चूने का पत्थर सरलता से घुल जाता है। इसके अतिरिक्त अनेक शिलाये घुलनशील होने के कारण योही पानी मे घुल जाती है। जिन क्षेत्रो मे [illegible] है, उनका धरातल विषम हो जाता है और उनमे कटे फटे उच्छैल (Crags.) बहुत पाये जाते है। इसके विपरीत जिन क्षेत्रो मे घोल का कार्य अधिक होता है, उनमे गोल धरातल अस्तित्व मे आ जाता है। दोनो ही दशाओ मे नदियाँ अबद्ध पदार्थ को समुद्र मे बहा ले जाती है। जलप्रवाह के कारण पर्वतो के पार्श्व नतोदर होते है। पर्वतो के शिखर नुकीले और कटे फटे होते है क्योकि वहा तुषार के कारण यांत्रिक अपक्षरण बहुत होता है, दूसरी ओर निचले प्रदेशो मे जहा घोल का कार्य अधिक महत्वपूर्ण होता है, गोल आकृति के टीले अस्तित्व मे आ जाते है।

(४) ध्रुवीय प्रदेश

ध्रुवीय प्रदेश हिमाच्छादित होते है। इनमे ग्रीष्म ऋतु के अतिरिक्त जल का पृष्ठ-प्रवाह कभी नही होता। शिलाओ के क्षरण की क्रिया तापक्रम के विभेदन और पाला के कारण होती है। वनस्पति के अभाव मे पवन द्वारा अनावृतीकरण बहुत होता है। अतएव अनेक दृष्टियो मे इन क्षेत्रो का भूरूप उष्णप्रदेशीय मरुस्थलो से मिलता-जुलता है। उदाहरणार्थ पहाड़ियाँ वैसी ही ढालू होती है और निचले प्रदेशो मे भी वैसे ही अबद्ध पदार्थ के निक्षेप पाये जाते है। भूरूप के विकास मे हिमपात की मात्रा का भी बहुत प्रभाव पड़ता है। यदि हिम वृष्टि अधिक होती है, जैसे ग्रीनलैण्ड मे, तो समस्त प्रदेश हिमस्तर से ढक जाता है अथवा हिमनदियाँ पर्वतो से तट की ओर प्रवाहित होती है, जिससे हिमप्रभावित भूदृश्य (Glaciated Topography) अस्तित्व मे आ जाता है। इसकी विस्तृत विवेचना हिमनदियो के प्रकरण मे की गई है। इन प्रदेशो मे पर्वतो की चोटी नुकीली होती है, जिसे शृंग (Horn) कहते है। यह नुकीलापन पाले की क्रिया का ही फल है।

परीक्षा में पूछा गया प्रश्न :—

Describe in some detail the influence of climate on the development of landscape.

बारहवां परिच्छेद

कार्स्ट एवं ग्रेनाइट भूदृश्य

१ कार्स्ट भूदृश्य

(१) भूमिका

चूने के पत्थर (Limestone) मे दो ऐसे विशेष गुण होते है, जिनके कारण उसमे विशेष प्रकार का दृश्य विकसित होता है –

(१) वह ऐसे जल मे जिसमे कार्बन डाइ आक्साइड घुली हो, घुल जाता है।

(२) उसमे लम्बवत् सन्धियो (Vertical Joints) की सुन्दर व्यवस्था होती है ।

भूमिगत जल के सन्दर्भ मे उपर्युक्त दोनो गुण महत्वपूर्ण है । अन्य शब्दो मे "चूने के पत्थर के क्षेत्रो की सरचना और वहाॅ के जलविज्ञान (Hydrology) मे बडा घनिष्ट सबध है।"
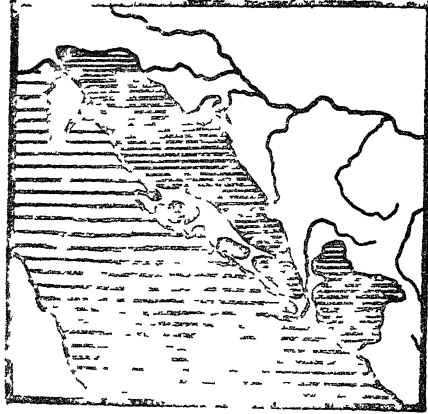
चित्र ८४—एड्रियाटिक तट पर कार्स्ट भूदृश्य

(इस चित्र मे दूर-दूर समानान्तर रेखाओ द्वारा एड्रियाटिक सागर प्रदर्शित किया गया है और पास-पास समानान्तर रेखाओ द्वारा तटीय कार्स्ट क्षेत्र)

चूने के पत्थर दो प्रकार के होते है —

(१) कठोर, निबिड एव मणिभीय—इनमे कार्स्ट भूदृश्य विकसित होता है।

कार्स्ट (Karst) शब्द आस्ट्रिया के कार्स्ट जिले से बना है, जहाँ कार्स्ट भूदृश्य का पूर्ण विकास हुआ है।

(२) कोमल एव रन्ध्री—इनमे जो भूदृश्य विकसित होता है, उसे 'चाक' (Chalk) की सज्ञा दी गई है।

(२) कार्स्ट भूदृश्य के उदाहरण

योरप मे डिनारिक आल्प्स के क्षेत्र मे कार्स्ट-भूदृश्य का सुन्दर विकास हुआ है। यह प्रदेश ५० मील चौडा और ८००० फुट ऊचा है और इस्ट्रियन प्रायद्वीप के द० पू० मे यूगोस्लाविया होता हुआ एड्रियाटिक सागर के तट पर फैला हुआ है। इस प्रदेश में पृष्ठ-प्रवाह (Surface Drainage) प्राय नगण्य है, केवल एक नदी नैरेण्टा है।

कार्स्ट भूदृश्य के अन्य उदाहरण निम्नलिखित है—

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका—कैण्टुकी, वरजीनिया।

मध्य टैनेसी—फ्लोरिडा।

भारतवर्ष—किरथर श्रेणी, भेडाघाट (जबलपुर), रोहतास का पठार, कर्नूल (मद्रास), काँगडा की घाटी, काश्मीर मे मध्य हिमालय।

एशिया—उत्तरी मलाया

यूरोप—आल्प्स, जूरा और अपैनाइन पर्वत
सेन्ट्रल मासिफ (फ्रास)

(३) कार्स्ट भूदृश्य के प्रमुख लक्षण

(१) ऐसे प्रदेशो मे जहाँ चूने का पत्थर नग्न अथवा अनावृत रूप मे पाया जाता है, लम्बवत् सन्धियाँ घोल के कारण चौडी हो गई है। यह तो पूर्व मे उल्लेख हो ही चुका है कि चूने का पत्थर ऐसे जल मे जिसमे कार्बन-डाइ-आक्साइड घुली हो, घुल जाता है। वर्षाजल जब वायुमडल मे गुजरता है, तब उसमे कार्बन-डाइ-आक्साइड घुल जाती है। पृथ्वी के धरातल पर यही जल प्रवाहित होता है और चूने के पत्थर की सधियो को चौडा कर देता है। इस प्रकार कुण्ड अथवा निगिर-छिद्र (Sink holes) अस्तित्व मे आ जाते है।
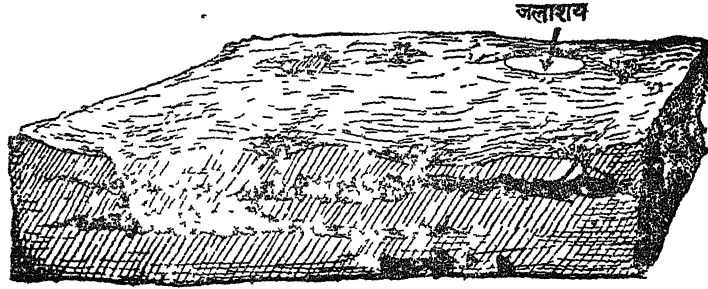
चित्र ८५—निगिर-छिद्र (Swallow holes)

(२) ऐसे प्रदेशों मे जिनमे घोल की क्रिया चर्मावस्था को पहुच जाती है, कूट और शिखरो का जटिल जाल पाया जाता है। ऐसे क्षेत्र को फ्रासीसी भाषा मे 'लैपीज' (Lapies) कहते है। चित्र ८६ मे इसे प्रदर्शित किया गया है। चूने

चित्र ८६—अवकूट (Lapies)

के पत्थर को घुलकर यह स्वरूप प्राप्त कर लेना स्वाभाविक ही है।

(३) जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है चूने के पत्थर के प्रदेश मे पृष्ठकी दरारे घोल के कारण प्रस्तारित होकर 'कुण्ड' का रूप ले लेती है। ये दो प्रकार के होते है—(१) बेलनाकार (Cylindrical) एव कीपाकार (Fun-

चित्र ८७—चूर्ण-कूटो (Hum) सहित राजकुण्ड (Polje)
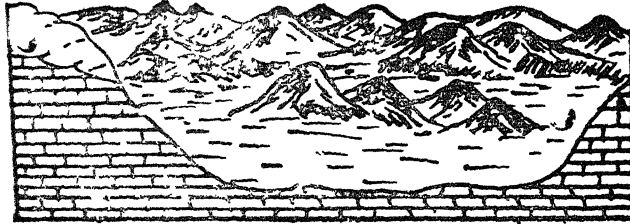
nel shaped)। इन कुण्डो मे पडकर नदियाँ लुप्त हो जाती है। जब अनेक कुण्ड (Dolines) परस्पर मिल जाते है, तब जो वृहत निम्नन अस्तित्व मे आ जाते है, उन्हे हम सकुण्ड (Uvala) कहते है। सकुण्डो का व्यास एक मील तक पाया जाता है। असाधारण रूप से बडे उवालाओ अथवा सकुण्डो को राजकुण्ड (Polje) कहते है। उवाला मे पाये जाने वाले चूने के पत्थर के अवशिष्ट टीलो को चूर्णकूट (Hums) कहते है। भूपृष्ठ से अथवा निगिर-छिद्रो से भूमिगत कन्दराओ (Underground caves) को मिलाने वाली 'सुरगो' को हम निसुरगा (Ponor) कहते है। Ponor शब्द सर्बियन भाषा का है। फ्रासीसी भाषा मे इसे अवेन्स' (Avens) कहते है। पोनर अथवा अवेन्स लम्बवत् भी हो सकते है और तिरछे भी। चित्र ८८ मे इन्हे प्रदर्शित किया गया है।
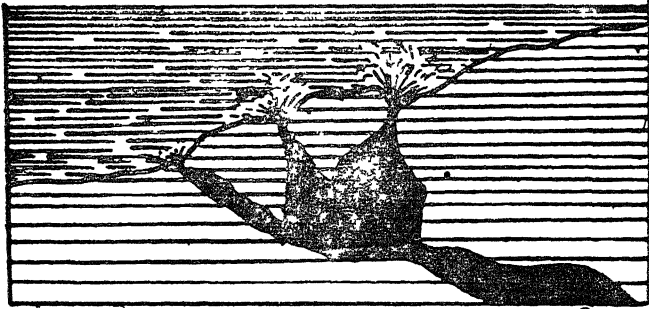
चित्र ८८—निसुरगाओ द्वारा निगिर-छिद्रो का भूमिगत कदराओ से सम्बन्ध

(४) चूने के पत्थर के क्षेत्रो मे घोल की क्रिया के फलस्वरूप भूमिगत कन्दराये बहुत पाई जाती है। इनकी छतो से चूने के स्तम्भ लटका करते है। इन्हे हम आश्चुताश्म (Stalagtites) कहते है। इनके फर्श पर भी चूने के खम्भे पाये जाते है, जिन्हे हम निश्चुताश्म (Stalagmites) कहते है। छतो से लटकने वाले स्तम्भ पतले ओर लबे होते है और फर्श पर बनने वाले स्तम्भ अपेक्षाकृत चौडे और छोटे होते है। बहुधा छत से लटकता हुआ स्तम्भ फर्श के उठते हुए स्तम्भ से जुड जाता है।

आश्चुताश्म और निश्चुताश्म के बनने की क्रिया अत्यन्त सरल है। कन्दरा की छत से चूने का पानी च्यवित होता रहता है। कभी २ छत पर

लटकती हुई चूने के पानी की बूंद नीचे न गिरकर वही सूख जाती है। ऐसी अनेक बूंदो के परस्पर मिलजाने से आश्चुताश्म बन जाते है। जब बूंद नीचे गिरने मे समर्थ होती है, तब उससे निश्चुताश्म बनते है।

(६) सक्षेप मे, ऐसा क्षेत्र जिसमे कार्स्ट-भूदृश्य का पूर्ण विकास हुआ हो चूने के पत्थर के प्रदेश मे टीलो और गड्ढो का जालमात्र होता है। उसमे पृष्ठ-प्रवाह नही होता, केवल भूमिगत-प्रवाह होता है। ऐसे क्षेत्र मे भूमिगत जल का पटल (Wat r-Table) क्षैतिज और समतल होता है तथा धरातल से काफी नीचे होता है। चूने के पत्थर के क्षेत्रो मे नदियो की पूर्ण व्यवस्थाये पाई गई है, उदाहरणार्थ कैण्टुकी की मम्मथ नामक कन्दरा मे इको (Echo) नदी। ये भूमिगत नदियाँ उन सभी प्रकृतिक नियमो का पालन करती है,जिनका पालन भू-पृष्ठ की नदियाँ करती है। उदाहरण के लिये, इनकी घाटियाँ यॉत्रिक एव रासायनिक अपक्षरण के उन्ही सूत्रो के अनुसार चौडी होती है जिनसे धरातल की नदियाँ।

सामान्यत चूने के पत्थरके विस्तृत क्षेत्रो मे सरचना एकसी होती है, किन्तु कभी इसमे अपवाद भी पाये जाते है, अर्थात् उसमे अशुद्धिया (Impurities) होती है। ऐसी दशा मे विशेष प्रकार के अवशिष्ट-निक्षेप (Residual Deposits) अस्तित्व मे आ जाते है, उदाहरणार्थ दक्षिणी योरप मे टैरा-रोसा (Terra-rossa) के निक्षेप। ये निक्षेप चूने के पत्थर मे अशुद्धयो के होने से बने है।

(४) कार्स्ट-प्रदेश में अपक्षरण-चक्र का विकास

(१) कार्स्ट-प्रदेश मे अपक्षरण-चक्र के विकसित होने के लिये दो बाते आवश्यक है—

(i) किसी अभेद्य शिला-स्तर के ऊपर शुद्ध चूने के पत्थर का मोटा आवरण होना चाहिए।

(ii) उसकी ऊपरी धरातल जल-पटल (Water Table) से काफी ऊपर होना चाहिये।

(२) कार्स्ट-प्रदेश मे अपक्षरण चक्र का आरभ निम्नलिखित दो रीतियो से होता है :—

(i) चूने के पत्थर के ऐसे क्षेत्र के अकस्मात्-ऊपर उठ जाने से जिसमे उन्मज्जन के पूर्व जल-पटल पृष्ठ के निकट हो और सामान्य अपक्षरण की क्रिया जारी हो।

(ii) धरातल की सामान्य प्रवाह-व्यवस्था द्वारा चूने के पत्थर के मोटे स्तर के ऊपरी आवरण का भँग हो जाना।

उपर्युक्त दोनो दशाओ मे, आरम्भ मे, धरातल पर धोल द्वारा सन्धियाँ चौडी होती है और निगिरछिद्र (Dolines) आस्तित्व मे आते है। वास्तव मे, निगिरछिद्र कार्स्ट भूदृश्य के अभिन्न अग है। इन के माध्यम द्वारा प्रवाह का कुछ अश भूमिगत प्रवाह मे विलीन हो जाता है यद्यपि अधिकाश भाग पृष्ठ पर ही प्रवाहित होता है। अपक्षरण-चक्र की ज्यो २ प्रगति होती रहती है, त्यो २ अधिकाधिक चूने का पत्थर घुलता जाता है और निगिर-छिद्र, गहरे होते जाते है। एक ओर भूमिगत प्रवाह मे अभिवृद्धि होती है और दूसरी ओर पृष्ठ-प्रवाह मे ह्रास।
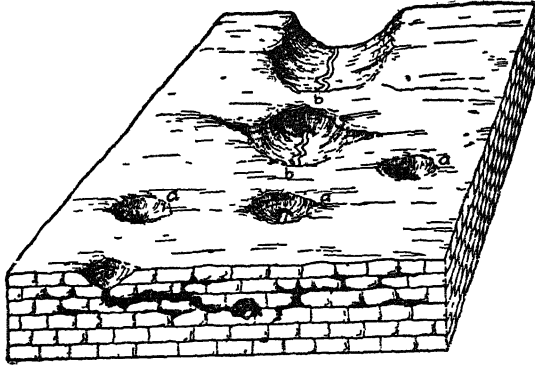
चित्र ८९–प्राकृतिक सेतुओ (Natural Bridges.) की निर्माण-क्रिया

निगिर छिद्र अथवा डोलाइन की सख्या और आकार मे क्रमश वृद्धि होती रहती है और कालान्तर मे वे भूमिगत कन्दरा (Underground cave) का रूप ग्रहण कर लेते है। दो निगिर छिद्रो के सुरग द्वारा जुड जाने से कभी २ प्राकृतिक सेतु बन जाते है (चित्र ८९) डोलाइन केवल धरातल पर प्रवाहित होने वाली नदी-नालियोके नितल तक ही सीमित नही रहते, प्रत्युत वे सपूर्ण क्षेत्र मे फैल जाते है। परस्पर निकटवर्ती डोलाइनो के मिल जाने से सकुण्ड (Uvala) अस्तित्व मे आ जाते है।

जो थोडी सी नदियाँ पृष्ठ पर प्रवाहित होती हैं, वे सकुण्डों अथवा डोलाइनो मे गिरकर अकस्मात लुप्त हो जाती हैं और उनकी घाटियाँ सूख जाती हैं। ऐसी घाटियो को 'अन्धी घाटियाँ, (Blind valleys) कहते हैं। जब इस प्रकार समस्त पृष्ठ-प्रवाह लुप्त हो जाता है, तब हमें यह समझना चाहिए कि अपक्षरण-चक्र प्रौढावस्था को प्राप्त कर चुका है।

प्रौढावस्था (Mature stage) मे पृष्ठ-प्रवाह का स्थान प्रबल भूमिगत-प्रवाह ले लेता है। कन्दराओ की सख्या मे उत्तरोत्तर वृद्धि होने से और कालान्तर मे उनकी छतो के नष्ट हो जाने से अभेद्य शिलास्तर का ऊपरी धरातल प्रकट हो जाता है। लम्बवत अपक्षरण की यह चर्म-सीमा है। इसकी प्राप्ति का अर्थ है पृष्ठ-प्रवाह का पुन स्थापन। अपक्षरण -चक्र की अतिम अवस्था मे राजकुण्ड (Polje) बनते हैं और अशुद्धियो के अवशिष्ट-पुज चूर्ण-कूटो (Hum) का रूप ले लेते हैं।

२. ग्रेनाइट भूदृश्य

लक्षण

(१) ग्रेनाइट प्रदेश की एक मुख्य विशेषता दृश्य की अभिन्नता है। भू रूप सर्वत्र एक ही सा दृष्टिगोचर होता है। बडे आकार के रूपधेय बहुत कम होते हैं। प्राय सर्वत्र गोल टीले अथवा पहाडियाँ बिखरी रहती हैं।
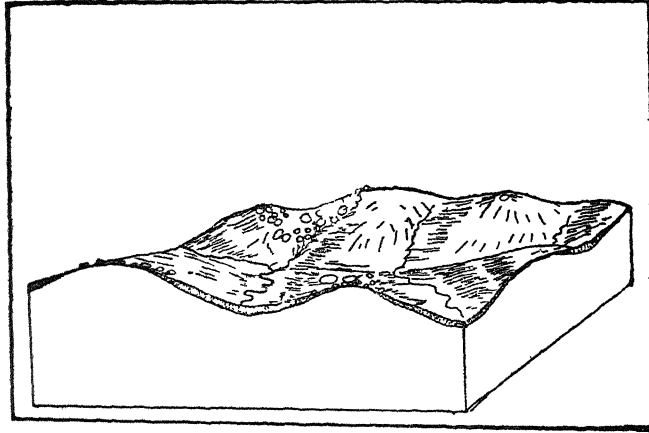
चित्र ९०—ग्रेनाइट भूदृश्य

(२) ऊँचे स्थानो पर तथा घाटियो के शीर्षो पर गण्डाश्म (Boulder) पाये जाते है। कुछ प्रदेशो मे जैसे जबलपुर (मध्य-प्रदेश) मे गण्डाश्म भूदृश्य की विशेषता ही नही वरन् उसके अभिन्न अग भी है।

(३) ग्रेनाइट प्रदेश मे जल की बहुलता होती है। झरने भी बहुत पाये जाते हैं। इन्ही के अनुसार मानव-वसति निर्धारित होती है।

भारतीय उदाहरण

मध्य-प्रदेश (विशेषत. जबलपुर) छोटा नागपुर का पठार, मध्य भारत तथा हैदराबाद के अनेक भागो मे ग्रेनाइट-भूदृश्य पाया जाता है। दक्षिणी भारत मे यह भूदृश्य उन स्थानो मे पाया जाता है जहाँ ग्रेनाइट-नाइस (Granite Gneiss) से बना नीचे का शिला स्तर धरातल पर प्रकट हो गया है।

ग्रेनाइट भूदृश्य के विकास के कारण

१—ग्रेनाइट प्रदेश मे गोल टीले इसलिये पाये जाते है कि वहाँ की शिलाये टूटती रहती है और टूटी हुई शिला के टुकडे ढाल के अनुसार नीचे खिसकते रहते है। चित्र ९२ से स्पष्ट होगा कि ग्रेनाइट निर्मित रेत का स्तर अन्य भागो की अपेक्षा घाटियो के नितल मे काफी मोटा है। ग्रेनाइट मे

चित्र ९१—ग्रेनाइट प्रदेश मे पाये जाने वाले गण्डाश्म (Boulders)

स्फटिक (Quartz) अभ्रक (Mica) तथा फैल्सपार (Feldspar) रहते है। फैलस्पार पानी मे घुलनशील है। अतएव यद्यपि ग्रेनाइट शिला काफी कठोर होती है तथापि पानी के प्रविष्ट हो जाने से वह टूटती रहती है।

टूटने की यह क्रिया शिला-पृष्ट के सभी भागो मे समान रूप से होती है, जिससे उसकी आकृति क्रमश गोल होती जाती हे ।

२—अन्य शिलाओ की भाँति ग्रेनाइट मे भी दरारे पड जाती ह । इन दरारो को प्रमन्धियाँ (Diaclases) कहते हैं। ये दरारे बहुत सूक्ष्म होती है और तब तक दृष्टिगोचर नही होती जब तक विबन्ध (Decomposition) के कारण वे काफी चोडी नही हो जाती। इन दरारो मे प्रविष्ठहोकर जल शिलाओ के टूटने मे सहायक होता है। यही कारण है कि ग्रेनाइट प्रदेश मे नष्ट होते हुए गण्डाश्म दिखलाई देते है। बहुधा वे अपने ही विनाश से बनी धूल मे धँसे रहते है। टीलो पर और घाटियो मे शिलाओ के नष्ट होने से बनी रेत जल-प्रवाह के साथ बह जाती है, जिससे गण्डाश्म अकेले दिखाई देते है।

जलवायु का प्रभाव

यहाँ पर यह उल्लेख कर देना उचित होगा कि ग्रेनाइट प्रदेश मे सदैव यही भूदृश्य नही पाया जाता, जिसका पूर्व मे वर्णन हो चुका है। उस पर जलवायु का भी प्रभाव पडता है—

(१) ऊँचे पर्वतीय प्रदेशो मे गोल टीले नही पाये जाते वरन् कटी-फटी चोटियाँ अथवा विशीर्ण शिखर (Ragg d Peaks) पायी जाती है। इसका कारण यह है कि अनवृत शिला पर तापक्रम के विभेदन का प्रभाव पडता है। इसके अतिरिक्त प्रतन्धियो (Diaclases) मे प्रविष्ट पानी जब घनीभूत होता है, तब वह फैलता है। इस प्रकार शिला टूटती रहती है।

(२) उष्ण प्रदेशो मे गोल टीले तो अवश्य जाते है, किन्तु उनके ढाल अपेक्षाकृत अधिक प्रपाती होते है। प्रचण्ड सूर्यातपन एव आर्द्रता के विभेदन से शिला टूटती रहती है और टूटे हुए शिलाखण्ड नीचे खिसक जाते है, जिससे ढाल प्रपाती होता जाता है।

परीक्षाओं में पूछे गये प्रश्न

1. Discuss the characteristic Features of Karst region.

(Agra B A. Part 1, 1955).

2. What distinctive forms are produced by weathering in Karst regions.' (Agra B. A. 1955).

3 Describe the important features of Karst topography Illustrate with diagrams.

(Allahabad B. A 1952).

4. What are the characteristics of landforms associated with limestone. (Allahabad B. A. 1949).

5 Describe the formation of Karst topography Name the areas where this topography is commonly met with. (Allahabad B A 1948)

6. What is Karst topography ? Describe the processes by which this relief is brought about.

(Agra B. A. 1941).

7. Explain how rocks influence topography. Illustrate your answer with reference to Limestone topography. (Agra B A. 1954)

8. What factors make the hydrology and topography of limestone districts peculiar ? Give a concise account of the topography and drainage of a limestone district preferably in India.

(I. A. S. Compet. 1953).

9. Write an account of the behaviour of underground water and related phenemena in Dinaric Karst. (Banaras M A. and M. Sc. Geog. 1948).

10. Discuss the action of underground water in limestone regions (Banaras B. A. & B. Sc. 1951).

11. Describe and account for the typical features of scenery in a limestone district.

(Banaras B. A. and B Sc. 1949).

12. 'The morphology of limestone terrains is closely linked with their hydrology.' Discuss this statement with reference to some typical region.

(B. H. U., M. A. and M. Sc. Geog. 1950).

13. Describe the influence of rocks on topography in a typical region of India. Draw sketches to illustrate your answer. (Allahabad M. A. 1948).

14. What are the characteristics of limestone landscape ? Write an account of the work of the rain and draw diagrams.

(Allahabad M. A. 1947).

15. Describe fully how running and under ground water performs erosion in area of limestone rocks What is characterstic scenery of a limestone district (Nagpnr Inter. 1950)

16. Describe the characteristics of karst topography and explain the causes of such characteristics In what way may a cycle of erosion be initiated in Karst regions. (Agra M A. 1947)

17 What is Granite ? Describe the main features of the granite relief found in the neighbourhood of Jabalpur (Nagpur Inter. 1947)

18 Explain how rocks influence topography Illustrate your answer with reference to Granite

---

तेरहवां परिच्छेद

मैदान, पठार और पर्वत

१. मैदान (PLAINS)

परिभाषा—भूपृष्ठ के ऐसे विस्तृत क्षेत्रो को जो सामान्यत सागर समतल से ६०० फुट से कम ऊँचे होते है और जिनका धरातल समतल अथवा लगभग समतल होता है, हम 'मैदान' कहते है।

उत्पत्ति और वर्गीकरण

मैदान तीन प्रकार से बनते है —

(१) अपक्षरण द्वारा
(२) सचयन द्वारा
(३) भूपर्पटी की गतियो द्वारा

(१) अपक्षरण द्वारा मैदान का निर्माण

जब कोई पर्वत पूर्णत घिस जाता है अर्थात् उसके ऊपर बहने वाली नदियाँ अपने आधार-तल (Base Level) पर पहुँच जाती है, तब वह मैदान जैसा प्रतीत होता है। इसे हम 'समतलप्राय' (Peneplain) कहते है। इसके निर्माण की विस्तृत विवेचना 'अपक्षरण-चक्र' (Cycle of Erosion) के प्रकरण मे हो चुकी है। सक्षेप मे, पर्वत अपक्षरित होकर मैदान मे परिणत हो जाता है। ऐसे मैदान अथवा समतलप्राय मे कठोर शिलाओ से निर्मित टीले जो अपक्षरित होकर नष्ट नहीं होते शेष रहते है। उन्हे हम अतिसहिष्णु पर्वत (Monadnocks) कहते है।

(२) संचयन द्वारा मैदान का निर्माण

अपक्षरण के विभिन्न अभिकर्ता (जैसे हिम, वायु, जल, आदि) जहाँ भूतल के एक भाग को घिसते है, वहाँ वे दूसरे भाग मे इस घिसे हुए पदार्थ को सचित भी कर देते है। इस प्रकार सम्पन्न सचयन द्वारा कभी-कभी मैदान बन जाते है, जिन्हे हम 'सचयन के मैदान' कह सकते है। ज्वालामुखी के उद्गार से निकले हुए लावा के निक्षेप से भी मैदान अस्तित्व मे आ जाते है। इनकी गणना भी

'सचयन के मैदानो' के अन्तर्गत की जा सकती है। सचयन के मैदानो के प्रमुख प्रकार निम्नाँकित हैं —

१ नदी द्वारा सचित मैदान
२ हिमानी द्वारा सचित मैदान
३ वायु द्वारा सचित मैदान
४ झील के भराव से अस्तित्व मे आये हुए मैदान
५ आग्नेय क्रिया द्वारा सचित मैदान

१ नदी द्वारा संचित मैदान

ऐसे मैदानो को कछारी मैदान (Alluvial Plains) भी कहते है। उनकी रचना नदियो द्वारा लाये गये अवसाद से होती है। ससार के प्रमुख मैदान इसी श्रेणी के है। उदाहरणार्थ भारतवर्ष मे सिन्ध-गगा का मैदान, चीन मे ह्वागहो का मैदान, उत्तरी इटली मे पो नदी का मैदान आदि।

बडी-बडी नदियाँ समुद्र मे प्रतिवर्ष लाखो टन अवसाद जमा करती है जिससे उनका मुहाना भरता रहता है और कालान्तर मे वह डेल्टा का भाग हो जाता है। सदर्भ मे यह कहा गया है कि डेल्टा की प्रगति होती है (A delta advantcés)। गगा आदि नदियाँ इस प्रकार अपने डेल्टा के क्षेत्र की अभिवृद्धि कर रही है।

(२) हिमानी द्वारा सचित मैदान

जब हिम नदी पिघल जाती है, तब वह सभी पदार्थ जिसे वह अपने साथ परिवाहित करती रहती है, धरातल के निम्ननो मे एकत्र हो जाता है। योरप का उत्तरी मैदान बहुत कुछ हिमानी-निक्षेप से निर्मित है। इसी प्रकार यदि पूर्वी इगलैड से हिमानी के निक्षेप निकाल दिये जाँय तो उसका अधिकाँश भाग सागर के गर्भ मे चला जायगा। हिम नदियो के प्रकरण मे उत्क्षालित स्थली (Outwash Plain) के निर्माण की विवेचना हो चुकी है।

(३) वायु द्वारा संचित मैदान

वायु द्वारा सम्पन्न निक्षेपण की क्रिया से भी मैदान बन जाते है। इसकी विस्तृत विवेचना 'वायु की क्रिया' शीर्षक प्रकरण मे की गई है। चीन का लोयस प्रदेश इसका उदाहरण है।

(४) झील के भराव से मैदान को सृष्टि

कभी-कभी ऐसा होता है कि नदियो द्वारा लाये गये अवसादो से झीले भर

जाती है और मैदान मे परिणत हो जाती है। उत्तरी अमेरिका मे आज जहाँ प्रेरी का हरा भरा प्रदेश वर्तमान है, वहाँ किसी समय अगासिज (Agasizz) नाम की झील थी।

झीलो के सूख जाने से भी मैदान बन जाते है। कैस्पियन सागर के उत्तरी भाग के सूख जाने से इस प्रकार मैदान बन गया है।

(५) आग्नेय क्रिया द्वारा संचित मैदान

ज्वालामुखी के उदगार से जो लावा बाहर निकलता है वह धरातल के निम्नानो मे भर जाता है और इस प्रकार कभी-कभी धरातल के पट जाने से मैदान बन जाते है। नेपिल्स के निकट विसूवियस ज्वालामुखी ने इसी प्रकार एक सुन्दर मैदान का सृजन किया है।

लावा-निक्षेप के अपक्षरित पदार्थ के सचयन से भी मैदान बन जाते है। मिश्र को 'नील नदी की देन' (Gift of the Nile) कहा जाता है। वास्तव मे उसे 'आग्नेय क्रिया की देन' (Gift of the Igneous Activity) कहना चाहिये। अबीसीनिया के लावा-क्षेत्र का अपक्षरण कर नील नदी मिश्र मे उपजाऊ भूमि का सचयन करती है। नील नदी का कार्य तो केवल परिवाहक का है, वास्तविक दाता तो आग्नेय-क्रिया है, अतएव मिश्र को आग्नेय-क्रिया की देन कहना चाहिये न कि नील नदी की देन।

(५) भूपर्पटी की गतियो के फलस्वरूप मैदान का निर्माण

कभी-कभी भूपर्पटी की गतियो के कारण महाद्वीपीय निवाय (Cont inentalShelf) ऊपर उठ जाता है, जिससे तटीय मैदान अस्तित्व मे आ जाते है। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका का द० पू० भाग इसी प्रकार बना है।

कभी-कभी भूपर्पटी की गतियो से झीलो का नितल ऊपर उठ जाता है और मैदान का रूप ले लेता है।

पृष्ठ की प्राकृति के अनुसार वर्गीकरण

इस दृष्टि से तृिवर्था ने मैदानो को ४ श्रेणियो मे विभाजित किया है—

(१) **समतल मैदान** (Flat Plains)—इसमे उच्चतम और निम्नतम स्थानो का अन्तर ५० फुट से कम होता है।

(२) **विषम मैदान** (Undulating plains)—इसमे उच्चतम और निम्नतम स्थानो का अन्तर ५० से लेकर १५० फुट तक होता है और ढाल नियमित होते है।

(३) **टीलेदार मैदान** (Rolling plains)—इसमे उच्चतम और निम्नतम स्थानो का अन्तर १५० फुट से लेकर ३०० फुट तक होता है। इसमे ढाल प्रपाती हो सकते है।

(४) **पहाड़ी मैदान** (Rough dissected plain)—इसमे उच्चतम और निम्नतम स्थानो का अन्तर ३०० फुट से लेकर ५०० फुट तक होता है। यह नदी-नालो के कारण कटा-फटा होता है।

मैदानों की मानवीय महत्ता

इतिहास के अध्ययन से विदित होता है कि सभ्यता का विकास मैदानो मे ही हुआ है। ससार के सबसे अधिक धनधान्यपूर्ण एव उन्नत प्रदेश मैदान ही है। विश्व की सबसे अधिक जनसख्या मैदानो मे रहती है, ससार के सबसे बडे नगर मैदानो मे स्थित है, तथा कृषि उद्योग और यातायात के सर्वश्रेष्ठ केन्द्र मैदान मे ही है।

मानव-वसति (Human Settlement) की सुविधा

पर्वतो मे खनिज और बनो की उपज भले ही प्रचुर परिमाण मे प्राप्त हो किन्तु मानव-वसति के लिये वे सर्वथा अनुपयुक्त है। ससार की तीन-चौथाई जनसख्या मैदानो मे इनीलिये रहती है कि उसे वहाँ जीवन यापन की प्रत्येक सुविधा है। ममार के खाद्योत्पादन का ८०% से भी अधिक भाग मैदान प्रदान करते है।

कृषि की सुविधा

प्राय प्रत्येक प्रकार के मैदान की भूमि उपजाऊ होती है। नदी द्वारा निर्मित—सिन्ध-गगा का मैदान, वायु द्वारा निर्मित चीन का लौयस प्रदेश, आग्नेय क्रिया की देन मिश्र का डेल्टा-क्षेत्र, झील के निक्षेप से निर्मित कैस्पियन सागर का उत्तरी भाग—सभी अत्यन्त उर्वर होने के कारण—कृषि के लिये विशेष अनुकूल है। कृषि की दृष्टि से मैदानो मे एक सुविधा यह भी होती है कि वे समतल होते है, जिसमे उनकी भूमि अपक्षरित होकर बहने नही पाती प्रत्युत क्रमश एक के बाद दूसरा स्तर एकत्र होना रहता है। समतल होने के कारण उनमे सिचाई की भी सुविधा होती है। सिन्ध-गगा के मैदान मे नहरो का जाल सा बिछा हुआ है। यदि यह क्षेत्र मैदान न होता तो नहरो की स्थापना दुष्कर होती।

आवागमन की सुविधा

समतल होने के कारण मैदानो मे सडके और रेलमार्ग सरलता से बनाये जा सकते है। अधिकाँश मैदानो मे नदियाँ तो होती ही है, वे प्राकृतिक आवागमन के पथ का कार्य करती है।

जैसा कि पूर्व मे उल्लेख हो चुका है मैदान धन्यधान्य से सम्पन्न होते है, जिससे उनमे आक्रमण होते रहते है। आक्रमणकारियो को मैदानो मे प्रविष्ट होने के लिये कोई भौतिक बाधा नही पडती क्योकि वे समतल होते है। इस प्रकार मैदानो के माध्यम द्वारा जातियो, सभ्यताओ, भाषाओ और सस्कृतियो का परस्पर सम्मिलन होता रहता है।

पठार

परिभाषा—ऐसे चौडे, प्राय समतल और विस्तृत स्थलखण्ड को जो सागर पृष्ठ से ६०० फुट से अधिक ऊँचा हो हम पठार कहते है।

पठारों का वर्गीकरण

पठारो का वर्गीकरण अनेक आधारो पर किया जा सकता है—

(१) उत्पत्ति के विचार से
(२) पृष्ठ की प्रकृति के विचार से
(३) स्थिति की विचार से
(४) जलवायु के विचार से
(५) आकृति के विचार से

(१) उत्पत्ति के विचार से वर्गीकरण

उत्पत्ति की दृष्टि मे हम पठारो को मुख्यत दो विभागो मे विभाजित कर सकते है —

(१) **सरल अथवा साधारण पठार**—इसी श्रेणी के अन्तर्गत वे पठार आते है, जिनका निर्माण किसी एक अभिकर्ता से हुआ हो जैसे—

(क) हिमानी-निर्मित पठार—इसका उदाहरण काश्मीर मे पाये जाने वाले 'मार्ग' (Margs) है, जिनकी रचना अन्त्य हिमोढ (Terminal Moraines) से हुई है।

(ख) आग्नेय क्रिया द्वारा निर्मित पठार—इसके पुन दो उपविभाग किये जा सकते है :—

(i) अन्तर्वर्ती पठार (Intrusive Plateaus)—इनका निर्माण भूपृष्ठ के नीचे होता है। कालान्तर मे जब अपक्षरण द्वारा इनका जलज शिलाओ का आवरण नष्ट हो जाता है, तब ये प्रकट हो जाते है। उदाहरण—छोटा नागपुर का पठार।

(ii) बहिर्वर्ती पठार–(Extrusive Plateaus)—जब पृथ्वी के अन्दर का लावा आग्नेय क्रिया द्वारा भूपृष्ठ पर आकर पठार के रूप मे सचित हो जाता है, तब उसे हम बहिर्वर्ती-पठार कहते है। उदाहरण-दक्षिण सोपानाश्म (Deccan Trap)।

(ग) वायुनिर्मित पठार—ये पठार वायु के परिवाहन एव निक्षेपण से बनते है। रावलपिण्डी का पोटवार नामक पठार इसका सुन्दर उदाहरण है।

(घ) जल द्वारा निर्मित पठार—नदियाँ समुद्र मे अपने अवसाद एकत्र करती रहती है, जो कालान्तर मे शिलाओ का रूप ले लेते है। कभी-कभी भूपर्पटी की गतियो के कारण ये शिलास्तर पठार के रूप मे ऊपर आ जाते है। विन्ध्य का पठार इसका उदाहरण है।

(२) **मिश्रित अथवा जटिल पठार**—इनका निर्माण अनेक अभिकर्ताओ की सयुक्त क्रिया से होता है। उदाहरणार्थ-भारतवर्ष के दक्षिणी पठार मे सभी प्रकार की शिलायें—आग्नेय जलज एव परिवर्तित पाई जाती है। इनके निर्माण के लिये आग्नेय क्रिया एव जल दोनो ही अभिकर्ता उत्तरदायी है।

पृष्ट की प्रकृति के अनुसार पठारो का वर्गीकरण

इस दृष्टि से डा० चिब्बर नें पठारो के दो विभाग किये है—

(१) उत्थली (Plateau) इनका धरातल विषम होता है।

(२) गिरिप्रस्थ (Tableland) इनका पृष्ठ समतल होता है।

(३) स्थिति के अनुसार वर्गीकरण

इस दृष्टि से पठारो के अनेक विभाग किये जा सकते है, जैसे—

(१) अन्तर-पर्वतीय पठार (Intermont Plateaus)—ऐसे पठार चारो ओर से पर्वतो द्वारा घिरे होते है जैसे तिब्बत का पठार।

(२) पर्वतपदीय पठार (Piedmont Plateaus)—इन पठारो के एक ओर पर्वत होते है और दूसरी ओर मैदान अथवा सागर उदाहरणार्थ दक्षिणी

अमेरिका का पटागोनिया का पठार जो एण्डीज पर्वत और अटलांटिक महासागर के मध्य मे स्थित है।

चित्र ९२—ए अन्तवर्तीय पठार

(३) महाद्वीपीय पठार (Continental Plataus)—ये सागर अथवा निचले प्रदेशो पर अकस्मात ऊपर उठे रहते है और इनका क्षेत्रफल सहस्रो वर्गमील होता है। उदाहरण—दक्षिणी अफ्रीका का पठार।

(४) तटीय पठार (Coastal Pleteaus)— ये तट पर स्थित होते हैं, जैसे भारतवर्ष मे कारोमण्डल का पठार।

(४) जलवायु के अनुसार वर्गीकरण

जलवायु के विचार से पठारो के अनेक विभाग किये जा सकते है, जैसे—

(१) मरुस्थलीय पठार(Arid Plateau)—रावलपिण्डी का पोटवार नाम पठार इसी श्रेणी का है। यह मरुस्थल मे स्थित है।

(२) आर्द्र पठार (Humid Plateau)—जो आर्द्र-जलवायु के प्रदेश मे पाये जाते हो। उदाहरण—आसाम का पठार।

(३) हिम पठार (Ice Plateau)—ये ध्रुवीय जलवायु के प्रदेश मे पाये जाते है। उदाहरण-ग्रीनलैण्ड का पठार। आदि आदि

५ आकृति के अनुसार वर्गीकरण

इस दृष्टि से भी पठारो का विभाजन किया जा सकता है—जैसे—

(१) गुम्वदाकार पठार (Dome Shaped Plateau)—इनका बाह्य पृष्ठ गुम्वद के सदृश गोलाकार होता है। उदाहरण—छोटा नागपुर।

(२) कटे-फटे पठार (Dissected Plateau)—ऐसे पठार नदी-

चित्र ९३—कटाफटा पठार (Dissceted Plateau)

नालो मे कटे होते है । चित्र से यह कथन स्पष्ट होगा। आसाम का पठार इसका सुन्दर उदाहरण है।

(३) सीढीदार पठार (Step like Plateau)—जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है इनका धरातल सीढियो के अनुरूप होता है। उदाहरण—मिर्जापुर के दक्षिण मे विन्ध्य का पठार।

(४) पुनर्युर्वीभूत स्थलीप्राय (Rejuvenated Peneplain)—इसकी व्याख्या 'अपक्षरण-चक्र' के प्रकरण मे हो चुकी है । अरावली प्रदेश इसका उदाहरण है। आदि आदि

पठारों की मानवीय महत्ता

लाभ

पठारो से मनुष्यो को अनेक लाभ है, जैसे—

(१) ससार के अनेक पठारो के अपक्षरण से प्राप्त भूमि कृषि के लिये बहुमूल्य सिद्ध हुई है। दक्षिणी भारत का काली मिट्टी का प्रदेश कपास के उत्पादन के लिये आदर्श है।

(२) अनेक पठारो पर जल सचित किया गया है। भ्वाकृष्टि-नहरो (Gravity canals) द्वारा यह जल सिंचाई के कार्य मे लाया जाता है।

(३) अनेक विषम एव आर्द्र पठारो मे (जैमे आसाम के पठार म) प्रपात पाये जाते है। इनमे विद्युत उत्पन्न की जा सकती है।

(४) आग्नेय क्रिया से निर्मित पठार आर्थिक दृष्टि मे महत्वपूर्ण है। उदाहरणार्थ भारतवर्ष के दक्षिणी पठार मे अनेक बहुमूल्य खनिज जैसे—लोहा, सोना, मैगनीज, आदि पाये जाते है।

(५) अनेक पठारो से इमारती पत्थर निकाले जाते है।

दोष

मानव-वसति के दृष्टिकोण से निम्नलिखित पठार व्यर्थ है —

(१) जिनकी जलवायु अस्वास्थ्यकर हो।

(२) जिनकी भूमि उपजाऊ न हो

(३) जो अत्यन्त कटे फटे हो

(४) जो अत्यधिक ऊँचे हो

पर्वत

परिभाषा—ऐसे स्थलखण्ड को—

(१) जो अपने चारो तरफ के क्षेत्र की अपेक्षा यथेष्ट ऊँचा हो

(२) जिसकी चोटी का क्षेत्रफल आधार मे कम हो और

(३) जिसकी ऊँचाई पहाडी से अधिक हो, हम पर्वत कहते है। पहाड और पहाडी मे केवल ऊँचाई का अन्तर है। पहाडी की ऊँचाई ३००० फुट से कम होती है और पहाड की अधिक।

पर्वतों का वर्गीकरण

पर्वतो का वर्गीकरण अनेक आधारो पर किया जा सकता है—

(१) उत्पत्ति के विचार से

(२) आयु के विचार से

(३) भौगोलिक व्यवस्था के अनुसार

१ उत्पत्ति के विचार से पर्वतों का वर्गीकरण

उत्पत्ति के विचार से हम पर्वतो को चार भागो मे बाँट सकते है —

(१) भंजित (Folded) पर्वत

(२) सवर्ग (Block) पर्वत

(३) ज्वालामुखीय पर्वत

तथा (४) अवशिष्ट पर्वत (Residual Mountains) अथवा अनावृनीकरण (Denudation) के पर्वत।

(१) भंजित पर्वत (Folded Mountains)

पार्श्विक दबाव के कारण भूपर्पटी के मुड जाने से ये अस्तित्व मे आ जाते है। इनके बनने की दो विधियाँ है —(१) कभी-कभी भूपर्पटी के दो विशाल खण्ड एक दूसरे के निकट आते है (२) कभी-कभी एक ही खण्ड दूसरे स्थायी खण्ड की ओर गतिशील होता है। भूपर्पटी की गतियो के प्रकरण मे भजन (Folding) की विभिन्न प्रकारो की विवेचना हो चुकी है। पृथ्वी के इतिहास मे कम से कम तीन ऐसे काल अवश्य हुए है, जिनमे भजित पर्वत-श्रेणियाँ अस्तित्व मे आई है। भजित श्रेणियो के अन्तर्गत वे सभी पर्वत आ जाते है जो भजन के फलस्वरूप बने है—चाहे वे पुराने हो अथवा नवीन। हिमालय, आल्प्स, पिरेनीज आदि सभी
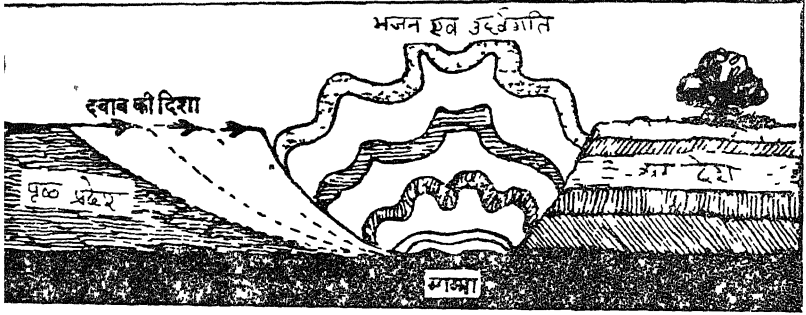
चित्र ९४—भजित पर्वत का निर्माण

भजित पर्वत-श्रेणियाँ है। जहाँ तक हिमालय की निर्माण-क्रिया का सम्बन्ध है, इस दशा मे बल उत्तर की ओर से लगा और प्रायद्वीपीय भारत ने उसे रोका।

(२) संवर्ग पर्वत (Block Mountains)

भूपर्पटी की गतियो के प्रएकरण मे विभगन (faulting) के वृत्त (Phenomena) की विवेचना हो चुकी है। उसी सन्दर्भ मे 'होर्स्ट' (Horst) अथवा सवर्ग पर्वत (Block mountain) का भी उल्लेख हुआ है। 'होर्स्ट' दो सामान्य विभगो के बीच मे ऊपर उठा हुआ स्थल-खण्ड है। यह दो रीतियो से बनता है—(१) या तो विभगो के बीच का स्थल-खण्ड उठ जाता है या (२) विभगो के बाहर के स्थल-खण्ड नीचे धँस जाते है। स्पष्ट है, कि सवर्ग पर्वत (Block mountain) के किनारे ढालू होगे।

(३) ज्वालामुखीय पर्वत

ज्वालामुखी के उदगार से निकला हुआ पदार्थ उसके मुख के चारों ओर नचिन हो जाता है और पर्वत का निर्माण करता है। ऐसे पर्वत का विस्तार और ऊँचाई लावा की प्रकृति पर निर्भर है। आम्लिक लावा में सैकजा (Silica) की मात्रा अधिक होती है, जिससे वह गाढा होता है अतएव वह दूर तक नही बह पाता। इसका उदाहरण मार्टिनिक का पेली नामक पर्वत है। इसके विपरीत क्षारीय लावा मे सैकजा की मात्रा कम होती है, जिससे वह पतला होता है और दूर तक बह जाता है। इसके निक्षेपण से जो पर्वत बनते है, उनका ढाल बडा ही मन्द होता है। उदाहरणार्थ हवाई द्वीपसमूह मे स्थित मोनालोआ नामक ज्वालामुखीय पर्वत का ढाल केवल ५° है, यद्यपि उसका व्यास १०० मील के लगभग है।

(४) अवशिष्ट पर्वत (Residual Mountains)

जब कोई क्षेत्र समुद्र के गर्भ से उठकर ऊपर आता है, तब उसे प्रकृति के विभिन्न अभिकर्ता जैसे वायु, हिम, जल आदि घिसना आरम्भ कर देते है। सभी शिलाये एक ही गति से नही घिसती है—कुछ शिलाये कठोर होती है और कुछ कोमल। परिणाम यह होता है कि कालान्तर मे प्रदेश के कठोर भाग पर्वतो के रूप मे अविशिष्ट रह जाते है और मृदुल भाग घिसकर घाटियो का रूप ले लेते है। महादेव, सतपुडा आदि ऐसे ही अवशिष्ट पर्वत है।

(२) आयु के विचार के पर्वतों का वर्गीकरण

पृथ्वी के भौमिकीय इतिहास मे कम से कम तीन ऐसे युग अवश्य हुए है, जिनमे पर्वत बने है —

(१) **कैलिडोनियन** (Caledonian)—यह गिरि-निर्माण-काल प्रवालादि-मत्स्य (Siluro-Devonian) युग मे हुआ। उत्तरी आयरलैण्ड, स्कॉटलैण्ड तथा स्कैण्डिनेविया के पर्वत इसके अन्तर्गत है।

(२) **अल्टायड, वैरिस्कन, आरमोरिकन अथवा हरसीनियन**—यह गिरि-निर्माणकाल गिरि-अगार (Permo-Carboniferous) युग म हुआ। इसके अन्तर्गत उत्तरी अमेरिका का अपैलेशियन, इगलैड का पैनाइन्स, फ्रास का सेन्ट्रल मासिफ, बोहेमिया का पठार, द० अफ्रीका की अन्तरीप श्रेणियाँ एव एशिया का अल्टाई पर्वत आदि आते है।

(३) **टरशरी** (Tertiary) **अथवा अल्पाइन** (Alpine)—जैसा कि नाम से स्पष्ट है यह गिरि-निर्माण काल तृतीयक युग (Tertiary

Period) के आरम्भ मे हुआ। आल्प्स, हिमालय, रॉकी, एव एण्डीज आदि पर्वत इमी के अन्तर्गत है। यह तो प्रकट ही है कि ये पर्वत सबसे कम आयु के है।

(३) भौगोलिक व्यवस्था के अनुसार वर्गीकरण

वौरसेस्टर ने पर्वतो का एक अन्य वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, जो भौगोलिक व्यवस्था पर आधारित है। इसके अनुसार पर्वतो के निम्नलिखित भेद है —

(१) कार्डिलैरा (Cordilleras)
(२) प्रणालियाँ (Systems)
(३) श्रेणियाँ (Rangess)
(४) श्रखलाये (Chains)
(५) समूह (Groups)
तथा (६) एकाकी पर्वत (Isolated individual units)

(१) कार्डिलैरा (Cordilleras)

कार्डिलैरा एक सामान्य उच्च भूमि का प्रदेश है जो बहुत सी पर्वत-प्रणालियो (Systems) से बना होता है। इन प्रणालियो मे उत्पत्ति और आयु की दृष्टि से बडे अन्तर होते है। इसका उदाहरण सयुक्त राष्ट्र अमेरिका के उत्तर-पश्चिम मे स्थित कार्डिलैरा पर्वत है।

पर्वत-प्रणाली बहुत सी ऐमी श्रखलाओ पर्वत प्रणाली (Chains) और समूहो (Groups) मे मिलकर बनती है, जिनकी उत्पत्ति और आयु मे घनिष्ट सम्बन्ध होता है। उदाहरण—अपैलेशियन प्रणाली।

३ पर्वत श्रेणी (Ranges)

जब पर्वत लम्बी और सकरी पट्टियो मे व्यवस्थित होते है तब हम उन्हे श्रेणी (Ranges) कहते है। आयु और उत्पत्ति की दृष्टि से ये परस्पर सम्बन्धित होती है। यह सभव है, कि शिलाओ की सरचना मे स्थानीय विभेदन हो, किन्तु सम्पूर्ण श्रेणी का भौम्याकारिकीय इतिहास (Physiographic history) एक सा होता है। उदाहरण—हिमालय।

४ पर्वत समूह (Mountain groups)

अनेक उच्च-स्थलखण्ड ऐसे पर्वतो से मिलकर बनते है, जिनमे कोई व्यवस्था नही होती। ऐसे पर्वतो को पर्वत-समूह कहना ही उचित होगा। इसका एक सुन्दर उदाहरण सयुक्त राष्ट्र अमेरिका के सान जुआन पर्वत है, जो कौलोरैडो

के द० प० भाग मे स्थित है। इस प्रदेश का क्षेत्रफल कई सहस्र वर्ग मील है और इसमे कई सौ ऊँचे पर्वत है, किन्तु उनमे कोई व्यवस्था नही है। लाखो वर्ष पहले यह प्रदेश गुम्बद के रूप मे उठा था, तदनन्तर ज्वालामुखीय शिलाओ के हजारो फुट ऊँचे स्तर ने इसे ढक लिया और अन्त मे नदियो एव हिमनदियो ने इसे काटकर अव्यवस्थित पर्वत समूह का स्वरूप प्रदान कर दिया।

५ पर्वत श्रृखला (Mountain Chains)

उद्गम एव आयु की दृष्टि से असमान पर्वत जब लम्बी और सकरी पट्टियो मे पाये जाते है, तब उन्हे हम पर्वत-श्रृखला कहते है। श्रृखला शब्द ज्वालामुखियो के लिये विशेषरूप से प्रयुक्त होता है जैसे हवाई, अल्यूशियन अथवा जापान के ज्वालामुखी।

६ एकाकी अथवा एकलित पर्वत (Isotated Mountains)

अकेले इक्के-दुक्के पर्वत अपवाद की दशा मे पाये जाते है। इनकी उत्पत्ति अधिकाँशत ज्वालामुखीय क्रिया अथवा विस्तृत अपक्षरण से होती है।

पर्वतों की मानवीय महत्ता.

(Human importance of Mountains)

पर्वतो से हानि और लाभ दोनो है। जहाँ मानव-बसति (Human Settlemets) के लिये पर्वत अनुपयुक्त है, वहाँ वे प्राकृतिक साधनो के भव्य भण्डार है। पर्वतो के महत्व पर ग्रन्थ लिखे जा सकते है। यहाँ पर केवल सकेत मात्र ही सभव है।

१ प्रतिरक्षा (Defence)

पर्वतो मे एक बडा लाभ यह है कि वे प्राकृतिक किलेबन्दी के रूप मे देश की रक्षा करते है। प्राचीनकाल मे इस दृष्टि मे इनका महत्व बहुत था। आधुनिक युग मे विज्ञान ने इतनी उन्नति कर ली है, कि वे अवरोधक के रूप मे अधिक प्रभावशाली नही रह गए है।

(२) जलवायु

पर्वतो का जलवायु पर बडा प्रभाव पडता है। इस सम्बन्ध मे केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा। यदि भारतवर्ष के उत्तर मे हिमालय पर्वत न होता, तो सिन्ध-गगा का मैदान जो आज जगत के सबसे अधिक धनधान्य पूर्ण मैदानो मे से एक है, मरुस्थल होता।

(३) आर्थिक महत्ता

पर्वतो से जलविद्युत, खनिज, लकडी एव वनो की विविध उपजे उपलब्ध होती है ।

(४) स्वास्थ्य मनोरंजन एवं अध्ययन के साधन

नैसर्गिक सौन्दर्य की अनुभूति के लिये प्रतिवर्ष सहत्रो व्यक्ति पर्वत पर जाते है । कवियो, दार्शनिको, एव कलाकारो को पर्वतीय दृश्यो से प्रेरणा मिलती है। भूगोलवेत्ताओ, भूगर्भवेत्ताओ एव प्राणीशास्त्रवेत्ताओ के लिये पर्वतो मे अनुसन्धान का विशाल क्षेत्र पडा हुआ है। धनिकवर्ग के सुकुमार व्यक्ति मैदान की ग्रीष्मकालीन कडी धूप से घबराकर नैनीताल, मसूरी आदि मे शरण लेते है। शिकारी शिकार के लिये और वैद्य जडी बूटियो की खोज मे पर्वतो मे भ्रमण करते है।

(५) कृषि एवं आवागमन के विचार से

धरातल के पथरीले एव विषम होने के कारण पर्वतो मे कृषि का क्षेत्र बडा ही सीमित होता है । एक निश्चित ऊँचाई तक ही खेती सभव है, अधिक ऊपर तापक्रम इतना कम होता है कि कृषि किसी प्रकार भी सभव नही है। भूमि के अपक्षरण को रोकने के लिये पर्वतीय क्षेत्रो मे उत्तलो (Terraces) की व्यवस्था करनी पडती है। पर्वतीय प्रदेश के सीमित साधन वहाँ के निवासियो को परिश्रमी बना देते है।

पर्वतो मे आवागमन बडा कठिन होता है। पर्वतीय प्रदेशो में सडके और रेल मार्ग बनाना दुष्कर एव व्ययजन्य कार्य है। भारतवर्ष और ब्रह्मा के बीच मे पर्वतश्रेणियाँ होने से ऐसा कोई भी रेल मार्ग नही है जो इन मित्र राष्ट्रो को मिलाये ।

(६) प्रथक्कारी प्रभाव (Isolating Influence)

पर्वतो के बीच मे आ जाने से लोग परस्पर सम्पर्क मे नही आ पाते। इसका एक सुन्दर उदाहरण मध्य योरप है जहाँ पर्वतो के बीच मे आ जाने से अनेक भाषाये विकसित हो गई है।

परीक्षाओं में पूछे गये प्रश्न

1. Describe the formation of plains and give the types formed under various conditions.

(Allahabad B. A. 1952).

2. Give an account of the formation of plains. State the various kinds and give their uses.

(Agra B. A. 1948, 51 and 54).

3. Describe the chief types of plains and give an account of the cause to which they are due.

(Ajmer Inter. 1949, U.P. Inter. 1944).

4. Discuss the various classifications of plateaus with special reference to India and the adjacent countries. (Banaras M. A. & M. Sc. Geog. 1948).

5. What do you understand by mountain building? Describe the chief types of mountains giving an account of the cause to which they are due. (Ajmer Inter. 1950).

6. What are mountains? How are they formed? Give all the theories about their origin.

(Agra B. A. 1950).

7. Discuss the origin of folded mountains and give examples. (Allahabad B. A. 1951).

8. How would you prove that the rocks that form the mountain today were formed under the sea? Describe the full processes of mountain formation with the help of suitable diagrams.

(Allahabad B. A. 1948).

9. Write notes on—

(a) Geo-syncline- (Agra B. A. 1952).

(b) Block Mountain.

(Banaras B. A. & B. Sc. '50 ; Nagpur Inter. 1951).

10. What is a Geo-syncline? 'The formation and filling of a geo-syncline are, apparently, the necessary prelude to the formation of a folded mountain range on the same site.' Discuss.

चौदहवाँ परिच्छेद

झीलें (LAKES)

१ परिभाषा

पृथ्वी के स्थलखण्डों के उन प्राकृतिक निम्ननों (Depressions) को, जिनमें पानी भरा रहता है, हम 'झील' कहते हैं।

२. वितरण

विषुवतरेखा से लेकर ध्रुवों तक प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक जलवायु में झीलें पाई जाती हैं।

३. विस्तार

विस्तार अथवा क्षेत्रफल की दृष्टि से झीलें नैनीताल की झील से लेकर, जिसका
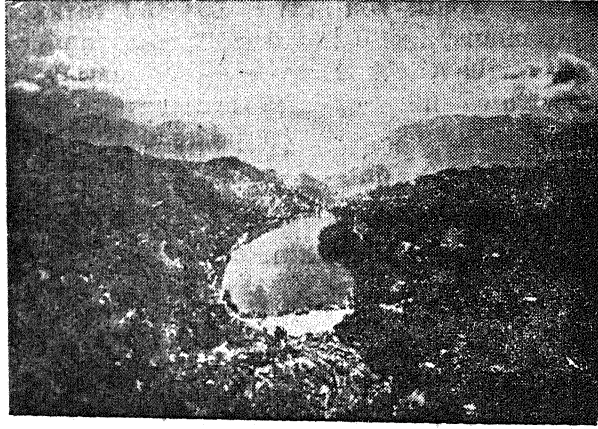
चित्र ९५—नैनीताल की झील

क्षेत्रफल केवल एक चौथाई वर्ग मील है, कैस्पियन सागर तक के आकार की, जिसका क्षेत्रफल १७०,००० वर्गमील है, पाई जाती है।

संसार की कुछ उल्लेखनीय झीलें

ससार की कुछ झीलें स्थिति, आकृति, विस्तार अथवा गहराई के दृष्टि से उल्लेखनीय है। उत्तरी अमेरिका की पाँच वृहद झीलें—सुपीरियर, ह्यरन, मिशीगन, एरी और औण्टेरियो—भूमण्डल मे सबसे महत्वपूर्ण झील-श्रृंखला का निर्माण करती है। पेरू एव बोलिविया की टिटीकाका नामक झील ससार की बडी झीलो मे सर्वोच्च है। कैस्पियन सागर विस्तार मे सबसे बडा है। साइबेरिया की बेकाल नामक झील सबसे अधिक गहरी है। सबसे अधिक निम्नतल की झील कृष्णसागर है। सूडान की चैड नामक झील यद्यपि गहराई मे केवल ८ से १२ फुट है, तथापि ऋतुओ के अनुसार पृष्ठ-विस्तार के विभेदन की दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। ग्रीष्म ऋतु मे इसके जलपृष्ठ का क्षेत्रफल केवल १०,००० वर्ग मील रह जाता है, जब कि वर्षा ऋतु मे इसका विस्तार ५०,००० वर्ग मील हो जाता है।

अन्य दृष्टियो से भी कुछ झीलो का बडा महत्व है। उदाहरण के लिये भूगोल और भूगर्भ दोनो क्षेत्रो मे दक्षिणी अफ्रीका की झीलो की उत्पत्ति विवाद का विषय रहा है। यह तो अब निश्चित हो चुका है, कि उनकी उत्पत्ति विभगन की क्रिया से हुई है, किन्तु ये दरार-घाटियाँ कैसे बनी—इस सम्बन्ध मे अनेक मत है। मनोरजन की दृष्टि से काश्मीर और स्विटजरलैण्ड की झीलें अग्रगण्य है। इसके अतिरिक्त अनेक झीलो की ऐतिहासिक महत्ता है जैसे जैनेवा झील। इसका मुख्य कारण उसकी स्थिति है।

५ भारतीय झीलें

भारतवर्ष मे झीलो का अभाव है, जो थोडी सी है भी, उनमे कोई भी बहुत विस्तृत नही है।

कुछ प्रमुख भारतीय झीलो का परिचय नीचे दिया जा रहा है —

(क) अप्रायद्वीपीय भारत

(१) हिमालय प्रदेश

इस प्रदेश की झीलो मे मानसरोवर सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसका क्षेत्रफल लगभग २०० वर्ग मील है। सतलज और सिन्धु नदियाँ यही से निकलती है।

(२) काश्मीर की झीलें

काश्मीर की झीलो मे वुलर और डल प्रमुख है। वुलर झील का क्षेत्रफल

लगभग ४४ वर्ग मील है। इसमे झेलम नदी गिरती है और फिर बाहर निकल आती है। डल झील लगभग ५ मील लम्बी और २ मील चौडी है। यह श्रीनगर के पूर्व मे स्थित है।

(३) कुमायूँ की झीले

इनमे मुख्य निम्नलिखित है —

(१) नैनीताल—इसकी महत्ता इसी से प्रकट है, कि इस पर स्थित नगर का नाम भी नैनीताल पड गया है। यह नगर उत्तर प्रदेश की ग्रीष्मकालीन राजधानी है। इस नगर के सौन्दर्य का केन्द्र विन्दु यही झील है। इसकी अधिक से अधिक लम्बाई चौडाई और गहराई क्रमश लगभग ४॥ हजार फुट, १॥ हजार फुट और ८७ फुट है। दक्षिण-पश्चिमी किनारे को छोडकर जहाँ से बलिया नदी निकली है—ये प्राय सभी ओर से पर्वतो से घिरी है।

(२) भीमताल—कुमायूँ प्रदेश की यह दूसरी उल्लेखनीय झील है। यह काठ-गोदाम से ६ मील उत्तर की ओर स्थित है। इसकी आकृति त्रिभुज जैसी है। इसकी लम्बाई, चौडाई और गहराई क्रमश लगभग ६ हजार, १॥ हजार और ८७ फुट है। इसके उत्तर मे नौली गदना नामक एक छोटी नदी गिरती है और पूर्व मे भीमताल गढेरा निकलती है। इस झील मे एक द्वीप भी है, जिसकी रचना ज्वालामुखीय शिलाओ से हुई है।

(३) नौकछिया ताल—भीमताल से २॥मील दक्षिण-पूर्व मे नौकछिया ताल है। इसके नाम की यही पृष्ठभूमि है, कि इसमे नौ कोने और नौ कछारे है। इसकी लम्बाई, चोडाई ओर ऊँचाई क्रमश लगभग ३१०० फुट, २३०० फुट और १३० फुट है। प्रकट है, कि कुमायूँ की झीलो मे यह सबसे अधिक गहरा है।

(४) सतताल—भीमताल के उत्तर-पश्चिम मे सतताल नामक सात झीलो का एक वर्ग था, जिनमे से अब केवल तीन शेष रह गई है।

(ख) प्रायद्वीपीय भारत

प्रायद्वीपीय भारत मे खारे और स्वच्छ जल की अनेक झीले है। इनमे लोनार, चिल्का और पुलिकट प्रमुख है।

(१) लोनार झील—मध्य प्रदेश के बुल्दाना जिले मे स्थित है। आकृति मे यह वृत्ताकार है, जिसका व्यास लगभग ६ फर्लांग है। इसकी गहराई लगभग ३०० फुट है। इसमे पाये जाने वाले लवण सोडियम कार्बोनेट और सोडियम बाइकार्बोनेट है, जो काँच बनाने के काम आते है।

(२) चिल्का झील—उडीसा प्रदेश की सबसे बड़ी झील है। इसका अधिकाँश भाग पुरी जिले मे पडता है। इसकी आकृति रुचिफलाकार (Pear shaped) है। इसकी लम्बाई लगभग ४५ मील है और क्षेत्रफल ऋतुओं के अनुसार ३॥ सौ वर्गमील से लेकर ४॥ सौ वर्ग मील तक बदलता रहता है। इसकी औसत गहराई ५–६ फुट है। यह कही भी १२ फुट से अधिक गहरी नही है। इसकी उत्पत्ति के विषय मे यह धारणा है कि पहले यह एक छोटी खाडी थी जो कालान्तर में बालू की जिह्वा (Spit) द्वारा सागर से पृथक हो गई है। एक सकरे जलमार्ग द्वारा यह सागर से अभी तक मिली हुई है।

(३) पुलिकट झील—यह मद्रास के तट पर स्थित है। वास्तव मे यह एक उथला उपहृद (Lagoon) है। इसकी लम्बाई ३७ मील है। श्री हरिकोट द्वीप इसे सागर से पृथक करता है।

(६) झीलों की उत्पत्ति

उत्पत्ति की दृष्टि से झीलो को सात भिगो मे बाँटा जा सकता है —

१ भूपर्पटी की गतियो से बनी झीलें

(१) नवनिर्मित स्थलखण्ड की झीले
(२) विभगन से वनी झीलें
(३) भजन से बनी झीले
(४) निमज्जन से बनी झीले
(५) स्थल-सर्पण से बनी झीले

२. ज्वालामुखीय झीलें

(१) लावा के विषम निक्षेपण से बनी झीले
(२) लावा के बाँध से बनी झीले
(३) परिमृत ज्वालामुख मे पानी भर जाने से बनी झीले

३. नदी की क्रिया से निर्मित झीले

(१) वृषभ-धनु-झीले (Ox-bow Lakes)
(२) शरावक झीले (Saucer Lakes)
(३) कछारी-व्यजन (Alluvial fans) के बाँध मे बनी झीले
(४) लटठो के बाँध से बनी झीले
(५) डेल्टा की झीले

४ हिमानी निर्मित झीलें

(१) हिमोढ (Moraine) की झीले
( ) हिमानी के अपक्षरण से बनी झीले
(३) गड्ढो की झीले (Pit Lakes)
(४) चमकती हुई झीले (Glint Lakes)
(५) हिम से बनी झीले
(६) हिमोढ के बाँध से बनी झीले

५ वायु की क्रिया से बनी झीलें

(१) बालुका-कूटो से बनी झीले
(२) प्लाया (Playa) झीले
(३) विषम वायु-निक्षेप की झीले

६ घोल से बनी झीले
७ सागर-जल की गतियो से बनी झीले

अब हम इनकी विवेचना करेंगे—

१. भूपट्टी की गतियों से बनी झीलें

(१) नवनिर्मित स्थलखण्ड की झीलें

जब सागर नितल का कोई भाग समुद्वर्तन (Diastrophism) के कारण ऊपर उठता है, तब उसका धरातल सदैव समतल नही होता। प्राय उसमे कुछ गड्ढे होते है, जिनमे वर्षाजल भर जाता है। इस प्रकार झीले अस्तित्व मे आ जाती है। ऐसी झीले कम गहरी होती है। कारोमण्डल के तट पर इस प्रकार की अनेक झीले पाई जाती है।
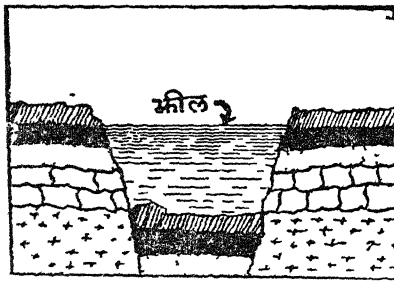
चित्र ९६—दरारी झील (Crater Lake)

(२) विभगन (Faulting) से बनी झीले:—

कभी-कभी विभगन के फलस्वरूप दरार-घाटियाँ बन जाती है। जब उनमे पानी भर जाता है, तब वे झील का रूप ग्रहण कर लेती है। दक्षिणी अफ्रीका की झीले इसी प्रकार बनी है। नैनीताल की झील के विषय मे भी विद्वानो के एक वर्ग का यह कथन है, कि इस झील की उत्पत्ति विभगन से हुई है।

(३) भजन (Folding) से बनी झीले

जब दो दिशाओ मे जो परस्पर समकोण बनाती हो, एक साथ ही भजन की क्रिया सम्पन्न होती है, तब दोनो की भजद्रोणियो (Synclines) के मिल जाने से निम्नन (Depression) बन जाता है। जब उसमे पानी भर जाता है, तो वह झील का रूप ले लेती है। स्विटजरलैण्ड की जैनेवा नामक प्रसिद्ध झील भजन का ही फल है।

(४) निमज्जन (Subsidence) से बनी झीलें

कभी-कभी भूकम्प अथवा अन्य कारणो से भूपर्पटी का कोई भाग अचानक नीचे धँस जाता है। इस धँसे हुए भाग मे पानी भर जाने से झीले बन जाती है। सन १८१९ ई० मे कच्छ के भूकम्प के समय स्थल का बहुत सा भाग नीचे धँस गया था। इसमे पानी भर जाने से एक वृहद झील बन गई।

(५) स्थल सर्पण (Landslide) से बनी झीले

कभी-कभी स्थल-सर्पण द्वारा नदियो का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है और वे झील मे परिणत हो जाती है। उदाहरण-गढवाल की गोहना नामक झील।

२ ज्वालामुखीय झीलें

(१) लावा के विषम निक्षेपण से बनी झीले—ज्वालामुखी के उद्गार से जो लावा भूपृष्ठ पर एकत्र हो जाता है, उसमे गड्ढे होते है, जिसमे पानी भर जाता है। इस प्रकार बहुत सी छोटी झीले बन जाती है। दक्षिणी भारत के लावा प्रदेश मे ऐसी झीले पाई जाती है।

(२) लावा के बाँध से बनी झीले—जब ज्वालामुखी से निकलने वाला लावा नदियो की घाटी मे जमा हो जाता है, तो पानी का बहाव रुक जाता है और झील बन जाती है। उदाहरणार्थ अबीसीनिया की टाना नामक झील ब्ल्यू नील के जल-प्रवाह के लावा-निक्षेप द्वारा अवरुद्ध हो जाने से बनी है।

(३) परिमृत ज्वालामुख मे पानी भर जाने से बनी झीले—परिमृत ज्वाला- मुखी (Entinct Valcano) के मुख (Crater) मे पानी भर जाने से झील बन जाती है। उदाहरण—बरार की लोनार झील।

३ नदी की क्रिया से निर्मित झीलें

(१) वृषभ धनु झीलें (Ox-bow lakes)

अपनी युवावस्था में नदियाँ जब समतल भूमि पर बहती हैं, तब उनमे प्रवाह-मोड (Meanders) बहुत बनते हैं। इन मोडो की मात्रा क्रमश बढती जाती है और अन्त मे एक ऐसी अवस्था आ जाती है, जब बाढ के समय नदी प्रवाह-मोड के पथ को छोडकर सीधी बहने लगती है। इससे प्रवाह मोड के दो निकटवर्ती भाग परस्पर मिल जाते है और वृषभ-धनु की आकृति का अश पृथक हो जाता है। इसे ही हम वृषभ-धनु झील (ox-tnellake) कहते हैं। गगा के मैदान मे ऐसी झीलें बहुत पाई जाती हैं।

२. शरावक झीलें (Saucer Lakes)

जैसा कि इनके नाम से प्रकट है, इनकी आकृति तश्तरी सदृश होती है। ये अस्थायी झीलें होती हैं। जब कोई सहायक नदी मुख्य नदी के लगभग समानान्तर बहती है, तब बाढ के समय कभी-कभी उनका पानी पूरलटो (Levees) मे से फूटकर बीच के निचले क्षेत्र मे एकत्र हो जाता है और झील का रूप ग्रहण कर लेता है।

३ कछारी व्यजन के बॉध से बनी झीलें

पहाडी प्रदेशो मे प्रवाहित होने वाली सहायक नदियाँ कभी-कभी अपने साथ इतना अधिक अवसाद लाती हैं कि उसे मुख्य नदी की धारा अपने साथ बहा ले जाने मे असमर्थ होती है। सगम पर यह अवसाद व्यजन के रूप मे एकत्र होता रहता है। इसे कछारी व्यजन (Alluvial fan) की सज्ञा दी गई है। इसकी विवेचना पूर्व मे हो चुकी है। इस अवसाद की मात्रा क्रमश बढती रहती है और उससे कभी-कभी नदी का वाह अवरुद्ध होने लगता है, जिससे झील बन जाती है। काश्मीर की रंगकोग झील इसी प्रकार बनी है।

४ लट्ठो के बॉध बनी झीलें

अधिक वर्षा वाले प्रदेशो मे नदियो के तट पर घने जगल पाये जाते हैं। जब नदी प्रवाह-मोड (meanders) बनाती है, तब ये वृक्ष उखड जाते हैं और नदी के प्रवाह के साथ बहने लगते हैं। धीरे-धीरे वृक्षो के ये लटठे एकत्र होने लगते हैं। इन लट्ठो के साथ बहुत सा अवसाद भी एकत्र हो जाता है और नदी के प्रवाह मे रुकावट होने लगती है। इस प्रकार झील बन जाती है।

५ डेल्टा की झीलें

डेल्टा प्रदेश मे नदियो द्वारा लाई गई मिट्टी के अनियमित रूप से एकत्र होने के कारण उनके निम्नतो मे पानी भर जाता है। ऐसी झीलें गगा, महानदी, गोदावरी आदि नदियो के डेल्टा-प्रदेश मे बहुत पाई जाती है।

४. हिमानी निर्मित झीलें

(१) हिमोढ़ (Moraine) की झीलें

पूर्वकालीन हिमयुगो के हिमोढ-निक्षेप के निम्नो मे जल के सचित हो जाने से झीलें बन गई है। ऐसी झीले प्राय अनियमित आकृति की और लघु आकार की होती है। ससार की ९० प्रतिशत झीले इसी श्रेणी की है।

(२) हिमानी के अपक्षरण से बनी झीले

हिमनदियो के अपक्षरण से बने निम्नतो मे पानी भर जाने से झीले बन जाती है। उदाहरण—उत्तरी अमेरिका की पॉच वृहद झील। कुछ विद्वानो की यह धारणा है, कि कुमायूँ की भीमताल नामक झील इसी प्रकार बनी है।

कभी-कभी हिमनदियों के अपक्षरण से भूपृष्ठ पर चायदानी (Kettle) की आकृति के गड्ढे हो जाते है। जब इनमे पानी भर जाता है, तब ये झील मे परिणत हो जाते है। इन्हे कुम्भगर्त झील (Kettle Lake) कहते है। हिमालय प्रदेश में ऐसी अनेक झीले पाई जाती है।

(३) गड्ढो की झीले (Pit Lakes)

उत्क्षालित स्थली (Outwash Plain) मे स्थित बडे-बडे हिमखण्डो के पिघलने से ऐसी झीलें बन जाती है। उदाहरण—उत्तरी अमेरिका की पैचन झील (Patchen Lake)।

(४) चमकती हुई झीले (Glint Lakes)

कभी-कभी महाद्वीपीय हिमनदी का प्रवाह, पथ मे पर्वत श्रेणी के आ जाने से, अवरुद्ध हो जाता है। यदि पर्वत श्रेणी मे कुछ सकरे निकास (Outlets) विद्यमान होते है, तो स्वभावत उनमे हिमानी का प्रवाह अपेक्षाकृत अधिक वेग से होता है। अतएव हिमनदी के अपक्षरण से वे अधिक गहरे हो जाते है और उनके पार्श्व हिम के प्रमार्जन (Polish) से चिकने हो जाते है जिससे वे चमकते रहते है। जब इनमे पानी भर जाता है, तब वे झील का रूप

ले लेते है। उदाहरण—उत्तरी लैपलैण्ड की टौर्नेट्रास्क (Tornetrask) नामक झील।

(५) हिम के बाँध से बनी झीले

हिमानी स्वय कभी-कभी जल-प्रवाह के पथ मे बाँध का कार्य करती है, जिससे झीले बन जाती है। सिन्ध की सहायक नदी सियाक के मार्ग मे हिमानी का बाँध बन जाने से झील बन गई है।

(६) हिमोढ के बाँध से बनी झीले

छोटे-मोटे नदी-नालो का मार्ग कभी-कभी हिमोढ द्वारा अवरुद्ध हो जाता

चित्र ९७—हिमोढ के बाँध से बनी झील

है, जिससे वे झील मे परिणत हो जाते है। उदाहरण के लिये कूमायूँ और पीर पञ्जाल की बहुत सी झीले हिमोढ का बाँध बन जाने से बनी है।

(५) वायु की क्रिया से बनी झीलें

(१) बालुका कूटो से बनी झीले

कभी-कभी नदी प्रवा बालुका-कूटो से अवरुद्ध हो जाता है और तब झील बन जाती है। फ्रास के तटीय प्रदेश मे इस प्रकार अनेक झीलेबन गई है।

(२) प्लाया (Playa) झीलें

मरुस्थलीय प्रदेशो के नमकीन दलदलो मे वर्षा ऋतु मे पानी भर जाने से अस्थायी झीले बन जाती है, जिन्हे 'प्लाया' कहेते है। ग्रीष्म ऋतु मे ये सूख जाती है।

(३) विषम वायु निक्षेप की झीलें

कभी-कभी वायु द्वारा एकत्र निक्षेपो के निम्नगो मे जल भर जाने से झीले

बन जाती है। इस प्रकार निर्मित झीलो के कुछ उदाहरण राज्यस्थान मे मिलते है।

(६) घोल से बनी झीलें

कुछ क्षेत्रो मे कठोर शिलाओ के मध्य मे घुलनशील शिलाये विद्यमान रहती है। वर्षाजल द्वारा वे घुलती रहती ह। उनके घुलने से उत्पन्न हुए निम्नो मे पानी भर जाने से झीले बन जाती है। उदाहरण—खासी जयन्तिया की झीले।

(७) सागरजल की गतियो से बनी झीलें

कभी-कभी समुद्र की लहरो और धाराओ से निक्षेपित जिह्वा (Spit) अथवा सिकता-दण्ड (Sand bar) से नदी मुख अथवा सकरी खाडी बन्द होकर उपह्रद (Lagoon) का रूप ले लेती है। नैलोर की पुलिकट झील तथा उडीसा की चिल्का झील इसी प्रकार बनी है।

(७) झीलो का वर्गीकरण

झीलो का वर्गीकरण अनेक आधारो पर किया जा सकता है —

(१) उत्पत्ति की दृष्टि से
(२) स्थिति की दृष्टि से
(३) जल-सरचना की दृष्टि से

(१) उत्पत्ति की दृष्टि से

इनका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

(२) स्थिति की दृष्टि से

स्थिति के विचार से झीलो के अनेक विभाग किये जा सकते है जैसे—

(१) तटीय झीले—जैसे उडीसा की चिल्का झील
(२) अन्तर्देशीय झीले—जैसे अफ्रीका की विक्टोरिया झील
(३) पर्वतीय झीले—जैसे नैनीताल की झील
(४) मरुस्थलीय झीले—जैस साभर

आदि।

(३) जल- संरचना की दृष्टि से

जल-सरचना की दृष्टि से झीलो के तीन विभाग किये जा सकते है।—

(१) अलवण जल (Fresh water) अथवा मीठे पानी की झीले—जैसे मानसरोवर।

(२) लवण जल (Saline water) अथवा खारे पानी की झीलें—जैसे साभर।

(३) आलवण जल (Brackish water) अथवा कम खारे पानी की झीलें—इनमें उपर्युक्त दूसरे विभाग की झीलो की तुलना मे लवण की मात्रा कम होती है। उदाहरण—तिब्बत की कुछ झीले।

८. झीलों का आर्थिक महत्व

झीलो से अनेक लाभ है —

(१) बडी झीलें अपने आसपास के प्रदेश का जलवायु समशीतोष्ण बनाने मे सहायक होती है।

(२) नदियो के उद्गम के रूप मे झीलो की महत्ता अत्यधिक है क्योकि झील से निकली हुई नदियाँ सदा-जलमय (Perennial) रहती है। न उनके सूखने की सभावना होती है और न ही उनमे बाढ का भय रहता है। प्रकट है, कि ये नदियाँ विद्युत-उत्पादन के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

(३) सिचाई के लिये झीले अमूल्य है।

(४) अनेक बडे नगरो मे नित्योपयोगी जल झीलो से ही उपलब्ध होता है।

(५) कुछ झीले महत्वपूर्ण अन्तर्देशीय जलमार्ग (Inland water ways) का कार्य करती है।

(६) पर्वत-प्रदेशो की झीलो मे जो जल वर्षा और हिम के पिघलने से प्राप्त होता है, उसका उपयोग विद्युत-उत्पादन के लिये किया जा सकता है।

(७) झीले मछलियाँ और तृणक (Weed) प्रदान करती है। मछलियाँ मानव-आहार की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। तृणक को बहुत से जानवर खाते है। इसके अतिरिक्त उससे खाद बनती है।

(८) अन्त प्रवाह की झीलो (Lake of Inland Drainage) से अनेक प्रकार के लवण एव रासायनिक यौगिक उपलब्ध होते है।

(९) स्वास्थ्य एव मनोरजन की दृष्टि से भी झीलो का विशेष महत्व है। नैनीताल की झील इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

(१०) झीलो के सूख जाने से अत्यन्त उर्वर भूमि उपलब्ध होती है। कैस्पियन सागर के उत्तरी भाग के सूख जाने से ऐसी ही उपजाऊ भूमि निकली है।

परीक्षाओं में पूछे गये प्रश्न

1. Discuss the formation of various types of lakes, giving examples preferabbly from India.
(Agra M. A. 1950).

2. What are the chief causes of the formation of lake-basins ? Classify the different types of lakes and give their economic uses. (Agra B. A. 1953).

3. Describe with examples the mode of formation of various kinds of lakes. Of what value are they to man. (Ajmer Inter. 1951).

4. Discuss the origin of lake-basins and give examples with sp. reference to India.
(Banaras B. A. and B. Sc. 1950).

5. Attempt and justify a classification of lakes according to the mode of origin.
(Banaras B. A. and B. Sc. 1952).

6. Describe the different types of lakes and mention Indian examples as far as practicable.
(Nagpur Inter. Supple. 1953).

7. Write an essay on the formation and economic uses of lakes Give examples preferably from India. (Nagpur Inter. 1947).

8. Give an account of the various types of rock-basins occupied by lakes, and discuss their origin. (U. P. Inter 1939)

9. Write notes on—
   (a) Types of Lake. (Agra B. A. 1955)
   (b) Lake. (Agra B A. 1949, 51).
   (c) Crater Lake. (Allahabad M. A 1953).
   (d) Barrier Lakes.
   (Banaras B. A. & B. Sc. '49 & 51).

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

भूमि के अपक्षरण की समस्या

(THE PROBLEM OF SOIL EROSION)

(१) भूमि क्या है ?

भूमि का अर्थ है पृथ्वी की पर्पटी का सबसे ऊपर वाला स्तर, जिसमे पेड-पौधो के जीवन के लिये आवश्यक खनिज एव रासायनिक पदार्थ तथा अन्य प्रकार की पौष्टिक भोजन-सामग्री रहती है। इसकी गहराई कुछ ही इच होती है।

यदि पृथ्वी का यह बहुमूल्य स्तर, जिसे हमने भूमि की सज्ञा दी है, एक बार नष्ट हो जाता है तो उसके पु न स्थापना के लिये अनेको वर्ष लग जाते है और कभी-कभी तो उसका पुन स्थापन होता ही नही अर्थात् वह सदा के लिये नष्ट हो जाता है।

(२) अपक्षरण का अर्थ और उसके साधन

वर्षा के कारण भूमि का कुछ भाग घिसकर बह जाता है। यही अपक्षरण है। वायु द्वारा भी भूमि के कण हटते रहते है। हिमनदियो द्वारा भी यह क्रिया होती है, किन्तु स्पष्ट है कि हमारे देश मे भूमि के अपक्षरण का प्रधान साधन जल ही है।

(३) अपक्षरण की समस्या का महत्व

भारत जैसे कृषि-प्रधान देश मे भूमि का महत्व हीरा-मोती से भी बढकर है। विशेषकर आधुनिक काल मे जब देश के भोजन की समस्या इतनी जटिल हो रही है इसका महत्व और भी बढ जाता है।

भूमि के अपक्षरण से केवल पृथ्वी का स्तर नष्ट नही होता, वरन मानवमात्र के जीवन का स्तर गिर जाता है। विज्ञान द्वारा अस्थायी रूप से उपज बढाई जा सकती है, किन्तु जहाँ एक बार भूमि का अपक्षरण आरम्भ हुआ—फिर वह उस समय तक नही रुकता। जब तक समस्त भूमि पूर्णरूपेण नष्ट नही हो जाती। निश्चय ही, मरुस्थल मे कोई भी राष्ट्र उन्नति नही कर सकता। यही कारण है, कि भूमि के अपक्षरण को सर्पी-मृत्यु (Creeping death) कहा गया है, जो उचित है।

इस समस्या की महत्ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है, कि इस समय भारतवर्ष में लगभग पन्द्रह करोड एकड भूमि अपक्षरण से प्रभावित है।

(४) अपक्षरण का वेग

अपक्षरण का वेग भूमि की सरचना, ढाल और वर्षा की मात्रा पर निर्भर है। यदि भूमि कोमल अथवा घुलनशील पदार्थो से बनी हुई हो अथवा उसके कण असम्बद्ध हो, तो अपक्षरण अधिक होता है। दूसरी ओर कठोर एव अघुलन-शील शिलाओ मे तथा परस्पर सम्बद्ध कणो द्वारा निर्मित भूमि मे अपक्षरण की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है। समतल भूमि की अपेक्षा ढालू भूमि मे अपक्षरण अधिक होता है। ढाल जितना ही अधिक होता है, अपक्षरण भी उतना ही अधिक होता है। अपक्षरण का प्रमुख साधन जल है, अतएव यह भी स्पष्ट है, कि साधारणत उन क्षेत्रो मे जहाँ वर्षा अधिक होगी, अपक्षरण अधिक होगा।

५ अपक्षरण के प्रकार

भूमि का अपक्षरण दो प्रकार से होता है। कभी-कभी ऐसा होता है, कि वर्षा के कारण भूमि का सबसे ऊपर का पर्त घिसकर बह जाता है। फिर दूसरे पर्त की भी यही दशा होती है और यह क्रम चला करता है। इस प्रकार पतले स्तरो के रूप मे भूमि के नष्ट होने को हम 'स्तर-अपक्षरण' (Sheet Erosion) कहते है।

बहुधा ऐसा होता है कि वर्षा द्वारा प्राप्त जल भूपृष्ठ पर नाले के रूप में बहने लगता है। तदनन्तर उसमें दायी और बाँयी ओर से नालियाँ मिलती हैं। इस प्रकार कालान्तर में, नाले-नालियों का एक जाल सा बिछ जाता है। नाले-नालियो के पथ अथवा खड्ड को जलदरी अथवा Gully की सज्ञा

चित्र ९८—दरी अपक्षरण (Gully erosion) का आरम्भ

दी गई है। इस प्रकार के अपक्षरण को जिसमे जलदरियाँ (Gullies) अस्तित्व मे आ जाती है, हम जलदरी-अपक्षरण या Gully Erosion कहते है। इस प्रकार का अपक्षरण जहाँ एक बार आरम्भ हुआ, फिर उस समय तक नहीं रुकता जब तक कि समस्त क्षेत्र जलदरियो से पट नही जाता और भूमि कृषि के लिये सर्वथा व्यर्थ नही हो जाती। कानपुर से झांसी जाते समय कालपी के निकट रेल की खिडकी से जलदरियाँ ही जलदरियाँ दिखलाई देती है।

६ वनस्पति का महत्व

वनस्पति अपक्षरण से भूमि की रक्षा करती है। यदि पृथ्वी के ऊपर वनस्पति का आवरण न होता तो वर्षा जल तीव्र वेग और शक्ति के साथ पृथ्वी पर टकराता। फल यह होता कि अपक्षरण की क्रिया बडे वेग से चलती। किन्तु वनस्पति के आवरण के कारण वर्षा के जल का वेग और बल दोनो ही क्षीण हो जाते है। इस प्रकार वनस्पति भूमि को अधिक मात्रा मे नष्ट होने से बचाती है। यही नही, अन्य रीतियो से भी वह इस दिशा मे सहायक होती है। उदाहरण के लिये—पेड-पौधे वर्षाजल का शोषण करते है। उनके माध्यम द्वारा यह जल जडो तक पहुँचता है और झरनो या नालो के रूप मे पुन प्रकट होता है। बाढ़ के बल और वेग को भी जल प्रवाह के पथ के पेड-पौधे कम कर देते है।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि वनस्पति का नष्ट होना भयानक विपत्ति का [illegible] है। इससे केवल बाढ ही नही आती, वरन पृष्ठ की बहुमूल्य भूमि भी जिनपर पेड-पौधो का जीवन-निर्भर है, नष्ट हो जाती है।

७. भूमि के अपक्षरण के कारण

अब हम भूमि के अपक्षरण के प्रमुख कारणो की विवेचना करेगे —

(१) **वनो का विनाश**—इसका उल्लेख तो किया ही जा चुका है, कि वनस्पति के नष्ट हो जाने से भूमि के अपक्षरण का परिमाण और वेग बढ जाता है।

(२) **जानवरों द्वारा घास एवं पेड़-पौधे का अतिभक्षण** (Overgrazing)—वनस्पति को किसी भी रूप मे नष्ट होने देने का अर्थ है—भूमि के अपक्षरण को निमंत्रित करना। भारतवर्ष की जलवायु ऐसी है कि यहाँ पर वर्षा ऋतु केवल चार महीने की होती है—फिर दीर्घकाल तक वर्षा नही होती अतएव घास के दुबारा उगने का प्रश्न ही नही उठता। अप्रैल-मई के महीनो मे तो घास मिलना समस्या बन जाती है। इसके अतिरिक्त भेड-बकरियाँ पौष्टिक

एव अच्छे गुणो वाली घास को आरम्भ मे ही समाप्त कर देती है। बाद मे बहुत ही निकृष्ट श्रेणी की घास बच रहती है ओर उन पर ही जानवरो को निर्भर होना पडता है ।

इस सम्बन्ध मे इस तथ्य का उल्लेख अनुचित न होगा कि जहाँ भारतवर्ष ससार के समस्त स्थल-क्षेत्र का केवल तीसवॉ अश है, वहाँ ससार के ७० करोड घास पर निर्भर रहने वाले जानवरो मे से २० करोड से अधिक भारत मे ही विद्यमान है।

(३) **कृषि की स्थानान्तरण प्रणाली** (Shifting Cultivation) आसाम ओर बगाल के कुछ भागो मे अब भी इस दोषपूर्ण प्रणाली से कृषि होती है। इस प्रकार की खेती मे कृषक प्रति वर्ष कृषि के लिये वन का एक नवीन भाग चुन लेता है । फिर वह आग लगाकर वहाँ की वनस्पति नष्ट कर देता है। बनस्पति की राख से भूमि की उर्वरता बढ जाती है । दूसरे वर्ष वह स्थल त्याग दिया जाता है और वन का दूसरा भाग खेती के लिये चुन लिया जाता है। फिर आग लगाकर वहाँ की भी वनस्पति नष्ट कर दी जाती है। यही क्रम चलता रहता है। इस प्रकार कृषि के स्थानान्तरण से बहुमूल्य वन नष्ट होते जा रहे है और भूमि के अपक्षरण की समस्या दिनो दिन भयकर और जटिल होती जा रही है।

(४) **ढाल का दोषपूर्ण प्रयोग**—ढाल के अनुरूप खेती के पौदो की पक्तियो की व्यवस्था करने से भी अपक्षरण बढ जाता है। भारतवर्ष के अनेक
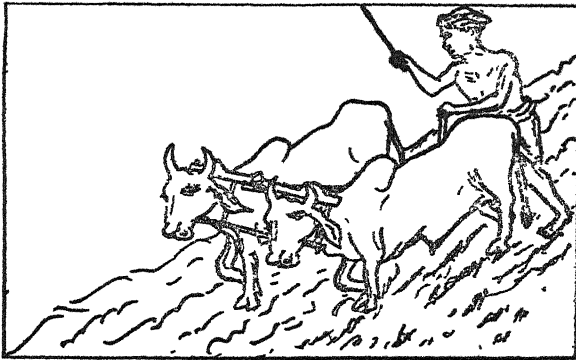
चित्र ९९—ढ़ाल का दोषपूर्ण प्रयोग

क्षेत्रो में आलू की खेती इसी प्रकार होती है। इससे बहुमूल्य भूमि बडे वेग से नष्ट होती जा रही है। ढालू क्षेत्रो मे खेती करने के लिये उत्तल (Terrace) बनाना अवश्यक है और पौधो की पक्तियों को ढाल के प्रति समकोण बनाना चाहिये। ऐसी दशा मे अपक्षरण कम होता है।

८ अपक्षरण का प्रभाव

अब हम अपक्षरण के प्रभाव का विचार करेगे —

(१) **बाढ़**—वनो के नष्ट हो जाने से भूमि का अपक्षरण बढ़ जाता है। वनस्पति का आवरण वर्षा-जल के वेग और बल को क्षीण कर देता है, जिससे भूमि अपेक्षाकृत कम नष्ट होती है। इसके अतिरिक्त वनस्पति वर्षा-जल का शोषण करती है। पेडो के माध्यम द्वारा वर्षा-जल पृथ्वी के अन्दर जाता है। वनस्पति के नष्ट हो जाने से समस्त वर्षा-जल निर्बिघ्न रूप से प्रवाहित होता है और इस प्रकार जल की मात्रा बढ जाने से बाढ आना स्वाभाविक ही है। विगत महायुद्ध के दिनो मे विदेशी शासको ने युद्ध की सामग्री बनाने के लिये हिमालय-प्रदेश से मनमानी लकडी कटवायी और उसका फल
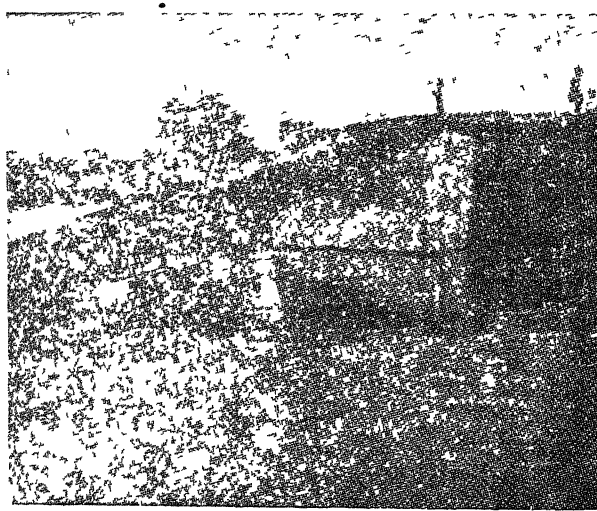
चित्र —१०० बाढ का फल

(सन् १९५४ ई० की वर्षा ऋतु की बाढ़से स्थित कमटीखुरगी और पोजी स्टेशनों के बीच में उ० पू० रेलवे का पुल टूट गया)

हम आज भोग रहे है। पहले कभी ऐसी बाढ नही आया करती थी, जैसी अब प्रति वर्ष आती है।

(२) **वर्षा की मात्रा कम हो जाना**—वृक्ष सूर्य-किरणो के पथ मे बाधक होते है, जिससे पृथ्वी पर पहुँचने वाले ताप की मात्रा घट जाती है। वृक्षो के नष्ट हो जाने से सूर्य की किरणें सीधे पृथ्वी पर पडती है और उसे गरम करती है। पृथ्वी के गरम होने से पृष्ठ की वायु हल्की होकर ऊपर उठती है। यह वायु वायु-मण्डल के वाष्पमय बादलो को दूर हटा देती है और इस प्रकार वर्षा की मात्रा घट जाती है।

(३) **भूमिगतजल (Underground Water)** का तल नीचा होना—जैसा कि उल्लेख हो चुका है वर्षा-जल पेडो के माध्यम द्वारा ही पृथ्वी के अन्दर प्रविष्ट होता है। वनस्पति के नष्ट हो जाने से यह क्रिया बन्द हो जाती है। पृष्ठ की भूमि के घिस जाने से नीचे की अभेद्य और कठोर शिलाये ऊपर आ जाती है, जिनमे जल का पारण सम्भव नही है। अतएव, भूमिगत जल का समतल क्रमश नीचा होता जाता है। इसका फल यह होता है कि कुएँ दिनो दिन सूखते जाते है। झरनो का भी यही भविष्य होता है।

(४) **वन के पक्षियों और जीवों का क्षीण होना**—जब बन ही न रहेगे, तो उसके जीव और पक्षी किस प्रकार रह सकते है? नवीन वातावरण उनके लिये घातक सिद्ध होता है। राष्ट्र की सम्पत्ति और समृद्धि मे वन के जीवो और पक्षियो का महत्वपूर्ण स्थान है। इनका नष्ट हो जाना देश के लिये कल्याण-कारी नही है।

(५) **वायु द्वारा अपक्षरण**—वायु अपक्षरित भूमि के कणो को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाती है। उदाहरणार्थ शिवालिक पर्वत के क्षेत्र मे बनो के नष्ट हो जाने से भूमि का अपक्षरण हुआ है। वायु वहाँ की अपक्षरित भूमि के कणो को जलन्धर के दोआव म परिवाहित करती रहती है। इसका फल यह है कि जलन्धर के दोआब की बहुमूल्य भूमि की उर्वरता परिवाहित रेत के कारण क्रमश क्षीण होती जा रही है।

(६) **मरुस्थल का प्रसार**—वायु की क्रिया का दूसरा भयकर स्वरूप है—मरुस्थल का प्रस्तार। राजपूताना के मरुस्थल के कण वायु द्वारा सीमावर्ती क्षेत्रो मे परिवाहित होते रहते है और इस प्रकार धीरे-धीरे मरुस्थल फैल रहा है। राजपूताना का मरुस्थल प्रति वर्ष १०० वर्ग मील बढ रहा है। उत्तर प्रदेश के मथुरा और आगरा जिले बुरी तरह से प्रभावित है और यदि मरुस्थल के प्रसार को

रोका नही गया, तो आश्चर्य नही, कि वे भी कुछ सहस्र वर्षो मे मरुस्थल मे परिणत हो जायँ।

(७) **जलाशयो में रेत का एकत्र होना**—यदि नदी के ऊपरी प्रदेश मे अपक्षरण अधिक होता है, तो नदी अपने साथ अपक्षरित भूमि को बहा ले आती है। यदि नदी के पथ मे बॉध और जलाशय होते है, तो यह रेत जलाशय मे इकट्ठी होती रहती है। इससे जलाशय क्रमश उथले होते रहते है और इस प्रकार जल पूर्ति (Water Supply) की मात्रा घट जाती है। ऐसी दशा मे उन्हे कुछ वर्षो के कालान्तर मे साफ करना आवश्यक होता है।

(८) **सिचाई और जलविद्युत पर प्रभाव**—नदियो मे वर्षा ऋतु मे बाढ आ जाने का दूसरा भयकर परिणाम यह होता है कि वर्ष के शेष भाग मे उनमे पानी की मात्रा घट जाती है। इससे नहरो और विद्युत-उत्पादन दोनो पर प्रभाव पडता है। नहरो मे पानी कम हो जाने से सिचाई ठीक तरह से नही हो पाती। जल की मात्रा के कम हो जाने से विद्युत-उत्पादन की मात्रा घट जाती है।

(४) **यातायात के साधनो पर प्रभाव**-बाढ से यातायात के साधनो को बडी हानि पहुचती है। सड़को का खराब हो जाना और रेल की पटरियो का प्रभावित होना तो साधारण सी बात है, कभी २ बाढ के वेगसे पुल नष्ट हो जाते है तथा बॉध टूट जाते है। सन् १९५५ कीबाढ से आजमगढ का लालडिग्गी बॉध टूट गया।

(१०) **जीवन यापन के स्तर का गिरना**—हमारे देश के निवासियो के जीवन-निर्वाह का स्तर ससार के अन्य उन्नत देशो की तुलना मे वैसे ही लगभग सबसे नीचा है। हमारी राष्ट्रीय सरकार इसे ऊपर उठाने के लिये सतत प्रयत्न कर रही है। उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि जीवन स्तर को नीचा करने मे भूमि के अपक्षरण का भी महत्वपूर्ण हाथ है। चरागाहो का नष्ट होना और कृषि की उपज का घटना अपक्षरण के ही दुष्परिणाम है। घास के घट जाने से गाय-भैसो का स्वास्थ्य प्रभावित होता है और वे कम दूध देती है। वनो के नष्ट हो जाने से बहुमूल्य लकडियॉ, जीव एव पक्षी तथा भैषजीय जडी-बूटियॉ सदा के लिये लुप्त हो जाती है। मनुष्य और जानवर दोनो को ही पर्याप्त भोजन नही मिलता। अतएव जीवन-यापन के स्तर का गिरना स्वाभाविक ही है।

९ उपाय

अब प्रश्न यह है कि भूमि के अपक्षरण को कैसे रोका जाय। अपक्षरण के लिये ये उपाय अपेक्षित है —

(१) वनस्पति का पुन स्थापन—जहाँ कहीं भी वनस्पति नष्ट हुई हो, उसे तुरन्त वहाँ स्थापित किया जाय। बनो से जितने वृक्ष काटे जाय, उतने ही नवीन वृक्ष लगा दिये जायँ। इस सम्बन्ध मे श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी का 'बन महोत्सव' का कार्य-क्रम नितान्त स्तुत्य है और सही दिशा मे सही कदम है।

(२) जहाँ पर भी ढाल हो वहाँ खेती के लिये उत्तल (Terraces) बनाये जायँ।

चित्र १०१—उत्तलो (Terraces) की व्यवस्था

(३) बाढ रोकने के लिये बाँध बनाये जायँ। इन बाँधो मे सचित जल अनेक प्रकार से उपयोग मे लाया जा सकता है।

(४) अपक्षरण द्वारा जो भूमि नष्ट हो रही है, उसे पुन.प्राप्त (reclaim) किया जाय। जलदरियो (Gullies) के पाटने के लिये मशीनो का प्रयोग भी अभीष्ट है।

(५) कृषि की दोषपूर्ण प्रणालियाँ त्याग दी जायँ—उदाहरण के लिये स्थानान्तरण की खेती Shifting cultivation) तुरन्त रोक दी जाय।

१०. भारतवर्ष में भूमि के अपक्षरण की दशा

अब हम भारतवर्ष मे भूमि के अपक्षरण की दशा का अध्ययन करेंगे। इस दृष्टि से भारतवर्ष को तीन भागो मे बाँटा जा सकता है —

(१) हिमालय प्रदेश
(२) सिन्ध-गगा का मैदान
(३) प्रायद्वीपीय भारत

(१) हिमालय प्रदेश

इसके पुन तीन विभाग किये जा सकते है— (अ) पूर्वी हिमालय (आ) मध्य हिमालय तथा (इ) पश्चिमी हिमालय ।

(अ) पूर्वी हिमालय

पूर्वी हिमालय के प्रदेश मे भूमि के अपक्षरण के मुख्य कारण ये है —

(१) वनस्पति का नष्ट होना—इसका एक फल यह है कि यहाँ से प्रवाहित होने वाली नदियो मे बाढ बहुत आती है ।

(२) स्थानान्तरण की खेती (Shifting Cultivation) जो आज भी आसाम और बगाल के कुछ भागो मे प्रचलित है ।

(३) वर्षा का आधिक्य—जिसमे अपक्षरण अधिक होता है ।

(आ) मध्य हिमालय

उत्तर प्रदेश के उत्तरी भाग की दशा इतनी बुरी नही है, जितनी पूर्वी हिमालय प्रदेश की। यहाँ पेड इतनी लापरवाही से नही काटे गये है। खेती के लिये ढालो पर उत्तल (Terraces) बनाये गये है। काठगोदाम से नैनीताल जाते समय ऐसे अनेक उत्तल दृष्टिगोचर होते है।

(इ) पश्चिमी हिमालय

यहाँ की शुष्क जलवायु आँशिक रूप से भूमि के अपक्षरण के लिये उत्तरदायी है । दीर्घकाल तक वर्षा न होने से तथा वर्षा की मात्रा कम होने से भूमि की पेड-पौधों को बद्ध करने की शक्ति नष्ट हो जाती है । कम वर्षा का एक दूसरा परिणाम है—भेड-बकरियो द्वारा घास का अतिभक्षण। इसके अतिरिक्त यहाँ भी असवाधानी से वनस्पति नष्ट की गई है । इन्ही सब कारणो मे यहाँ भूमि का अपक्षरण बहुत होता है ।

(२) सिन्ध गंगा का मैदान

यहाँ पर प्रवाहित होने वाली प्राय सभी नदियाँ हिमालय पर्वत से निकलती है। इसका उल्लेख तो हो ही चुका है कि हिमालय-प्रदेश मे बिना सोच-विचार किये लापरवाही के साथ जगल काटे गए है। इसका फल यह होता है कि इन नदियो मे प्रतिवर्ष भयानक बाढ आती है ।

पजाब की नहरो मे वायु के परिवाहन द्वारा बहुत सी रेत एकत्र होती रहती है, जिससे उनकी गहराई क्रमश घटती रहती है।

(३) प्रायद्वीपीय भारत

इस क्षेत्र में स्तर-अपक्षरण (Sheet Erosion) अधिक महत्वपूर्ण है। कहीं-कहीं पर भेड़-बकरियों के अतिभक्षण (Overgrazing) द्वारा वनस्पति नष्ट हो गई है। किन्तु संतोष का विषय यह है कि यहाँ सिंचित क्षेत्रों (Irrigated Areas) में काफी बाँध बनाये गये हैं तथा नील-गिरि के चाय के प्रदेश में उत्तलों (Terraces) की सुन्दर व्यवस्था है।

परीक्षाओं में पूछे गये प्रश्न

1. Give a concise account of the problem of soil-erosion in India, with special reference to the reclamation of ravine lands. (Agra B. A. '53).

2. Discuss the problem of soil-erosion in India with special reference to the reclamation of ravine lands. (Banaras M A and M Sc Geog '48).

3. Write an essay on the problem of soil erosion and soil-conservation in India. (Agra M. A. '50).

4 Give a brief account of the problem of soil-erosion in India, with sp. reference to the reclamation of ravine lands (Agra M A '47)

5. Write notes on—

(a) Effects of excessive deforestation (U P. Inter. '36 and '43).

(b) Deforestation. (Ajmer Inter. '51).

'प्राकृतिक भूगोल की पृष्ठभूमि' का द्वितीय खण्ड

उदधि

(THE OCEAN)

(महासागर-विज्ञान तत्त्व)

हिन्दी क्षेत्र के विश्वविद्यालयों की भूगोल की इण्टरमीजियट,
बी० ए० बी० ए० (आनर्स), बी० एस-सी०, बी० एस-सी०
(आनर्स), एम०ए० तथा एम० एस-सी० कक्षाओं के
विद्यार्थियों के निमित्त

रचयिता

**जनार्दन प्रसाद श्रीवास्तव, एम० ए०, एम०.एस-सी०,
एफ० जी० एस०, एफ० एन० जी० एस०**

प्रस्तावना ले

**प्रो० सितांशु मुकर्जी, अध्यक्ष, भूगोल विभाग
नागपुर विश्वविद्यालय**

प्राप्ति स्थान

अम्बिका प्रकाशन, जौनपुर

प्रथम संस्करण १९५५ मूल्य १।।।)

प्रकाशक :

अम्बिका प्रकाशन
जौनपुर।

मुद्रक :

माधो प्रिंटिंग वर्क्स
इलाहाबाद।

समर्पण

पूज्य भ्राता—

श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, आई० ए० एस०
मुख्य सचिव, विन्ध्य-प्रदेश शासन

के

कर कमलों में सादर समर्पित

Introduction

It is with great pleasure that I write this introduction to Professor J P Srivastava's treatise on oceans entitled 'Udadhi' Professor Srivastava worked as a lecturer in Geography in Nagpur University for a session and in that capacity he demonstrated a remarkable ability in handling courses in Physical Geography He has a solid background both in Geology and Geography, and, in addition, he has made extensive studies in Hindi Literature All this makes it evident that Professor Srivastava is an extremely competent person to write a treatise of this nature in Hindi Advanced students of geography will find a great deal of information in this work and others will find it immensely interesting There is no geographical aspect of the ocean which has not been dealt with and this small volume distills from a vast subject practically all facts and phenomena of interest and importance Professor Srivastava possesses a clear and charming style and by writing this book he has made a very valuable contribution to the national languag of the country I heartily congratulate Professo Srivastava, my former colleague, for this laudabl enterprise and wish to recommend his book to every student of Physical Geography

S Mookerji

Formerly Head of the Department of Geography, Nagpur University
t present—Exchange Visitor under Fulbright Act,
Indiana University, U S A.

Geography Department
Indiana University,
Bloomington U S, A
Sept 20, 1954

लेखक की ओर से—

निवेदन

राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा में मेरा यह द्वितीय पुष्प है।

भूपृष्ठ का ७१ प्रतिशत भाग जल द्वारा आच्छादित है। इसी से महासागरों की महत्ता प्रकट है।

अग्रलिखित पृष्ठों में महासागरों पर भौगोलिक दृष्टिकोण से विचार किया गया है।

× × ×

पश्चिम में महासागर सम्बन्धी नित्य नवीन अन्वेषण हो रहे हैं, किन्तु अभाग्यवश भारतवर्ष में—स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त भी— खोज की बात तो जाने दीजिये—इस विषय का उच्च कक्षाओं के योग्य साधारण सा भी स्वतंत्र ग्रन्थ—जहां तक मेरा ज्ञान है—राष्ट्रभाषा हिन्दी में नहीं लिखा गया है। यह लज्जास्पद विषय है, विशेषकर उस महान राष्ट्र के लिये, जिसने विश्व में सर्वप्रथम महासागर पर पूर्ण विजय प्राप्त की थी। मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी ने ही तो—

> 'बान्ध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिन्धु बारीस।
> सत्य तोयनिधि कम्पति उदधि पयोधि नदीस॥'

राष्ट्रभाषा के इस अनिवार्य अंग की अविलम्ब पूर्ति ही मेरे इस प्रयास की पृष्ठभूमि है।

× × ×

इस कृति की मुख्य विशेषतायें ये हैं:—

(१) भौगोलिक तथ्य अत्यन्त सरल एवं स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किये गये हैं।

(२) विषय के सुगम प्रतिपादन के लिये अधिक से अधिक चित्रों की व्यवस्था की गई है।

(३) उदाहरण यथासम्भव भारतवर्ष से ही दिये गये हैं। समस्त कृति की पृष्ठभूमि भारतीय है।

(४) नवीन से नवीनतम सिद्धान्त एवं अन्वेषण का समावेश कर दिया गया है।

(५) सर्वत्र राष्ट्रभाषा का व्यवहार किया गया है। रेखाचित्रों और मानचित्रों तक मे यथासम्भव अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी प्रयुक्त की गई है। प्रायः समस्त विशिष्ट शब्दों के हिन्दी समानार्थी दिये गये हैं।

(६) इस कृति मे हिन्द महासागर का विस्तृत अध्ययन किया गया है, जो महासागर विषयक अन्य ग्रन्थों मे दुर्लभ है।

(७) परीक्षा में पूछे गये प्रश्नों को केन्द्र मानकर इस कृति की रचना की गई है।

(८) विषय का प्रतिपादन अत्यन्त संक्षेप मे किया गया है। केवल तथ्यों (प्वायण्ट्स) का उल्लेख कर दिया गया है। उनका विस्तार पाठकों के लिये छोड़ दिया गया है। अन्तर्वस्तु को इससे अधिक संक्षेप करना आशयच्युत हुए बिना कदापि सम्भव न था।

(९) विषय-विन्यास मेरा अपना है।

(१०) यदि आत्मश्लाघा न समझी जावे तो मैं यह कहूँगा कि महासागरों का ऐसा सांगोपांग वर्णन किसी एक ग्रन्थ मे अन्यत्र सुलभ नहीं है। इस कृति की यही मौलिकता और प्रमुख विशेषता है।

× × ×

सहायक ग्रन्थों मे से जिनकी सूची पुस्तक के अन्त मे दे दी गई है मुझे निम्नलिखित विशेष प्रिय लगे हैं:—

१. जौन्सन-'महासागर विज्ञान की भूमिका'

२ सर जॉन मरे—'महासागर—सागर सम्बन्धी विज्ञान का सामान्य वर्णन'

३. एफ० डी० ओमाने—'महासागर'

४. स्वैड्रूप, जौन्सन तथा फ्लैमिंग—'महासागर—उनकी भौतिक, रसायन और प्राणिकी'

५ टी० एस० डोग्लास—'सागरों की सम्पत्ति'

६ जॉन एस० कॉलमैन—'सागर और उसके रहस्य'

७ फिलिप लेक—'प्राकृतिक भूगोल' (जल-मण्डल)

इस सभी से मैंने पूर्ण लाभ उठाया है, अतएव इनके लेखकों का विशेष ऋणी हूँ।

नागपुर विश्वविद्यालय के भूगोल विभाग के अध्यक्ष प्रो० सिताशु मुकर्जी ने भूमिका लिखी है। उनके प्रति मैं अपना आभार प्रदर्शित करता हूँ।

मेरी इस साधना द्वारा विद्यार्थी-समाज का यदि कुछ भी लाभ हो सका, तो मुझे हार्दिक सन्तोष होगा।

जवाहर जयन्ती
सन् १९५४ ई०

जनार्दन प्रसाद श्रीवास्तव

अनुक्रमणिका

———

प्रथम परिच्छेद

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा अन्वेषण सम्बन्धी यन्त्र

१—ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अत्यन्त प्राचीन काल मे ग्रीस के निवासियों को भूमध्यसागर का व्यवहारिक ज्ञान था। वे इसे 'थालासा' (Thalassa) कहते थे।

ईसा के चार शताब्दी पूर्व पिथियस (Pytheas) नामक ग्रीस निवासी ब्रिटिश द्वीप समूह के तट तक नौकारोहण करने मे समर्थ हुआ। लगभग एक शताब्दी ईसा पूर्व हिप्पालस (Hippalus) ने हिन्द महासागर के मानसून वायु के क्षेत्र की खोज की।
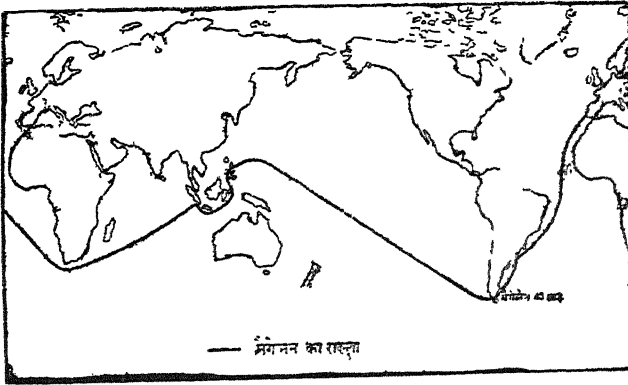
चित्र १—मागेलन का पथ

सन् १४९२ और सन् १५२२ ई० के बीच में भूपृष्ठ विषयक ज्ञान में विशेष अभिवृद्धि हुई है। इसी काल में कोलम्बस अन्धमहासागर के मार्ग

द्वारा अमेरिका पहुँचा, वास्कोडिगामा उत्तम आशा अन्तरीप[1] होता हुआ भारतवर्ष पहुँचा और मागेलन-अन्वेषण (Magellan's expeditions) के उत्तरजीवक[2] जलयान द्वारा पृथ्वी के गोलाभ का सर्वप्रथम परिनौकारोहण[3] करने मे सफल हुए। चित्र १ मे मागेलन का पथ प्रदर्शित किया गया है।

इस भॉति इस अल्पकाल मे पृथ्वी का लगभग आधा भाग खोजा जा सका। इस विषय मे यह मनोरजक घटना उल्लेखनीय है, कि सन् १५२१ मे प्रशात पार करते समय जब मागेलन ने विवृतसागर मे ध्वनीकरण (Sounding) का प्रयत्न किया और उसकी रज्जु सागर-नितल तक न पहुँच सकी, तब उसने इसका यह निष्कर्ष निकाला कि वह सबसे अधिक गहरे महासागर की खोज करने मे सफल हुआ।

सोलहवी और सत्रहवी शताब्दियो मे जो जलयात्राये की गई, उनसे विभिन्न महासागरो के पृष्ठ विस्तार का ज्ञान बढ़ा है। सागरपृष्ठ का तापक्रम, लवणता, तरगे, धाराये, ज्वारभाटा आदि का अध्ययन हुआ। अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे कैप्टन कुक ने प्रशात महासागर मे, कैप्टन फिप्स (Capt Phipps) ने आर्कटिक सागर मे और सन् १८४० ई० मे सर जोन रौस (Sir John Ross) ने अण्टार्कटिक सागर मे ध्वनीकरण की। केवल अत्यन्त गहरे भागो को छोड़कर इन सबके फल पर्याप्त रूप से यथार्थ थे।

योरप और अमेरिका के बीच मे विद्युत-सदाम (Electric Cable) की व्यवस्था के कारण भी महासागरीय अन्वेषण की उन्नति हुई है। सन् १८५० ई० के लगभग ब्रुक ने सागर-नितल के अध्ययन के लिये एक नवीन रीति की खोज की। इसमे रज्जु (Line) और नली (Tube) को नीचे ले जाने वाला गुरु-भार (Heavy-weight) सागर नितल पर पहुँचकर वहीं रह जाता है और नली नितल का निक्षेप भरकर ऊपर आ जाती है। इस नवीन रीति से अगाध सागरो मे बार-बार ध्वनीकरण की जाने लगी और अधिक यथार्थ फल प्राप्त होने लगे।

एजियन सागर मे अनेक अन्वेषणो के उपरात सन् १८४० के लगभग एडवर्ड फोर्बे (Edward Forbe) इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि महासागरो

1. Cape of Good hope
2 Survivers
3 Circumnavigation

मे जीव और पादप निश्चित गहराई तक ही पाये जाते हैं और जीवों की अपेक्षा पादप कम गहराई तक मिलते है। इनका कथन था कि जीव केवल ३०० फैदम की गहराई तक ही मिलते हैं। बाद मे माइकेल सार्स (Michael Sars) वायविल्ले थोमसन (Wyville Thomson) तथा डब्ल्यू० बी० कारपैण्टर (W. B. Carpenter) आदि अन्वेषकों ने योरप के अटलाण्टिक तट की खोज द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि जीव एक-दो मील की गहराई तक पाये जाते है।

यहाँ पर एक मनोरजक घटना उल्लेखनीय है। भूमध्यसागर मे एक समुद्रान्तर सदाम (Submarine Cable) को सुधारने के लिये जब जलपृष्ठ पर लाया गया, तब उसमे बहुत से जीव चिपटे हुये थे। स्पष्ट है, कि ये जीव सागर नितल मे उसी स्थान पर रहते होंगे जहाँ सदाम विद्यमान था। इस घटना के कारण लोगों की रुचि खोज की दिशा मे और भी अधिक बढ़ी।

परिणामस्वरूप जो अन्वेषण किये गये, उनमे सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य ब्रिटिश जलयान चैलेञ्जर (Challenger) का है। इसने सन् १८७२ और १८७६ के बीच मे पृथ्वी की परिक्रमा लगाकर महासागरीय-अन्वेषण किया। इस जलयान मे वैज्ञानिकों और विशेषज्ञों का एक दल था, जिसने विभिन्न गहराइयों मे जीव, पादप, निक्षेप, तापक्रम, घनत्व आदि प्रत्येक वस्तु का वैज्ञानिक, नियमित और क्रमबद्ध अध्ययन किया। महासागरीय ज्ञान-भण्डार मे चैलेञ्जर-रिपोर्ट का आज भी महत्वपूर्ण स्थान है।

पिछले पचास वर्षों मे बहुत से देशों ने महासागरीय अन्वेषण का स्तुत्य कार्य किया है। उत्तरी सागर और नार्वेजियन-सागर के अध्ययन के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन नियुक्त किया गया। इसके अतिरिक्त अनेक नगरों मे सामुद्र-प्रयोगशालायें (Marine Laboratories) स्थापित की गई जहाँ अन्वेषण का बहुत सा कार्य हुआ और हो रहा है।

२—अन्वेषण सम्बन्धी यन्त्र

इनमे प्रमुख ये हैं :—

१—ध्वनीकरण (Sounding)—अगाध सागर के अन्वेषण के लिये जो साधन अपनाये जाते हैं, उनमे ध्वनीकरण का यत्र मुख्य है। इससे गहराई ज्ञात की जाती है। चैलञ्जर के समय मे जो रीति अपनाई जाती थी, वह अत्यन्त सरल किंतु श्रमजनित और अशुद्ध थी। इस रीति मे रज्जु द्वारा भार सागर नितल तक ले जाया जाता था। बाद मे रज्जु का स्थान वीणा
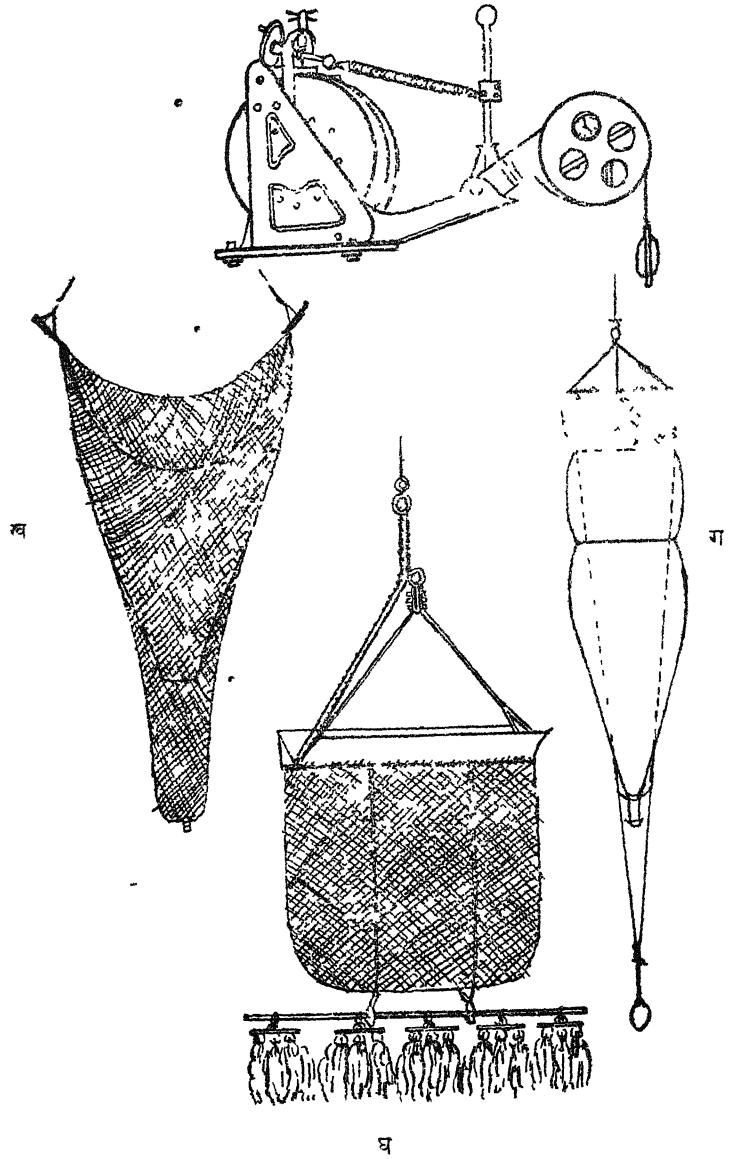
चित्र २—महासागरीय अन्वेषण सम्बन्धी यन्त्र

क = लूका का ध्वनीकरण (Sounding) यत्र

ख = ओटर का आनाय-जाल (Otter's Trawl)

ग = माइकैल सार्स का उदग्र कर्ष-जाल (Vertical Tow Net)

घ = चैलेञ्जर का निकर्ष-जाल (Challenger's Dredge)

तन्तु (Piano Wire) ने ले लिया। इस रीति से गहरे सागर के ध्वनीकरण में घण्टो लग जाते थे और यदि कही कोई व्यतिक्रम हो गया तो सहस्रो गज लम्बा बहुमूल्य तंतु व्यर्थ चला जाता था। अभिनव काल मे प्रतिध्वनि-ध्वनी-करण (Echo-Sounding) की नवीन रीति ज्ञात हुई है और अब इसी का प्रयोग होता है। इस नवीन यत्र की विस्तृत विवेचना यहाँ पर सम्भव नही है। इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि इस प्रणाली के अन्तर्गत जलयानो के तल मे एक प्राचीर (Diphragm) रहता है जिसमे विद्युत प्रदोलन किया जाता है। ये प्रदोलन (Oscillations) सागर-नितल तक जाते है और जब वहाँ से परिवर्तित (Reflect) होकर वापिस लौटते हैं तब एक प्रापण-प्राचीर (Receiving diaphragm) द्वारा ग्रहण और बिजली द्वारा आलेखित[1] किये जाते है। गहरे से गहरे सागर मे और अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियो मे भी इस प्रकार के ध्वनीकरण के लिये कठिनता से कुछ ही सेकण्ड लगते है।

२—**निकर्षण** (Dredging)—अधिक गहराई मे रहने वाले जीवो के अध्ययन के लिये यह रीति विशेष सुविधाजनक है।

निकर्ष Dredge)—अनेक फुट लम्बा लोह-ककाल होता है, जिसमे बहुत से थैले लगे रहते है। सागर नितल मे डालकर इसे घण्टो घसीटा जाता है। फिर पृष्ठ पर खींचकर इसकी अन्तर्वस्तु की परीक्षा की जाती है।

यह आशा करना कि इस रीति से अथाह सागर के जीवो का यथार्थ-बोध हो जायगा—भ्रममात्र ही है, क्योंकि तेज चलने वाले जीव तो तुरन्त भाग जाते हैं और फसते हैं तो केवल वे अभागे जन्तु जो इतने छोटे हैं कि जाल मे समा जाते हैं और जिनकी गति इतनी मन्द है कि वे तुरन्त भागने मे नितान्त असमर्थ हैं।

३—**कर्ष-जाल** (Tow-nets) और उदग्र-जाल (Vertical nets)—जलपृष्ठ पर तैरने वाले और बीच के प्रदेशों के जीवों और पादपो के फंसाने के लिये इनका प्रयोग किया जाता है।

४—**मथित्र** (Certifuge)—आधुनिक अन्वेषणो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि महासागर मे रहने वाले बहुत से जीव इतने सूक्ष्म है कि वे अच्छे से अच्छे रेशम के जालो की अक्षि (Mesh) से भी निकल जाते हैं। महासागर जल को मथकर ही ये जीव एकत्र किये जा सकते है। 'माइकेल सार्स'

---

1 Electrically record .

मे एक बड़ा मथित्र था, जिसमे १२०० घन सैण्टीमीटर सागरजल एक साथ मथा जा सकता था और इसमें छे काच लगे हुए थे। यह एक मिनट में ७०० से ८०० परिक्रमाये करता था और आठ मिनट के बाद सारे जीव काचो के तल मे एकत्र हो जाते थे। तब निर्मल जल गिरा दिया जाता था और निक्षेप को नोकदार पेंदी के छोटे काच में रखकर हस्त-मथित्र से पुनः मथते थे। इस प्रकार सारी अन्तर्वस्तु जो सैकड़ों घन सैण्टीमीटर सागर जल में विद्यमान थी, एक ही बूंद में एकत्र हो जाती थी। तदन्तर उसकी परीक्षा अणवीक्ष्य-यत्र (Microscope) से की जाती थी।

चित्र ३—प्रतिवर्ती तापमान

५—अगाध-सागरीय तापमान Deep Sea Thermometer)—अगाध सागरो का तापमान जानने के लिये सिक्स का अधिकतम् एवं न्यूनतम तापक्रम- मापक (Six's Maximum and Minimum Thermometer) सर्वप्रथम प्रयोग मे लाया गया। चैलेञ्जर के अन्वेषण-काल मे मिलर (Miller) तथा कसैला (Casella) द्वारा संशोधित रूप काम में लाया गया। यह तापमान विवृत सागर के लिये जिनमे गहराई के साथ तापक्रम घटता है, सन्तोषजनक है। ध्रुवीय प्रदेशो और कुछ समावृत सागरो मे भिन्न तापक्रमो के स्तर विद्यमान है अर्थात् गहराई के साथ तापक्रम कभी घटता है, तो कभी बढ़ता है। ऐसी दशा मे सिक्स का तापमान असफल सिद्ध होता है। अतएव उसके स्थान पर एक नवीन तापमान का आविष्कार किया गया। इस तापमान को उलटा जा सकता है। इससे किसी भी गहराई का तापक्रम लिया जा सकता है। इस प्रतिवर्ती-तापमान (Reversing thermometer) मे नैग्रैट्टी (Negretti) जम्बा (Zambra) तथा रिक्टर (Richter) ने महत्वपूर्ण सपरिवर्तन और शोधन किये है।

चित्र ४—तापमान सहित प्रतिवर्ती जलकूपी
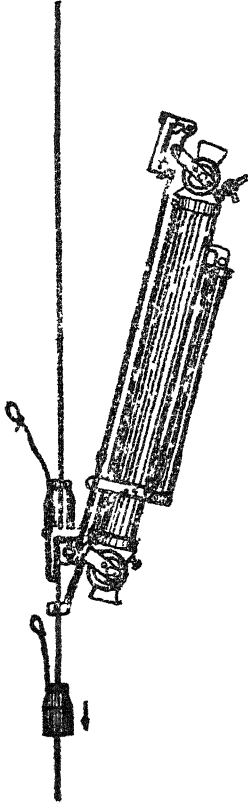
६—**जल कूपियाँ** (Water-bottles)—इनका प्रयोग सागरके किसी विशेष स्तर का जल लाने के लिये किया जाता है। हाल ही में एक प्रतिवर्ती जलकूपी (Reversing water-bottle) प्रयोग में लाई गई है, जिसमें तापक्रममापक भी रखा जा सकता है। इस प्रकार तापक्रम-वाचन और जल न्यादर्श सञ्चयन दोनों कार्य एक साथ हो जाते हैं।

७—**भामान** (Photometer)—महासागरों में सूर्यप्रकाश कितनी गहराई तक जाता है—यह अध्ययन करने के लिये अनेक प्रकार के भामानयन्त्र समय समय पर काम में लाये गये हैं।

चित्र ५—हाँलैण्ड-हैन्सन का भामान

८—**प्रवाह-मान** (Current-Measurer)—जल प्रवाहों का गति-वेग और दिशा जानने के लिये अनेक युक्तियाँ काम में लाई गई हैं। पृष्ठ-प्रवाह के अध्ययन के लिये तैरने वाली वस्तुओं जैसे हिमशिला (Ice-berg) प्रवाह कूपी (Drift-bottle) आदि से लाभ उठाया जाता है।

चित्र ६—तरंगमन
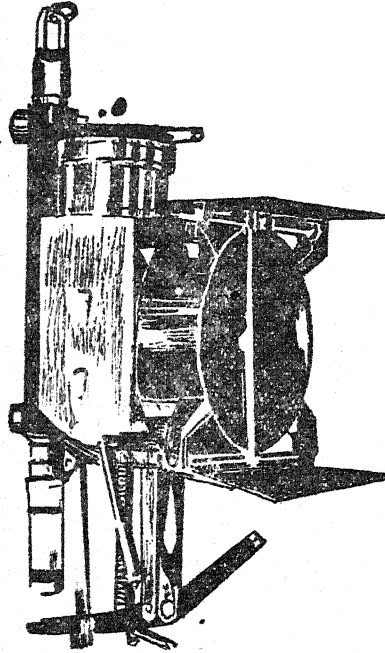
अधःस्थ-धाराओं (Under-currents) के प्रत्यक्ष मापन के लिये प्रवाहमान (Current Measurer) काम में लाया जाता है। इस यंत्र की रचना जटिल है। इसके आधुनिक रूप का श्रेय वी० डब्ल्यू० ऐकमैन (V.W.Ekman) को है।

९—तरलमान (Hydro-meter)—इससे सागर जल का घनत्व निर्धारित किया जाता है। यह साधारणतः काँच अथवा धातु का बेलना होता है, जो पानी में तैरता है।

१०- घनत्वमान (Densi-meter)—सागरजल के विभिन्न न्यादर्शों के घनत्व मापन के लिए श्री जे० जे० मैनलै ने (J. J. Manley) ने भिन्नक घनत्वमापक (Differential Densimeter) का आविष्कार किया है। इसकी रचना जटिल है।

चित्र ७—तरलमान चित्र ८—घनत्वमान
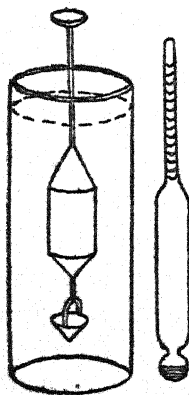
इसका निर्माण इस उद्देश्य से हुआ था कि इसे सागरतट पर स्थित समुद्र-प्रयोग-शालाओं में प्रयोग में लाया जा सके। अभिनव काल में इस यन्त्र में इतने अधिक संशोधन और परिवर्तन किये गये हैं कि अब इसे सरलता से जलयानों में भी उपयोग कर सकते हैं।

द्वितीय परिच्छेद

महासागर-जल के सामान्य गुण

१—क्षेत्रफल तथा गहराई

पृथ्वी के समस्त धरातल का क्षेत्रफल प्रायः बीस करोड़ वर्ग मील
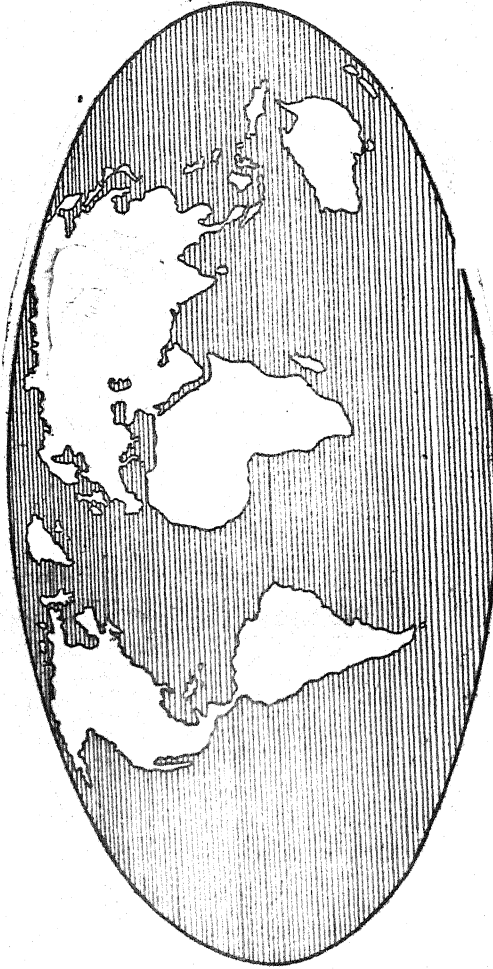
चित्र ३—भूपृष्ठ पर जल का विस्तार

है। इसका लगभग ७१ प्रतिशत अंश जल द्वारा आच्छादित है; शेष २६

प्रतिशत स्थल है। महासागरो में विद्यमान समस्त जल के आयतन की महत्ता का अनुमान इस प्रकार लगाया जा सकता है, कि यदि समस्त पृथ्वी को समतल कर दिया जावें, तो भी उस पर दो मील ऊंचा जल का स्तर रहेगा।

सर जॉन मरे के अनुसार महासागरो की गहराई इस प्रकार है :—

गहराई	समस्त पृथ्वी का प्रतिशत
० फुट से ६०० फुट तक	५
६०० फुट से ३००० फुट तक	३
३००० फुट से ६००० फुट तक	२
६००० फुट से १२००० फुट तक	१५
१२००० फुट से १८००० फुट तक	४१
१८००० फुट से अधिक	५

२—पृष्ठ की प्रकृति

महासागर पृष्ठ, जो स्थल की अपेक्षा इतना अधिक समतल है कि उसे सागर-समतल (Sea-Level) की संज्ञा दी गई है, वास्तव में वक्राकार है और पृथ्वी की आकृति के सदृश है। महाद्वीपों की वृहद स्थल-राशि महासागर जल को अपनी ओर आकृष्ट करती है, जिसके कारण महासागर पृष्ठ कहीं ऊंचा है, तो कहीं नीचा और सर्वत्र पृथ्वी के गोलाभ के समान नहीं है। यह आकर्षण बहुत कुछ स्थल की मात्रा और घनत्व पर निर्भर है। आगणन द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि हिमालय की आकृष्टि के कारण हिन्द महासागर का जल बंगाल की खाड़ी के उत्तरी भाग में लंका तट की अपेक्षा ३०० फुट अधिक ऊंचा रहता है। इसी प्रकार उ० अमेरिका के पूर्वी तट का जल-पृष्ठ पश्चिमी तट की अपेक्षा नीचे रहता है। इसका कारण रॉकी पर्वत श्रेणी है।

३—संरचना

महासागर जल का ३.५ प्रतिशत भाग घुले हुए खनिजो से रचित है। इन खनिजो का तीन-चौथाई भाग सोडियम क्लोराइड (Sodium Chloride) है। मैग्नेशियम क्लोराइड (Magnesium Chloride), कैल्शियम सल्फेट (Calcium Sulphate) तथा पोटेशियम सल्फेट (Potassium Sulphate) भी विद्यमान हैं (विशेष विवरण के लिये सागर की लवणता का प्रकरण देखिये) और इनके अतिरिक्त अन्य पदार्थ भी नगण्य मात्रा में रहते हैं, यहां तक कि सोना और चांदी के यौगिक (Compounds) भी

मिलते हैं। यदि महासागरों का समस्त लवण एकत्र किया जावे तो वह समस्त पृथ्वी पर ४०० फुट मोटी पर्पटी बनाने में समर्थ होगा। इससे महासागरों में विद्यमान लवण की मात्रा का अनुमान किया जा सकता है।

४—घनत्व तथा दबाव

घुले हुए खनिजों के कारण सागर-जल का घनत्व अलवण-जल (Fresh Water) की अपेक्षा अधिक होता है। महासागर-पृष्ठ के जल का औसत घनत्व १.०२६ है। वर्षामय उष्ण कटिबन्ध में और बड़ी नदियों के मुहानों में, जहां अलवण जल की अपरिमित राशि मिलती रहती है, घनत्व औसत से कम है। दूसरी ओर शुष्क व्यापारिक वायु के कटिबन्धों में जैसे लालसागर अथवा भूमध्यसागर में, जहां वाष्पीकरण अधिक होता है, घनत्व औसत की अपेक्षा अधिक है।

मीलों ऊंचे जल के स्तर के भार के कारण सागर-नितल में दबाव बहुत रहता है। एक मील की गहराई में प्रत्येक वर्ग इञ्च पर एक टन भारी जल-स्तम्भ का दबाव रहता है। महासागरीय अथाहों में प्रतिवर्ग इञ्च दबाव लगभग छै टन होता है।

५ वर्ण (Colour) एवं भास्मा (Phosphorescence)

(अ) वर्ण

नीला और हरा जल

महासागर जल सामान्यतः नीला होता है किन्तु कहीं कहीं हरा वर्ण भी पाया जाता है। महासागरों के उष्ण भागों में सबसे अधिक नीला वर्ण पाया जाता है—जैसे गल्फ-स्टीम में। दूसरी ओर शीतल सागरों में हरा जल पाया जाता है, जैसे आर्कटिक महासागर में। कुछ तटों पर भी हरा जल पाया गया है। वर्णों के इस विभेदन का सन्तोषजनक स्पष्टीकरण अभी तक नहीं हो सका है।

आकाश के वर्ण से सम्बन्ध

हम अनुमान करते हैं कि महासागर जल की नीलिमा आकाश के परावर्तन (Reflection) के कारण है। निस्सन्देह यह एक कारण है भी; किन्तु जब हम यह देखते हैं कि बदली छायी रहने पर भी उष्ण महासागरों के जल का वर्ण नीला ही रहता है और दूसरी ओर प्रखर आतप में भी आर्कटिक जल हरा ही रहता है, तब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वर्णों-विभेदन का केवल यही कारण नहीं हो सकता।

शुद्धता से सम्बन्ध

काच की लम्बी परखनली मे भरे हुए आसुत जल (Distilled Water) के अवलोकन द्वारा यह ज्ञात होता है कि उसका स्वाभाविक वर्ण नीला है, किन्तु यदि उसमे प्रागारिक (Organic) अथवा अप्रागारिक (Inorganic) अशुद्धियो का समावेश कर दिया जावे, तो उसका वर्ण हरा हो जाता है। इससे तो यही निष्कर्ष निकलता है कि नीले जल के महासागर अत्यन्त शुद्ध हे और हरे जल के महासागरो मे अशुद्धियो का बाहुल्य है। सागरजल मे प्रवेश करते समय स्वेत-प्रकाश व्याभगित (Diffract) होता है और लघुतम दैर्घ्य (Shortest wave length) की प्रकाश-तरगे [नील (Blue), निर्नील (Indigo) एव नीललोहित (Violet)] प्रविक्षेपित (Scatter) होकर परावर्तित (Reflect) होती हैं, जिसका परिणाम नीला वर्ण है। यदि अशुद्धियो की मात्रा अधिक हुई तो स्थूल हरी तरगे भी परावर्तित होती हे और वर्ण-निर्धारण मे प्रमुख रहती हैं।

नदियो से सम्बन्ध

सागरतट के निकट जल के हरे होने का एक कारण निलम्बित अवसाद (Suspended Sediments) हो सकता है, जो स्थल से किसी भाति वहा तक पहुँच गया हो। कुछ आंशिक समावृत सागरो (Partially enclosed seas)मे जैसे बाल्टिक सागर मे अवसाद के कारण जल विवर्णित (Discoloured)हो गया है। बहुत सी पकमयी सरिताओ(जैसे मिसीसिपी) के मुहाने के निकट सागर बहुत दूर तक विवर्णित हो गया है। चीन के पीले-सागर (Yellow Sea) के नामकरण का भी यही रहस्य है। प्रवृत्य-प्रविक्षेपण (Selected Scattering) तथा स्वेत-प्रकाश की कुछ विशेष तरगों का परावर्तन ही सभवतः सागर जल के नीले और हरे वर्ण का कारण है; हा, आकाश के वर्णो का परावर्तन किसी अश तक इसमे अवश्य सहायक होता है।

जीवों से सम्बन्ध

प्रायः सभी महासागरो के जल मे सूक्ष्म एव अणवीक्ष्य (Microscopic) जीव रहते हैं। सभव है, इन जीवों की सख्या और प्रकृति के अनुसार महासागर जल का वर्ण कहीं नीला है तो कही हरा। यदि ये जीव उष्णजल की अपेक्षा शीतल जल मे अधिक हों, जैसा कि अनेक प्रमाणों से

सिद्ध होता है, तो हरित रश्मियों का प्रबृत्य-विक्षेपण स्पष्ट हो जाता है। लाल सागर का वर्ण उसमें विद्यमान प्रचुर सूक्ष्म लाल आयका (Reddish algae) के कारण ही है।

लवणता (Salinity) और घुली हुई गैसों (Dissolved gases) से सम्बन्ध

वर्ण-विभेदन के दो और कारण हो सकते हैं—लवणता और घुली हुई गैसों की मात्रा में अन्तर। शीतल जल में उष्ण जल की अपेक्षा लवणता कम होती है किन्तु घुली हुई गैसों की मात्रा अधिक। उथले जल में नितल के कारण हुआ परावर्तन भी किन्हीं अंशों में वर्ण-निर्धारण के लिये उत्तरदायी है। प्रवाली शृंखलाओं के क्षेत्रों में सामान्य निनील-नील (Indigo-blue) वर्ण तथा महासागरों के मध्य में सागर नितल के विभिन्न भागों द्वारा परावर्तित नील-लोहित और हरा वर्ण बड़ा ही सुन्दर लगता है।

(ब) भासा (Phosphorescence)

कभी कभी, विशेषकर शान्त रजनी में, महासागर जल रजत-रश्मियों द्वारा प्रज्वलित हो उठता है, जिसे हम भासा कहते हैं। महासागर के पृष्ठ जल में ऐसे अगणित सूक्ष्मतम अणुवीक्ष्य जन्तु विद्यमान हैं, जो इस अनोखे प्रकाश का स्फुलिङ्ग (Spark) उत्पन्न करने में समर्थ हैं और इस विषय में उनकी शक्ति समयानुसार घटती-बढ़ती रहती है। यही कारण है कि किन्हीं रात्रियों में महासागरजल प्रकाश से सर्वथा उन्मुक्त रहता है और किन्हीं रात्रियों में प्रत्येक तरग के साथ नवीन रजत रश्मि प्रज्वलित हो उठती है। कभी कभी जब नौकारोहण द्वारा जलपृष्ठ में विक्षोभ होता है, तो नौका के पीछे पीछे भासा की चमक द्वारा एक छोटा सा पश्च-पथ बनता जाता है।

६—आलगत्व (Viscosity)

महासागर जल का आलगत्व महत्वपूर्ण है क्योंकि उस पर जीवों का प्लावन और अनेकानेक प्राणिकीय वृत्त (Biological phenomena) निर्भर हैं। आलगत्व का विभेदन मुख्यतः तापक्रम के विभेदन पर निर्भर है। लवणता की सामान्य सीमाओं (३० से ३५ प्रति सहस्र) के अन्दर लवणता-विभेदन के कारण आलगत्व के विभेदन नगण्य हैं। आलगत्व तापक्रम की वृद्धि के साथ घटता जाता है, जैसा कि निम्नांकित तालिका द्वारा स्पष्ट है :—

तापक्रम	आलगत्व ३२°फ पर अलवण जल = १००	
	लवणता ३० प्रति सहस्र	लवणता ३५ प्रति सहस्र
३२°फ	१०२	१०३
४१°फ	८७	८८
५०°फ	७५	७६
५६°फ	६६	६६
६८°फ	५८	५९
७७°फ	५२	५३
८६ फ	४७	४७

तृतीय परिच्छेद—

महासागरो की उत्पत्ति

कृपया 'भूसैद्धान्तिकी' का द्वितीय परिच्छेद देखिये।

चतुर्थ परिच्छेद—

महासागर नितल का स्थायित्व

कृपया 'भूसैद्धान्तिकी' का द्वितीय परिच्छेद देखिये।

पञ्चम परिच्छेद—

महाद्वीपीय प्रवाह

कृपया 'भूसैद्धान्तिकी' का पञ्चम परिच्छेद देखिये।

षष्ठम परिच्छेद

महासागर नितल की आकृति

१. उच्चतामितीय वक्र (The Hypsographic Curve)

यह वक्र उच्चतम गिरि-शिखर से लेकर अधम महासागरीय—अथाह तक के क्रमिक समतल प्रदर्शित करता है।
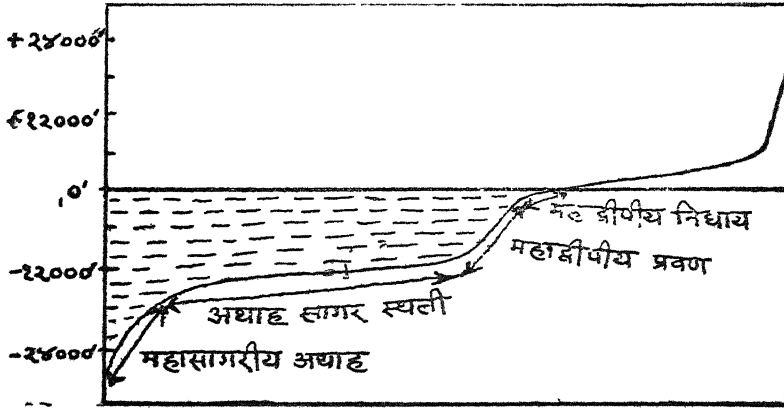
चित्र १०—उच्चतामितीय वक्र (Hypsographic Curve)

२. समुद्रान्तर भौम्याकार Submarine Topography)

जैसा कि उच्चतामितीय वक्र के रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट है, महासागर—नितल को हम चार भागों मे विभाजित कर सकते हैं।—

(१) महाद्वीपीय निधाय (Continental Shelf)

यह स्थल का स्पर्श करता है और इसका प्रवण (Slope) अत्यन्त मन्द (Gentle) है। यह ६०० फुट तक की गहराई तक फैला हुआ है। इसका निर्माण अपक्षरण (Erosion) और निक्षेपण (Deposition) द्वारा हुआ है। नदियों द्वारा लाया गया अवसाद (Sediments) इसमें ही एकत्र होता है। ६०० फुट की गहराई तक सूर्यप्रकाश का कुछ अंश

प्रविष्ट हो सकता है, अतएव इस भाग मे सागरीय वनस्पति पाई जाती है और मछली आदि जल-जन्तु भी मिलते हैं। समस्त पृथ्वी का ५ प्रतिशत भाग महाद्वीपीय-निधाय है।

(२) महाद्वीपीय प्रवण (Continental Slope)

यह भाग महाद्वीपीय निधाय के ठीक नीचे है। इसका प्रवण प्रपाती (Steep) है और इसका विस्तार लगभग ६०० फुट की गहराई से लेकर १२००० फुट की गहराई तक है। केवल सूक्ष्म मृत्तिका (Fine Clay) यहा तक पहुँचती है।

(३) अथाह सागर स्थली (Deep Sea Plain)

महासागर—नितल का अधिकतर भाग इसी प्रकार का है। यह चौड़ा और प्रायः समतल क्षेत्र है, जिसकी गहराई १२००० फुट से १८००० फुट तक है। इसके प्रवण अत्यन्त मन्द हैं। नदियों द्वारा लाया गया अवसाद यहा तक नहीं पहुँचता; इसके निक्षेप (Deposits) सूक्ष्म पंक (Fine Mud) और सागरपृष्ठ पर रहनेवाले और मरनेवाले जीव-जन्तुओं की अस्थियों और कर्परों (Shells) मे बने हैं। एक प्रकार की लाल मृत्तिका (Red Clay), जो सम्भवतः ज्वालामुखीय उद्भव की है, वायु द्वारा सागर तक परिवाहित होती है और डूबकर अथाह सागर स्थली तक पहुँच जाती है और उसके निक्षेप के निम्नतम स्तर का निर्माण करती हैं। भू पृष्ठ का ४१ प्रतिशत भाग अथाह सागर स्थली है।

(४) महासागरीय अथाह (Oceanic Deeps)

ये महासागर के सबसे अधिक गहरे भाग हैं। महासागर नितल मे विस्तृत कुओं और घाटियों की तरह ये विद्यमान है; नितल के अन्य भागो की अपेक्षा इनका क्षेत्रफल बहुत कम है। अधिकतर ये महासागरों के मध्यभाग मे नहीं पाये जाते वरन स्थलखण्डों के समीप ही मिलते हैं। इस प्रकार के चार महत्वपूर्ण निम्नन प्रशान्त महासागर मे और दो अन्ध महासागर मे पाये गये हैं। सबसे गहरा अथाह फिलिपाइन द्वीप के निकट स्थित है।

अन्य विषमतायें

अपेक्षाकृत लघु आकार की अन्य विषमतायें जैसे लम्बें और सकरे

उभार, विस्तृत उभार, ज्वालामुखीय शकु आदि अधिकतर अथाह सागर स्थली पर पाई जाती हैं।

महासागर-नितल के रूपधेयो की उत्पत्ति

महासागर नितल के रूपधेय सामान्यतः निम्नलिखित क्रियाओं से बनते है :—

(१) समुद्वर्तन (Diastrophism) अथवा भूपर्पटी के कुछ भाग का ऊपर उठ जाना अथवा नीचे धँस जाना।

(२) ज्वालामुखी की क्रिया।

(३) निक्षेपण।

अपवाद केवल महाद्वीपीय-निधाय (Continental Shelf) हैं। जिनमे अपक्षरण मे भी कुछ रूपधेय बन जाते हैं।

महासागर मे ज्वालामुखी की क्रिया से अनेक प्रकार की आकृतिया बन जाती हैं। बहुत सी ज्वालामुखीय शकु (Volcanic cones) सागर-समतल के ऊपर हैं और बहुत सी नीचे। इनके अतिरिक्त समुद्र के गर्भ मे अनेक लावा के पटार एव अन्य ज्वालामुखीय निक्षेप भी पाये जाते हैं।

समुद्रान्तर भौम्याकार की रचना मे ज्वालामुखी की अपेक्षा समुद्वर्तन (Diastrophism) का कार्य महत्वपूर्ण है। सभी सागर-द्रोणिया धँसे हुए क्षेत्र हैं। महाद्वीपीय प्रवण कहीं विभंग-रेखा (Fault Line) का द्योतक है तो कहीं नितल के विभजन (Warping) से बन गया है। सागर-नितल के विस्तृत पठार ऐसे अश हैं, जिनपर भजन की क्रिया का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। समुद्रान्तर पर्वत-श्रेणिया तथा घाटिया नितल के भजन की द्योतक हैं। नितल की आकृति को प्रभावित करने वाली ये क्रियाये अभी भी गति-शील है।

सागर नितल मे निक्षेप सदैव एकत्र होते रहते है, पर इतना अवश्य है कि स्थलीय निक्षेप अगाध सागर तक नहीं पहुँच पाते, दूसरी ओर महाद्वीपों के निकट विशेषकर महाद्वीपीय-निधाय मे स्थलीय-निक्षेप अत्यन्त महत्वपूर्ण है। महाद्वीपीय-निधाय मे ये निक्षेप समतलन (Gradation का कार्य करते हैं अर्थात् वे निचले भागो को भरकर समतल कर देते है। यही नहीं, स्वय निधाय का अधिकाश भाग स्थलजन्य निक्षेप से बना है। बगाल की खाड़ी मे गगा के डेल्टा का आगे बढ़ना निक्षेपण का ही तो फल है।

६—अन्ध और प्रशांत महासागरों के नितल

अन्ध और प्रशान्त महासागरों के पूर्व-पश्चिम प्रच्छेद (Sections) क्रमशः चित्र ११ तथा १२ में प्रदर्शित किये गये हैं।

चित्र ११—अन्ध महासागर के नितल का प्रच्छेद

अन्धमहासागर के नितल के प्रच्छेद द्वारा स्पष्ट है कि :—

१ – इसमें महाद्वीपीय निधाय अत्यन्त स्पष्ट हैं।

२—इसके मध्य में एक उभार है, जिसे हम मध्य अन्धमहासागरीय कूट (Central Atlantic Ridge) कहते हैं।

३—इसमें महासागरीय अथाह कम हैं।

चित्र १२—प्रशांत महासागर के नितल का प्रच्छेद

प्रशांत महासागर के नितल के प्रच्छेद से हमें ज्ञात होता है कि—

१—इसमें महाद्वीपीय निधाय का विकास अत्यन्त क्षीण और अस्पष्ट है।

२—अंधमहासागर की भाँति इसमें उभार नहीं हैं।

३—इसमें महासागरीय अथाह अपेक्षाकृत अधिक हैं और वे॰द्वीपों और पठारों के निकटस्थ हैं।

अब हम अन्ध और प्रशान्त महासागरों के नितलों की विस्तृत विवेचना करेंगे:—

अन्ध महासागर

आकृति

अंध महासागर की आकृति बड़ी ही अनियमित (Irregular) है। दक्षिण में जहां यह अण्टार्कटिक सागर से मिलता है—वहां इसकी चौड़ाई काफी अधिक है किंतु भूमध्य रेखा के निकट (द० अमरीका और अफ्रीका के

बीच में) यह संकरा हो गया है ; उत्तर की ओर अफ्रीका और उ० अमरीका के बीच में पुनः चौड़ा हो गया है किंतु और उत्तर में चौड़ाई घटती चली गई है। अधिक उत्तर में जहां यह आर्कटिक सागर से मिलता है, चौड़ाई फिर काफी हो गई है।

तटीय सागर

अटलांटिक महासागर के दोनों किनारों पर अनेक सागर हैं, जो उससे यद्यपि संकरे जल-विभागों से जुड़े हुए हैं, तथापि अन्य अर्थों में पूर्णतः
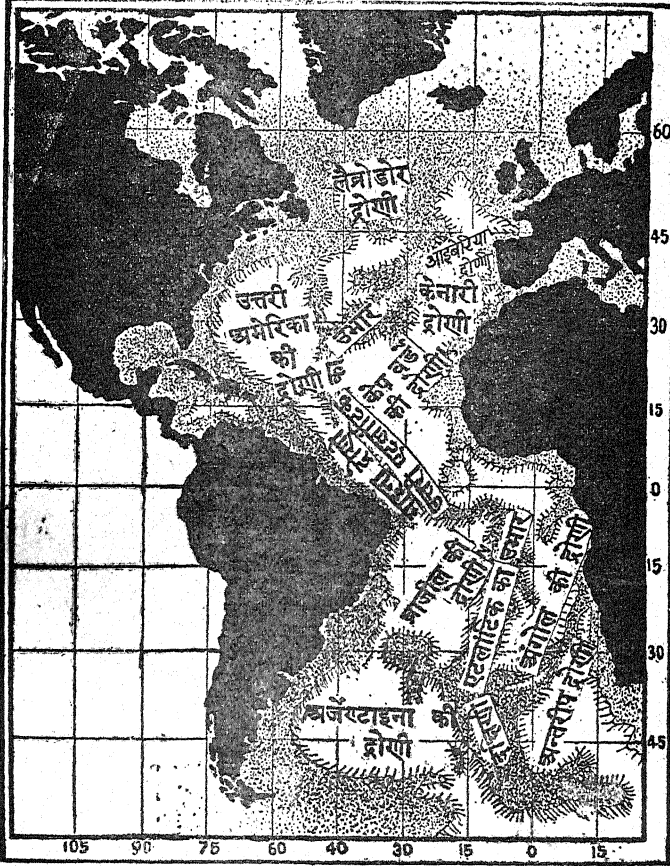
चित्र १३—अन्ध महासागर का नितल

पृथक है। उत्तरी अटलांटिक मे पश्चिम की ओर बैफिन और हडसन की खाड़िया है और पूर्व मे उत्तरी सागर और बाल्टिक सागर हैं। ये सभी उथले हैं।

मध्य अध महासागर मे पश्चिम की ओर मैक्सिको की खाडी और कैरिबियन सागर है तथा पूर्व मे भूमध्य सागर है। ये सभी गहरे है।

गहराई और समुद्रान्तर कूट एव द्रोणियां

अटलाण्टिक की औसत गहराई दो मील से भी अधिक है। इसका सबसे अधिक गहरा भाग पोर्टो रिको (Porto Rico) के उत्तर मे विद्यमान है। इसकी गहराई ४५६० फैदम है।

जैसा कि पूर्व मे उल्लेख हो चुका है, अटलाण्टिक सागर के पूर्वी और पश्चिमी दोनों ही किनारो मे महाद्वीपीय निधाय अत्यन्त स्पष्ट है।

इस महासागर मे अथाह सागर स्थली की गहराई सर्वत्र समान नही है। इसके बीच मे एक उभार है जिसे मध्य अन्धमहासागरीय कूट (Central Atlantic Ridge) कहते है। उत्तरी अटलॉटिक मे इसे डॉलफिन कूट (Dolphin Ridge) कहते है और दक्षिणी अटलान्टिक मे चैलेन्जर कूट (Challenger Ridge)। भूमध्य-रेखीय भागों को छोडकर इस मध्य अन्धमहासागरीय कूट का कोई भी भाग २००० फैदम से अधिक गहरा नहीं है। अजोर्स (Azores), अस्कैनशियन (Ascension), त्रिस्तन द कुन्हा (Tristan da Cunha) आदि द्वीप इसी पर स्थित है।

अटलांटिक महासागर मे अनेक द्रोणिया विद्यमान है। इनमे प्रमुख ये हैं :—

(१) **लैब्रेडोर की द्रोणी**—यह लैब्रेडोर के पूर्व मे स्थित है।

(२) **उत्तरी अमेरिका की द्रोणी**—इसे पश्चिमी भारतीय द्रोणी भी कहते है। यह संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के पूर्व मे विद्यमान है।

(३) **गायना की द्रोणी**—यह दक्षिण अमेरिका के गायना-तट के निकट स्थित है। वास्तव में यह उत्तरी अमेरिका की द्रोणी का दक्षिणी अंश मात्र है। अटलांटिक महासागर की सबसे अधिक गहराई इसी मे मिलती है।

(४) **ब्राजील की द्रोणी**—यह ब्राजील के पूर्वी तट पर विद्यमान है। इसके बीच मे एक बड़ा गड्ढा है।

(५) **अर्जेण्टाइना की द्रोणी**—यह अर्जेण्टाइना के पूर्वी तट पर स्थित है। इसमे एक महासागरीय अथाह (Oceanic Deep) है।

(६) **आइबेरिया की द्रोणी**—यह पुर्तगाल के पश्चिम मे है।

(७) **केप वर्डे की द्रोणी**—यह अफ्रीका महाद्वीप के उत्तर-पश्चिम मे है।

(८) **कनारी की द्रोणी**—यह द्रोणी आइबेरिया की द्रोणी और केप वर्डे की द्रोणी के मध्य मे स्थित है।

(९) **अगोला की द्रोणी**—यह ब्राजील की द्रोणी के ठीक सामने अफ्रीका के पश्चिम मे स्थित है।

(१०) **अन्तरीप की द्रोणी**—यह अफ्रीकाके द प मे अर्जैन्टाइना की द्रोणी के ठीक सामने स्थित है। उत्तम आशा अन्तरीप के निकट होने के कारण इसका यह नाम पड़ा।

अन्ध महासागर मे प्रशात की अपेक्षा महासागरीय अथाह (Oceanic Deeps) कम पाये जाते है।

प्रशान्त महासागर

आकृति

अटलाण्टिक की अपेक्षा प्रशान्त की सीमाये अधिक नियमित हैं। इसकी आकृति त्रिभुज जैसी है। अण्टार्कटिक सागर इस त्रिभुज के आधार पर स्थित है और शीर्ष उत्तर मे है। प्रशान्त महासागर की सर्वाधिक चौड़ाई नितान्त, दक्षिण मे न होकर भूमध्य-रेखा के निकट है।

तटीय सागर

अटलाण्टिक की भांति इसके किनारों पर विशेषकर पश्चिमी तट पर अनेक सागर विद्यमान है, जिनका इससे बहुत कम सम्बन्ध है। उत्तरी प्रशान्त मे ओखोट्स्क सागर जापान सागर, पीला सागर ऐसे ही सागर है। ये अपेक्षाकृत उथले है। मध्यचीन के तट पर चीन सागर, कैलेबेस सागर और मलाया के निकट अनेक ऐसे सागर है, जिनके गहरे भाग प्रशान्त के समान है।

गहराई और समुद्रान्तर तट एव द्रोणियाँ

प्रशान्त की औसत गहराई ढाई मील है। फिलिपाइन द्वीप समूह के निकट यह सबसे अधिक गहरा है। यहा कुछ अथाह ६००० दम गहरे पाये गये हैं।

यदि किनारो पर स्थित सागरों का विचार न किया जाय तो यह ज्ञात होता है कि प्रशान्त महासागर मे महाद्वीपीय निधाय या तो बहुत सङ्कीर्ण है या है ही नही, जिससे तटो पर प्रबल बडे प्रपाती है।

अटलाण्टिक की भाति प्रशान्त मे उसे दो भागो मे विभाजित करनेवाला कोई भी समुद्रान्तर कूट नहीं है, किन्तु अथाह सागर स्थली अनेक स्थानो पर समुद्रान्तर पठारो के रूप मे ऊपर उठ गई है। इन पठारो पर अनेक द्वीप-समूह स्थित हैं—विशेषकर दक्षिणी प्रशान्त मे।

प्रशान्त के पूर्वी भाग मे मध्य अमेरिका से आरम्भ होकर द० पश्चिम की दिशा मे न्यूजीलैण्ड के दक्षिण मे अटार्कटिका तक एक समुद्रातर कूट चला गया है। इसे पूर्वी प्रशात का कूट कहते है। ये २००० फैदम से भी कम गहरा है। यह प्रशान्त के मध्यवर्ती निम्नन को द. अमरीका के पश्चिमी तट पर स्थित गहरी द्रोणियो से पृथक करता है। उत्तरी प्रशान्त के दक्षिणी भाग मे कैरोलियन का उभार है, जिस पर कैरोलियन के द्वीप स्थित हैं। सौलोमन का उभार सौलोमन द्वीप समूह के निकट है। इसकी गहराई २५०० फैदम है। आस्ट्रेलिया के पूर्व मे भी प्रशात महासागर बहुत उथला है। एक उभार आस्ट्रेलिया के द० पू० से लेकर अण्टार्कटिका तक चल गया है।

प्रशात मे अनेक ज्वालामुखीय द्वीप हे। इसकी एक विशेषता प्रवाली शृंखलाओ की बहुलता है। एक अन्य गुण द्वीपो के चाप की प्रचुरता भी है।

अधिकाश महासागरीय अथाह स्थलखण्डो के निकट स्थित है, उदाहरण के लिये टसकैरोरा अथाह (Tuscarora Deep) जापान के तट पर स्थित हे तथा अटाकामा अथाह (Atacama Deep) द० अमेरिका के पश्चिमी तट पर स्थित है। समुद्रान्तर पठारो के निकट भी कुछ अथाह वर्तमान है।
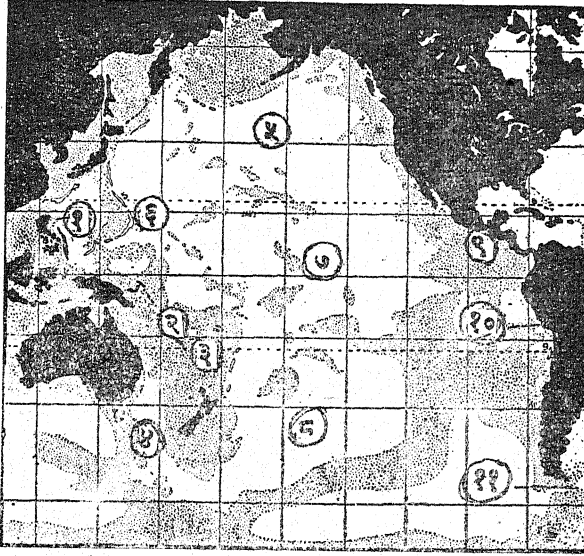
चित्र १४—प्रशांत महासागर का नितल

द्रोणियों के अध्ययन की दृष्टि से प्रशांत महासागर के तीन भाग किये जा सकते हैं :—

१—पश्चिमी प्रशांत—इसकी मुख्य द्रोणियां ये हैं—**फिलीपाइन द्रोणी** (१)* **कैरोलिन द्रोणी, सोलोमन द्रोणी, कोरल द्रोणी, न्यू हैब्राइडस द्रोणी,** (२)* **फीजी द्रोणी** , (३)* **पूर्वी आस्ट्रेलिया की द्रोणी** (४)*

२—मध्य प्रशांत—इसमें निम्नलिखित द्रोणियां उल्लेखनीय हैं :—

उत्तरी प्रशान्त की द्रोणी, (५)* **मैरियाना की द्रोणी,** (६)* **मध्य प्रशांत की द्रोणी** (७)* **तथा दक्षिणी प्रशांत की द्रोणी** (८)* **(टौंगा-कर्माडेक का निम्नन तथा वायर्ड का अथाह इसी के अन्तर्गत हैं)**

३—द० पू० प्रशांत (अर्थात पूर्वी प्रशांत के कूट के पूर्व का भाग) इसमें स्थित मुख्य द्रोणियां ये हैं—**ग्वाटेमाला की द्रोणी** (९)* **पेरू की द्रोणी** (१०)* तथा **प्रशान्त-अण्टार्कटिक द्रोणी** (११)*

---

*चित्र १४ के अंकन

हिन्द महासागर

१—नितल के रूप धेय (Bottom Relief)

(१) समुद्रान्तर कूट (Submarine ridges)

प्रायद्वीपीय भारत और लङ्का के बीच मे आ जाने से उत्तरी हिंद महा-सागर दो भागो मे बँट जाता है—पश्चिम में अरब सागर और पूर्व में बङ्गाल की खाडी। पूर्वी बङ्गाल की खाडी मे अण्डमान और निकोबार द्वीपों की वक्र श्रखला तथा भारत के दक्षिण-पश्चिम मे लकादीव, मालदीव एवं चागोंज द्वीपो की सीधी रेखा समुद्रान्तर पर्वत श्रेणियो की द्योतक है। इन दोनो मे मुख्य भेद यह है कि अण्डमान-निकोबार द्वीप-समूह समुद्रातर पर्वत श्रेणियो के उच्चतम शिखर है किंतु लकादीव-मालदीव-चागोज श्रखला पूर्णतः प्रवाल द्वारा रचित है, जिसका विकास अधिक गहराई मे स्थित पर्वत-शिखरों पर हुआ है, जिन्हे उसने सर्वत्र ढक लिया है। ससार की कुछ सर्वोत्कृष्ट प्रवाल्याये (Atolls) एव उपह्रद (Lagoons) इसमे विद्यमान हैं।

अण्डमान-निकोबार द्वीप-श्रखला के पश्चिम मे एक समुद्रातर कूट विद्यमान है। इसका विस्तार उत्तर दक्षिण दिशा मे है। इसे कार्पेण्टर-रिज (Carpenter Ridge) कहते हैं। यह सागर नितल से २२८० मीटर ऊपर उठा हुआ है।

अण्डमान-निकोबार-द्वीप समूह के पूर्व मे एक ज्वालामुखी—जन्य श्रखला है। और अधिक पूर्व मे अनग्नि शैलो (Interrupted rocks) की एक श्रखला की खोज हुई है, जो बरमा के वर्तमान तट के समानातर चली गई है। इस शृङ्खला के अनेक अंश लगभग सागर-समतल तक उठे हुए हैं किंतु कही भी यह शृङ्खला सागर पृष्ठ से ऊपर नहीं उठ सकी है।

नवीन अनुसन्धानो से ज्ञात होता है कि पश्चिमी हिन्दमहासागर मे भी भारतवर्ष और अफ्रीका के मध्य मे एक वृहद् समुद्रान्तर पर्वतशृङ्खला वर्तमान है, जिसे कार्ल्सबर्ग रिज (Carlsberg Ridge) कहते है। अपनी लम्बाई के अधिकतर भाग मे यह श्रखला दोहरी है; दो ऊँची श्रेणियों के बीच मे एक घाटी चली गई है। यह श्रखला ग्यार्डाफ्यू अन्तरीप (Cape Guardafui) और सोकोत्रा (Socotra) द्वीप के निकट से आरम्भ होकर ८० पू० मे चागोज जलडमरूमध्य तक चली गई है जहा वह पहले दक्षिण

चित्र १५—हिन्द महासागर का नितल

की ओर मुड़ती है और फिर द० प० की ओर। इस प्रकार वह रोड्रिग्वेज द्वीप (Rodriguez island) तक चली गई है। यहां पहुँचकर उसकी ऊंचाई लुप्त हो जाती है और संभवतः मध्य अन्ध-महासागर कूट (Central Atlantic Ridge) की भांति मध्यहिन्दमहासागर-कूट के रूप में दूर तक फैली हुई है। दक्षिण में यह एक चौड़े पटार का रूप ग्रहण कर लेती है, जिसके एक आधार से न्यू एम्सटर्डम(New Amsterdam)तथा सैण्ट पाल

(St. Paul) नामक द्वीप उठे हैं और दूसरे आधार से करग्यूलेन (Kerguelen) हार्ड (Heard) तथा मैकडौनल्ड (Macdonald) द्वीप-समूह। अन्त मे यह कूट अण्टार्कटिका महाद्वीप मे मिल गया है।

कार्ल्सबर्ग रिज के उ० प० मे मरे रिज (Murray Ridge) विद्यमान है। यह भी दोहरी है, इसकी मध्यवर्ती घाटी लगभग ३६६० मीटर गहरी है। यह कूट सिंध की किरथर श्रेणी का समुद्रान्तर विस्तार प्रतीत होती है। हाल ही में समुद्र के अन्दर एक तीसरी अतरित गिरि-शृङ्खला का पता चला है जो बिलूचिस्तान और ईरान के तट पर पूर्व-पश्चिम दिशा में विद्यमान है। यह जैग्रोस पर्वत माला (Zagros Mountain System) का समुद्रान्तर अश प्रतीत होती है।

कार्ल्सबर्ग रिज के स केन्द्र (Concentric) सैचेलैस-मौरिशस (Seychelles-Mauritius) नामक एककूट उसी के दक्षिण-पश्चिम मे विद्यमान है।

(२) समुद्रान्तर दरियां
(Submarine gullies)

भारतीय तट के निकट कम से कम दो समुद्रातर दरिया तो है ही, अधिक भी सम्भव हैं। पश्चिम मे सिन्ध नदी के मुहाने पर 'इडस स्वाच' (Indus Swatch) नामक जलदरी है जो महाद्वीपीय निधाय के सिरे पर ३० मीटर गहरी है और क्रमशः बढ़ते २ मुहाने पर १,३४ मीटर गहरी हो गई है। इस जलदरी के दोनों ओर २०० मीटर ऊँची दीवालें हैं।

इसी प्रकार बङ्गाल की खाडी मे गङ्गा नदी के मुहाने पर भी एक ऐसी ही जलदरी है, जिसे 'स्वाच आफ नो ग्राउण्ड' (Swatch of no ground) की सज्ञा दी गई है। इस जलदरी की गहराई महाद्वीपीय निधाय के सिरे पर ३० मीटर और मुहाने पर ११०० मीटर है।

अडमान सागर मे इरावदी नदी के मुहाने पर भी इस प्रकार की जलदरी सम्भव है, हो। इस सम्बन्ध मे कुछ प्रमाण भी उपलब्ध हुए हैं।

इन समुद्रातर दरियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे दो वाद है। एक वाद के अनुसार ये जलदरिया पूर्वकाल मे नदिया थी, जो कालातर मे जलमग्न हो गई। इस वाद के अनुसार महाद्वीपीय निधाय महाद्वीप का एक मौलिक और अविच्छिन्न भाग है। यह वाद सर्वमान्य नही है। एक दूसरा वाद यह है कि नदियो द्वारा लाये गये अवसाद—बालू तथा पङ्क—उसके दोनो

तटों पर एकत्र होते रहते हैं। नदी के जल-प्रवाह के नीचे उसकी विपरीत दिशा मे सागर जल प्रवाहित होता है, जिससे वहा पर निक्षेप नहीं हो पाता। इस प्रकार ये जल दरियां अस्तित्व मे आई।

(३) प्रवाली श्रृखलाये (Coral Reefs)

हिन्दमहासागर के अनेक भाग प्रवाली-विकास के लिए अत्यन्त अनुकूल हैं—जैसे लकादीव, मालदीव एव चागोज द्वीपसमूह मे प्रवाली श्रृङ्खलाओं का विशेषरूप से विकास हुआ है। इन द्वीपो की प्रवाल्याये (Atolls) जगत विख्यात हैं।

अन्य भागो मे भी जैसे दक्षिणी भारत और लङ्का के तट पर, दक्षिणी बरमा (विशेषकर मरगुई जलडमरूमध्य) के तट पर तथा सोक्रोटो, जावा मलाया द्वीप-समूह से लेकर आस्ट्रेलिया तक विस्तृत अनुतट-प्रवाली (Fringing reef) पाई जाती है। लाल-सागर के तट पर भी प्रवाली श्रृखलाये हैं। पूर्व मे अण्डमान निकोबार द्वीप-समूह और पश्चिम मे जन्जीबार, पैम्बा, मारिशस, रियूनियन, मैडागास्कर आदि द्वीपो मे प्रवाली श्रृङ्खलाये पाई जाती हैं। अनेक एकाकी प्रवाली रचनाये भी पाई गई हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रवाली श्रृखलाये समस्त हिन्द महासागर के उष्ण भाग मे बिखरी हुई हैं। बङ्गाल की खाड़ी ओर अफ्रीका का पूर्वी तट इसके अपवाद हैं। इन क्षेत्रों मे प्रवाली श्रृखलाये न्यून हैं। बङ्गाल की खाड़ी मे सम्भवतः बड़ी २ नदियों (जैसे गङ्गा ब्रह्मपुत्र आदि) द्वारा लाई गई रेत और पङ्क प्रवाली-विकास में बाधक होती हैं। अफ्रीका के पूर्वी तट पर व्यापारिक वायु (Trade winds) के कारण नीचे का शीतल जल ऊपर उठ आता है और निम्न तापक्रम मे प्रवाली विकास सभव नहीं है।

२ प्रातिनूतन हिमयुग (Plestocene ice - age) में जलपृष्ठ के परिवर्तन

प्रातिनूतन हिमयुग मे हिन्दमहासागर का जलपृष्ठ दो कारणों से बहुत नीचा हो गया था:— (१) प्रथम तो अन्य क्षेत्रों मे बहुत सा जल जमकर हिम बन गया (२) दूसरे इस प्रकार अस्तित्व मे आये हुये महान हिमखण्डों ने हिन्दमहासागर के उष्ण प्रदेशों (Tropical Regions) के जल को अपनी ओर आकृष्ट किया, जिससे वहा के जल की मात्रा और भी घट गई। फलतः

डैली के अनुसार हिन्दमहासागर के उष्णप्रदेशीय भाग का सागर-समतल ६०-७० मीटर नीचा हो गया। शैपर्ड के अनुसार तो यह संख्या लगभग ६१५ मीटर है।

३. नितल के निक्षेप (Bottom deposits)

हिन्दमहासागर के नितल मे जो शिलाए विद्यमान हैं, उनके विषय मे हमारी जानकारी अपूर्ण एव नगण्य है। इन शिलाओ पर जो पक और निश्च्याव दीर्घ काल से एकत्र होते रहे हैं, उनका ही थोड़ा-बहुत अध्ययन सभव है। ये निक्षेप अनेक उद्‌गमो से उपलब्ध हुए हैं:—

(१) जल द्वारा परिवाहित अवसाद एव पक—स्थल के अपक्षरण द्वारा प्राप्त पदार्थ सागर मे मुख्यतः नदियो द्वारा पहुँचता है।

(२) तटो से महासागरीय अपक्षरण द्वारा प्राप्त पदार्थ।

(३) वायु द्वारा लाये गये रज-कण आदि।

(४) महासागरीय जीवो और पादपो के अवशेष।

(५) भूमण्डल से बाहर के पदार्थ जैसे ब्रह्माण्ड-कण (Cosmos particles)।

हिदमहासागर के महाद्वीपीय निधाय (Continental shelf) का अधिकतर भाग भू-जात पङ्क द्वारा निर्मित है। हम जितने ही गहराई की ओर बढते है, जलप्लावी (विशेष कर चूर्णीय कर्पर वाले) जीवो के अवशेष की मात्रा उतनी ही अधिक बढती जाती है। अन्य शब्दों मे वहा खटीगोल (Globigerina) तथा पक्षपाद (Pteroped) निश्च्याव का बाहुल्य है। और अधिक गहराई मे अरसूत्रपाद निश्च्याव (Radiolarian Ooze) मिलता है। दक्षिणी ध्रुवीय प्रदेश मे युक्ताप्य निश्च्याव (Diatom Ooze) प्रमुख है। अन्त मे लालमृत्तिका (Red clay) मिलती है जो या तो वायु द्वारा सागर को समर्पित की गई है अथवा ज्वालामुखीजन्य है।

(१) भूजात पक (Terrigenous mud)

बङ्गाल की खाड़ी मे नदियो द्वारा लाये गये पङ्क और अवसाद के सतत निक्षेप द्वारा महाद्वीपीय-निधाय क्रमशः सागर की दिशा मे आगे बढ़ता जा रहा है। यह आगणन किया गया है कि वह प्रति चालीसवे वर्ष एक मील दक्षिण की ओर बढ जाता है। खाड़ी के मुहाने पर भूजात पङ्क का स्थान खटीगोल निश्च्याव ने ले लिया है।

अरब सागर में जहा दजला और फरात नदिया मिलती हैं और भारतीय तट पर जहा नरबदा और सिन्ध गिरती हैं, हरे वर्ण का पङ्क पाया जाता है।

(२) पक्षपाद निश्च्याव (Pteropod Ooze)

लालसागर के उत्तर और दक्षिण के निक्षेपो मे अतर है। उत्तरी भाग मे पीले पङ्क का निक्षेप है किंतु दक्षिण में वभ्रु वर्ण का निक्षेप है। इस दक्षिणी भाग मे अदन की खाडी से आने वाली धारा मे अगणित पक्षपाद बह आते हैं और यहा पर जल की प्रकृति मे अकस्मात् अन्तर हो जाने से मारे जाते है। इस प्रकार पक्षपाद-निश्चाव की सृष्टि होती है। यह निश्च्याव अडमान सागर और गङ्गा के डेल्टा मे स्वाच ऑफ नो ग्राउण्ड (Swatch of no ground) के निकट भी पाया जाता है।

(३) अजीविक क्षेत्र (Azoic Area)

दक्षिणी अरब के तट के पूर्वी भाग मे तथा ओमान की खाड़ी मे सागर-नितल का बहुत सा भाग जीवों के लिए प्राणघातक है। इस क्षेत्र मे २०० मीटर की गहराई तक 'अजीविक क्षेत्र' विद्यमान है। रास अल हद्द (Ras al Hadd) के निकट तो इसकी चर्म-सीमा है। यहा के नितल के पङ्क में हाइड्रोजन सल्फाइड (Hydrogen Sulphide) की मात्रा इतनी अधिक है कि जीवन कदापि संभव नहीं है। इस गैस के उद्गम का निश्चयात्मक निर्णय अभी तक नहीं हो सका है। मालदीव की प्रवाल्याओं मे तथा अदन और बम्बई के निकट भी गैस अल्प मात्रा मे पाई जाती है।

(४) खटीगोल निश्च्याव
(Globigerina Ooze)

हिन्द महासागर मे सामान्यतः भूजात पङ्क का तथा प्रवाली अखलाओं के निकट प्रवाल पङ्क का स्थान, अधिक गहराई मे खटीगोल निश्च्याव ले लेता है।

(५) लाल मृत्तिका (Red clay)

हिंदमहासागर के अगाध भागो मे विशेषकर कार्ल्सबर्ग रिज के उत्तर-पूर्व मे, अरब-द्रोणी (Arabian Basin) मे भारत-आस्ट्रेलिया द्रोणी मे, मध्य हिन्द-महासागरीय कूट (Central Indian Ridge) और मलय-चाप (Malaya arc) के बीच मे और दक्षिणी आस्ट्रेलियन द्रोणी मे लाल

मृत्तिका विद्यमान है। मैडागास्कर द्रोणी मे भी यह निक्षेप पाया जाता है ।

(६) अरसूत्र निश्च्याव
(Radiolarian Ooze)

हिन्दमहासागर मे अरसूत्र निश्च्याव की मात्रा बहुत ही कम है। इस निक्षेप के कुछ अश भारत-अन्टार्कटिक द्रोणी मे, दक्षिणी सोमाली द्रोणी मे तथा मासकैरीन द्रोणी (Mascarene Basin) मे पाये गये है।

(७) शुक्तास्य निश्च्याव
(Diatom Ooze)

हिन्द महासागर के दक्षिणी भाग मे—लगभग ४५° दक्षिण से ५०° दक्षिण तक—नितल-निक्षेप शुक्तास्य निश्च्याव द्वारा रचित है। यह निक्षेप ध्रुवीय क्षेत्रो मे विशेष रूप से पाया जाता है।

—:०:—

सप्तम परिच्छेद

महासागरों का तापक्रम

१—सागर-पृष्ठ का तापक्रम

भूमध्य रेखा के निकट सागर पृष्ठ के जल का तापक्रम लगभग ८०° फ़०
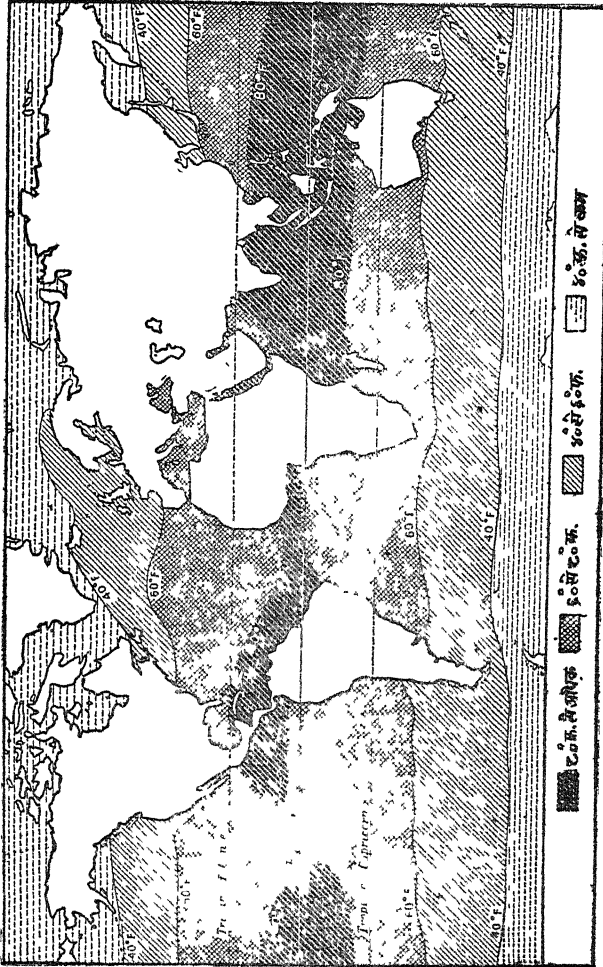
चित्र १६—महासागरों के पृष्ठ का तापक्रम-वितरण

है। ध्रुवों की ओर तापक्रम क्षीण होता जाता है। ध्रुवीय प्रदेशों का तापक्रम केवल २८° फ. है। उत्तर और दक्षिण की दिशा में तापक्रम का क्षीण होना क्रमिक नहीं है। प्रचलित वायु, धारायें तथा समुद्रान्तर कूट सागर के तापक्रम को प्रभावित करते हैं।

२—तापक्रम का लम्बवत् वितरण

इस विषय में केवल दो तथ्यों का उल्लेख मात्र ही पर्याप्त होगा—

(१) सागर में नितल-जल की अपेक्षा पृष्ठ-जल का तापक्रम सदैव अधिक रहता है। निम्नलिखित प्रयोग इस कथन की पुष्टि करता है :—

प्रयोग—जैसा कि चित्र १७ में प्रदर्शित किया गया है, जल के एक पात्र में एक ओर तन्तु-जाली (Wire-gauge) द्वारा कुछ बर्फ लगा दीजिये और दूसरी ओर एक धातु की शलाका को इस प्रकार युक्त कीजिये कि उसका
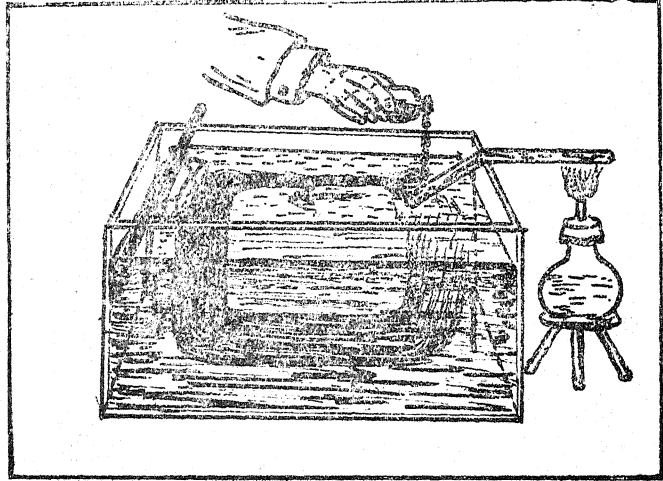
चित्र १७—तापक्रम और धाराओं का पारस्परिक सम्बन्ध

एक सिरा जल-पृष्ठ का स्पर्श करे और दूसरे सिरे को ताप पहुँचाया जा सके। ताप मिलते ही जल चित्र में अंकित तीर की दिशाओं में प्रवाहित होगा। शलाका के निकट का जल उष्ण होने से हल्का होकर ऊपर उठता है; दूसरी ओर बर्फ वाले सिरे में जल शीतल होने से सिकुड़ता है जिससे वहां का पृष्ठ-जल नीचे दब जाता है। क्योंकि जल सदैव

ऊँचे समतल से नीचे समतल की ओर प्रवाहित होता है, अतएव पात्र में शलाका की ओर से बर्फ की ओर पृष्ठ-प्रवाह होता है। दूसरी ओर नितल जल विपरीत दिशा में प्रवाहित होता है, जैसा कि चित्र १७ से प्रकट है।

यहां पर जल-पात्र का उष्ण भाग भूमध्य रेखा का द्योतक है, जहां सूर्य की प्रखर और सीधी किरणों के कारण तापक्रम अधिक रहता है और शीतल भाग ध्रुवों का द्योतक है जहां सर्वदा हिमावरण रहने के कारण तापक्रम कम रहता है।

(२) पृष्ठ से थोड़ी गहराई अर्थात् कुछ सैकड़े फुट तक तापक्रम बड़े वेग से क्षीण होता है, फिर वह धीरे धीरे घटने लगता है और लगभग ६००० फुट के नीचे तो तापक्रम प्रायः स्थिर ही रहता है।
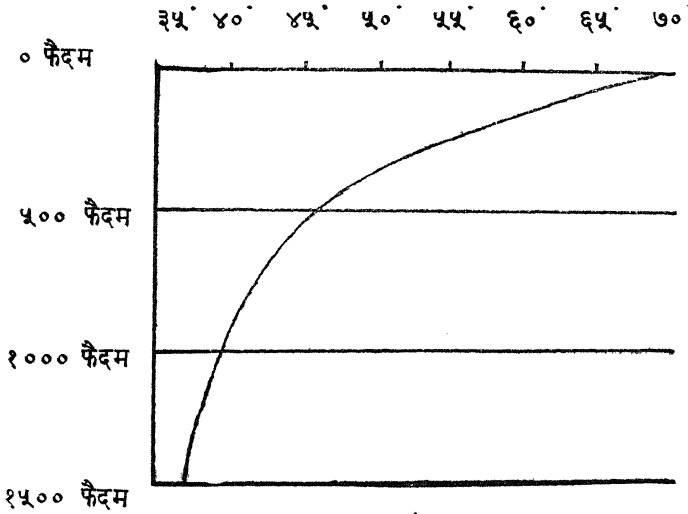
चित्र १८—महासागरों में तापक्रम का लम्बवत वितरण

३—वायु का प्रभाव

प्रबल प्रचलित वायु पृष्ठ-जल के उष्ण-स्तर को अपने साथ आगे बहा ले जाती है, जिसके फलस्वरूप नीचे का शीतल जल ऊपर उठ आता है। अतएव जब प्रबल वायु स्थल से जल की ओर चलती है तो किनारे का जल शीतल रहता है। उदाहरणार्थ अन्ध महासागर में ५०° उ० अक्षांश के निकट

योरप के तट पर तापक्रम अधिक रहता है और अमेरिका के तट पर अपेक्षाकृत कम। इसका कारण दक्षिण-पश्चिम से चलने वाली वायु है, जो पृष्ठ-जल के उष्ण-स्तर को अमेरिका के तट से योरप की ओर बहा ले जाती है जिसके फलस्वरूप वहा पर शीतल जल ऊपर उठ आता है।

इसके विपरीत यदि वायु की दिशा जल से स्थल की ओर हो तो तट पर उष्ण जल एकत्र होता है।
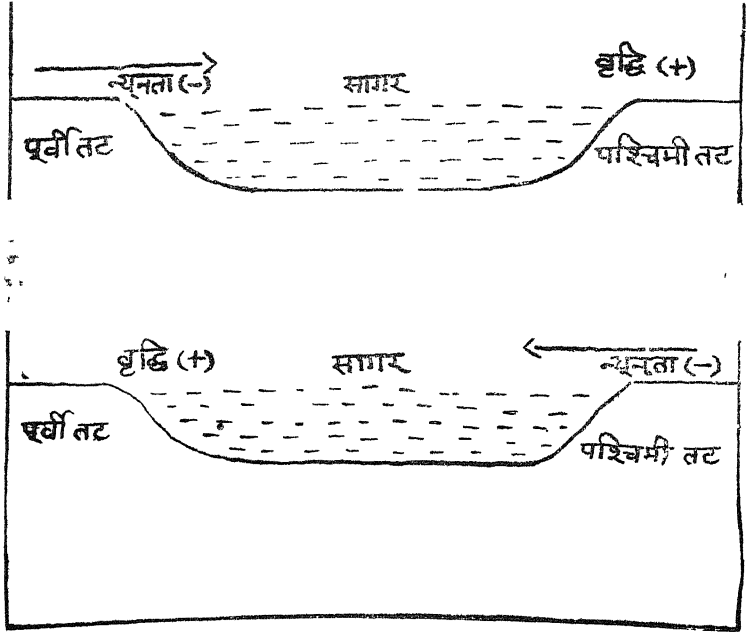
चित्र १६—तापक्रम के वितरण पर वायु का प्रभाव

(इस चित्र से यह स्पष्ट होगा कि वायु जिस तट से चलती है, उसका तापक्रम घट जाता है और जिस तट की ओर प्रवाहित होती है, उसका तापक्रम बढ़ जाता है)

४. धाराओं का प्रभाव

सागर जल का तापक्रम कुछ अशो मे उसमे प्रवाहित होने वाली धाराओ की प्रकृति पर भी निर्भर है। भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर प्रवाहित होने वाली धाराये अपने साथ उष्ण प्रभाव ले जाती हैं जैसे उत्तरी अधमहासागर का प्रवाह (North Atlantic Drift) ब्रिटिश सागर के तापक्रम

को बढ़ाता है। इसके विपरीत शीतल धारायें अपने साथ शीतल प्रभाव ले चलती हैं; जैसे लेब्रेडोर की धारा कनाडा के पूर्वी तट का तापक्रम घटा देती है।

५ समुद्रान्तर कूटों (Submarine ridges) का प्रभाव

जिब्राल्टर के निकट भूमध्य-सागर के पृष्ठ जल का तापक्रम ६५° फ० है, जो निकटवर्ती अन्धमहासागर के पृष्ठ जल के तापक्रम के लगभग ही है। प्रायः १६० फैदम (११४० फुट) की गहराई तक दोनो सागरो मे तापक्रम समान रूप से क्षीण होता है जैसा कि चित्र २० द्वारा प्रगट है। किन्तु इसके
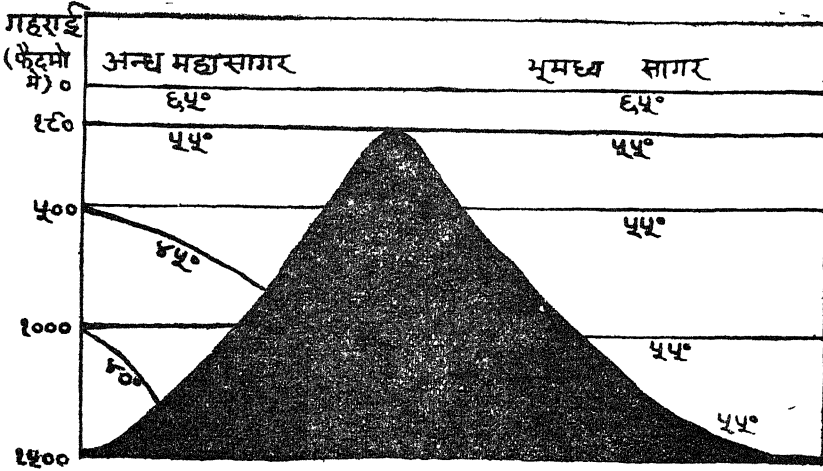
चित्र २०—तापक्रम के वितरण पर जलमग्न कूट का प्रभाव

नीचे भूमध्य सागर का तापक्रम ५५° फ० पर स्थिर रहता है, जब कि अन्ध महासागर का तापक्रम क्रमशः घटता जाता है।

तापक्रम के उपर्युक्त वैचित्र्य का कारण यह है कि दोनों सागरों के मध्य मे एक समुद्रातर कूट विद्यमान है। साधारणतः जल कम लवणतावाले अधमहासागर से अधिक लवणतावाले भूमध्य सागर की ओर प्रवाहित होता है किन्तु इस कूट के कारण जल का यह आदान प्रदान केवल ११४० फुट की गहराई तक ही सम्भव है इसके नीचे नहीं। अतएव अधमहासागर के नीचे का शीतल जल भूमध्यसागर मे नहीं आ पाता और भूमध्य सागर के

नितल का का तापक्रम वही है, जो उसमें बाहर से अर्थात् अन्धमहासागर आनेवाले सबसे अधिक शीतल जल का तापक्रम हैं।

इस प्रकार की दशा लाल सागर की भी है—
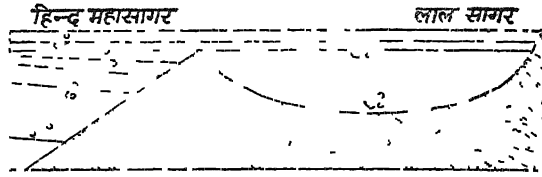
चित्र २१—तापक्रम के वितरण पर जलमग्न कूट का प्रभाव

अष्टम् परिच्छेद

सागर की लवणता

१. लवणता क्या है ?

सागरजल मे नमक अथवा लवण घोल के रूप मे सदैव विद्यमान रहता है। १००० ग्राम सागरजल मे जितने ग्राम लवण रहता है, उसी सख्या को हम उस जल की लवणता कहते है। मान लीजिये १००० ग्राम सागरजल म ३५ ग्राम लवण घुला हुआ है; ऐसी दशा मे उस जल की लवणता ३५ होगी, जो इस प्रकार प्रकट की जाती है :—३५ प्रति सहस्र।

२. लवणता सम्बन्धी विभिन्नता

लवणता स्थिर नही है। न केवल एक सागर की लवणता दूसरे सागर से भिन्न है, प्रत्युत एक ही सागर के विभिन्न भागो की लवणता मे अन्तर पाये जाते हैं। भूमध्यसागर की लवणता ३८ है और उत्तरी सागर की लवणता केवल ३४ है। कैस्पियन सागर के उत्तर मे अन्य भागो की अपेक्षा लवणता बहुत कम है।

३. सागरजल की संरचना

सागर की लवणता मुख्यतः सोडियम क्लोराइड (Sodium Chloride) के कारण है, यद्यपि उसमे अन्य लवण भी विद्यमान हैं। माध्यतः १००० ग्राम सागर जल मे ३५ ग्राम लवण रहते है, जिनमे प्रमुख ये हे : -

सोडियम क्लोराइड	(Sodium Chloride)	२७.२ ग्राम
मैग्नेशियम क्लोराइड	(Magnesium Chloride)	३.८ ग्राम
मैग्नेशियम सल्फेट	(Magnesium Sulphate)	१.६६ ग्राम
कैलशियम सल्फेट	(Calcium Sulphate)	१ २६ ग्राम

सागर की लवणता कुछ भी क्यो न हो, लवणा का उपर्युक्त अनुपात स्थिर है।

४. सागर में लवण की उत्पत्ति

नदियों के जल में लवण घोल के रूप में विद्यमान रहता है, जिसे वे सागर को अपने ही साथ समर्पित कर देती हैं। वाष्पीकरण की क्रिया सागर से जल का तो अपहरण करती है किन्तु लवण की मात्रा में उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता और वह स्थिर रहता है। फलस्वरूप सागर की लवणता शनैः शनैः बढ़ती जाती है। यदि हम सागर की लवणता का मुख्य कारण नदियों को मानें, तब तो सागर-जल की संरचना नदी-जल के समान होनी चाहिये। किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। सागर जल में अन्य लवणों की अपेक्षा सोडियम क्लोराइड (Sodium Chloride) का अनुपात कहीं अधिक है। इसके विपरीत नदियों में कैल्शियम क्लोराइड (Calcium Carbonate) का बाहुल्य है। इस वैचित्र्य का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया जा सकता है कि प्रवाली पुर्वङ्गक (Coral Polyp) एवं अन्य जल-जन्तु सागर में नदियों द्वारा लाये गये कैल्शियम क्लोराइड का उपभोग कर डालते हैं। किन्तु सागर और नदियों के जल की संरचना में अनेक अन्य विभेदन हैं—जैसे नदी-जल में सल्फेट क्लोराइड की अपेक्षा अधिक होता है और सागर जल में क्लोराइड का अनुपात सल्फेट से अधिक होता है—जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार नहीं किया जा सकता। अतएव या तो सागर के लवण सर्वांश में नदियों द्वारा उपलब्ध नहीं है या सागरजल की संरचना में परिवर्तन होते रहते हैं।

५. लवणता निर्धारक प्रति कारक

लवणता दो प्रतिकारकों पर निर्भर है:—

(१) अलवण जल की प्राप्ति (Supply of fresh water) अलवण जल जितनी अधिक मात्रा में प्राप्त होगा, लवणता उतनी ही कम होगी।

(२) वाष्पीकरण की मात्रा (Degree of evoporation) वाष्पीकरण जितना ही अधिक होगा, लवणता उतनी ही अधिक होगी।

इसके अतिरिक्त लवणता में सागर की गहराई के साथ भी विभेदन होते हैं किन्तु यहां पर हमारा प्रयोजन केवल पृष्ठ जल से है।

६. लवणता का वितरण

(क) विवृत सागर (Open Oceans)

कर्क एवं मकर रेखाओं के समीप लवणता अधिक है, किंतु ध्रुवों और

विषुवत-रेखा की ओर वह घटती जाती है। कर्क और मकर रेखाओं के
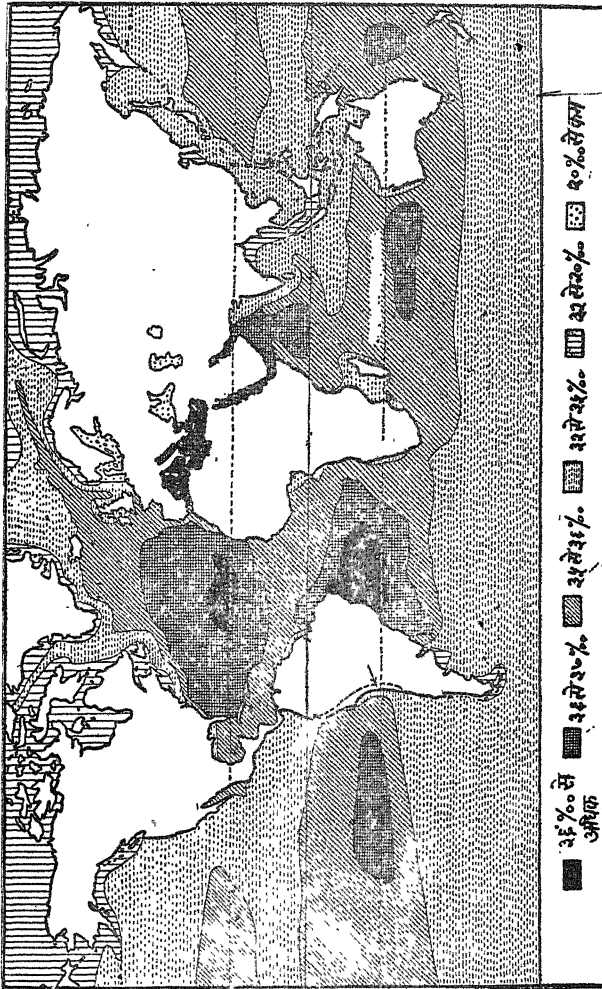
चित्र २२—लवणता का वितरण

निकट लवणता ३६ प्रतिशत है जबकि ध्रुवों और विषुवत रेखा के क्षेत्र में वह केवल ३४ प्रतिशत है।

कर्क और मकर-रेखाओं के समीप लवणता के आधिक्य के कारण :—

(१) वाष्पीकरण का आधिक्य—निर्मल आकाश और प्रखर सूर्य की किरणें वाष्पीकरण के वेग को बढ़ाती हैं।

(२) अधिक वर्षा का अभाव; इसके अतिरिक्त बड़ी बड़ी नदिया इन सागरो में नहीं मिलती। अन्य शब्दों मे अलवण जल की अधिक प्राप्ति नहीं होती।

विषुवत-रेखा के निकट लवणता की न्यूनता के कारण :—

(१) वर्ष भर घनघोर जल-वृष्टि अपरिमित अलवण जल प्रदान करती है।

(२) वर्ष के अधिकतर भाग मे आकाश मे बदली छायी रहने के कारण वाष्पीकरण का वेग घट जाता है।

ध्रुवीय क्षेत्रों मे लवणता की न्यूनता के कारण :—

(१) बर्फ के पिघलने से अतुलित अलवण जल की प्राप्ति होती है।

(२) तापमान निम्न रहने से वाष्पीकरण कम होता है।

(ख) आंशिक समावृत सागर
(Partially enclosed seas)

विवृत सागरों की अपेक्षा आंशिक समावृत सागरो मे लवणता का विभेदन अधिक मात्रा मे पाया जाता है।—

		लवणता
१	लाल सागर	३७ से ४१ तक
२	फारस की खाड़ी	३७ से ३८ तक
३	भूमध्य सागर	३७ से ३९ तक
४.	बाल्टिक सागर	(उत्तर मे) ३ से (दक्षिण मे) १५ तक
५.	उत्तरी सागर	३१ से ३५ तक

लालसागर, फारस की खाड़ी और भूमध्य सागर मे लवणता अधिक होने के कारण ये हैं :—

(१) ये अधिक तापक्रम वाले कटिबन्ध में स्थित हैं, जहा ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की प्रखर किरणों के कारण वाष्पीकरण बड़े बेग से होता है।

(२) कुछ थोड़ी ही छोटी नदिया इन्हें अपना अलवण जल प्रदान करती हैं।

इसके विपरीत बाल्टिक और उत्तरी सागर में निम्नलिखित कारणों से लवणता अपेक्षाकृत कम है :—

(१) ये अपेक्षाकृत शीतल कटिबन्ध मे स्थित है जहाँ तापक्रम कम होने से वाष्पीकरण अधिक वेग से नहीं होता।

(२) बड़ी-बड़ी नदिया इन सागरो को अपरिमित अलवण जल प्रदान करती है।

(ग) पूर्ण समावृत सागर (Enclosed Seas) और झीले (Lakes)

ऐसे समावृत सागरों और झीलों की लवणता कम है, जिनमे कुछ नदिया मिलती है और जिनसे कुछ नदिया निकलती भी है। किन्तु ऐसे सागरों की लवणता अधिक है, जिनसे कोई नदी नही निकलती, क्योंकि वाष्पीकरण की क्रिया नदियों द्वारा लाये गये जल और लवण से जल का तो हरण कर लेती है, किन्तु लवण पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता जिससे उसकी मात्रा मे क्रमशः वृद्धि होती रहती है। मृतक सागर (Dead Sea) जिसकी लवणता २३७ ५ प्रति सहस्र है, संसार मे सबसे अधिक लवणमय (खारा) सागर है।

७—समलवण रेखाये (Iso-halines)

ऐसी कल्पित रेखाओ को, जो सागर मे समान लवणता वाले स्थानों को जोडती है, समलवण रेखाये कहते है।

नवम् परिच्छेद

तरंगे

१—परिभाषा

वायु द्वारा सागर-पृष्ठ के जल के ऊपर उठने और नीचे गिरने की क्रिया का ही नाम 'तरंग' है। तरंग मे जल आगे नहीं बढ़ता। वह केवल ऊपर उठता और नीचे गिरता है। इसकी तुलना हम उस रस्सी से कर सकते हैं, जिसके एक सिरे पर झटका दिया गया हो। ऐसी दशा मे तरङ्ग रस्सी के एक सिरे से दूसरे सिरे की ओर चलती है, यद्यपि रस्सी की स्थिति मे कोई परिवर्तन नही होता; वह जहा थी, वहीं रहती है।

२—सम्बन्धित शब्दावली

तरंग के सर्वोच्च भाग को तरंग-शीर्ष (Crest) और सबसे नीचे भाग को तरंग-पाद (Trough) कहते हैं। दो उत्तरोत्तर तरंग-शीर्षों अथवा तरंगपादों के क्षैतिजान्तर को तरंग-दैर्घ्य (Wave Length) कहते हैं। तरंग-पाद के ऊपर तरंग शीर्ष के उच्चत्व को दोलन-विस्तार (Amplitude) कम्पविस्तार अथवा तरंग का उच्चत्व कहते है।
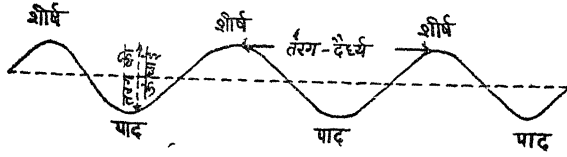
चित्र ३१—तरंगो से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्द

महासागर मे उठनेवाली बड़ी तरंगों का 'तरंग-दैर्घ्य' प्रायः ३०० से ६०० फुट तक होता है और उनका दोलन-विस्तार प्रायः २० से ४० फुट तक होता है।

३—तरंग मे जलकणों की गति

गहरे जल में पृष्ठ के कणों की गति प्रायः वृत्ताकार होती है। जैसा कि चित्र ३२ में प्रदर्शित किया गया है जलकणों की गति शीर्ष में आगे की ओर
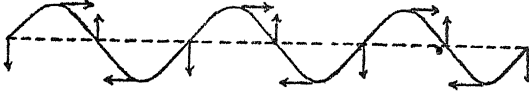
चित्र ३२—तरग मे जलकणों की गति

पाद में पीछे की ओर, अगले ढाल के मध्य मे ऊपर की ओर और पिछले ढाल के मध्य में नीचे की ओर होती है।

४—तरगों का वेग

निम्नलिखित सूत्र तरगो का वेग निर्धारित करते हैं:—

व ∝ ग का वर्गमूल   यदि ग कम है द/२ से

व ∝ द का वर्गमूल   यदि ग अधिक है द/२ से

जहाँ पर   व = तरग का वेग

द = तरग-दैर्घ्य

ग = जल की गहराई

५—तरंगों का महत्व

(१) जल की तरगो का भौगोलिक महत्व उनकी तट के काटने की क्रिया मे निहित है, जो केवल दो सौ फुट की गहराई तक ही सीमित है।

(२) तरंग द्वारा सागर-जल जब ऊपर उठता है तब वह अपने अन्दर वायु को सोख लेता है। सागर जल मे इस प्रकार घुली हुई वायु पर अनेकानेक जीव-जन्तुओं का जीवन निर्भर है।

६—तरगों का भौगोलिक कार्य

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, तरगों का कार्य-क्षेत्र बहुत कम गहराई तक ही सीमित है, तो भी प्रभावित होने वाले क्षेत्र का विस्तार बहुत है, क्योकि समस्त स्थल-खंडो की तट-रेखाओं की लम्बाई का योग लाखो मील है।

तरङ्गो के भौगोलिक कार्य को दो भागो मे बाटा जा सकता है।—

(१) अपक्षरण का कार्य

(२) निक्षेपण का कार्य

(१) अपक्षरण का कार्य

महासागरीय अपक्षरण का अधिकाश कार्य तरङ्गों द्वारा सम्पन्न होता है। जैसा कि पूर्व मे उल्लेख हो चुका है, तरङ्ग में जलकण ऊपर उठते

और नीचे जाते हैं। छोटी तरङ्गों में यह गति पृष्ठ-जल तक ही सीमित रहती है, किन्तु बड़ी तरङ्गों मे काफी गहराई पर स्थित नितल-जल का मन्थन होता है। इस क्रिया से उथले सागर-नितल के उभारो का पदार्थ हट जाता है और धाराओं द्वारा वह निचले भागो मे एकत्र होता रहता है। इस प्रकार नितल के ऊँचे भाग नीचे होते रहते हैं और निचले भाग ऊँचे होते रहते हैं, अन्य शब्दों मे तट के निकट तरङ्गो और धाराओ द्वारा सागर-नितल का समतलन (Levelling) होता रहता है।

विवृत सागर की तरङ्गों मे जलकणों की अग्रगति नगण्य होती है। जल की आकृति मे परिवर्तन अवश्य होता है, किन्तु अग्रगति नही होती। पूर्व मे तरङ्ग की तुलना उस रज्जु के की जा चुकी है, जिसके एक सिरे पर झटका दिया गया हो। यह तुलना बडी उपयुक्त है। तथापि जब तरङ्ग उथले सागर मे प्रवेश करती है, उसी समय उसकी आकृति और गति दोनो मे अन्तर होता है। तरङ्ग की आकृति क्षैतिज दिशा मे सकुचित होती है, किन्तु उसकी ऊँचाई बढ जाती है। ऊपरी भाग आगे की ओर झुक जाता है और निचला भाग कुछ पीछे खिसक आता है। परिणाम यह होता है कि जब लहर टूटती है, तब वह आगे की ओर काफी पानी फेकती है। टूटती हुई लहरों द्वारा फेका गया यह पानी तट पर आगे बढता है। उसका वेग क्रमशः क्षीण होता जाता है और अन्त मे एक ऐसी अवस्था आ जाती है, जब गुरुत्वाकर्षण के कारण उसे आगे बढने वाली लहरो के नीचे, पीछे की ओर लौटना पड़ता है। लौटते हुए इस जल को अधोकर्ष (Undertow) कहते हैं। इसमे अपक्षरण करने की पर्याप्त शक्ति होती है।
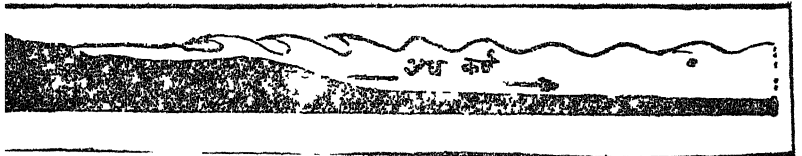
चित्र ३३—तरग की क्रिया

(इस चित्र से यह स्पष्ट होगा कि उथले सागर मे तरग तट से कुछ दूरी पर टूट जाती है)

चित्र ३४—तरंग की क्रिया

(इस चित्र से यह स्पष्ट होगा कि गहरे सागर में तरंग तट पर जाकर ही टूटती है)

तरङ्गों द्वारा अपहरण दो प्रकार से होता है—एक तो जब लहर टूटती है, उस समय जल की अग्रगति द्वारा और दूसरे रेत के कणों और शिलाखण्डों द्वारा जो उसके औजार का कार्य करते हैं। दोनों ही दशाओं में मुख्य कार्य उसी स्थान पर होता है, जहा लहर टूटती है। खुले हुए तटों पर जहा पानी की गहराई काफी होती है, बडी बडी लहरे भी उस समय तक नहीं टूटतीं जब तक वे तट-रेखा का स्पर्श नहीं करती। इन विशाल तरङ्गों मे जल के भार का भी प्रभाव पडता है। प्रति वर्ग फुट पर एक टन का भार होना साधारण सी बात है। शिलाओं के बड़े-बड़े खण्डों को मूल-शिला (Parent Rock) से वियुक्त करने म ये थपेड़े समर्थ होते हैं। अधोकर्ष (Undertow) इन शिला-खण्डों को गहरे जल मे बहा ले जाता है और फिर तट की ओर बढने वाली लहरों द्वारा ये तट की ओर प्रवाहित होते हैं। इस प्रकार लहरों के अपहरण की क्रिया निरन्तर चला करती है।

तरङ्गों के अपहरण के कुछ प्रमुख प्रभाव निम्नाकित हैं :—

(१) तट रेखाओं का सीधा होना

(२) तट पर नितल का समतलन

(३) स्थल का क्षेत्रफल घटना

(४) तटीय प्रक्षेपों का पीछे की ओर कटना

(५) तट पर अनेक विशिष्ट रूपो का निर्माण जैसे महासागरीय फलकियाँ (Marine Benches) सागर-उच्छृ ग (Sea Cliff) आदि

(२) निक्षेपण का कार्य

तरङ्गें और धारायें तरङ्ग द्वारा अपक्षरित पदार्थ को तथा नदियों द्वारा निक्षेपित अवसाद को बहा ले जाती है, किन्तु अन्त मे कहीं न कहीं उसे एकत्र अवश्य करती हैं। जैसा कि पूर्व मे उल्लेख हो चुका है, इनकी प्रधान प्रवृत्ति 'समतलन' करने की होती है अर्थात् ये पदार्थ नितल के निचले भागों मे एकत्र होते हैं। तरङ्ग का कार्य-क्षेत्र अत्यन्त सीमित है; उसका विस्तार अधिक गहराई मे नहीं है, अतएव समस्त अवसाद, जो अधिकतर स्थल-जन्य होता है, तट के निकट ही रहता है। ज्यो-ज्यो तट से दूरी बढती जाती है, त्यों-त्यों अवसाद के कणो का आकार भी घटता जाता है। अन्य शब्दो में अवसाद का मोटा भाग गहराई की ओर रहता है। यह कथन निक्षेप के निम्नाकित क्रम से स्पष्ट हो जायगा—

बड़े बडे गण्डाश्म (Large boulders)
अण्टीला (Pebbles)
ककर (Gravel)
बालू (Sand)
पक (Mud)
चूना (Lime)

दशम् परिच्छेद

धारायें

१—परिभाषा

महासागर के एक भाग से दूसरे भाग को जाने वाले जल के प्रवाह को 'धारा' कहते हैं। धारा का अनुमान इस प्रकार किया जा सकता है कि सागर पृष्ठ का कुछ जल एक चौड़ी नदी के रूप मे आगे बढ़ता है। यह जल काफी प्रबल वेग से प्रवाहित होता है। उदाहरणस्वरूप गल्फ-स्ट्रीम नामक धारा का वेग आरम्भ मे प्रति घण्टे तीन मील से पाच मील तक है। हमारी गङ्गा भी प्रायः इसी वेग से बहती है। तरगों और धाराओं में यही अन्तर हैं कि तरग में पानी केवल ऊपर उठता और नीचे गिरता हैं जबकि धारा में पानी आगे बढ़ता है।

२—धाराओं की प्रकृति

विषुवत रेखा से उत्तर-दक्षिण की ओर प्रवाहित होने वाली धाराये उष्ण हैं। इसके विपरीत ध्रुवों से विषुवत रेखा की ओर प्रवाहित होने वाली धाराये शीतल हैं।

३—धाराओं की उत्पत्ति के कारण

धाराओं की उत्पत्ति के तीन मुख्य कारण हैं :—

(१) तापक्रम की विभिन्नता

(२) लवणता की विभिन्नता

(३) वायु का प्रभाव

(१) तापक्रम की विभिन्नता

विषुवतरेखा के निकट का जल सूर्य की सीधी एव प्रखर किरणों द्वारा सदैव तपता रहता है, जिससे वह अन्य भागों के जल की अपेक्षा सदैव अधिक उष्ण रहता है। उष्ण होने के फलस्वरूप वह प्रस्तरित होता है और उत्तर-दक्षिण की ओर प्रवाहित होता है

(२) लवणता की विभिन्नता

लवणता जितनी अधिक होगी, जल का उतना ही अधिक घनत्व होगा

और उतना ही अधिक वह भारी भी होगा। हल्का लवण जल सागरपृष्ठ पर तैरता रहता है जबकि अधिक घनत्व का लवण जल नीचे रहता है। जब भिन्न लवणता के दो सागर एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं, तब जल प्रवाह सदैव कम लवणता वाले सागर से अधिक लवणता वाले सागर की ओर होता है। भूमध्यसागर की लवणता अन्धमहासागर की अपेक्षा अधिक है अतएव पृष्ठजल सदैव अन्धमहासागर से भूमध्य सागर की दिशा में प्रवाहित होता है।

३—वायु का प्रभाव

प्रबल प्रचिलित वायु सागरजल के पृष्ठ के स्तर को अपने साथ आगे बहा लेजाती है और इस प्रकार धारायें अस्तित्व मे आ जाती हैं। इस विषय मे अब मतभेद नहीं है कि वायु ही सागर मे धाराओ का मुख्य कारण है। स सार की प्रमुख धाराओ की उत्पत्ति का कारण व्यापारिक (Trade) और पछुवा (Westerlies) हवाये है। यदि वायु की दिशा मे ऋतु सम्बन्धी अथवा अन्य किसी कारण कोई अन्तर होते हें तो उसी प्रकार के परिवर्तन धाराओ मे हो जाते हैं। उदाहरणार्थ हिंदमहासागर मे जाड़ो मे जब मानसून हवाये उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की ओर चलती ह, तब धाराये भी इसी दिशा मे बहने लगती हैं; गरमी मे मानसून के साथ ही धाराओं की दिशा भी विपरीत हो जाती है।

४—धाराओं की दिशाओ मे परिवर्तन

धाराओं की दिशाओं मे परिवर्तन मुख्यतः दो कारणों से होते हैं:

(१) महाद्वीपों की आकृति—धाराओं की दिशा को प्रभावित करती है धारायें सीधे न बहकर तट के अनुरूप बहती हैं।

(२) फैरेल का सिद्धान्त— फैरेल के सिद्धान्त के अनुसार वायु की भाति धारायें भी उत्तरी गोलार्ध में अपनी दाहिनी ओर और दक्षिणी गोलार्ध में अपनी बायीं ओर मुड़ जाती हैं।

५—धाराओं का सामान्य क्रम

जैसा कि चित्र ३५ से स्पष्ट होगा, उत्तरी गोलार्ध में धाराओं का क्रम घड़ीवत है और दक्षिणी गोलार्ध मे अघड़ीवत।

चित्र ३५—धाराओं की सामान्य दिशायें

६—महासागरों की प्रमुख धारायें

१) अन्ध महासागर की धारायें
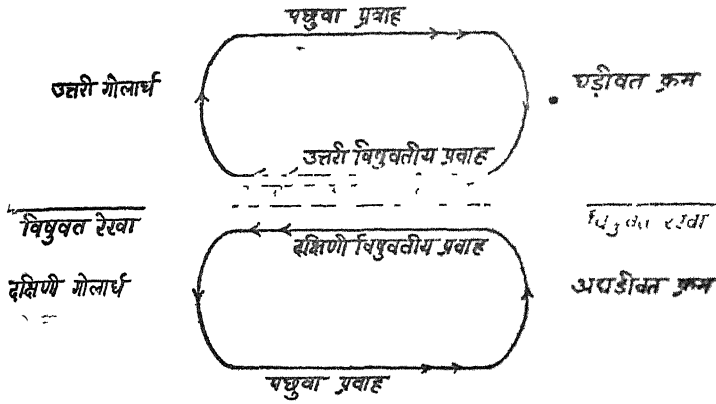
(क) उत्तरी अंधमहासागर

उत्तरी विषुवतीय प्रवाह (North Equitorial Current) इस प्रवाह का मुख्य कारण उत्तरी पूर्वी व्यापारिक वायु है। यह प्रवाह प्राय: विषुवत रेखा के समानान्तर ही पश्चिम की ओर बहता है। कैरिबियन सागर मे पश्चिमी द्वीप-समूह इस प्रवाह को दो भागों मे बांट देता है—(१) एक धारा उत्तर की ओर बहती है। यह उत्तरी अमेरिका के पूर्वी तट के अनुरूप प्रवाहित होती है। आगे चलकर इसे ही 'गल्फ-स्ट्रीम' की संज्ञा दी गई है। (२) दूसरी धारा दक्षिण की ओर प्रवाहित होकर मैक्सिको की खाड़ी में पहुँचती है।

गल्फ स्ट्रीम उत्तरी अटलांटिक का प्रवाह तथा कनारीज प्रवाह

गल्फ स्ट्रीम फ्लोरिडा और क्यूबा द्वीपों के मध्य मे स्थित संकीर्ण जल-डमरूमध्य से होकर उत्तरी अमेरिका के पूर्वी किनारे पर उत्तर की ओर बहती है। केप हट्टेरास के निकट यह धारा पछुवा हवाओं के प्रभाव में आ जाती है, जो इसे उत्तर-पूर्व की ओर बहा ले जाती है। आगे चलकर यह दो भागों मे विभाजित हो जाती है—(१) एक धारा नारवे की ओर बहती है, जिसे हम **उत्तरी अटलाँटिक का प्रवाह** कहते हैं, (२) दूसरी धारा जो **कनारीज प्रवाह** के नाम से विख्यात है, दक्षिण की ओर मुड़कर स्पेन, पुर्तगाल तथा उत्तरी अफ्रीका के तटानुसार बहती है। यह ठंडी धारा है।

व्यापारिक वायु के प्रभाव मे आकर यह प्रवाह पुनः उत्तरी विषुवत-रेखा के प्रवाह मे विलीन हो जाता है।

इस प्रकार उत्तरी अन्धमहासागर मे धाराओं का एक बृहद चक्र निर्मित होता है। इस चक्र की धाराओं की दिशा घडीवत (Clock-wise) है। इसके मध्य का जल स्थिर रहता है, जिससे उसमे बहुत सी घास-फूस, सेवार
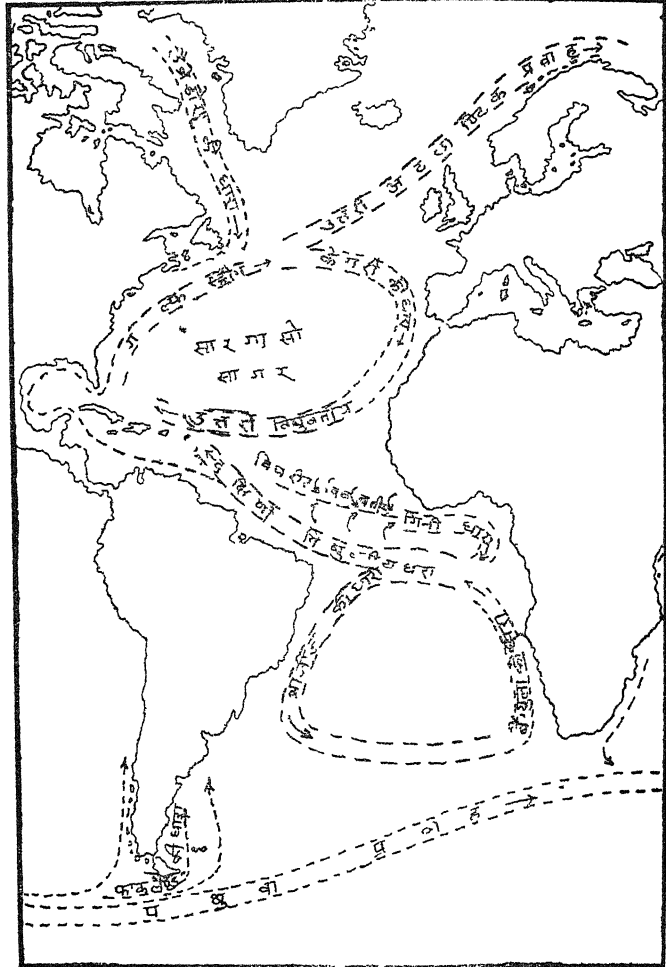
चित्र ३६—अन्धमहासागर की धाराये

आदि एकत्र हो जाती है। महासागर के इस भाग को 'सारगासो सागर' (Sargasso Sea) कहते है। यह नाम स्पेनवालों ने रखा था, क्योंकि सर्व-प्रथम जब उन्होंने इसको देखा तो उनको अपने देश के कुओं मे पैदा होने वाली एक घास की याद आई, जिसे वे 'सारगासो' कहते हैं।

लेब्रेडोर की धारा

उत्तरी ध्रुवसागर के शीतल जल की एक धारा ग्रीनलैण्ड द्वीप के पश्चिमी तटानुसार दक्षिण की ओर बह आती है। इसको लेब्रेडोर की धारा कहते हैं। इसकी उत्पत्ति का प्रमुख कारण लवणता की विभिन्नता है। अतुलित हिम के पिघलने के कारण उत्तरी ध्रुवसागर दक्षिण के अन्धमहासागर की अपेक्षा कम लवणमय है—अतएव यह धारा उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवाहित होती हैं। न्यूफाउण्डलैंड के निकट यह धारा गल्फ-स्ट्रीम से मिलती है। इन दोनों धाराओं के मिलने से घना कुहरा उत्पन्न होता है। लेब्रेडोर धारा के साथ अनेक हिम-शिलाये (Ice-bergs) बह आती हैं। कुहरे के कारण वे दिखाई नही देती। इनसे जहाजों को बडी जोखिम रहती है। सन् १९१२ ई० मे प्रसिद्ध ब्रिटिश जहाज टाइटैनिक ऐसी ही एक हिमशिला से टकराकर नष्ट हो गया।

(ख) दक्षिणी अन्ध महासागर

८० विषुवतीय प्रवाह, ब्राजील की धारा तथा बैंगुला की धारा

दक्षिणी विषुवतीय प्रवाह—दक्षिणी पश्चिमी व्यापारिक वायु ही इसकी उत्पत्ति का मुख्य कारण हैं। पृथ्वी की परिभ्रमण गति के कारण यह प्रवाह पश्चिम की ओर प्रायः विषुवत रेखा के समानान्तर ही बहता है। द० अमेरिका के उ० पूर्वी तट पर स्थित केप सैण्ट रोक के निकट यह दो भागों मे बट जाता है—(१) एक धारा उत्तर की ओर बहती हुई मैक्सिको की खाड़ी मे प्रवेश करती है और आगे चलकर गल्फस्ट्रीम में विलीन हो जाती है (२) दूसरी धारा द० अमेरिका के पूर्वी तट के अनुरूप दक्षिण की ओर प्रवाहित होती है। इसे **ब्राजील की धारा** कहते हैं। आगे चलकर यह धारा पछुवा हवाओं के प्रवाह मे विलीन हो जाती है और पूर्व दिशा मे बहने लगती है। इसका एक भाग, जिसे हम **बैंगुला की धारा** कहते है उत्तर की ओर मुड़ जाता है और अफ्रीका के तटानुरूप बहता हुआ दक्षिणी विषुवत रेखा के प्रवाह मे विलीन हो जाता है। यह ठण्डी धारा है।

फाकलैण्ड प्रवाह—यह उत्तरी अन्धमहासागर के लेब्रेडोर-प्रवाह के

समान है। यह प्रवाह द० अमेरिका के दक्षिणी भाग के पूर्वी किनारे पर दक्षिण से उत्तर की ओर बहता है।

अण्टार्कटिक प्रवाह—यह प्रवाह और भी दक्षिण में पूर्व की ओर प्रवाहित होता है। स्थलखण्डों के अभाव के कारण यह अत्यन्त प्रबल वेग से बहता है। इसे पछुवा हवा का प्रवाह भी कहते हैं।

(ग) मध्य अन्ध महासागर

विषुवत रेखा की विपरीत धारा (Counter Equitorial Current) जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है, व्यापारिक हवाओं के कटिबन्ध में सागर का पृष्ठजल उत्तरी और दक्षिणी विषुवत रेखा की धाराओं के रूप में पश्चिम की ओर बहता है। मध्य अमेरिका के पूर्वी तट पर यह जल एकत्र होता रहता है और धीरे धीरे वहां के जल का समतल पूर्वी अन्धमहासागर की अपेक्षा ऊपर उठ जाता है। क्योंकि जल सदैव ऊंचे समतल से नीचे समतल की ओर प्रवाहित होता है, अतएव यह संचित जलराशि पुनः पूर्व की ओर विषुवत रेखा की विपरीत धारा के नाम से बहने लगती है।

२—प्रशान्त महासागर की धारायें

(क) उत्तरी प्रशान्त

उत्तरी विषुवतीय प्रवाह—उ० पू० व्यापारिक वायु इसकी जन्मदाता हैं। यह प्रवाह प्रायः विषुवत रेखा के समानान्तर ही उसके कुछ उत्तर में पश्चिम की ओर बहता है।

क्यूरोसिवो—यह उष्णधारा अन्ध महासागर की गल्फ स्ट्रीम के सामान है। जापान के दक्षिण में यह धारा दो भागों में विभाजित हो जाती है—(१ पश्चिमी शाखा जापान सागर में बहती हुई उत्तर की शीतल कमचटका की धारा में विलीन हो जाती है और (२) पूर्वी शाखा पछुआ हवाओं के कारण उ० पू० की ओर बहने लगती है और उत्तरी प्रशान्त जलधारा के नाम से ब्रिटिश कोलम्बिया के पश्चिमी तट तक पहुँचती है।

कमचटका की धारा—यह धारा अन्धमहासागर की लैब्रेडोर धारा के समान है। साईबेरिया के पूर्वी तट पर यह धारा बेहरिङ्ग स्ट्रेट में होती हुई दक्षिण की ओर प्रवाहित होती है। इसे बैरिंग की धारा भी कहते हैं।

उत्तरी प्रशान्त प्रवाह—यह उ० अटलाण्टिक प्रवाह के समान ही है। इसे पछुवा प्रवाह भी कहते हैं। ब्रिटिश कोलम्बिया के पश्चिमी तट पर यह दो भागों में विभाजित हो जाता है—एक धारा उत्तर की ओर बहती है

जिसे ब्रिटिश कोलम्बिया प्रवाह कहते हैं। और दूसरी धारा कैलिफोर्निया की धारा के नाम से दक्षिण की ओर प्रवाहित होती है।

कैलिफोर्निया की धारा—यह शीतल धारा कैलिफोर्निया और मैक्सिको के पश्चिमी तट पर उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवाहित होती है।
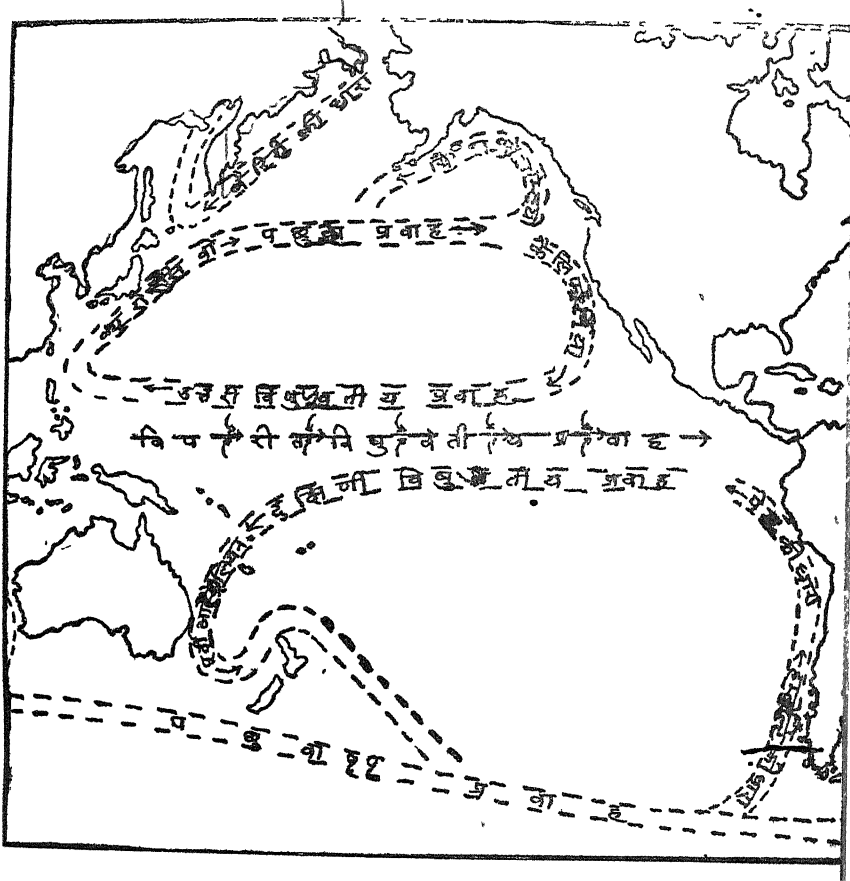
चित्र ३७—प्रशात महासागर की धारायें

कुछ और दक्षिण जाकर यह उत्तरी विषुवत रेखा के प्रवाह में विलीन हो जाती है।

इस प्रकार उ० प्रशान्त मे भी उ० अन्ध-महासागर की भाति धाराओं का घड़ीवत् चक्र बन जाता है।

(ख) दक्षिणी प्रशांत

अण्टार्कटिक प्रवाह—यह प्रवाह अत्यन्त दक्षिण में पूर्व की ओर बहता है। इसके प्रवाह का कारण पछुवा हवायें हैं।

हमबोल्ट अथवा पेरू प्रवाह—द० अमेरिका के द० कोने पर अण्टार्कटिक प्रवाह का कुछ अंश उ० की ओर घूम जाता है और हमबोल्ट अथवा पेरू के शीतल जल-प्रवाह के नाम से द० अमेरिका के पश्चिमी तट पर बहता है। मकर-रेखा को पार कर यह दक्षिणी विषुवत रेखा के प्रवाह मे विलीन हो जाता है।

द० विषुवत रेखा की धारा—यह धारा विषुवत रेखा के निकट दक्षिण में पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है। आस्टेलिया के उ० पू० मे यह धारा दो भागो मे विभाजित हो जाती है—(१) एक भाग पश्चिम की ओर बहता हुआ पूर्वी द्वीप समूह को पार करता है और उत्तरी विषुवत रेखा की धारा मे विलीन हो जाता है; (२) दूसरा भाग आस्ट्रेलिया की उष्ण जल धारा के नाम से दक्षिण दिशा मे मुड़ जाता है। द्वीपों की बहुलता के कारण दक्षिणी विषुवतीय धारा कई भागों मे बँट जाती है।

आस्ट्रेलिया की उष्ण धारा—यह धारा आस्टेलिया के पूर्वी तट पर दक्षिण की ओर बहती है और अन्त मे अण्टार्कटिक प्रवाह में विलीन हो जाती है।

(ग) मध्य प्रशांत

विषुवत रेखा की विपरीत धारा—अटलांटिक महासागर की भांति प्रशांत महासागर में भी यह धारा विद्यमान है।

३—हिन्द-महासागर की धारायें

(क) दक्षिणी हिन्द-महासागर

दक्षिणी हिन्द-महासागर की धाराओं का क्रम अटलांटिक और प्रशांत महासागर की धाराओं जैसा ही है। आस्ट्रेलिया के दक्षिण-पश्चिम में **अटार्कटिक जलधारा** की एक शाखा उत्तर की ओर घूम कर **पश्चिमी आस्ट्रेलिया की शीतल जलधारा** के नाम से आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट पर उत्तर की ओर प्रवाहित होती है। मकर रेखा को पार कर यह धार दक्षिणी विषुवत रेखा के प्रवाह मे विलीन हो जाती है।

दक्षिणी विषुवत रेखा की उष्णधारा—पश्चिम की ओर बहती है

और मैडागास्कर के निकट दक्षिण ओर घूम जाती है और **मोजम्बिक उष्ण जल धारा** कहलाती है।

आगे चलकर इसे **अगलहास की धारा** कहते हैं। आगे चलकर यह पछुवा हवाओं के प्रभाव मे आकर पूर्व की ओर बहती है और अन्त में अण्टार्कटिक जलधारा में मिलकर चक्र पूरा करती है।
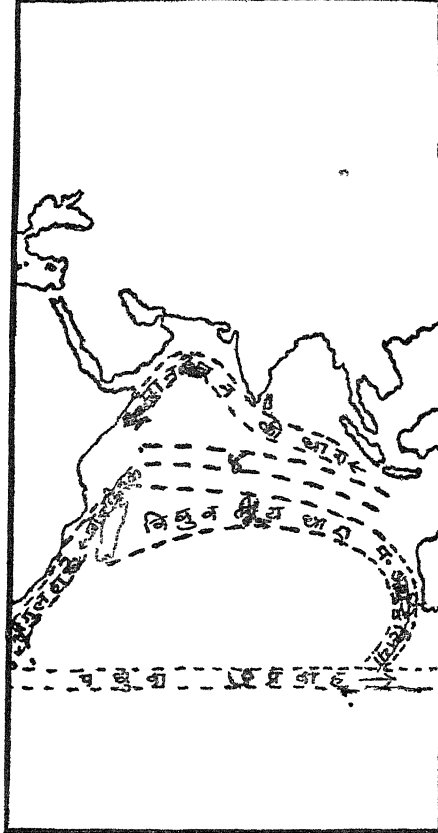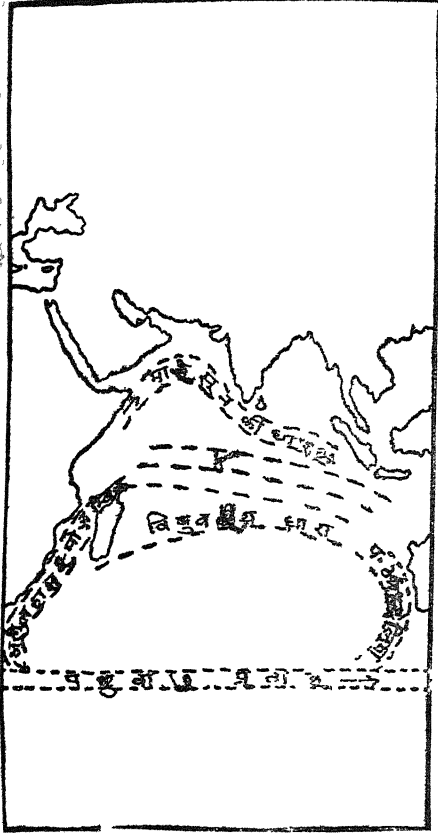
चित्र ३८—हिन्दमहासागर की धाराये (जुलाई)

चित्र ३९—हिन्द महासागर की धाराये (जनव

(ख) उत्तरी हिन्द महासागर

उत्तरी हिन्द महासागर की धाराओ का क्रम मौसिमी हवाओं की दिशा के अनुसार निश्चित होता है। ग्रीष्म ऋतु मे द० प० मानसून के प्रभाव के कारण इनकी दिशा अरब के पूर्वी तट पर दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व

रहती है और शीत काल मे उ० पू० मानसून के कारण ये धारायें विपरीत दिशा मे प्रवाहित होने लगती है।

७—जल धाराओं का प्रभाव

इनमे कुछ प्रमुख ये है :—

(१) उष्ण जलधारायें अपने प्रभाव के क्षेत्रों का तापक्रम ऊँचा करने में समर्थ होती हैं। इनके विपरीत शीतल जलधारायें अपने निकटस्थ प्रदेशों का तापक्रम घटाती हैं। गल्फस्ट्रीम के कारण उ० प० योरप का तापक्रम उन्हीं अक्षांशों पर स्थित अन्य स्थल-खण्डों की अपेक्षा अधिक रहता है। दूसरी ओर पूर्वी कनाडा का तापक्रम लेब्रेडोर धारा के कारण बहुत घट जाता है। इतना ही नही, गल्फस्ट्रीम के कारण प० योरपीय तट जाड़ों में भी नहीं जमता, जब कि लेब्रेडोर की धारा कनाडा के पूर्वी तट के जम जाने मे और भी सहायक होती है।

(२) उष्ण जलधारा के ऊपर बहने वाली वायु शीतल जल धारा के ऊपर बहने वाली वायु की अपेक्षा अधिक शुष्क होती है अतएव उसमे अधिक आर्द्रता ग्रहण करने की क्षमता रहती है। यही कारण है कि उष्ण धाराओं के ऊपर से बहने वाली वायु अतिशय वाष्पमय होती है। गल्फस्ट्रीम के कारण ही प० योरप मे वर्षा अधिक होती है। द० प० अफ्रीका मे कलाहारी मरुभूमि का अस्तित्व आंशिक रूप से शीतल बैङ्गुला की धारा के कारण है।

(३) ऐसे स्थानों पर जहा शीतल एव उष्ण जलधाराये मिलती है, घना कुहरा उत्पन्न होता है, जो जहाजो के लिये बहुत खतरनाक है। टाइटैनिक नामक ब्रिटिश जहाज इसी कुहरे ही के कारण नष्ट हो गया, क्योंकि कुहरा छाया होने के कारण उत्तर से बहकर आने वाली हिमशिलाये (Ice bergs) दृष्टिगोचर न हो सकीं और उनसे टकरा कर यह महान जलयान चूर चूर हो गया।

(४) उष्ण जल धाराओं के कारण उत्तरी अक्षांशो मे स्थित बन्दरगाह शीतकाल में भी नहीं जमते जिमसे उनमे वर्ष भर सतत रूप से व्यापार होता रहता है। गल्फस्ट्रीम के कारण ही नारवे का नार्थ केप (७१ उ०) नामक बन्दरगाह वर्ष भर खुला रहता है।

(५) धाराओ के प्रवाह की दिशा जलयानो के चलने मे सहायक होती है। आधुनिक वाष्पयुग के पूर्व जलयान अनुकूल धाराओं के

अनुसार ही चला करते थे। आजकल भी अमेरिका से योरप जानेवाले अधिकाश जहाज गल्फ स्ट्रीम के अनुरूप चलते हैं

(६) शीतल धारायें अपने प्रवाह के साथ मछलियों के झुण्ड के झुण्ड ले आती है, जिससे मात्सिकी (Fisheries) को प्रोत्साहन मिलता है। उ० जापान और न्यूफाउण्ड लैण्ड मात्सिकी की दृष्टि से यदि आज इतने अधिक महत्वपूर्ण है, तो इसका समस्त श्रेय वहा पर उत्तर से प्रवाहित होने वाली शीतल जलधाराओं को है।

(७) धारायें सागर-जल को स्थिर नहीं होने देती। इस प्रकार वे स्थिर जल के अस्वास्थ्यप्रद परिणामो और हानियों को रोकती हैं।

(८) कभी कभी शीतल जल-धाराओ के साथ बड़ी बड़ी हिम-शिलायें बह आती हैं, जिनसे जहाजों को बड़ी हानि पहुँचती है। इस सम्बन्ध मे टाइटैनिक का उदाहरण दिया ही जा चुका है।

(६) जलधाराओं पर सागर के जीवजन्तुओं का जीवन निर्भर है। उष्ण धारायें प्रवाल के विकास के लिये अत्यन्त अनुकूल हैं। जलधाराओं द्वारा ही सागर के प्राणियो को ऑक्सीजन (Oxygen) और भोजन की उपलब्धि होती है।

(१०) उ० प० योरप मे वसन व्यवस्था (Settlement) अत्यन्त घनी है, जब कि इन्हीं अक्षाशो पर स्थित पूर्वी साइबेरिया प्रायः अनिवसित है। इसका कारण भी धारायें हैं।

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि जल धाराओ द्वारा जलवायु, व्यापार मात्स्की, बन्दरगाहों का विकास, सागरीय प्राणियों का जीवन, मानवीय वसन-व्यवस्था आदि सभी कुछ प्रभावित और निर्धारित होता है।

(७) प्रवाह (Drift) धारा (Current) और स्रोत (Stream) का अन्तर

इनमे कोई वास्तविक भेद नहीं है, केवल सीमा की निश्चितता तथा जल के वेग का अन्तर है। प्रवाह से तात्पर्य है, जल के ऊपरी स्तरों की गति, जिनकी कोई निश्चित सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती जैसे उत्तरी अटलाण्टिक का प्रवाह। इसकी अपेक्षा धारा में जल का वेग अधिक होता है और उसकी सीमायें भी अधिक निश्चित होती हैं जैसे लैब्रेडोर की धारा। स्रोत अथवा स्ट्रीम और भी अधिक निश्चित होती है। उदाहरण

के लिये गल्फ-स्ट्रीम के अधिकांश भाग के लिये निश्चित सीमायें निर्धारित की जा सकती है, जिससे उसे महासागर में उष्ण जल का श्रोत कहना सार्थक ही है। इसकी पश्चिमी सीमा सबसे अधिक निश्चित है जहां यह लैब्रेडोर की धारा का स्पर्श करती है। इसके प्रवाह का वेग प्रतिदिन १०-१५ मील से अधिक नहीं होता। दूसरी ओर धारा अथवा स्ट्रीम की गति प्रति घण्टे ४—५ मील होती है। मुख्यतः वायु से उत्पन्न होने के कारण प्रवाह सामान्यतः विस्तृत भी अधिक होता है—किन्तु धारा और श्रोत अपेक्षाकृत संकुचित, निश्चित सीमा में बद्ध और अधिक वेगवान होते हैं।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

ज्वार भाटा

१—परिभाषा

समुद्रतट के निवासी जानते हैं, कि सागर-जल चौबीस घंटे में दो बार धीरे धीरे स्थल की ओर अग्रसर होता है और फिर पीछे हटकर अपनी पूर्व दशा पर आ जाता है। सागर-जल के इस चढ़ाव-उतार को ज्वार भाटा कहते हैं—जल के आगे बढने को ज्वार कहते है और पीछे हटने को भाटा।

२—ज्वार-भाटा का कारण

ज्वारभाटा का कारण सूर्य और चन्द्रमा की आकर्षण-शक्ति है। सूर्य तथा चन्द्र दोनो ही पृथ्वी को अपनी ओर खींचते है। यद्यपि सूर्य चन्द्रमा की अपेक्षा आकार में बहुत बड़ा है, तथापि वह दूर भी बहुत है। सूर्य पृथ्वी से चन्द्रमा की अपेक्षा ९२, ७५०, ००० मील अधिक दूर है, अतएव पृथ्वी पर चन्द्रमा के आकर्षण का प्रभाव सूर्य की अपेक्षा कहीं अधिक होता है। चन्द्रमा पृथ्वी को अपनी ओर आकृष्ट करता है, किन्तु जल, जो द्रव पदार्थ है, शीघ्रता से खिच जाता है और महासागर के उस भाग का जल
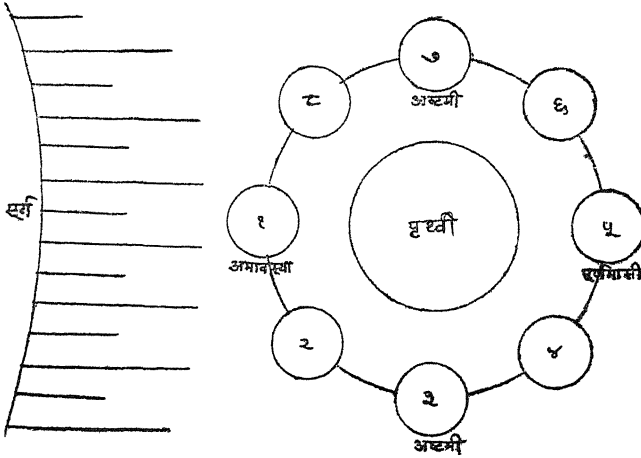
चित्र ४०—चन्द्रमा की विभिन्न स्थितियाँ

जो चन्द्रमा के ठीक सामने पड़ता है, ऊपर की ओर उठ आता है। यह ज्वार आसपास के पानी के सिमटने से ही बनता है। जिस समय किसी स्थान पर ज्वार होता है, तो पृथ्वी पर ठीक उसके दूसरी ओर भी वैसा ही ज्वार उठता है, क्योंकि चन्द्रमा स्थल को भी तो अपनी ओर खींचता है और ऐसा होने से दूसरी ओर जल एकत्र हो जाता है। इस प्रकार एक ही समय मे दो विपरीत स्थानों मे ज्वार उठा करता है। परन्तु जो स्थान इन स्थानो के प्रति समकोण बनाते हैं, वहाँ पानी नीचा होता है अर्थात् वहा भाटा होता है।

ज्वार भाटा विषयक सिद्धान्तो के अध्ययन के लिये कृपया 'भूसैद्धान्तिकी' का नवम् परिच्छेद (पृष्ठ ८१--८४) देखिये।

३—दीर्घ (Spring) और लघु (Neap) ज्वार

महीने में दो बार पूर्णमासी और अमावस्या के दिन सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी तीनो एक सीध में आ जाते है। इन दो दिनों का ज्वार अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक होता है, क्योंकि ऐसी दशा मे सूर्य और चन्द्र दोनों की सम्मिलित शक्तिया पृथ्वी के जल को आकर्षित करती है। इसे ही दीर्घ-ज्वार कहते है। कलकत्ते मे हुगली का जल दीर्घ-ज्वार मे १५ फुट ऊँचा उठ आता है।
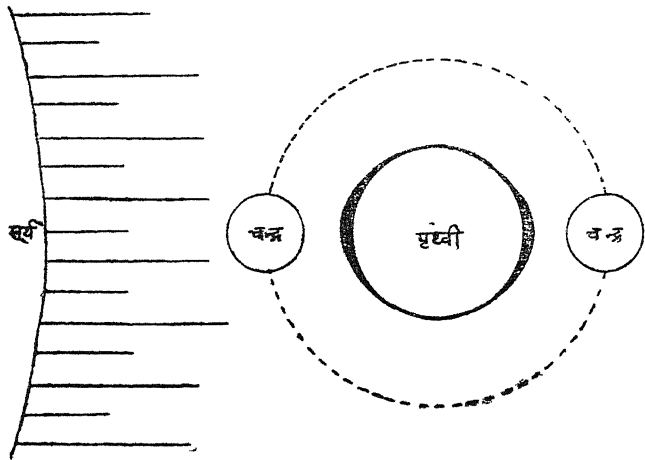
चित्र ४१—दीर्घ ज्वार

इसके विपरीत अष्टमी के दिन जब पृथ्वी के प्रति सूर्य और चन्द्रमा

समकोण बनाते हैं, तब ज्वार अपेक्षाकृत हल्का होता है। इस दशा में सूर्य की शक्ति चन्द्रमा की शक्ति के विरुद्ध काम करती है। इसे लघु-ज्वार (Neap Tide) कहते हैं। कलकत्ते में हुगली का जल लघु-ज्वार, मे छै फुट ऊँचा रहती है।
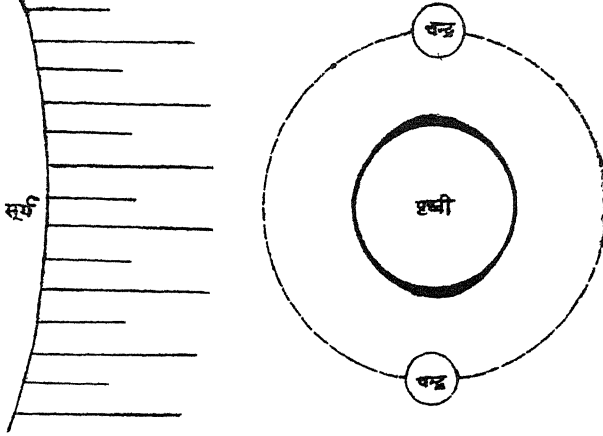
चित्र ४२—लघु ज्वार

४—दो उत्तरोत्तर ज्वारों का मध्यान्तर

चन्द्रमा पृथ्वी के किसी स्थान पर चौबीस घण्टे मे एक बार आता है। और उसके विपरीत स्थान पर भी वह एक ही बार आता है। अतएव प्रत्येक स्थान पर चौबीस घण्टे मे दो बार ज्वार आता है।

यदि चन्द्रमा स्थिर होता, तो प्रकट है कि पृथ्वी का प्रत्येक स्थान चौबीस घ टे मे एक बार चन्द्रमा के सम्मुख आता। ऐसी दशा मे किसी स्थान पर दो उत्तरोत्तर ज्वारों का मध्यान्तर बारह घण्टे ही होता। किन्तु जब पृथ्वी का कोई स्थान चौबीस घण्टे बाद अपनी पूर्व स्थिति मे आता है तब चन्द्रमा, अपनी परिक्रमण गति के कारण, आगे बढ़ जाता है और उस स्थान को चन्द्रमा के ठीक सामने होने के लिए कुछ समय और लग जाता है। यही कारण है कि किसी स्थान पर दो उत्तरोत्तर ज्वारो के मध्य मे लगभग बारह घण्टे छब्बीस मिनट का अन्तर होता है।

गणित द्वारा स्पष्टीकरण

मान लीजिए चन्द्रमा 'अ' पर है (चित्र ४३)। ऐसी दशा मे उसकी
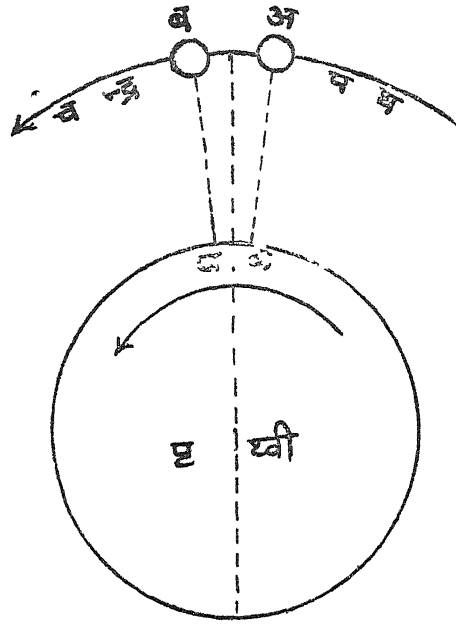
चित्र ४३—दो उत्तरोत्तर ज्वारो के मध्यान्तर का निर्धारण

आकर्षण शक्ति से 'क' पर ज्वार होता है। 'क' को सम्पूर्ण परिक्रमा लगाकर अपनी पूर्व-स्थिति मे आने के लिए २४ घण्टे लगते हैं, किन्तु इस काल मे चन्द्रमा 'अ' से 'ब' पर पहुच जाता है, फलतः ज्वार की अनुभूति के लिए 'क' को 'ख' पर पहुँचना आवश्यक हो जाता है। पृथ्वी की पूर्ण परिक्रमा लगाने के लिये चन्द्रमा को २८ दिन[1] लगते हैं, अर्थात् क ख पृथ्वी की पूर्ण परिधि का १।२८ वॉ अश है।

क को १ परिक्रमा लगाने मे २४ घण्टे लगते हैं

,, $\frac{१}{२८}$,, $\frac{२४ \times ६०}{२८}$ मिनट लगते है

= लगभग ५२ मिनट

---

1. Lunar Month—The interval of time in which moon makes one complete revolution round the earth from the new moon to new moon is approximately 29 5 days It is often popularly taken to be a period of 28 days—w G Moore (A dictionary of geography)

परिक्रमा लगाते समय, क' जब अपनी प्रतिध्रुवीय स्थिति पर पहुँचता है, जब उसमे पुनः ज्वार होता है। उपर्युक्त गणित के अनुसार ऐसा होने के लिए २४ घण्टे ५२ मिनट का आधा समय अर्थात् १२ घण्टे २६ मिनट लगना चाहिये, जो वास्तविकता भी है।

५—ज्वार का चढ़ाव

विवृत महासागर मे ज्वार का चढ़ाव एक दो फुट ही होता है। बाल्टिक और भूमध्यसागर जैसे आंशिक समावृत सागरो मे यह चढ़ाव और भी कम होता है। किन्तु जब ज्वार द्वारा उठे हुये जल को उथली अथवा चौड़े मुँह की सकीर्ण घाटी मे घुसना पड़ता है तो वह बहुत ऊंचा उठ आता है। उत्तरी अमेरिका की फण्डी की खाड़ी में वह ७० फुट ऊंचा उठ आता है, जो संसार मे सबसे अधिक है जल के इस प्रकार ऊपर उठने को 'बोर' (Bore) अथवा वेलापूर कहते है। यदि नदी की एस्चुअरी ज्वार आने की दिशा में हो तो पानी बहुत ऊंचा उठता है।

चित्र ४४— फण्डी की खाडी

६—समज्वार रेखाये (Cotidal Lines)

वे कल्पित रेखाये जो सागर के उन स्थानों को मिलाती हैं जहा ज्वार एक ही समय आता है, समज्वार रेखाये कही जाती हैं।

७—ज्वार भाटा से लाभ-हानि

(क) लाभ

(१) भाटा नदियों के मुहाने से कूड़ा-करकट बहा ले जाता है और उसे महासागर मे दूर फेंक देता है।

(२) बड़े बड़े जहाज ज्वार की सहायता से बन्दरगाहों तक पहुँच जाते हैं और भाटा के साथ बाहर निकल आते हैं। बिना ज्वार के लन्दन प्रसिद्ध बन्दरगाह न होता और केवल एक भीतरी नगर रह जाता।

(३) ज्वार में सिमटे हुए जल को संचय कर अनेक लाभ उठाये जा सकते हैं। ज्वार-भाटा से जल-विद्युत भी उत्पन्न की जा सकती है।

(ख) हानि

(१) ज्वार-भाटा द्वारा कभी कभी बड़ी वेगवती और भयानक धाराये उत्पन्न होती है, जिन्हें हम 'ज्वार-धाराये' (Tidal Currents) कहते हैं। जहाजो को इनसे बडी हानि पहुँचती है।

(२) खाड़ियो मे और बन्दरगाहो के निकट ज्वार द्वारा कभी कभी बहुत सी रेत एकत्र हो जाती है। ऐसे बन्दरगाहों को गहरा बनाये रखने के लिये बहुत सा धन व्यय करना पड़ता है।

बारहवाँ परिच्छेद

महासागरीय निक्षेप तथा प्रवाली रचनायें

(क) महासागरीय निक्षेप

१. निक्षेप का वर्गीकरण

चैलेञ्जर (Challenger) नामक जलयान द्वारा सागर नितल से एकत्र किये गये पदार्थों की परीक्षा की गई। तदनुसार मरे (Murray) और रेनार्ड (Renard) ने महासागरीय-निक्षेप का वर्गीकरण इस प्रकार किया है :—

महासागरीय निक्षेप

निक्षेप	पदार्थ	वर्ग
१ समुद्रतटीय निक्षेप (Littoral deposits) उच्च और निम्न जल चिन्हों के मध्य मे	कंकर (Gravel) बालु, पक आदि	१ भूजात निक्षेप (Terrigenous Deposits) पदार्थ मुख्यतः स्थल से प्राप्त
२. गाध-जलीय निक्षेप (Shoal water deposits) निम्नजल-चिन्ह और १०० फैदम की रेखा के मध्य में	कंकर (Gravel) बालु, पक, चूर्णीय-निक्षेप (Calcareous accumulations)	
३. अथाह सागरीय निक्षेप (Deep sea deposits)	चूर्णीय पक (Calcareous mud) ज्वालामुखीय पक (Volcanic mud) हरित पक और बालु नील पक लाल पक	
	चूर्णीय-निक्षेप पादछिद्रि निश्च्याव (Foraminiferal Ooze) पक्षपाद निश्च्याव (Pteropod Ooze) युक्ताप्य निश्च्याव (Diatom Ooze) अरसूत्रपाद निश्च्याव (Radiolarian Ooze) महासागरीय लाल मृत्तिका (Oceanic red clay)	२ तलप्लावी निक्षेप (Pelagic deposits) पदार्थ स्थल से प्राप्त नहीं

२. पंक (Muds)

१. वयन (Texture] की दृष्टि से ये बालू की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म हैं।

२. इनका रंग रासायनिक तत्वों के अनुसार है जैसे लाल पंक की लालिमा अयोजारेय (Iron oxide) के कारण है और हरित पंक का हरा वर्ण अयोसैकतीय (Iron Silicate) के कारण है।
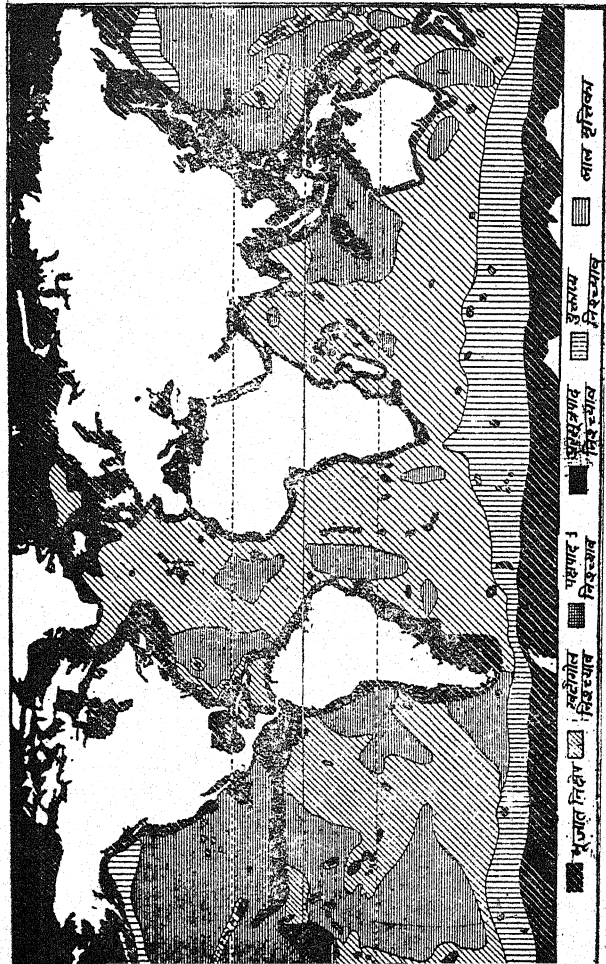
चित्र ४८—महासागर पयी निक्षेप

३. समस्त पंकों में नील पक (Blue Mud) का विस्तार सबसे अधिक है।

३. निश्च्याव (Oozes)

१. महासागर के सूक्ष्म जन्तुओं के अवशेषों से ये बने हैं और उन्हीं के अनुसार इनका नामकरण भी हुआ है।

२ स रचना की दृष्टि इनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है :—

निश्च्याव

१ चूर्णीय (Calcareous)	२. सैकतीय (Siliceous)
अ पक्षपाद निश्च्याव (Pteropod ooze	अ युक्ताग्य निश्च्याव (Diatom ooze)
ब खटीगोल निश्च्याव (Globigerina ooze)	ब. अरसूत्रपाद निश्च्याव (Radiolarin ooze)
स पादछिद्रि निश्च्याव (Foraminiferal ooze)	
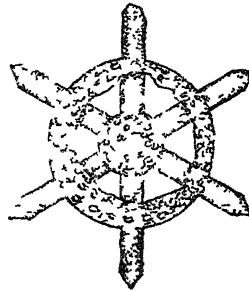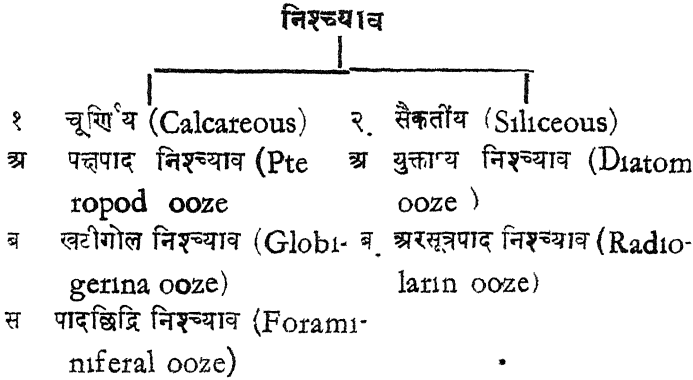
पादछिद्रि निश्च्याव [Foraminiferal Oozes] अरसूत्रपाद निश्च्याव [Radiolarian Ooze]

चित्र ४६—निश्च्याव

४ लाल मृत्तिका (Red clay)

२. तलप्लावी-निक्षेप (Pelagic deposits) में इसका सबसे अधिक विस्तार है। इसके द्वारा प्रशान्त महासागर का तिहाई भाग से भी अधिक

और अन्धमहासागर का अधिकाश भाग आच्छादित है । समस्त महासागरों के संयुक्त-नितल के आधे से अधिक भाग में लाल मृत्तिका (Red clay) विद्यमान है ।

२. यह पतला निक्षेप है और १५००० फुट से अधिक गहराई में नहीं पाया जाता ।

३ इसकी उत्पत्ति शिलापदार्थों के टूटने और वायु द्वारा सागर तक लाये गये ज्वालामुखीय पदार्थों के विबन्धन (Decomposition) से हुई है ।

४ इसका लाल वर्ण अयोजारेय (Iron Oxide) के कारण है ।

५ संरचना की दृष्टि से यह यथार्थ मृत्तिका (True clay) है ।

(ख) प्रवाली रचनायें

१ प्रवाल (Coral)

प्रवाली पुर्वङ्कक (Coral Polyp) महासागरों में रहने वाला एक जीव है । यह सागर-जल से कैलशियम कार्बोनेट (Calcium Carbonate) खींचता है । फिर उससे अपने कोमल शरीर को संभालने के लिये कटोरी बनाता है ।

इन प्रवाली जीवों की संख्या इतने वेग से बढ़ती है कि थोड़े की काल मे वे बृहद् श्रंखलाओ का रूप ग्रहण कर लेते है ।

२. प्रवाली विकास के लिये अनुकूल दशायें

इनमे प्रमुख ये हैं :—

(१) अलवण जल प्रवाली विकास के लिये अनुकूल नहीं है, अतएव प्रवाली-रचनाये ऐसे तटों पर कम पाई जाती हैं, जहा नदिया सागर को अतुलित अलवण जल समर्पित करती है ।

(२) खारे अथवा लवणमय होने के अतिरिक्त जल का निर्मल (अर्थात् बालु और पक से मुक्त) होना भी प्रवाली—विकास के लिये आवश्यक है ।

(३) जल का तापक्रम ७०°फ से कम न होना चाहिये ।

(४) प्रवाल १२० फुट से अधिक गहराई मे नहीं पाये जाते ।

(५) उष्ण-धाराये प्रवाली यिकास में सहायक होती हैं ।

३. प्रवाली रचनाओं का वितरण

प्रवाली रचनाये महाद्वीपों के पूर्वी-तट पर ३०° उ० और ३०° द० अक्षांशों के मध्य मे पाई जाती है। व्यापारिक वायु (Trade Wind) अमेरिका, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट का तापमान घटा देती है, (स्पष्टीकरण के लिये कृपया 'सागर का तापक्रम' शीर्षक परिच्छेद देखिये) अतएव इन स्थानों में प्रवाली श्रंखलायें नगण्य है। प्रवाली श्रंखलाओ मे सबसे अधिक महत्वपूर्ण आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट पर स्थित बृहत् परातट प्रवाली (Great barrier reef) है।

४. प्रवाली रचनाओं का वर्गीकरण

प्रवाली रचनाये मुख्यतः तीन प्रकार की हैं :—

(१) अनुतट प्रवाली (Fringing reef)—ये द्वीपो और महाद्वीपो के तटो पर पाई जाती हैं। इनका धरातल असम होता है और इनका

चित्र ५०—अनुतट प्रवाली

तल प्रायः निम्न जल-चिन्ह के निकट रहता है। कहीं कहीं प्रवाली-श्रंखला और तट के मध्य में लघु और उथला जलाशय होता है, किन्तु सदैव नहीं। अण्डमन द्वीप मे ऐसी ही एक अनुतट-प्रवाली है।

(२) परातट-प्रवाली (Barrier Reef)—यह अत्यन्त विस्तृत प्रवाली श्रंखला है जिसका जल में काफी गहराई तक विस्तार होता है। इसके
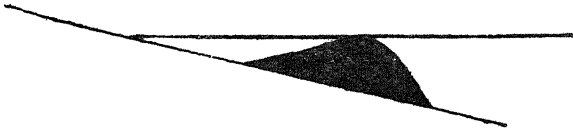
चित्र ५१—परातट-प्रवाली

और तट के मध्य में एक चौड़ा और गहरा उपह्रद (Lagoon) अनिवार्य

रूप से रहता है। इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट पर स्थित बृहद्-परातट-प्रवाली (Great Barrier Reef) है।

(३) प्रवाल्या (Atoll)—जब प्रवाली-रचना वलय (Ring) की आकृति की होती हैं और उसके मध्य में जलमय उपह्रद होता है, तो उसे हम प्रवाल्या अथवा अटोल कहते हैं। प्रशान्त महासागर में प्रवाल्याओं का बाहुल्य है।
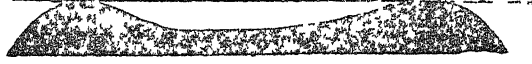
चित्र ५२—प्रवाल्या (Atoll)

६. प्रवाल्याओं की संरचना

कृपया 'भूसैद्धान्तिकी' का सप्तम परिच्छेद (पृ० ६८—७२) देखिये।

७. प्रवाली द्वीप

प्रवाल-विकास के लिये अनुकूल दशाओं का उल्लेख पूर्व में हो चुका है। प्रवाली द्वीप अधिक ऊंचे नहीं होते। बहुधा वे सागर समतल से कुछ ही फुट ऊपर उठे रहते हैं। कालान्तर में चूर्ण प्रस्तर का पृष्ठ ऋतुरक्षण से भूमि में परिणत हो जाता है। तब उसमें पेड़-पौदे उगते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इन द्वीपों में वनस्पति के बीज चिड़िया ले आती हैं। इन द्वीपों के प्रमुख वृक्ष नारियल और ताल (Palm) हैं। लकादीव एवं मालदीव इसके उदाहरण हैं।

तेरहवाँ परिच्छेद

महासागरीय अपक्षरण और तट रेखाएँ

१. सागर का विनाशात्मक कार्य

सागर का विनाशात्मक कार्य, जो केवल तट तक ही सीमित है, मुख्यतः लहरों से होता है, जो अप्रत्यक्ष रूप से वायु पर निर्भर है। ज्वारभाटा और धाराओं से अपेक्षाकृत कम विनाश होता है। सागरीय अपक्षरण निम्नलिखित प्रतिकारकों के अनुसार होता है :—

(क) तटीय शिलाओं की संरचना (Structure)

(ख) तटीय शिलाओं की कठोरता (Hardness)

(ग) तटीय शिलाओं की अभिनति (Dip)

(घ) जलवायु का प्रभाव

(ङ) जीवजन्तुओं और पादपों का प्रभाव

(क) तटीय शिलाओं की संरचना

यदि तट अबद्ध कणों Loose Particles) द्वारा निर्मित होता है, तो लहरें स्वयं ही तट काटने में समर्थ होती हैं किन्तु यदि तट दृढ़ और ठोस शिलाओं द्वारा निर्मित हुआ तो इनका कार्य अप्रत्यक्ष रूप से होता है। ऐसी दशा में अष्टीला (Pebbles) रेती का कार्य करते हैं। शिलाओं के निर्बल भाग और विवर (Openings) इनसे सर्वप्रथम प्रभावित होते हैं। जल की ऊँची लहरें इन विवरों का मुख बन्द कर देती हैं, जिससे अन्दर
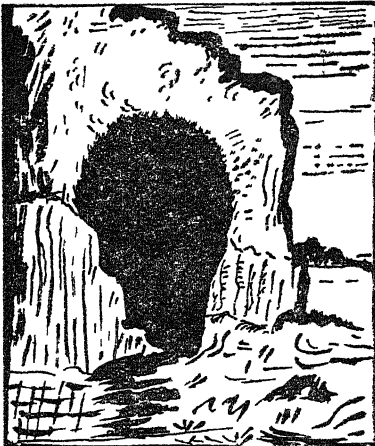
चित्र ५६—लहरों की क्रिया से बनी गुफा

की वायु रुद्ध हो जाती है। जब लहरें नीचे जाती है तो वायु पुनः प्रस्तरित होती है। इस प्रकार वायु के एकान्तर पर संकोचन (Compression) और विस्तार (Expansion) के फलस्वरूप विवर गुफा का रूप धारण कर लेते है और धीरे धीरे उनकी छत और पार्श्व-भित्तिया (Sidewalls) अपदलित होकर गिर पड़ती है। इस प्रकार लहरे किनारे को नष्ट करती रहती है।

(ख) तटीय शिलाओं की कठोरता

मृदुल शिलाओं मे कठोर शिलाओं की अपेक्षा अपक्षरण अधिक सरलता से होता है अतएव यदि कोई तट अनेक प्रकार की शिलाओ द्वारा निर्मित हो, तो उसकी मृदु शिलाये घिसकर सागर-कुक्षि (Bay) का रूप ग्रहण कर लेती है और कठोर शिलाये बाहर की ओर निकली रहती हैं। आयरलैण्ड का दक्षिण-पश्चिमी तट इसका एक सुन्दर उदाहरण है। इसे चित्र ५७ मे प्रदर्शित किया गया है।

चित्र ५७—शिलाओं की कठोरता का सागरीय अपक्षरण पर प्रभाव

(ग) तटीय शिलाओं की अभिनति

यदि तटीय शिलाओ की अभिनति सागर की दिशा मे हो और सन्धियो (Joints) की स्थल की दिशा मे (चित्र ५८-क) तो तटीय शिलाओ के बड़े-बड़े टुकड़े बड़ी सरलता से तट से पृथक होकर गिर पड़ते है।

इसके विपरीत यदि तटीय शिलाओं की अभिनति स्थल की ओर होती है और सन्धियों की सागर की दिशा मे (चित्र ५८-ख) तो तटीय शिलाओं के चटख जाने पर भी उनके टुकड़े सरलता से पृथक नही होते। इस अवस्था में अपक्षरण अपेक्षाकृत कम होता है।
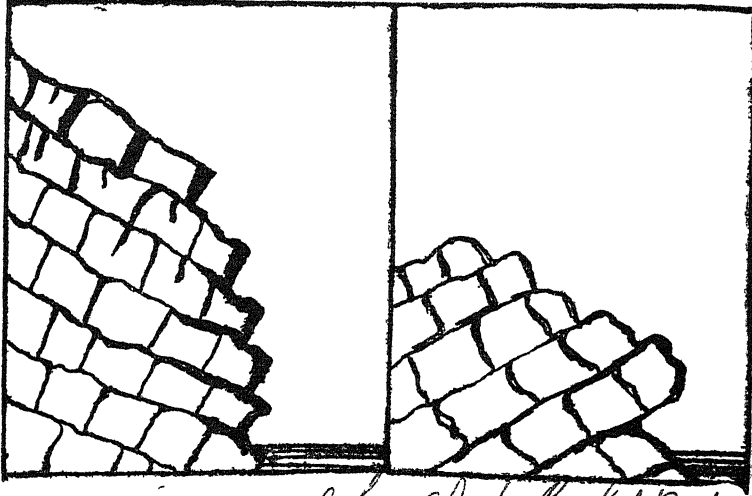
चित्र ५८—सागरीय अपक्षरण पर शिलाओं के अभिनति कोण (Dip) की दिशा का प्रभाव

(घ) जलवायु का प्रभाव

जलवायु भी सागर द्वारा तट के अपक्षरण की क्रिया को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिये अधिक वर्षा के क्षेत्रों में जहा लहरें किनारे को नीचे से तोड़ती है, वहा वर्षा-जल उसे ऊपर से काटता है। इस प्रकार तटीय अपक्षरण और भी अधिक वेग से होता है।

(ङ) जीवजन्तुओं और पादपों का प्रभाव

कुछ सागरीय जन्तु तटीय शिलाओं में छिद्र करके उन्हें निर्बल बना देते हैं, जिससे लहरें उन्हें सरलतापूर्वक नष्ट करने में समर्थ होती हैं। इसके विपरीत पादपों की जड़े तटीय शिलाओं को स्थायी बनाने में सहायक होती हैं।

२—सागर का सृजनात्मक कार्य

सागर, यदि एक स्थान पर स्थल का अपक्षरण करता है, तो दूसरी ओर वह उसी पदार्थ को बालुका-दण्ड (Sand bar) और जिह्वा (Spit) के रूप में अन्यत्र (जैसे नदियों के मुहाने और सागर-कुक्षि में) निक्षेपित भी

करता है। कभीकभी तो सागर-कुक्षि बालुका दण्डो से बिल्कुल बन्द हो जाती है।
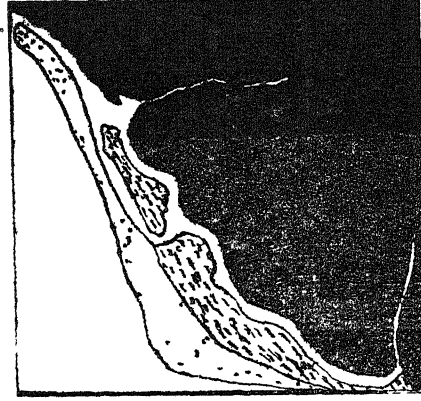
चित्र ५६—सिकता-दण्ड (Sand bar) के कारण एल्ड नदी की धारा का दक्षिण की ओर मुड़ जाना

(क) सिकता-दण्ड अथवा बालुका दण्ड (Sand bar)—नदियों द्वारा सागर को समर्पित अतुलित अवसाद (Sediments) बालुका दण्डकी सृष्टिके लियेअनिवार्य सामग्री प्रदान करता है। कभी-कभी सागर-कुक्षि (bay) के बालुका दण्डो द्वारा बिल्कुल बन्द हो जाने से उपह्रद (Lagoons) बन जाते हैं। कभी-कभी मुहाने पर स्थित सिकता-द डो से नदियो के प्रवाह की दिशा बदल जाती है। उदाहरण के लिए, पूर्वी इ गलै ड मे एल्ड नामक नदी की धारा बालुका द ड के कारण दक्षिण की ओर मुड़ गई है।

(ख) जिह्वा (Spits) और सिकता द्वीप—सागर मे प्रक्षिप्त स कीर्ण और निचली बालू से बनी जीभ सदृश आकृति को 'जिह्वा' (SPIT) की स ज्ञा दी गई है। बालुका द ड और जिह्वा मे मुख्य अन्तर यह है कि जिह्वा का एक सिरा स्थल मे जुड़ा रहता है, बालुका द ड का नहीं। सागर-कुक्षि-द्वार को प्रभावित करने वाली धाराओ से जिह्वाओं (Spits) की सृष्टि होती है। जर्मनी के तट पर बालुका द ड और जिह्वा अत्यन्त प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इनके द्वारा समावृत सागरों को यहा हॉफ (Haffs) कहते हैं। कभी-कभी महाद्वीप दूर स्थित द्वीपों से जिह्वा

चित्र६०—जिह्वा (Spit) द्वारा पोर्टलैंड द्वीप का मुख्य स्थलखड से सम्बन्ध

द्वारा जुड़ जाते हैं। उदाहरण के लिये दक्षिणी इङ्गलैंड मे पोर्टलैंड नामक द्वीप, एक लम्बी और अविराम जिह्वा द्वारा मुख्य स्थलखड से जुड़ गया है। कभी-कभी सागर द्वारा निक्षेपित पदार्थ इतना मोटा होता है कि दलदल बन जाते हैं। दक्षिणी इगलैण्ड का रौमने दलदल इसी प्रकार बना है। ऐसे दलदलों के सूखने पर अत्यन्त उपजाऊ भूमि उपलब्ध होती है।

३. तटरेखाओं का वर्गीकरण

जौन्सन ने तट रेखाओं को चार प्रमुख श्रेणियों मे विभाजित किया है :—

(१) निमज्जन की तट रेखाये (Shore-lines of subsidence) स्थल के कुछ विशेष रूपो के आशिक जलमग्न हो जाने से ये तट रेखाये बनती हैं।

(२) उन्मज्जन की तट रेखाये (Shore-lines of emergence) स्थल के ऊपर उठने अथवा जलपृष्ठ के नीचे जाने से इन तट-रेखाओं का निर्माण होता है।

(३) तटस्थ तट रेखाये (Neutral Shore lines) इन तट-रेखाओं के बनने मे न उन्मज्जन होता है और न निमज्जन ही।

(४) सयुत तट रेखाये (Compound Shore lines) वे तट-रेखाये हैं, जिनमे पूर्वोक्त किन्हीं दो अथवा तीनों प्रकार की तट रेखाओं के गुण विद्यमान हों।

(१) निमज्जन की तटरेखाये

अधोलिखित स्थल के रूपो के निमज्जन से ये तट-रेखाये अस्तित्व में आ जाती हैं।

चित्र ६१—द० प० आयरलैंड का रियातट

१. नदियों की घाटियां—जब पूर्व-स्थित नदियो की घाटिया जल मे डूब जाती है, तब इस प्रकार अस्तित्व मे आई हुई तट-रेखा को रियातट (Ria Coast) कहते है।

२ हिमनदीकृत घाटिया (Glaciated Valleys) - जब हिम नदियों के अपहरण से बनी हुई घाटिया जल में डूब जाती है, तब ऐसे तट को फियर्ड तट (Fiord Coast) कहते है।

३ नदियो के निक्षेप सम्बन्धी रूप जैसे डेल्टा, पूर के मैदान (Flood Plains) कछारी व्यजन (Alluvial Fans) आदि—डेल्टा के आशिक रूप से जलमग्न होने से उन्नतोदर तट रेखा बनेगी। पूर के मैदान के आशिक जलमग्न होने से अपेक्षाकृत सीधी तट-रेखा बनेगी।

४ हिमनदियो के निक्षेप सम्बन्धी रूप—जैसे दीर्घकूटिका (Drumlin) तथा विभिन्न प्रकार के हिमोढ (Moraines)

आशिक रूप से जलमग्न ड्रमलिन तथा हिमोढ से बहुत ही अनियमित तट-रेखाये बनती हैं।

चित्र ६२—नौरवे का फियर्ड-तट

५. डालमैशियन समुद्रतट-एड्रियाटिक सागर के पूर्वी तट पर अनेक लम्बे संकरे और पहाड़ी द्वीप वर्तमान है। उनके विस्तार की दिशा तट के समानान्तर है। वास्तव मे वे उन पर्वत-श्रेणियो की चोटिया हैं जो जलमग्न हो चुकी हैं। इस प्रकार की तट रेखा-को डालमैशियन-तट-रेखा कहते है।

चित्र ६३—डालमैशियन समुद्र तट
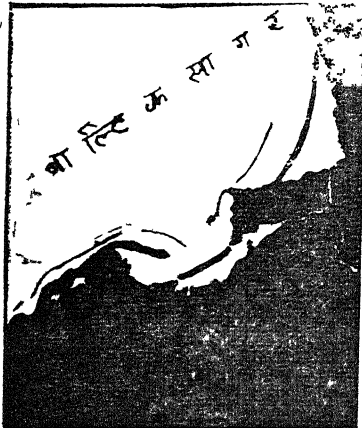
६. विभञ्जन (Faulting) के फलस्वरूप उत्पन्न हुई तट रेखाये प्रायः सीधी होती हैं, जैसे द० भारत का पश्चिमी तट।

७ ज्वालामुखी सम्बन्धी स्थल के रूप जैसे ज्वालामुखीय शंकु (Volcanic-cone) तथा लावा-निक्षेप आदि।

इनके पूर्ण अथवा आंशिक जलमग्न होने से जो तट रेखायें बनेगी, वे बाहर की ओर उन्नतोदर (Convex) होगी।

चित्र ६४—पूर्वी जर्मनी का हॉफ तट

८ हाफ तट रेखा (Haff Coast-line)—कुछ तट रेखायें बडी ही नीची और कटाव रहित होती हैं, पूर्वी एशिया की तट रेखा ऐसी ही है। इसमें अनेक लम्बी संकरी और तट के समानान्तर स्थल-पट्टियां वर्तमान हैं। वास्तव में ये पट्टियाँ बड़े बड़े बालुका-कूटो (Sand dunes) की द्योतक हैं, जो उथले उपह्रदों (Lagoons) द्वारा एक दूसरे से पृथक हो गई हैं। जर्मनी में इन पट्टियो को हाफ (Haff) कहते हैं। इसी आधार पर इस प्रकार की तट-रेखाओ को हाफ तट रेखा (Haff Coast-line) कहते हैं।

(२) उन्मज्जन की तट-रेखायें

ऐसी तट-रेखाये स्थल के ऊपर उठने अथवा जल के नीचे जाने से बन जाती है। इनकी पहचान निम्नलिखित विशेषताओं से होती है :—

१. ऊपर उठे और लहरो से कटे मैदान

२. लहरो द्वारा निर्मित उत्तल (Terraces)

३. पूर्वकालीन तट के वर्तमानकालीन तट से ऊपर होने के चिन्ह

४. अभिनव-कालीन सागरीय अथवा झील के अवसादो की उपस्थिति।

५. सीधी तट रेखाये —इस मापदंड को अत्यन्त सावधानी से प्रयोग मे लाना चाहिये क्योकि लहरे और धाराये टेढे-मेढे तट को भी अपनी क्रिया से सीधा कर देने मे समर्थ हैं।

(३) तटस्थ तट-रेखायें (Neutral Coastlines)

ऐसी तट-रेखाओ को जिनके मुख्य गुण ऐसे कारणो पर निर्भर हैं जिनका उन्मज्जन अथवा निमज्जन से कोई सम्बन्ध नही—जौन्सन ने तटस्थ तट-रेखा की संज्ञा दी है।

उदाहरण—कूटों और प्रवाली-श्रृङ्खलाओ की तट रेखाये।

(४) संयुत तट-रेखाये

इनमे उपर्युक्त दो अथवा तीनो प्रकार की तटरेखाओं के गुण विद्यमान है। जैसे समतल के उच्चावचन (Oscillation of level) से ऐसी तट रेखायें बन जाती हैं, जिनमे उन्मज्जन और निमज्जन दोनो प्रकार की तट रेखाओ के गुण समान मात्रा मे विद्यमान रहते है।

— — —

चौदहवाँ परिच्छेद

महासागरीय प्राणिजात एवं उद्भिज्जात

१. महासागरीय प्राणिजात

प्रकाश एव अधःस्तर (Substratum) का विचार करते हुये हम महा सागरों मे रहने वाले जीवों को निम्नांकित तीन मुख्य विभागों में बाट सकते हैं :—

(१) वेला-प्रदेशीय (Littoral)—इस विभाग के अन्तर्गत वे जीव आते हैं, जिन्हें प्रकाश एव अधःस्तर दोनों उपलब्ध है।

(२) तलप्लावी (Pelagic)—इस विभाग के जीव प्रकाश चाहते हैं, अधःस्तर नहीं।

(३) अथाह सागरीय (Abyssal)—इस विभाग के जीव अधःस्तर चाहते हैं, प्रकाश नहीं।

(१) वेला प्रदेशीय जीव

क-वेला-प्रदेश का विस्तार

वेला-प्रदेश का विस्तार स्थल के तट से लेकर महाद्वीपीय निधाय (Continental Shelf) के अन्त तक है अर्थात् वह लगभग ६०० फुट की गहराई तक फैला हुआ है। इसके नीचे प्रवण (Slope) एकदम प्रपाती (Steep) है और वहा वेला प्रदेशीय जीवों के स्थान पर तलप्लावी (Pelagic) जीव पाये जाते हैं।

ख—वेला-प्रदेश में भोजन की प्राप्ति

भोजन अथवा आहार की दृष्टि से वेला प्रदेश अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें पाये जाने वाले आहार के तीन साधन हैं :—(१) स्थल-दोष्य (Waste of land) (२) तटीय शिलाओं की बद्ध आप्यकाः (Fixed algae) तथा (३) सूक्ष्म प्लावी आप्यकाः (Minute Floating algae) अथवा उद्भिद मन्द प्लवक (Phyto plankton)

नदी-मुख पर एकत्र पंक से आहार ग्रहण करने वाले जीवों की संख्या से ही स्थल-क्षेप्य की महत्ता का अनुमान किया जा सकता है। यदि जल निर्मल होता है, तो उसमे शम्बुक (Mussels) तथा शुक्ति (Oysters) जैसे शख जीव (Shell Fish) कठिननः (Crustacea) एवं अन्य सामुद्रिक जीव, जो मछलियों को आहार प्रदान करते है, बहुत पायेजाते हैं। स्थल-क्षेप्य का विस्तार सागर में अधिक गहराई तक नहीं होता। अतएव, तलप्लावी (Pelagic) एवं अथाह सागरीय (Abyssal) जीव इससे लाभ नहीं उठा सकते। बद्ध आप्यकाः (Fixed algae) की उत्पत्ति केवल ऐसे स्थानों में संभव है, जहाँ उसे आसञ्जन के लिये दृढ धरातल मिल सके और जहा तीव्र सूर्य-प्रकाश भी पहुँच सके। अतएव ये केवल स्थल-तटों तक ही सीमित हैं, जहा ये बहमूल्य प्राशन भूमि (Feeding ground) की सृष्टि करती हैं। लघु-ज्वार चिन्ह के ठीक नीचे के प्रदेश को कपिशाप्यक प्रदेशा (Laminarian Zone)कहते हैं। यह कठिननः (Crustacea)चूर्णप्रावार (Mollusca) प्रवालादयः (Coelenterate) जैसे लघु जीवों के लिये सदैव से प्रसिद्ध रहा है। उच्च ज्वार के समय यह प्रदेश काफी गहराई तक जल से ढक जाता है, जिससे यहा विशालकाय मछलिया आजाती हैं और इस प्रकार मछुओं के लिये यह प्रदेश बहुमूल्य हो जाता है। तटीय जल मे सूक्ष्म आप्यकाः बहुत पाई जाती हैं। यद्यपि इनकी प्रकृति, गुण एव लक्षणों का अधःस्तर की उपस्थिति से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है, तथपि अप्रत्यक्ष रूप से सागर-नितल तथा स्थल-क्षेप्य इन्हें प्रभावित करते हैं। तटीय जल मे युक्ताप्यकाः (Diatom) का विशेष बाहुल्य है। वास्तव मे, यहा पर विवृत सागर से भी अधिक इनकी जातिया पाई जाती हैं।

(ग) वेला प्रदेश की प्राकृतिक विशेषतायें

वेला-प्रदेश मे जल सदैव गतिवान रहता है। धारायें और ज्वार-भाटा उसे गति प्रदान करते हैं, उसे मीठा बनाये रखते हैं तथा उसे सतत रूप से भोजन और ऑक्सीजन प्रदान करते हैं। यही कारण है कि विवृत सागरों (Open seas) के तट पर बहुमूल्य जीव-जन्तु पाये जाते है, किन्तु समावृत सागरों (Enclosed Seas) और झीलों के तट पर नहीं। यद्यपि तटीय जीवों में अनेक तैरने मे कुशल होते हैं, जो संकटकाल में तैरकर अपनी रक्षा कर सकते हैं, तथापि अनेक तटीय मछलिया जैसे ह्वेल (Whale) एवं शिशुमार (Dolphin) जीवन-रक्षा के प्रयास मे असफल होती हैं और किनारों पर मृतावस्था मे पाई जाती हैं। दूसरी ओर बेचारे निर्बल जीव

तब तक नितल से चिपके रहते हैं, जब तक संकट-काल समाप्त नहीं हो जाता।

तटीय जीवों को एक अन्य संकट से भी अपनी रक्षा करना पड़ती है। वह है—सागर-जल के तापक्रम एवं लवणता में अविरल परिवर्तन। उष्णप्रदेशीय सागरों (Tropical Seas) में तापक्रम का गोचर (Range) कम अर्थात् लगभग १०° फ° होता है और औसत तापक्रम अधिक अर्थात् लगभग ८० फ० होता है। ध्रुवीय सागरों मे तापक्रम का गोचर कम है और औसत तापक्रम भी कम ही है अर्थात् लगभग २८° फ० है। शीतोष्ण प्रदेशो (Temperate Regions) मे तापक्रम का गोचर अधिक है और औसत तापक्रम न बहुत अधिक ही है और न बहुत कम। जल का आपेक्षिक ताप (Specific Heat) अधिक होने के कारण सागर के किसी भी भाग के तापक्रम-गोचर की तुलना स्थल के साथ नहीं की जा सकती। बहुत से स्थलीय जीवों के शरीर मे जैसे उष्ण रक्त वालो मे ताप नियंत्रण (Heat regulating) की व्यवस्था रहती है,जिससे वे तापक्रम के विभेदन के अनुसार अपने को समायोजित कर लेते हैं। यद्यपि सागर के जीवों में यह गुण नहीं है, तथापि ह्वेल आदि मे जिनके पूर्वज स्थल-निवासी थे, यह विशेषता है। इस भाति तापक्रमान्तर सहने की क्षमता के अनुसार हम सागरीय जीवों को दो प्रमुख विभागों मे बाट सकते हैं :—

(१) महातापान्तर जीवी (Euthermal)--जो तापक्रम के महान अन्तरों को सह सकते हैं।

(२) अल्प-तापान्तर जीवी (Steno thermal)—जिनके लिये तापक्रम के महान अन्तर प्राण घातक हैं।

सामान्यतः यह कहा जा सकता है, कि शीतोष्ण प्रदेश के वेलाप्रदेशीय जीव महातापान्तर जीवी हैं और उष्ण प्रदेशीय तथा ध्रुवीय सागरों के जीव अल्पतापान्तर जीवी हैं। लवणता के अन्तर से भी इस प्रकार निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

प्रत्येक सागरीय जीव के क्रिया-कलाप के क्षेत्र भी भिन्न हैं। डा० जोर्ट (Hjort) का कथन है, कि उत्तरी सागर और नौरवे सागर मे पाई जानेवाली कौड (Cod) मछली की सत्रह जातियों में से प्रत्येक अपने अनुकूल गहराई, तापक्रम और लवणता के अनुसार पृथक अण्डजनन क्षेत्र (Spawning ground) चुनती है।

(घ) वेला प्रदेशीय जीव

वेला-प्रदेश में जीवों की निम्नाकित जातिया पाई जाती हैं :—

(१) वेला-पक्षी (Littoral Birds) जैसे उड़ न सकने वाली पेनगुइन (Flightless penguines), समुद्रचिल्ली (Sea gulls) आदि।

(२) सरीसृपा (Reptiles)—जैसे चर्म-कश्यप (Leathery turtle), हरित कश्यप (Green turtle), सामुद्रिक सर्प (Sea Snake), सामुद्रिक गोधिका (Sea lizard) आदि।

(३) स्तनिनः (Mammals) जैसे ह्वेल, सील, सामुद्रिक गौ (Sea cow) आदि।

(४) मीन (Fish) जैसे सागरीय अश्व (Sea horse)

(५) उदरपादाः (Gastropod) जैसे पुटिक प्रजाति (Mya)

(६) वलयिनः (Annelid) जैसे सागरीय मूस (Sea mouse)

(७) कठिननः (Crustacea) जैसे अरित्रपाद (Copepod)

(८) शल्यपृष्ठा (Echinodermata) जैसे शल्यतारक (Star fish)

(९) प्रवालादयः (Coelentera)

(१०) छिद्रिष्ठाति (Sponges) आदि आदि।

(२) तलप्लावी जीव

(क) तलप्लावी प्रदेश की प्राकृतिक विशेषतायें

इस प्रदेश के जीवों को यद्यपि अधःस्तर प्राप्त नहीं है, तथापि उन्हें सूर्यप्रकाश मिलता है। जहा तक जल की गति का सम्बन्ध है ज्वारभाटा यहा महत्वहीन हैं। इसके विपरीत धाराओं की यहा विशेष महत्ता है। ऐसे क्षेत्र जहा उष्ण एव शीतल धारायें मिलती हैं, तलप्लावी जीवों के लिये बहुत खतरनाक और प्राणघातक हैं। अल्पतापान्तर जीव तो तापक्रम में आकस्मिक परिवर्तन होते ही मर जाते है। सागर-जल को दो स्तरों में बाटा जा सकता है—ऊपरी स्तर का जल उष्ण और हल्का होता है तथा निचले स्तर का जल अपेक्षाकृत शीतल और भारी। सागर के कोमलागी जीव इन दोनों विभागों को पृथक करने वाले सन्धि स्तर (Junction Layer) को पार नहीं कर पाते। डा० जोर्ट (Hjort) ने इस सन्धि-स्तर को जहा जीवित और मृत प्लवक एकत्र होते रहते हैं, कूट-नितल (False Bottom) की संज्ञा दी है। जीव-जन्तुओं की संख्या की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है।

जहाँ तक जल के तापक्रम का सम्बन्ध है, जो कुछ वेला-प्रदेश के विषय में कहा गया, वह तलप्लावन प्रदेश में भी लागू होता है। हा, इतना अवश्य है, कि १००० फैदम के नीचे तापक्रम प्रायः स्थिर है।

जहा तक प्रकाश का सम्बन्ध है, प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है, कि जल मे ५० फैदम की गहराई तक प्रायः प्रत्येक प्रकार की रश्मिया प्रविष्ट हो जाती हैं। ३०० फैदम की गहराई पर लाल और हरी रश्मियों का लोप हो जाता है, किन्तु नीली और बैगनी रश्मिया रहती हैं। १०० फैदम के उपरात अन्धकार है।

उपर्युक्त कथन मध्य-अक्षाशो के लिये है। अन्य प्रदेशो में सूर्य की किरणों द्वारा निर्मित कोण के अनुसार अन्तर पाये जाते हैं।

तलप्लावी जीवों का मुख्य आहार उद्भिद प्लवक (Phyto plankton) है, जो जलपृष्ठ पर तैरनेवाली सूक्ष्म आप्यकाः है। जल मे ५० फैदम की गहराई तक ये बहुलता से पाई जाती हैं।

(ख) तलप्लावी जीवों का वर्गीकरण

वितरण के विचार से तलप्लावी जीवो को तीनों विभागों मे बाटा जा सकता है :—

१ पृष्ठ के जीव (Surface forms)—ऊपर के १०० फैदम जल मे ये बहुत पाये जाते हैं। इनमे प्लवक (Plankton) एव तलप्लावी डिम्भ (Pelagic Larva) प्रमुख है।

२ मध्य तल प्लावी (Meso pelagic) अथवा मध्यान्तर के जीव—ये प्रकाश की निम्नतम सीमा जो अक्षाश के अनुसार बदलती रहती है के निकट पाये जाते हैं। रजत मीन (Silvery fish) आदि इसी विभाग के अन्तर्गत हैं।

३ गम्भीर तल प्लावी जीव (Bathy pelagic forms)—ये प्रकाश-सीमा के नीचे पाये जाते हैं, यद्यपि सागर-नितल पर ये अनुपस्थित हैं। इनके उदाहरण दीप्तरक्त चिंगट (Bright red prawn), कृष्ण मीन (Black fish) आदि हैं।

पृष्ठ के जीव मणिभ सदृश उज्ज्वल, नीले अथवा हल्के बैङ्गनी वर्ण के होते हैं। ऐसे प्रदेशों के जीव जहा केवल नीली अथवा बैङ्गनी रश्मिया पहुचती हैं, रजत वर्ण के हैं। अधिक नीचे रहनेवाले जीव लाल अथवा काले हैं।

(३) अथाह सागरीय जीव

अथाह सागर मे एक ऐसी विशेषता पाई 'जाती है, जो अन्य भागों में नहीं पाई जाती। वह यह है—कि यहा का जल स्थायी रूप से शात रहता रहता है। यह प्रदेश छिद्रिष्ठाति (Sponge) के विकास के लिये अत्यन्त अनुकूल है, अतएव यहा पर उनका बाहुल्य है। अधःस्तर (Substratum) पर ये अबद्धरूप से पड़े रहते हैं। इन जीवों के ऊपर जल का मीलो ऊँचा स्तर रहने से दबाव भी बहुत रहता है। यद्यपि इस प्रदेश मे पेड़-पौदे नहीं हैं, तो भी ऑक्सीजन का प्राचुर्य है। इसका कारण विवृत महासागरो मे होने वाला जल का परिवहण (Circulation) है। इसके विपरीत समावृत सागरों में ऑक्सीजन का अभाव है। उदाहरण के लिये काले सागर (Black Sea) में इतनी गहराई पर हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2S) की अधिकता और ऑक्सीजन की न्यूनता के कारण जीवजन्तु नही पाये जाते। भूमध्यसागर की दशा इतनी परम (Extreme) नही है, तो भी इतनी गहराई मे जीवों का वहा भी अभाव है। प्रकाश तो यहा तक पहुँचता नहीं, जल भी स्थायी रूप से शीतल है, ऐसी दशा मे जो जीवजन्तु ऊपरी प्रदेशो से मृत्यु प्राप्त कर नीचे गिर जाते हैं वही यहा भोजन के मुख्य साधन हैं। इस प्रदेश के बहुत से जीव पक-भक्षी हैं। सागर-नितल मे रहनेवाले जीवों की सख्या विवादास्पद विषय है। इस सम्बन्ध मे अभी तक कोई सन्तोषप्रद निर्णय नहीं हो सका है यह निर्विवाद है, कि इस प्रदेश में अपृष्ठवशी (Invertebrate) जीव बहुत पाये जाते हैं, विशेषकर खटीगोल निश्च्याब (Globigerina Ooze) से ढके क्षेत्रो मे। इन अपृष्ठवशी जीवो मे छिद्रिष्ठाति (Sponge) और शल्यपृष्ठा (Echinoderms) प्रमुख हैं। कठिननः (Crustacea) प्रजाति मे चूर्णप्रावारा (Molluscs) एव कर्कट (Crabs) कम पाये जाते हैं। छिद्रिष्ठाति मे सैकतीय जीव (Siliceous forms) अधिक पाये जाते हैं, चूर्णिय (Carcareous) कम। शल्यपृष्ठा (Echidoderms) की प्रायः सभी जातिया पाई जाती है। सागरीय कठमूषो (Sea urchins) मे अनियमित आकृति के जीव बहुत पाये जाते है विशेषकर निखातक (Fossil) के रूप मे। लाल रङ्ग की चिकनी मिट्टी (Red Clay) के प्रदेश मे वलयिनः (Annelids) बहुत पाई जाती है। विस्तृत क्षेत्र में समान दशाये विद्यमान होने के कारण अथाह सागरीय जीवो का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। यहा के जीव बहुत कुछ ध्रुवीय जीवों से मिलते जुलते है क्योंकि दोनों के तापक्रम मे साम्य है।
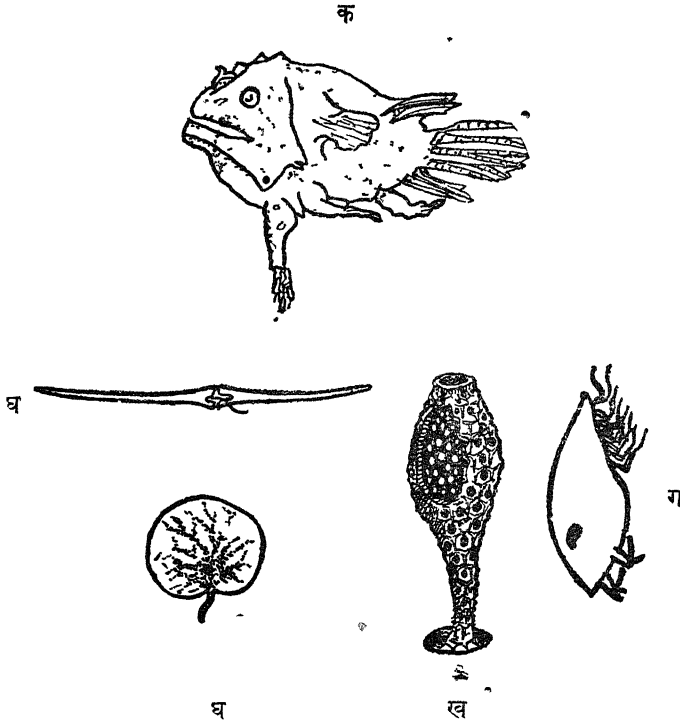
चित्र ६५—महासागरीय प्राणिजात एव उद्भिज्जात
क—अथाह सागर की मछली
ख—छिद्रिष्ठाति (Sponge)
ग—शुक्ति (Oyster)
घ—घूर्णकशाः (Dinoflagellates)

२. महासागरीय उद्भिज्जात

महासागरीय वनस्पति का महत्व इसी कथन से स्पष्ट है कि उस पर ही वहा के जीव-जन्तुओ का जीवन निर्भर है।

जिस प्रकार भौम-पादपों मे अनेक प्रकारे पाई जाती हैं, उस प्रकार महासागरीय वनस्पति मे प्रकारे नहीं पाई जातीं। यह उसकी महत्वपूर्ण विशेषता है। इसका कारण महासागर के वातावरण की मौलिक विभिन्नता है। प्रकाश एव अधःस्तर केवल सुवेला-प्रदेश (Eulittoral Zone) में पाये जाते हैं, जो सागर-नितल का केवल २ प्रतिशत अश है।

समस्त उद्भिद्-जगत को हम चार विभागों मे बाट सकते हैं :—

(१) सूत्रोद्‌भिदः (Thallophyta)
(२) हरितोद्‌भिदः (Bryophyta)
(३) पर्णांगादिकाः (Pteridophyta)
(४) बीजोद्‌भिदः (Spermatophyta)

इनमे से केवल पहली और चौथी प्रकार की वनस्पति सागर मे मिलती है। इन विभागो को उपविभागों और उपविभागो को पुनः अन्त-र्विभागों मे बाटा जा सकता है, किन्तु यह कार्य औद्‌भुदी-विशेषज्ञों का है, हमारा अभिप्राय तो निमाकित संक्षिप्त वर्गीकरण द्वारा सिद्ध हो जाता है।

(१) सूत्रोद्भिदः (Thallophyta)

प्रायः समस्त सागरीय वनस्पति इस विभाग के अन्तर्गत है। इसमें ऐसे आद्य पादप आते है, जिनके शरीर मे वर्धि अग का भिन्नन (Differentiation of vegetative organ) नगण्य होता है अर्थात् इनमे यथार्थ मूल, वृन्त, पत्र कुछ भी नहीं होते। इन पादपो मे महासागरीय आल्यकाः (Marine algae) एव महासागरीय कवलानि (Marine fungi) विशेषकर शाकाणवः (Bacteria)प्रमुख है। लाक्षणिक वर्ण के अनुसार इन्हे पुनः पांच श्रेणियों मे विभाजित किया जा सकता है :—

(क) नील-हरि आल्यका (Blue green algae)
(ख) हरित आल्यकाः (Green algae)
(ग) वभ्रु आल्यकाः (Brown algae)
(घ) रक्त आल्यकाः (Red algae)
(ङ) पीत हरित आल्यकाः (Yellow green algae)

इनमे से प्रथम चार (नील-हरि आल्यकाः की कुछ प्रकारों को छोड़कर) आसक्त पादप (Attached plants) है और पीत-हरित आल्यकाः प्लावी-पादप (Floating plants) है।

(क) नील-हरि आल्यकाः

यह सबसे कम महत्वपूर्ण है। अलवण (Fresh) एव आलवण (Brackish) जल मे यह बहुत पाई जाती है। उष्ण-जल मे यह अधिक मिलती है।

(ख) हरित आप्यकाः

यह वेला प्रदेश के ऊपरी भाग में लगभग १० मीटर की गहराई तक पाई जाती है। उष्ण सागरों मे इसका बाहुल्य है।

(ग) बभ्रु आप्यकाः

इसके विकास के लिए जल का लवणमय एव शीतल होना आवश्यक है, अतएव उच्च-अक्षांशों के समुद्र तट में ही यह पाई जाती है।

(घ) रक्त आप्यकाः

रग की दृष्टि से सागरीय आप्यकाओ मे यह सबसे अधिक सुन्दर और आकर्षक है। इसका भौगोलिक विस्तार बहुत है, किन्तु शीतोष्ण सागरो मे यह प्रचुरता से पाई जाती है। इसके लम्बवत वितरण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसके विकास के लिए अवमन्दित प्रकाश (Subdued light) आवश्यक है।

(ङ) पीतहरि आप्यकाः

पूर्वोक्त आप्यकाओ के असमान इस श्रेणी के पादप मुख्यतः प्लावी है। प्रमुख जातियों मे अधिक महत्वपूर्ण ये हैं :—

१. युक्तायति (Diatom)—यह सामान्यतः वेलाप्रदेश के नितल मे पाई जाती हैं।

२. घूर्णकशाः (Dinoflagellata)—यह प्रायः सभी सागरो मे पाई जाती है, किन्तु इसका सर्वाधिक विकास उष्णजल ही मे पाया जाता है। चित्र ६५—घ मे इसे प्रदर्शित किया गया है।

(२) महासागरों के उच्चतर पादप अथवा बीजोद्भिदः

यद्यपि महासागरों मे पादप-जगत की दो प्रसृष्टियो अर्थात् हरितोद्भिदः (Bryophyta) और पर्णांगादिकाः (Pterido phyta) का अभाव है, तथापि सर्वोच्च पादप बीजोद्भिदः (Spermatophyta) के पुष्पी पादपों [सवृतबीज (Angiosperms)] की तीस जातिया पाई जाती है।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

महासागरों का मानवीय एवं आर्थिक महत्व

जब हम यह अनुभव करते हैं कि हमारी सभी मुख्य और अधिकाश गौण आवश्यकताओं की पूर्ति स्थल करता है, तब ऐसा लगता है, कि भूपृष्ठ का तीन-चौथाई भाग जलाच्छादित होने से व्यर्थ चला गया। काश महासागरों के स्थान पर स्थल होता तो जनस ख्या की वृद्धि की समस्या स्वतः हल हो जाती।

गंभीर विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है, कि उपयु क्त धारणा भ्रामक है और महासागर मनुष्य के लिए उतने ही आवश्यक एव लाभदायक है, जितना कि स्थल है। निम्नाकित दस दिशाओं मे वे मानवता के लिए अत्यन्त कल्याणकारी हैं :—

(१) वर्षा के दाता
(२) तापक्रम के यामक
(३) स्वास्थ्य की दृष्टि से
(४) खनिजो के भ डार
(५) मछलियो के आगार
(६) तृणक एव प्लवक के कोष
(७) अवरोधक के रूप मे
(८) व्यापार के विचार से
(९) जलविद्यु त के अपरिमित भडार
(१०) प्रवाल, छिद्रिष्ठ, मूँगा मोती, तेल एव उपसृष्ट पदार्थो के उत्पादक।

(१) वर्षा के दाता

वर्षा पर ही हमारा जीवन निर्भर है और वर्षा का जल महासागर प्रदान करते हैं। विशालकाय महाद्वीपों के मध्यभाग मे जो वर्षा होती है, उसके लिए भी अनिवार्य जलवाष्प दूरस्थित महासागर ही प्रदान करते हैं। वर्षा के विचार से स्थल के जलाशयों मे होनेवाला वाष्पीकरण उपेक्षणीय है।

इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि यदि पृथ्वी की समस्त नदियों, तालाबों और झीलों को सुखा दिया जावे, तो उससे जो वर्षा होगी वह पृथ्वी की औसत वार्षिक वर्षा का केवल पन्द्रहवा भाग होगी।

(२) तापक्रम के यामक

तापक्रम के यामक के रूप में महासागरों का विशेष महत्व है। वे स्थल को केवल आर्द्रता ही नही प्रदान करते वरन् उसे अति उष्ण और अति शीतल होने स भी बचाते है। स्थल की अपेक्षा जल का आपेक्षिक ताप अधिक है, जिससे वह उष्ण भी अपेक्षाकृत देर से होता है और शीतल भी। फिर जल के सहज चलिष्णु (Mobile) होने के कारण उसमें धारायें शीघ्र उत्पन्न हो जाती है। ये धारायें उष्ण कटिबन्ध के उष्ण जल को शीतल कटिबन्ध मे बहा ले जाती है और शीतल कटिबन्ध के शीतल जल को उष्ण कटिबन्ध मे बहा ले आती है। उपर्युक्त दोनों कारणों से अर्थात् स्थल की अपेक्षा आपेक्षिक ताप अधिक होने से और चलिष्णु होने से—महासागर गर्मियो मे स्थल की अपेक्षा ठडे रहते हैं और जाड़ों में गरम। फल यह होता है कि, महासागरो से आने वाली हवाये स्थल के तापक्रम को समशीतोष्ण (Moderate) बनाने मे सहायक होती है। निम्नांकित तालिका से यह प्रभाव स्पष्ट होगा—

	जुलाई तापक्रम	जनवरी तापक्रम
बम्बई	८३ फ०	७४° फ०
लाहौर	६५ फ०	५४° फ०

(३) स्वास्थ्य की दृष्टि से

स्वास्थ्य के विचार से महासागर पाच दिशाओं मे सहायक होता है :—

१. वह तापक्रम की अति को रोकता है।

२. वह शुष्कता की अति को रोकता है।

३. उसके कारण लघु कालान्तर पर तापक्रम में परिवर्तन होते रहते है।

४. समुद्रतट की नैसर्गिक सुषमा मनुष्य को नहाने, तैरने, सैर सपाटे करने, नाव पर जल विहार करने और विभिन्न स्वास्थ्यप्रद क्रीड़ाओं में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करती है।

५ महासागर आश्चर्यजनक शोधक (Purifier) हैं। स्थल से आने वाली समस्त अशुद्धियों (Impurities) का महासागरों में शोध हो जाता है।

महासागर के ये लाभदायक प्रभाव तटीय क्षेत्र तकही सीमित है। उर्पयुक्त दिशाओं मे से प्रथम तीन सागरीय वायु के कारण है, जिसका विवेचन ऊपर हो चुका है। सागरीय समीर तटीय प्रदेश को समशीतोष्ण बनाये रखती है, जिससे वहा के निवासी आन्तरिक भागों की अपेक्षा अधिक कार्यक्षम होते हैं। इसके अतिरिक्त सागरीय समीर मच्छर आदि स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने वाले कीटाणुओं को भगाने मे सहायक होती है। यही कारण है, कि विषुवतीय अफ्रीका के तटीय प्रदेशों के निवासी अपनी उच्चस्थित झोपड़ियाँ इस प्रकार बनाते है कि वे दोपहर मे समुद्र से चलनेवाली स्वास्थ्यप्रद समीर से पूर्ण लाभ उठा सके।

महासागर का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य मलप्रवाह का अपवहन है। मलप्रवाह की ऐसी व्यवस्था करना कि वह स्वास्थ्य के लिये हानिकारक सिद्ध न हो—आज एक जटिल एव व्ययजनित समस्या है। सामान्यतः निकट के जलाशयो में मल प्रवाहित कर दिया जाता है। इस प्रकार जलाशय दूषित हो जाता है और स्वास्थ्य के लिये हानिकारक सिद्ध होता है। ऐसे सागरतट जहा प्रबल ज्वारभाटा होता हो, मलप्रवाह के लिये अत्यन्त अनुकूल हैं।

(४) खनिजों के भण्डार

सागरजल का ३'५ प्रतिशत भाग (भार मे) ऐसे ठोस पदार्थों द्वारा रचित है, जो उसमे घोल के रूप मे विद्यमान है। नदिया अपने जल के साथ घोल के रूप मे अनेक खनिजों को सागर मे निरतर समर्पित करती रहती हैं। वाष्पीकरण द्वारा घोल का जल तो भाप बन जाता है, किंतु खनिज सागर मे एकत्र होते रहते हैं। इस प्रकार कालातर मे समुद्र में अनेक लवण, चूर्ण एव रासायनिक यौगिक एकत्र हो गये है। यहा तक कि सोना चादी भी उसमे विद्यमान हैं, किंतु वे इतनी न्यून मात्रा मे है, कि उनका विदोहन (Exploitation) आर्थिक दृष्टि से सफल नहीं हो सकता। विशेषज्ञों का कथन है कि अन्धमहासागर के एक वर्गमील विस्तृत और ७६ फुट गहरे जल में १४,७७३,००० पौंड के मूल्य के रासायनिक पदार्थ विद्यमान हैं, जिनमे १२००० पौंड का केवल सोना-चाँदी होगा। इस मूल्य में अलवण जल और उसमें घुली हुई गैसों का विचार नहीं किया गया है,

अन्यथा इसमे विद्यमान कार्बन-डाइ ऑक्साइड से ही लाखों आइस-क्रीम तैयार किये जा सकते हैं। यह भी आगणन किया गया है, कि महासागरों मे लगभग २० ००० टन रेडियम विद्यमान है। ट्रावनकोर के समुद्रतट की रेत मे थोरियम और मोनाजाइट नामक तेजोद्गर खनिज (Radio-active minerals) पाये जाते है।

(५) मछलियों के आगार

युगों से मनुष्य के आहार मे मछलियो का महत्वपूर्ण भाग रहा है। आज भी अनेक राष्ट्रो के भोजन मे इनका विशेष स्थान है। टैसलर ने अपने 'वाणिज्य के सागरीय पदार्थ' नामक ग्रन्थ मे यह आगणन किया है, कि ससार में प्रति वर्ष लगभग १६ करोड़ पौंड के मूल्य की मछलियों का भक्षण होता है। उसने जापान के अतिरिक्त एशिया के शेष भागों और अफ्रीका के बहुत से प्रदेशों का विचार नही किया है, अन्यथा यह सख्या २५ करोड़ के लगभग होगी। सागर की इस महत्वपूर्ण सम्पत्ति की महत्ता इसी से प्रकट है। आस्ट्रेलिया की वाणिज्य एव कृषि विभाग की एक विज्ञप्ति के अनुसार बहुत से सुअर और मुर्गियो के बच्चों को ह्वेल का मास खिलाया गया, जिसका प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा पड़ा। वे आशा से अधिक तगड़े हो गये। विगत महायुद्ध के दिनो मे जर्मनी के नाजी नेताओ ने स्वयं ह्वेल के आमिष का आहार किया था और उसकी भूरि-भूरि प्रशसा की थी।

(६) तृणक एव प्लवक के कोष

(क) तृणक

सागरीय तृणक का निम्नलिखित दिशाओ मे उपयोग होता है :—

१ खाद के रूप में—इसकी महत्ता सर्वविदित है।

२ रासायनिक पदार्थों के उत्पादन के लिये—जैसे कपिलाण्यक (Kelp) से आयडीन का निर्माण।

३ जानवरों और मछलियो के आहार के रूप में—सन् १९१४-१८ वाले महायुद्ध मे फ्रास मे खाद्यान्न के अभाव मे घोड़ों को तृणक दिया गया इस प्रयोग से यह निष्कर्ष निकला क तृणक-भक्षक अश्व अन्य घोड़ों से अधिक स्वस्थ थे।

४ मानव भोजन एव औषधि के रूप मे—जापान के निवासी अपने नित्य के भोजन मे तृणक का उपयोग करते हैं। गत महायुद्ध के पहले आस्ट्रेलिया की सरकार ने मनुष्य और जानवरो के आहार की दृष्टि स ५००

प्रकार की सागरीय तृणकों की परीक्षा का आयोजन किया था। उसकी रिपोर्ट अत्यन्त अनुकूल रही। कुछ वर्ष पूर्व स्व० लॉयड जार्ज ने वेल्स की कन्याओं द्वारा बनाई गई तृणक की रोटियों की बड़ी प्रशसा की थी।

औषधि के रूप में भी तृणक बहुमूल्य हैं। आयरलैंड मे छाती के दर्द के लिये इनका प्रयोग बहुत होता है। डाक्टरो का कथन है कि इनके जल में स्नान करना भी स्वास्थ्यप्रद है।

५ तृणकों के अन्य बहुत से उपयोग है। इनसे रङ्ग बनाये जाते है। इनकी चटाई बनती है। इनमे ध्वनि-निरोध का विशिष्ट गुण है, जिससे लदन के कुछ होटलों के फर्श मे इनका उपयोग किया गया है। इनके कारण एक खड की ध्वनि दूसरे खड मे नही जा पाती।

(ख) प्लवक

आहार की दृष्टि से प्लवक भी बहुमूल्य है। गत महायुद्ध मे खाद्यान्न के अभाव मे जर्मनी के सामुद्रिक प्राणिकीविदो ने अनेक प्लवको की परीक्षा की और यह निष्कर्ष निकाला कि जीव-प्लवक सर्वोत्कृष्ट आमिष के समान और उद्भिद्-प्लवक नीवारिका (Rye) के आटे के समान स्वास्थ्यप्रद है।

(७) अवरोधक के रूप में

महासागर अत्यन्त प्राचीन काल से अवरोधक के रूप मे महत्वपूर्ण रहे हैं। उनकी यह महत्ता अब घटती जा रही है। प्राचीन काल मे युगो तक किसी ने प्रशात और अंधमहासागर को पार नहीं किया। नयी दुनिया और पुरानी दुनिया की पृष्ठभूमि मे यहा रहस्य है। इसी कारण आस्ट्रेलिया के जीव एवं पादप शेष जगत से भिन्न है। जलयानों के आविष्कार के पूर्व भारतवर्ष पर महासागर की दिशा से कभी आक्रमण नहीं हुआ। नैपोलियन का सैण्ट हैलेना नामक द्वीप मे निर्वासित किया जाना सागर का अवरोधक के रूप में लाभ उठाने का ही एक उदाहरण है।

(८) व्यापार के विचार से

महासागर यदि प्राचीन काल मे अवरोधक के रूप मे महत्वपूर्ण थे, तो आधुनिक काल में व्यापार की दृष्टि से वे और भी अधिक महत्वपूर्ण है। इसके कारण निम्नाकित हैं :—

१. ये स्वतत्र राजपथ है—

(क) जिनमे मार्ग-निर्माण का व्यय नहीं है।

(ख) जिनमें मार्ग के सधारण (Maintenance) का भी व्यय नही है।

और (ग) जो करों से उन्मुक्त हैं।

२ स्थल और वायु की अपेक्षा महासागरों में शक्ति (Power) भी कम व्यय होती है।

३ जलयानों में अपेक्षाकृत कम आदमियो से काम चल जाता है।

४ चलित्रो (Locomotives) की अपेक्षा जलयान के बनाने में व्यय भी कम होता है।

५ स्थल और वायु की अपेक्षा जल मे परिवाहन (Transport) भी सस्ता पड़ता है।

६ स्थल और वायु की अपेक्षा जल-परिवाहन मे सुरक्षा अधिक रहती है।

(६) जलविद्युत के अपरिमित भण्डार

महासागर जल-विद्युत के अपरिमित भडार है। यदि ससार भर का कोयला, पेट्रोलियम और स्थल केविद्युत-साधन समाप्त हो जाय, तो महासागर उनकी पूर्ति कर सकने है। यही नही, इससे महासागरो के अपरिमित शक्ति भडार मे कोई विशेष अतर नही पड़ेगा। महासागरो की इस गुप्त और असीम शक्ति का संचयन तीन रीतियों से किया जा सकता है, जो उसके जल की गति, तापक्रम और ज्वार पर निर्भर है।

सागर तट पर उठने वाली विशालकाय लहरे उसकी महान शक्ति प्रकट करती हैं। इस शक्ति का यथार्थ अनुमान लगाना कठिन है। सागर के कटे हुये तट, उच्छृङ्ग (Cliff) और रेत की असीम राशि इस शक्ति की महानता की द्योतक है। लहरों की शक्ति सचय करने के लिए अनेक रीतिया सुझाई गई हैं। इनमें सबसे नवीन यत्र 'तरग-वहित्र' (Wave-Motor) का प्रदर्शन गत महायुद्ध के पूर्व कैलिफोर्निया के बर्कले नामक नगर में किया गया था। उसमे दो अरब अश्व-शक्ति (H P.) विद्युत उत्पन्न हुई। इस यत्रके अन्वेषक का यह धारणा है, कि बारह रभों (Cylinders) से युक्त इस यत्र के पूर्ण विकसित रूप से तीन सहस्र अश्व-शक्ति विद्युत पैदा की जा सकेगी।

जलशक्ति के उत्पादन का दूसरा साधन सागर के पृष्ठ और नितल के तापक्रम के अतर से लाभ उठाना है। इस गुप्त शक्ति की मात्रा का भी आगणन करना कठिन है। सन् १९२८ ई० में फ्रेंच वैज्ञानिक क्लॉड ने क्यूबा की मनटनजाज की खाड़ी मे इस रीति का प्रयोग किया। यहा पर पृष्ठ और

नितल के तापक्रम में २० सैन्टिग्रेड का अन्तर था। इस भांति २० किलोवाट जलविद्युत उत्पन्न की जा सकी।

महासागर में जलशक्ति का तृतीय साधन ज्वारभाटा है। प्रत्येक समुद्रतट पर दिन में दो बार ज्वार आता है और वैज्ञानिकों का यह अनुमान है कि ज्वार की आरोधन क्रिया (Braking action) में बीस अरब अश्व-शक्ति विद्युत निहित है। आगणन द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि केवल ब्रिटेन के तट पर प्रतिवर्ष विद्युत की १० अरब इकाइया उत्पन्न की जा सकती है।

(१०) प्रवाल, छिद्रिष्ठ, मूंगा-मोती, तेल एवं अन्य उपसृष्ट पदार्थों के उत्पादक

(क) प्रवाल

प्रवाल के आभूषण बनाये जाते है। औषधियों मे भी इनका उपयोग होता है। टोना टुटका और सगुन के लिए भी ये काम में लाये जाते हैं। उदाहरण के लिए अनेक लोगों की यह धारणा है कि प्रवाल की माला पहन लेने मे मनुष्य डूब नहीं सकता और वह रोग-मुक्त रहता है।

(ख) छिद्रिष्ठ

शरीर का मैल छुटाने के लिये छिद्रिष्ठ का प्रयोग होता है। इस दृष्टि से टर्की के छिद्रिष्ठ विश्वविख्यात है। टर्किश-बाथ मे इनका उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त दीवाल, मेज-कुर्सी आदि भी छिद्रि से साफ किये जाते है। प्राचीन काल मे रोमन लोग भूमध्यसागर मे पाये जानेवाले 'गज-कर्ण' (Elephant Ear) नामक छिद्रिष्ठ से अपनी ढालें साफ किया करते थे। पश्चिमी अन्धमहासागर का ऊर्णा-छिद्रिष्ठ (Wool Sponge) सबसे कोमल माना जाता है।

(ग) मूंगा-मोती

इस विषय मे अधिक कहना व्यर्थ है, यही कहना पर्याप्त होगा कि वर्तमानकाल मे मूँगा-मोतियो का आभूषण के रूप मे इतना अधिक प्रयोग होने लगा है कि ग्राहकों की आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाती। यही कारण है कि नकली मूंगे मोती बनाये जाने लगे है।

(घ) सीपी, शंख आदि

पूजापाठ करते समय हिंदू लोग शंख-ध्वनि करते है। कौड़ी के विविध उपयोग सर्वविदित हैं। बङ्गाल मे महिलाओं की चूड़ियों और हार मे शंख

(Conch shells) का उपयोग होता है। वैद्य लोग सीपी से भस्म एव अन्य औषधिया बनाते है।

(ङ) तेल

आज से हजार वर्ष पहले भी ह्वेल से तेल निकाला जाता था। स्वास्थ्यप्रद होने के अतिरिक्त जलाने के लिये भी यह उपयोगी है। कौड-लिवर-ऑयल स्वास्थ्यप्रद होने से ही प्रसिद्धि पा सका है। शताब्दियो से सील मछली के तेल का उपयोग होता आ रहा है। बैरिग जलडमरूमध्य की सील मछलियाॅ ससार मे सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है।

(च) अन्य उपसृष्ट पदार्थ

यदि महासागरो मे पाये जाने वाले उपसृष्ट पदार्थो की विस्तृत विवेचना की जाय, तो केवल इसी विषय पर अनेक मोटे ग्रन्थ लिखे जा सकत है। यह विषय इतना विस्तृत है। यहा पर केवल ह्वेल मछली के उपसृष्ट पदार्थो का दिग्दर्शनमात्र कराया जा रहा है। उससे ही विषय की महत्ता प्रकट हो जायगी।

ह्वेल से हमे केवल मास और तेल ही नहीं मिलता, उसकी चरबी बहुमूल्य है, उसकी हड्डियो से हथियार बनाये जाते है, उसकी स्नायु से मछली फसाने के लिये बसी बनाई जाती है, उसके पट्टे और चमड़े के अनेक उपयोग है।

सागर मे पाये जानेवाले रासायनिक पदार्थो और खनिजों द्वारा लाखो उपयोगी वस्तुओ का निर्माण होता है; उनकी विवेचना यहा सम्भव नहीं है।

परिशिष्ट १

विभिन्न परीक्षाओं में पूछे गये प्रश्न :—

AGRA UNIVERSITY B A EXAMINATION

1. What are coral reefs and islands ? Under what geographical conditions are they formed ? Give their world distrubution and account for their significance (1955)

2. Trace the origin of salt in the sea and explain the variations in the salinity of surface waters of the seas and oceans (1955)

3 Describe the form of the bed of the Pacific Ocean north of the equator (1955)

4 How are currents formed ? Locate the currents of the Atlantic Ocean on a sketch map and explain their influence on ocean trade routes. (1955)

5 Explain briefly the following—

(a) Continental shelf (b) Coral reefs (1955)

6. Give an account of the work of waves as an agent of [illegible] Why is the West coast of British Isles more indented [illegible] East ? (1955)

7. Examine the thermal structure of water in any two partially enclosed seas which show contrasted characters (1954)

8 What are the chief causes of ocean-currents ? Name thir important effects and describe the chief currents of the Pacific Ocean (1953)

9. Comment on—(i) Continental Shelf (ii) Deeps (iii) Atolls (1953)

10 'Sea-water is always salt, but the degree of saltness is not every where the same ' xplain this statement giving examples of oceans, partially' enclosed seas and inland seas and lakes. (1952)

11. Explain the terms Drift, Currents and Stream and give the principle currents of the Atlantic Ocean (1952)

12 Comment on—(i) Ocean Currents (1951) (ii) Coral Reefs 1954, 51, & 49) (iii) Oceanic salinity (1949) (iv) Ria Coast-line (1953, 48) (v) Types of coast-line (1954) (vi) Atoll. (1953)

13 Explain the origin of Oceans and Continents. (1950)

14. Give an account of the work of waves as as as agent of gradation (1950)

15. What are the different types of currents and how do they originate ? Locate the main warm currents of the world and state how they affect the neighbouring lands in each case (1947)

2 BANARAS HINDU UNIVERSITY B A and B Sc EXAMINATION

1 With the help of the hypsographic curve describe the relief of the ocean-floor (1953)

2 Describe with examples the relief of the North Atlantic Ocean Floor. (1952)

3. Give a classification of shore-lines and state their suitability or otherwise for the development of sea-ports (1952)

4 Give an account of the various types of coast-lines and state which are most suitable for the development of natural harbours (1951)

5 Describe the distribution with depth of temperature and salinity in partially enclosed seas and show how this destribution differs from that obtaining in the open seas. (1951)

6. Examine the view that surface ocean currents are wind determined paying special attention to actual direction of prevailing winds and oceanic currents in the Atlantic (1950)

7 Describe and account for the currents of the Indian Ocean (1949)

3 NAGPUR UNIVERSITY B. A (HONS) and M. A. EXAMINATION

1 Give an account of the nature, destribution and origin of deposits on the floor of either the Pacific or Atlantic Ocean (1952)

2. Describe and account for, as far as possible, the distribution of temperature, salinity and density in the waters of the Indian Ocean. (1952)

4. LUCKNOW UNIVERSITY M. Sc GEOLOGY EXAMINATION

1. Write a short essay on—(1) Continental Drift (1952 & 48) (2) Permanence of Ocean-basins (1952 & 48 (3) Theory of land-bridges (1951)

2 Give an account of the various views regarding the origin of continents and ocean basins (1950)

5. I A S COMPETITION EXAMINATION

1 Discuss as clearly as possible the phenomenon of tides. (1953)

2 Give an account of the nature, distribution and origin of the deposits on the Pacific floor (1953)

6 AGRA UNIVERSITY M. A. EXAMINATION

1 Give an account of the configuration of the bottom of Atlantic Ocean and locate the important deeps (1954)

2 Discuss briefly the origin of ocean basins (1951)

3. Why are ocean-currents formed ? Discuss this in connection with the currents in the North Atlantic In what way do the ocean currents influence the fishing industry (1951)

4. Give an account of the cold ocean currents of the Southerin Hemisphere, and discuss their influence on man (1950)

5. Write a critical essay on the Coral Reef Problem (1949)

6 Write an explanatory account of the principal types of deposits on different parts of the ocean floor (19+7)

7 Describe fully the main features of the Atlantic bottom relief (1947)

7 ALLAHABAD UNIVERSITY M. A. EXAMINATION

1 Describe fully the origin of ocean basins Describe the main features of the basin of North Atlantic (1952)

2 What is meant by ocean-salinity ? How do you account for the differences in ocean-salinity ? Discuss the effect of the difference (1952)

3. Discuss fully the various theories of tides (1951)

4 Write notes on—(i) Oceanic Deeps (ii) Continental Shelf (iii) Ocean salinity (iv) Barrier Reef (1951)

5 Give a clear analysis of coral reef problem bringing out in detail the evidence in favour and against the views that have been suggested (1950)

6 Describe and explain the bathymetric relief of either the Atlantic or the Indian Ocean (1949)

7 What are pelagic deposits ? Give a concise account of the origin and distribution of various types you mention (1949)

8 Discuss the more recent advances in method of oceanographic investigation (1949)

9 Define salinity Describe and account for the variations in salinity found in different parts of the ocean and partially enclosed seas (1948)

10 Write notes on—(i) Coral Reefs (ii) The Sargasso (1947)

8 AJMER BOARD INTERMEDIATE EXAMINATION

1 Explain the view that surface ocean currents are wind determined paying special attention to the actual direction of prevailing winds and surface currents of the Pacific Ocean (1952)

2. What is meant by ocean-currents ? How are they believed to be caused ? Describe the chief cunrrents of the North Atlantic Ocean giving their effects over the climate and human activity of coastal margins (1951)

3. Write notes on—(1) Salinity of the sea (1952,50) (ii) Spring Tide (1950) (iii) Ria-Coast & Fiord (1951)

9 NAGPUR UNIVERSITY INTERMEDIATE EXAMINATION

1 How are tides caused ? How do thay help in commercial navigation ? (1952)

2 Describe with sketches the currents of the Atlantic or the Indian Ocean (1952 Supple)

3. Describe the ocean currents of the Atlantic and their effects. (1951)

4. What is meant by salinity of the sea ? Discuss the factors on which it depends (1951 Suppl.)

5 Write notes on—(1) Spring Tide (1951) (2) Fiord (1951 Supple) (3) Dalmatian Coast (1951 Suppe) (4) North Atlantic

Drift (1950) (5) Spring and Neap Tides (1950) (6) Cotida. line (1950 Supple.)

10 U P. BOARD INTER. EXAMINATION

1 Summarise the chief features of the movements of the surface waters of the Atlantic Ocean (1949)

2. Write notes on—(i) Continental Shelf (1949,41) (ii) Fiords (1949) (iii) Coral Reef (1948,45) (iv) Atoll (1946)

3 Explain what are currents Name the principal currents of the Pacific Ocean and show their influence on the climate of the adjoining countries (1944)

4 Say what you know of the distrubution of coral reefs and coral islands To what causes do you ascribe their distribution ? What do you know of the theories of the origins of coral islands and reefs (1942)

5 What are the causes of currents in the ocean ? What is the significance of ocean currents to man ? (1940)

परिशिष्ट २

प्रमुख सहायक ग्रन्थों की सूची

1931 Murray, Sir John., The Ocean : A general account of the science of the sea Thornton Butterworth Ltd. 15 Bedford Street London.

1931 Tarr R S. and Martin L , College Physiography. MacMillan and Company, New York.

1935 Scott W B An Introduction to Geology Macmillan and Co. New York

1936 Newbigin M I., Plant and Animal Geography Mathuen and Co Ltd. London

1937 Shand S J. , Earth Lore—Geology without Jargon, Thomas Murby and Co. London

1937 Hora S. L., An Outline of the Field Sciences in India Indian Science Congress Association 1 Park Street Calcutta

1937 Skeat E. G, The Principles of Geography. Clarendon Press Oxford

1938 Newbigin M I., Animal Geography. Clarendon Press, Oxford

1942 Fox C. S., Physical Geography for Indian Students Macmillan and Co Calcutta

1944 Wadia D N., Geology of India. Macmillan and Co Bombay

1945 Sverdrup H. U., Oceanography for meteorologists. George Allen and Unwin Ltd. London

1945 Steers J A., The Unstable Earth- Some recent views in Geomorphology : Longmans Green and Co. New York.

1946	Sverdrup, H. U, Johnson M. W. and Fleming R H, the Oceans. Their Physics, Chemistry and general Biology Prentice Hall Inc. New York
1946	Preece D.M and Wood H. R B, Foundations of Geography University Tutorial Press Limited London
1947	Lake P, Physical Geography. University Press Cambridge
1947	Huntington E and Cushing S W Principles of Human Geography John Wiley and Sons, Inc New York
1947	Martonne E D A Shorter Physical Geography Christsophers 22 Berners Street W I London
1948	Holmes A, Principles of Physical Geology Thomson and Sons Ltd Paris
1939	Worcester G. A Text-book of Geomorphology D Van Nostrand Comp Inc. Toronto
1949	Salisbury R. D, Physiography : Advanced Course John Murray, Albemarle Street W. London
1949	Moore W G, A Dictionary of Geography. Harmondsworth Middlesex
1949	Ommanney—The Ocean Geoffrey Cumberlege Oxford University Press London
1949	Douglas, T S, The Wealth of the Sea. The Scientific Book Club, 121, Charing Cross Road London W C 2
1950	Colman, John S, The Sea and its Mystries G. Bell and Sons London
1951	Stamp L D., The Earth's Crust—A New approach to Physical Geography and

Geology. George G. Harrap and Co. Ltd., London

1945 Stommel Henry, Science of the Seven Seas. Cornell Maritime Press New York

1945 Woolridge, S. W. and Morgan, R S—The Physical Basis of Geography An Outine of Geomorphology : Longmans Green and Co New York

1945 Kellaway G P., A Background of Physical Geography MacMillan & Co. Ltd. St Martins Street London

———

लेखक की ओर से—

निवेदन

राष्ट्रभाषा की सेवा मे मेरा यह तृतीय पुष्प है।

जैसा कि आवरण-पृष्ठ पर अकित शीर्षक से स्पष्ट होगा, प्रस्तुत पुस्तिका मेरी रचना 'प्राकृतिक भूगोल की पृष्ठभूमि' का तृतीय खण्ड मात्र है। इसमे 'वायुमण्डल' का भौगोलिक अध्ययन किया गया है।

× × ×

वायुमण्डल का बडा महत्व है। हम भोजन और जल के बिना भी पर्याप्त काल तक जीवित रह सकते है, किन्तु वायु के अभाव मे हमारा एक क्षण भी जीवित रहना असभव है। जीव-जन्तुओ एव पेड-पौदो का जीवन वायु पर ही निर्भर है। यह धारणा भ्रामक है, कि सामुद्रिक जीवो को वायु की आवश्यकता नही पड़ती। उन्हे भी साँस लेने के लिए ऊपर आना पडता है अथवा वे पानी में घुली हुई वायु का उपभोग करते है।

वायुमण्डल के कण-कण की महत्ता है। हम धूलिकणो को उपेक्षा की दृष्टि से देखते है, किन्तु यदि वायुमण्डल में धूलिकण न होते, तो वर्षा न होती और पृथ्वी पर जीवन सभव न होता।

वायु के एक बुलबुले का भी महत्व है। कुछ वर्ष पूर्व एक बुलबुले के कारण समस्त भारत चिन्ताग्रस्त हो उठा था। स्व० सरदार पटेल जब वायुयान द्वारा जयपुर जा रहे थे, तब पेट्रोल की टकी मे बुलबुला उत्पन्न हो जाने से, वायुयान को नीचे उतरना पडा। उस समय वायुयान का दिल्ली से बेतार के तार का सम्बन्ध टूट गया था, जिससे समस्त भारत मे चिन्ता की लहर व्याप्त हो गई थी। वायुयान चालक के कौशल्य से भारतवर्ष के 'लौह-पुरुष' का जीवन बच सका। इस घटना से वायु के लघुतम अश की महत्ता पर पूर्ण प्रकाश पडता है।

× × ×

यह सन्तोष का विषय है, कि वायुमण्डल मे पैदल पहुँचने का सर्वोच्च सभव शिखर—एक भारतीय श्री टैनसिग ने प्राप्त किया। यही नही, भारतीय पक्षियो तक ने वायुमण्डल की उच्चतम सीमा का स्पर्श किया है। रामचरितमानस के महत्वपूर्ण चरित्र जटायु के भाई सपाती का ही तो यह कथन है —

'हम द्वौ बन्धु प्रथम तरुनाई । गगन गए रवि निकट उडाई ॥
तेज न सहि सक सो फिरि आवा । मैं अभिमानी रवि निअरावा ॥
जरे पख अति-तेज अपारा । परेउ भूमि करि घोर चिकारा ॥'

× × ×

मेरी अन्य रचनाओ की भाति इसकी भी प्रमुख विशेषताये ये हैं—(१) यथासभव सक्षेप (२) सरलता (३) स्पष्टता (४) भारतीय पृष्ठभूमि (यथा मेघो का भारतीय वर्गीकरण) (५) अन्तर्वस्तु की प्रचुरता (६) चित्रो की बहुलता (७) नवीनतम अन्वेषणो का समावेश (यथा कृत्रिम उपग्रहो की सृष्टि) (८) अन्तर्वस्तु सम्बन्धी उन सिद्धान्तो, वृत्तो एव प्रयोगो की पूर्ण विवेचना, जिनकी इस विषय के अन्य ग्रन्थो ने उपेक्षा की है, जैसे आर्द्रतामापन (९) सस्कृतनिष्ठ, सुबोध एव प्राञ्जल भाषा तथा (१०) निर्धारित पाठ्यक्रमो और परीक्षा मे पूछे गए प्रश्नो को केन्द्र मानकर पुस्तक की रचना।

× × ×

सहायक ग्रन्थो मे मुझे फिलिप लेक की रचना सर्वोत्कृष्ट लगी है। मेरी धारणा तो यह है कि बी० ए० के छात्रो की दृष्टि से भौतिक भूगोल के क्षेत्र मे लेक की कृति इस युग की सर्वश्रेष्ठ रचना है, उससे उत्तम पुस्तक लिखी ही नही जा सकती। कदाचित मेरी कृति उनकी छाया से मुक्त नही रह सकी है।

पटना विश्वविद्यालय के भूगोल-विभाग के अध्यक्ष डाक्टर पी० दयाल पी-एच० डी० (लन्दन) ने 'भूमिका' लिखी है। उनके प्रति मै अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

× × ×

मेरी इस कृति द्वारा विद्यार्थी-समाज का यदि कुछ भी लाभ हो सका, तो मै अपने श्रम को सार्थक समझूँगा।

जनार्दन प्रसाद श्रीवास्तव

अनुक्रमणिका

प्रथम परिच्छेद

वायुमण्डल का सामान्य परिचय

१. वायुमण्डल क्या है?

पृथ्वी पर सर्वत्र---जलमण्डल एव स्थलमण्डल--दोनो ही के ऊपर वायु का आवरण है। इसकी ऊँचाई लगभग दो सौ मील है। इसी को हम 'वायुमण्डल' (Atmosphere) कहते है। यदि पृथ्वी को एक फुट के व्यास के गोले द्वारा

चित्र २—पृथ्वी के प्रमुख विभाग

प्रदर्शित किया जाय, तो उस पर वायुमण्डल की ऊँचाई ·३ इच से भी कम होगी। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण वायु का यह स्तर सदैव उससे सटा रहता है और कभी भी उससे विलग नही होता। पृथ्वी के साथ-साथ वायु मण्डल भी घूमता है।

२ वायुमण्डल की महत्ता

वायुमण्डल का बडा महत्त्व है। जीव-जन्तुओ एव पेड-पौदो का जीवन वायु पर निर्भर है। यदि वायुमण्डल न होता तो पृथ्वी पर जीवन ही न होता।

जिस प्रकार महासागरो के नितल मे जीव-जन्तु रहते है, ठीक वैसी ही स्थिति हम लोगो की वायुमण्डल मे है। वायुमण्डल में हम जन्म लेते है, वायुमण्डल मे हम जीवन व्यतीत करते है और वायुमण्डल मे ही हम मृत्यु को प्राप्त करते है।

३ वायुमंडल के अन्वेषण की कठिनाइयाँ

जलवायु और भौतिक भूगोल सम्बन्धी सभी प्रक्रियाये वायुमण्डल ही मे घटित होती है। संक्षेप मे वायुमण्डल भौतिक भूगोल का मूल आधार है।

मनुष्य वायुमण्डल के निम्नतम स्तर का निवासी है। यहाँ रहते-रहते उसके शरीर के अग इतने अधिक अभ्यस्त हो गये है, कि वे वायुमण्डल के ऊपरी स्तरो मे सक्रिय रहने मे नितान्त असमर्थ है। अतएव मनुष्य के लिये वायुमण्डल के ऊपरी भाग का अन्वेषण करना दुष्कर समस्या है। एवरेस्ट विजेता टैनसिह के लिये बर्फ पर चढना उतना कठिन नही था, जितना विरल वायु मे अपने अगो को क्रियाशील रखना।

४ वायु का दबाव

वायुमण्डल मे विद्यमान वायु का भार लगभग ११,८५०,०००,०००,०००, ०००,००० पौण्ड है।

भूपृष्ठ के निकट वायु सबसे अधिक स्थूल है और वायुमण्डल मे हम जितने ऊपर जाते है वायु उतनी ही सूक्ष्म होती जाती है। साढे तीन मील की ऊँचाई पर वायुभार लगभग आधा रह जाता है और सात मील की ऊँचाई पर तो प्राय चौथाई ही रह जाता है।

५ वायुमंडल मे मनुष्य द्वारा पहुंची सबसे अधिक ऊँचाई

वायुमण्डल के ऊपरी भाग के सम्बन्ध मे हमारा ज्ञान बडा ही सीमित और अपूर्ण है। गुब्बारे (Balloon) द्वारा मनुष्य अधिक से अधिक १४ मील की ऊँचाई तक पहुँच सका है। जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है, वायुमण्डल की आगणित ऊँचाई लगभग दो सौ मील है। इस दृष्टि से १४ मील की ऊँचाई बहुत कम है।

मनुष्य बडा महत्त्वाकाक्षी है। वह विज्ञान के नवीनतम आविष्कार रैडर की सहायता से चन्द्रमा तक पहुँचने का स्वप्न देख रहा है। यह तो भविष्य ही बतलायगा कि उसे इसमे कितनी सफलता मिलती है।

६. वायुमंडल के स्तर

जैसा कि चित्र ३ से स्पष्ट होगा, वायुमण्डल मे वायु की व्यवस्था निम्नाकित स्तरो मे है —

(१) परिवर्तमण्डल (Troposphere)।
(२) समतापमण्डल (Stratosphere)।
(३) अयनमण्डल (Ionosphere)।

(१) परिवर्तमण्डल—यह वायुमण्डल का निम्नतम स्तर है। इसकी औसत ऊँचाई लगभग ७½ मील अथवा १२ किलोमीटर है। इस स्तर में ज्यो-ज्यों ऊँचाई बढती जाती है, त्यो-त्यों तापमान घटता जाता है। इसीलिये इसका नाम परिवर्तमण्डल रखा गया है। इसमे प्रत्येक १ किलोमीटर की ऊँचाई पर तापक्रम ६९ सैण्टिग्रेड घटता जाता है। धरातल का औसत तापक्रम लगभग १५°
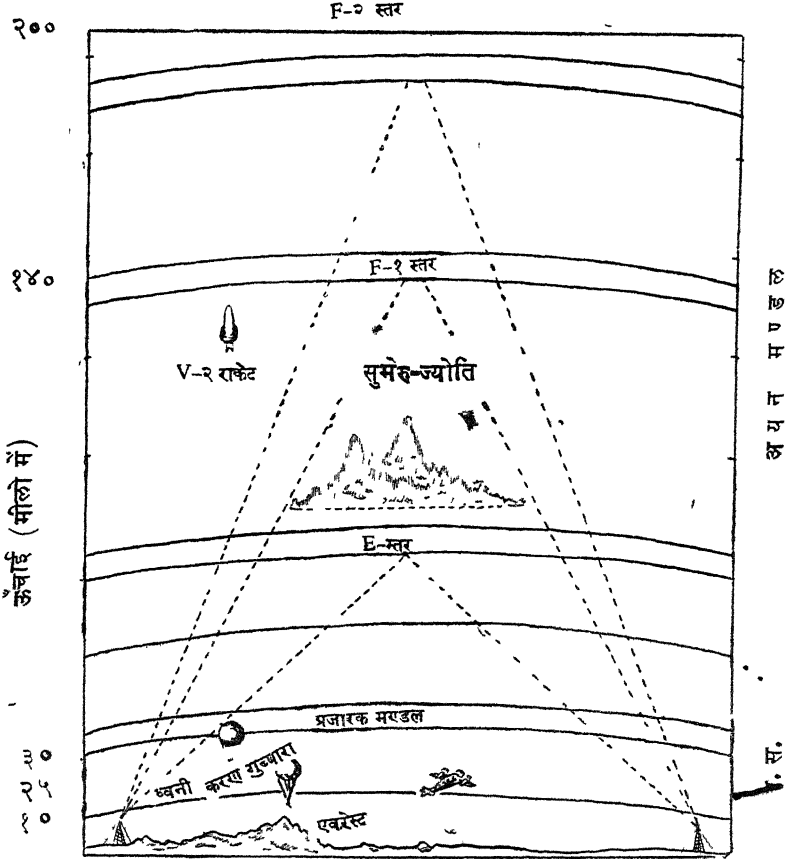
चित्र ३—वायुमण्डल के स्तर

सैं० रहता है। परिवर्तमण्डल की ऊपरी सीमा पर वायुभार भी धरातल की तुलना मे चौथाई रह जाता है। इस स्तर मे तापक्रम, वायु का वेग एवं दिशा, बदली, वृष्टि, आर्द्रता आदि ऋतुसम्बन्धी तत्त्वो के महान विभेदन पाये जाते है।

प. = परिवर्तमण्डल; स = समतापमण्डल

आँधियाँ और तूफान इसी स्तर तक सीमित है। मनुष्यचालित गुब्बारे एव विशेष प्रकार से सज्जित वायुयान इसकी ऊपरी सीमा तक पहुँच सके है।

(२) समतापमण्डल—वायुमण्डल के दूसरे स्तर का नाम समतापमण्डल है। इसे यह सज्ञा इसलिये दी गई कि इसमे तापक्रम प्राय समान रहता है। परिवर्तमण्डल और समतापमण्डल की विभाजक सीमा को परिवर्तसीमान्त (Tropo-pause) कहते है। इसकी ऊँचाई विषुवतरेखा पर लगभग १० मील सयुक्त राष्ट्र अमेरिका के ऊपर लगभग ७ मील तथा ध्रुवो पर ५ मील है। समतापमण्डल की ऊपरी सीमा धरातल से ३५ मील से लेकर ५० मील तक की ऊँचाई पर पाई जाती है। इस ऊपरी सीमा पर वायुभार धरातल की तुलना मे १/१५०० रह जाता है। यहाँ पर वायु का भार इतना क्षीण हो जाता है कि वायुयान अथवा गुब्बारे के उडने का प्रश्न ही नही उठता, केवल विस्फोटन की प्रतिक्रिया द्वारा चालित रॉकेट अथवा क्षिप विमान (Jet Plane) यहाँ पहुँच सके हैं।

वायुमण्डल मे ४० और ५० किलोमीटर की ऊँचाई के बीच मे प्रजारक (Ozone) का बाहुल्य रहता है। अतएव इस स्तर का नाम प्रजारक मण्डल (Ozonosphere) रख दिया गया है।

(३) अयनमण्डल (Ionosphere)—यह वायुमण्डल का सबसे ऊपर वाला स्तर है। रेडियो की तरगो पर इस स्तर का विशेष प्रभाव पडता है। इन्ही तरगो के कारण इसका अनुसन्धान हुआ है। धरातल से बाहर की ओर अग्रसर होनेवाली रेडियो की तरगे जब इस स्तर मे पहुँचती है, तब उनमे परावर्तन होता है। विभिन्न तरग दैर्ध्य (Wave length) की तरगे विभिन्न ऊँचाइयो पर परावर्तित होती है। ३०० से लेकर ४०० मीटर लम्बी रेडियो—तरगें ७० मील की ऊँचाई पर पहुँचकर परावर्तित होती है। परावर्तन के इस स्तर को कैनेली-हैविसाइड (Kennelly Heaviside) अथवा E-स्तर कहते है। इसी प्रकार १४० मील की ऊँचाई पर स्थित स्तर को जो अपेक्षाकृत छोटी तरगो को परावर्तित करता है अपिलटन (Appleton) अथवा F-1 स्तर कहते है। परावर्तन के स्तर ऋतु एव काल के अनुसार ऊपर नीचे खिसकते रहते है।

७. वायुमंडल की संरचना

वायुमण्डल मे जलवाष्प की मात्रा प्रत्येक स्थान पर भिन्न है। उसके अतिरिक्त वायु की सरचना प्राय सर्वत्र समान है और इस प्रकार है :—

	प्रतिशत (आयतन)
नाइट्रोजन	७८ ०३
ऑक्सीजन	२० ९९
अर्गन	० ९४
कार्बन डाइऑक्साइड	० ०३
हाइड्रोजन	० ०१

लगभग २०,००० फुट की ऊँचाई तक उपर्युक्त सरचना पाई जाती है। इसके अनन्तर स्थूल गैसो की मात्रा कम होती जाती है और सूक्ष्म गैसो की मात्रा बढती जाती है।

जलवाष्प वायुमण्डल के निम्नतम स्तर तक ही सीमित है। जल-विभागो (जैसे महासागर, सागर, झील, तडाग, नदी आदि) के निकट यह अधिक मात्रा मे पाई जाती है।

कार्बन डाइऑक्साइड, ऑक्सीजन तथा नाइट्रोजन क्रमश १२, ६८ और ८० मील की ऊँचाई पर लुप्त हो जाती है।

द्वितीय परिच्छेद

वायुमण्डल के दबाव का ऊँचाई और हवाओं से सम्बन्ध

१ वायुमण्डल का दबाव

अन्य पदार्थों की भाँति वायु मे भी भार होता है। इस कथन को एक साधारण प्रयोग द्वारा सिद्ध किया जा सकता है—

प्रयोग—फुटबाल का एक खाली ब्लैडर लीजिये। उसे तोल लीजिये। फिर उसमे पम्प द्वारा हवा भरिये और दुबारा तोलिये। विदित होगा कि हवा भर देने से ब्लैडर का भार बढ गया। इससे सिद्ध है, कि वायु मे भार होता है। पहली बार जब ब्लैडर तोला गया तब भी उसमे हवा थी और यह कहना अशुद्ध है कि ब्लैडर खाली था। दूसरी बार तोलते समय उसमे हवा अधिक थी। दोनो भारो का अन्तर भरी गई हवा का भार प्रदर्शित करता है।

वायुमण्डल के दबाव का अर्थ है किसी स्थान के इकाई क्षेत्रफल पर वायु-

चित्र ४—फैरल के नियम का गणितीय प्रमाण
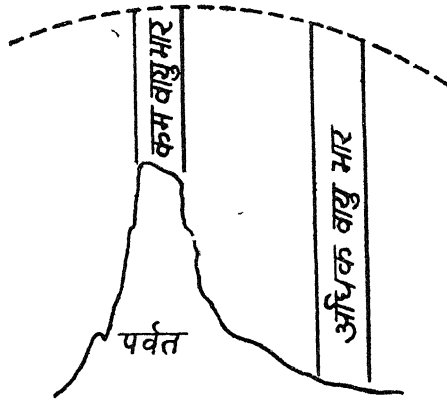
मण्डल के स्तम्भ का भार। उदाहरण के लिये सागर-समतल पर प्रति वर्ग इच भूमि पर वायुमण्डल का जो स्तम्भ रहता है, उसका भार लगभग १४७ पौण्ड होता है।

उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि किसी भी समतल पर वायुमण्डल का दबाव उसके ऊपर की वायु का भार होता । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ज्यो-ज्यो ऊँचाई बढती जाती है, त्यो-त्यो वायुमण्डल का दबाव घटता जाता है । चित्र ४ से यह कथन स्पष्ट होगा। हम यह जानते है कि वायुमण्डल के निचले भाग मे घनत्व ऊपरी भाग की अपेक्षा अधिक है, अतएव भूपृष्ठ के निकट ऊँचाई के साथ दबाव शीघ्रता से घटता है किन्तु वायुमण्डल मे अधिक ऊँचाई पर दबाव धीरे-धीरे घटता है ।

२. बैरोमीटर का दबाव

वायुमण्डल का दबाव जिस यत्र से नापा जाता है, उसे बैरोमीटर कहते है। बैरोमीटर अनेक प्रकार के होते है । फौरटिन्स बैरोमीटर मे लम्बवत् कॉच की नली मे पारा भरा रहता है । (इसका विस्तृत वर्णन पृष्ठ ८ मे किया गया है) इस पारे के स्तम्भ की ऊँचाई दबाव दर्शाती है । किसी भी स्थान पर वायुमण्डल का दबाव वास्तव मे उतना ही होता है, जितना कि बैरोमीटर के पारे का दबाव। यही कारण है कि वायुमण्डल के दबाव को बैरोमीटर के पारे की ऊँचाई द्वारा प्रदर्शित किया जाता है । सागर-समतल पर बैरोमीटर के पारे की ऊँचाई २९ ९ इञ्च रहती है । इसी तथ्य को हम इस प्रकार प्रकट करते है कि समुद्र के धरातल पर बैरोमीटर अथवा वायुमण्डल का दबाव २९ ९ इञ्च है । यदि हम २९ ९ इञ्च ऊँचे पारे के स्तम्भ को, जिसका अनुप्रस्थ प्रच्छेद (Cross-Section) एक वर्ग इञ्च हो, तोले तो उसका भार १४ ७ पौण्ड होगा। अतएव दबाव प्रदर्शित करने की दो रीतियाँ है :—(१) सागर समतल पर वायुमण्डल का दबाव १४.७ पौण्ड प्रति वर्ग इञ्च है (२) सागर समतल पर बैरोमीटर का दबाव २९ ९ इञ्च है। दोनो का अर्थ एक ही है ।

३. दबाव का नापना

यह तो ऊपर उल्लेख हो ही चुका है कि वायुमण्डल का दबाव बैरोमीटर द्वारा नापा जाता है। बैरोमीटर की तीन मुख्य प्रकारे है —

(१) पारे का सामान्य बैरोमीटर।
(२) फौरटिन्स बैरोमीटर।
(३) अनेरौयड बैरोमीटर।

(१) पारे का सामान्य बैरोमीटर

इसकी रचना बडी सरल है। कोई भी व्यक्ति इसे आसानी से बना सकता है। लगभग ३६ इञ्च लम्बी काँच की एक नली लीजिये, जिसका अनुप्रस्थ

प्रच्छेद (Cross Section) एक वर्ग इञ्च हो और जिसका एक सिरा बन्द हो। उसमे मुंह तक पारा भर दीजिये और फिर उँगली से उसका मुंह बन्द करके एक ऐसे बर्तन मे जिसमे पारा हो उसे इस प्रकार उल्टा खडा कीजिये कि नली का उँगली से बन्द मुँह बर्तन के पारे मे काफी डूब जाय। चित्र ५ से यह कथन स्पष्ट होगा। तब उँगली को हटा लीजिये । उँगली हटाते ही नली का पारा कुछ नीचे की ओर जायगा और ऊपर शून्य (Vacuum) स्थापित हो जायगा।
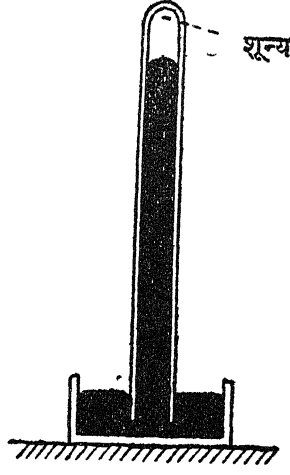
चित्र ५—पारे का सामान्य बैरोमीटर

मापक द्वारा नापने से ज्ञात होगा, कि नली मे बर्तन के पारे के समतल से लगभग ३० इञ्च ऊँचा पारा है। पारे के स्तम्भ की यह ऊँचाई वायुमण्डल का दबाव प्रदर्शित करती है ।

(२) फौरटिन्स बैरोमीटर (Fortin's Barometer)

पारे के सामान्य बैरोमीटर मे, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है, बर्तन के पारे का समतल तथा नली के पारे का समतल दोनो ही—वायुमण्डल की दशा के परिवर्तनो के अनुसार ऊँचे-नीचे होते रहते हैं। अतएव वायुमण्डल का दबाव ज्ञात करने के लिये दोनो समतलो का विचार करना पडता है। वास्तविक दबाव इनका अन्तर होता है। यदि
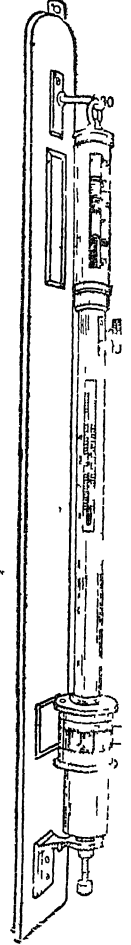
चित्र ६ (अ) फौरटिन्स बैरोमीटर

किसी प्रकार बर्तन के पारे का समतल स्थिर रखा जा सके, तो हमे केवल नली के पारे की ऊँचाई ज्ञात करना रह जाय। फौरटिन्स बैरोमीटर में यही सुविधा है। इसमे बर्तन का नितल चमडे का होता है, जिसे स्क्रू द्वारा ऊपर नीचे किया जा सकता है। नली पर इञ्च और सैण्टीमीटर के चिह्न अकित रहते हैं। जैसा कि चित्र ६ब से स्पष्ट होगा बैरोमीटर के निचले भाग मे हाथी-दाँत की नोक लगी रहती है। बैरोमीटर के अक इसी नोक से शुरू होते है, अर्थात् नोक पर शून्य का चिह्न होता है। दबाव नापने से पहले नीचे के स्क्रू को इस प्रकार घुमाया जाता है कि बर्तन का पारा हाथीदाँत की सुई की नोक का स्पर्श करने लगे।

(३) अनेरौयड बैरोमीटर

इस बैरोमीटर में पारा अथवा अन्य किसी द्रव का उपयोग नही होता। इसका सबसे बड गुण यह है कि इसे सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाया जा सकता है। यह धातु का वृत्ताकार ऐसा डिब्बा होता है, जिसमे से कुछ हवा निकाली गई हो। इसमे ऐसी व्यवस्था रहती है, कि वायुमण्डल का भार बढने से जब डिब्बे का ऊपरी भाग नीचे दबता है अथवा दबाव घटने से
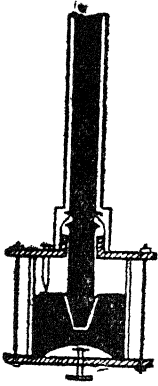
चित्र ६ (ब) फौरटिन्स बैरोमीटर का निचला भाग
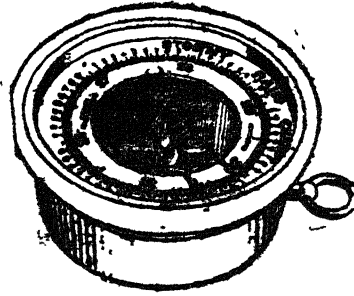
चित्र ७—अनैरौयड बैरोमीटर

जब वह ऊपर उठता है, तब उसमे लगी हुई सुई प्रभावित होती है और अंकित मापक पर दबाव प्रदर्शित करती है। (चित्र ७)।

४. बैरोमीटर द्वारा ऊंचाई ज्ञात करना

किसी भी पहाडी की चोटी पर तलहटी (Foot) की अपेक्षा वायुमण्डल

का दबाव कम होता है, क्योकि चोटी पर वायुमण्डल के स्तर की ऊँचाई तलहटी की अपेक्षा कम होती है। चित्र ४ से यह कथन स्पष्ट होगा। अवलोकित तथ्यो से ज्ञात होता है कि प्रत्येक ९ फुट की ऊँचाई पर वायु का दबाव १/१०० इञ्च घट जाता है। अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है --

पहाडी की ऊँचाई =

$$\frac{\text{तलहटी पर वायु का दबाव (इचो मे)} - \text{चोटी पर वायु का दबाव (इचो मे)}}{१/१००} \times ९$$

यदि वायुमण्डल का घनत्व सर्वत्र समान होता, तो हम उपर्युक्त सूत्र की सहायता से किसी भी स्थान की ऊँचाई ज्ञात कर सकते थे, किन्तु वास्तविकता यह नही है। वायु का घनत्व तापक्रम पर आधारित है और तापक्रम ऊँचाई के साथ घटता जाता है। अतएव हमे वायु का औसत दबाव (क) और औसत तापक्रम (ख) जानना अभीष्ट है --

$$\text{क} = \frac{\text{तलहटी पर वायु का दबाव} - \text{चोटी पर वायु का दबाव}}{२}$$

$$\text{ख} = \frac{\text{तलहटी का तापक्रम} - \text{चोटी का तापक्रम}}{२}$$

तब हम निम्नाकित सारिणी से क और ख के लिये प्रतिकारक का मूल्य ज्ञात करते है, जिसे हम ९ के स्थान पर प्रयुक्त करते है --

सारिणी

औसत तापक्रम	फ०	३०'	४०	५०°	६०°	७०'
औसत दबाव	२७ इच	९.७	९९	१०१	१०३	१०६
,,	२८ ,,	९३	९५	९८	१००	१०२
,,	२९ ,,	९०	९२	९४	९६	९८
,,	३० ,,	८७	८९	९१	९३	९५

निम्नलिखित उदाहरण द्वारा उपर्युक्त कथन स्पष्ट होगा।

उदाहरण--किसी पहाडी की तलहटी पर वायु का दबाव और तापक्रम क्रमश २९ इञ्च और ६०° फ० है तथा उसकी चोटी पर वायु का दबाव और तापक्रम क्रमश २७ इञ्च और ४०° फ० है। पहाडी की ऊँचाई बतलाइये?

गणित--

पहाडी की तलहटी पर वायु का दबाव = २९ इच

,, चोटी ,, = २७ इच

औसत दबाव $= \frac{२९ + २७}{२} =$ २८ इंच

पहाडी की तलहटी का तापक्रम = ६०° फ०

,, चोटी = ४०° फ०

औसत तापक्रम $= \frac{६० + ४०}{२} = ५०°$ फ०

औसत दबाव (२८ इच) और औसत तापक्रम (५०° फ०) के लिये सारिणी से निर्धारित प्रतिकारक = ९८

पहाडी की ऊँचाई

$$= \frac{\text{तलहटी पर वायु का दबाव} - \text{चोटी पर वायु का दबाव}}{१/१००} \times$$

सारिणी से निर्धारित प्रतिकारक ।

$$= \frac{२९ - २७}{१/१००} \times ९८$$

$$= २ \times १०० \times ९८$$

= १९६० फुट

५ वायुमंडल की ऊंचाई

यदि वायुमण्डल का घनत्व सर्वत्र समान होता, तब हम वायुमण्डल की ऊँचाई बडी सरलता से ज्ञात कर लेते। सागर समतल पर वायु का दबाव २९ ९ इच है तथा वायुमण्डल की ऊपरी सीमा पर दबाव शून्य है। अतएव--

चूकि १/१०० इंच दबाव घट जाता है ९ फुट की ऊँचाई पर

२९ ९ ,, ९ × १०० × २९ ९

= २६, ९१० फुट

= ५ मील से अधिक

किन्तु हम जानते हैं कि वायुमण्डल में हम जितने ऊपर जाते हैं, घनत्व उतना ही कम हो जाता है। इसका कारण यह है कि वायुमण्डल के ऊपरी भाग मे सूक्ष्म गैसे स्थूल गैसो का स्थान ग्रहण कर लेती है। अतएव उपर्युक्त गणित अशुद्ध है।

वायुमण्डल की ऊँचाई निश्चित करने मे उल्काओ का अध्ययन सहायक सिद्ध हुआ है। उल्का छोटे आकार के ठोस पिण्ड होते है, जो ब्रह्माण्ड मे विचरा करते है। जब वे वायुमण्डल के सस्पर्श मे आते है, तब वे वायु की रगड से उष्ण होकर सफेद हो जाते है। १८८ मील की ऊँचाई तक उल्का देखे गये है। अतएव कम से कम १८८ मील की ऊँचाई तक वायुमण्डल का विस्तार निश्चित है।

६. दबाव के परिवर्तन

किसी भी स्थान पर वायु का दबाव स्थिर नही है। मौसम और ऋतुओ के परिवर्तन के साथ उसमे अन्तर होते रहते है। उदाहरण के लिये वर्षा होने के पूर्व दबाव अकस्मात घट जाता है। इसकी सूचना बैरोमीटर के पारे के अचानक गिर जाने से मिलती है। ऋतुओ के अनुसार दबाव के परिवर्तन की विस्तृत विवेचना अध्याय ३ मे की गई है।

७–समभार रेखायें (Isobars)

धरातल की आकृति के विभेदन के कारण किसी सीमित क्षेत्र पर भी वायु का दबाव सर्वत्र एक सा नही रहता। मान लीजिये किसी नगर मे एक छोटी सी पहाडी है। स्पष्ट है, कि इस पहाडी की चोटीपर तलहटी की अपेक्षा वायु का दबाव कम होगा। ऐसी दशा मे यह प्रश्न उठता है कि हम उस नगर के लिये वायु का दबाव कौनसा माने––तलहटी का अथवा चोटी का। इस समस्या के समाधान के लिये हम प्रत्येक स्थान के दबाव को सागर-समतल के दबाव मे परिणत कर लेते है और ऋतु-चित्रो मे सागर-समतल पर परिणत दबाव ही प्रयोग मे लाया जाता है। यह कथन एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। मान लीजिये किसी
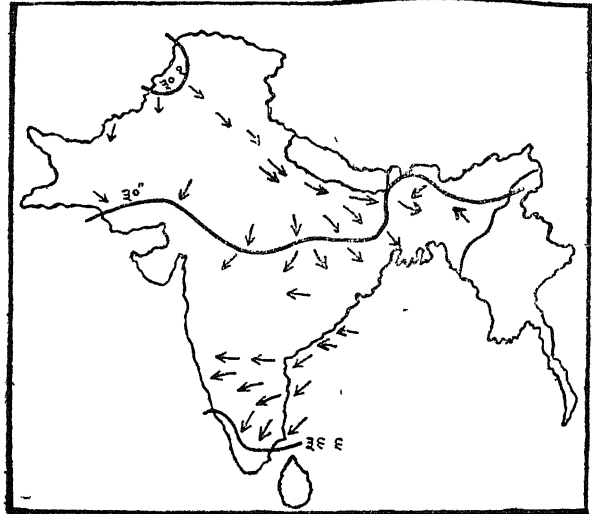
चित्र ८––भारतवर्ष की जनवरी की समभार रेखाये

नगर मे तीन ऐसे स्थान है जिनकी ऊँचाई क्रमश ९००, १३५० और १८००

फुट है और जिनका वायुभार क्रमश: २८, २७½ और २७ इंच है। हम यह जानते हैं, कि प्रत्येक ९०० फुट की ऊँचाई पर वायुभार १ इंच घट जाता है। इसे दृष्टि मे रखते हुये जब हम उक्त नगर के तीनो स्थानो के वायुभार को सागरसमतल पर परिणत करते है, तब हमे ज्ञात हुता है कि उक्त नगर के प्रत्येक स्थान का सागरसमतल का वायुभार २९ इंच है। अतएव समभार रेखा बनाते समय उक्त नगर का वायुभार २९ इंच माना जायगा।

समभार रेखाये वे कल्पित रेखाये है, जो उन स्थानो के मिला देने से बन जाती है, जिनका सागर समतल पर वायु का दबाव एकसा होता है।

चित्र ८ मे भारतवर्ष की जनवरी की समभार रेखाये प्रदर्शित की गई है।

८. वायुमण्डल के दबाव और प्रवाहित होनेवाली हवाओं का पारस्परिक सम्बन्ध

(१) **दबाव और वायु की दिशा का सम्बन्ध**—पृथ्वी के विभिन्न स्थानो के दबाव मे अन्तर होने के कारण ही हवाये चलती है। हवाये सदैव ऊँचे दबाव से नीचे दबाव की ओर प्रवाहित होती है।

(२) **दबाव और वायु का वेग**–जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है हवाये दबाव के अन्तर के कारण चलती है। उनका वेग इस अन्तर की मात्रा पर निर्भर करता है। यह अन्तर जितना अधिक होता है, वायु का वेग भी उतना ही अधिक होता है। दूसरी ओर यदि यह अन्तर कम होता है, तो वायु भी मन्द होती है। दबाव के अन्तर का ज्ञान समताप रेखाओ की पारस्परिक दूरी से हो जाता है। यदि यह दूरी कम हुई तो दबाव का अन्तर अधिक होता है और यदि यह दूरी अधिक हुई तो दबाव का अन्तर कम होता है। समताप रेखाओं के प्रति समकोण दिशा म मापित वायुमण्डल के दबाव के घटने या बढने के वेग (Rate) को बैरोमीटर की प्रवणता (Barometric Gradient) कहते है। यह तो स्पष्ट ही है कि यदि समताप रेखाये पास-पास हुई तो बैरोमीटर की प्रवणता अधिक होगी और हवाओ का वेग अधिक होगा। इसके विपरीत, जब समताप रेखाये दूर-दूर होगी, तब बैरोमीटर की प्रवणता कम होगी और हवाओ का वेग भी अपेक्षाकृत कम होगा।

(३) **हवाओं की दिशा के परिवर्तन**—यदि पृथ्वी स्थिर होती तो हवाये सदा समताप रेखाओ के प्रति समकोण बनाती हुई ऊँचे दबाव से नीचे दबाव की ओर प्रवाहित होती, किन्तु पृथ्वी स्थिर नही है और वह अपनी धुरी पर घूमती

रहती है, जिससे हवाओ की दिशा मे परिवर्तन हो जाते है। हवाओ की दिशा के परिवर्तन निम्नलिखित नियमो के अनुसार होते है —

(क) फैरल का नियम।

(ख) बाइज बैलट का नियम।

इन दोनो नियमो का सारांश एक ही है।

(क) फैरल का नियम

परिभाषा—पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमने के कारण उत्तरी गोलार्द्ध मे हवाये अपने दाहिनी ओर और दक्षिणी गोलार्द्ध मे अपने बायी ओर घूम जाती है।

इस नियम को गणित द्वारा सिद्ध किया जा सकता है।

गणितीय प्रमाण

पृथ्वी ध्रुवो पर चपटी है, अतएव उसकी आकृति दीर्घवृत्ताकार (Elliptical) है, जैसा कि चित्र ९ मे प्रदर्शित किया गया है। मान लीजिये भूपृष्ठ पर अ विन्दु पर एक कण स्थिर है। जब पृथ्वी घूमती है, तब इस कण पर दो बल लगते है —
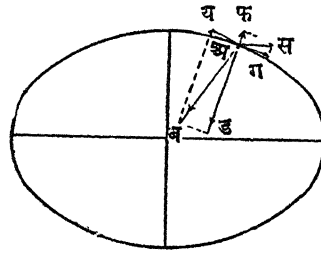
चित्र ९—दबाव और ऊँचाई का सम्बन्ध

(१) केन्द्राभिमुखी बल (Centripetal Force) अ ब दिशा मे लगता है।

(२) केन्द्रापसारी बल (Centrifugal Force) अ स दिशा मे लगता है।

बलो के समानान्तर चतुर्भुज के सिद्धान्त (Law of parallelogram of forces) के अनुसार—अ स बल को अ ग एव अ फ नामक दो बलो मे, जो

एक दूसरे के प्रति समकोण बनाते है, विश्लिष्ट किया जा सकता है। इसी प्रकार अ ब बल को भी अ ड और अ य नामक दो बलो मे, जो परस्पर समकोण बनाते है, विश्लिष्ट किया जा सकता है।

जब कण अ विन्दु पर स्थिर होता है, तब—अ फ बल अ ड बल को समतुलित कर लेता है तथा अ य बल अ ग बल को समतुलित कर लेता है।

यदि हम अब कण को पूर्व दिशा मे गति प्रदान करे, तो केन्द्रापसारी बल अ स बढ जायगा। उसके साथ ही अ फ और अ ग बल भी बढ जायँगे। अ फ बल के बढने से कण का भार घट जाता है क्योकि वह गुरुत्वाकर्षण के विपरीत दिशा मे लगता है। अ ग बल के बढ जाने से कण को विषुवत रेखा की दिशा मे गति मिलती है। इस प्रकार कण पूर्व दिशा मे गतिशील न होकर दक्षिण पूर्व की ओर गतिशील होता है। अन्य शब्दो मे वह दाहिनी ओर मुड जाता है।

प्रयोग द्वारा पुष्टि

ग्रामोफोन के रिकार्ड के बराबर दफ्ती का एक वृत्ताकार टुकडा काट लीजिये और उसके बीच मे रिकार्ड की तरह छेद भी कर दीजिये, जिससे उसे रिकार्ड के स्थान पर प्रयुक्त किया जा सके। जब वह दफ्ती का टुकडा रिकार्ड के स्थान
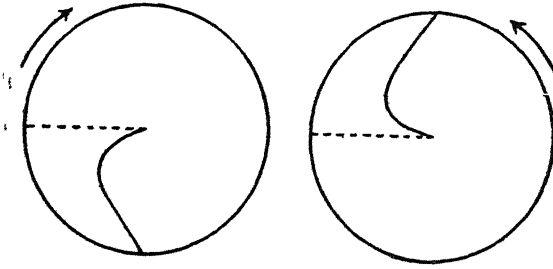
चित्र १०—फैरल के नियम की प्रायोगिक पुष्टि

पर घूमने लगे, तब उसके मध्य विन्दु से परिधि की ओर किसी भी दिशा मे पेंसिल से त्रिज्या खीचिये। आप देखेगे कि यह त्रिज्या सीधी न बनकर चित्र १० के अनुसार घूम जायगी। यदि कार्ड के घूमने की दिशा, चित्र १० (क) के अनुसार हुई, तो रेखा दाहिनी ओर मुड जायगी। यदि कार्ड के घूमने की दिशा चित्र १० (ख) के अनुसार हुई तो रेखा बायी ओर मुड जायगी। चित्र १० (क) में कार्ड का मध्य विन्दु ऊपर से देखने से उत्तरी ध्रुव का द्योतक है। चित्र १० (ख) मे कार्ड का मध्य विन्दु नीचे से देखने से दक्षिणी ध्रुव का द्योतक है।

(ख) बाइज बैलट का नियम (Buys Ballot's law)

चित्र ११ में समभार रेखायें और फैरल के नियम के अनुसार वायु की दिशा प्रदर्शित की गई है। इस चित्र के अध्ययन में यह नियम बनाया जा सकता है —
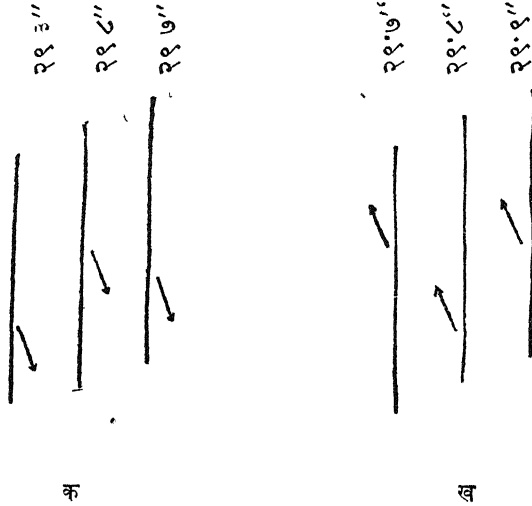
चित्र ११—बाइज-बैलट का नियम

'वायु की ओर पीठ करके खड़े हो जाइये, यदि आप उत्तरी गोलार्द्ध में हैं, तब आपके दाहिनी ओर अधिक दबाव होगा और बायीं ओर कम; यदि आप दक्षिणी गोलार्द्ध में है, तब आपके दाहिनी ओर कम दबाव होगा और बायीं ओर अधिक।'

यही बाइज बैलट का नियम है। वास्तव में यह नियम फैरल के सिद्धान्त का रूपान्तर मात्र है।

तृतीय परिच्छेद

भूपृष्ठ पर वायु के दबाव का सामान्य वितरण

१. पृथ्वी पर वायुभार की पेटियाँ

संसार का जलवायु बहुत अंशो मे वायु के दबाव के वितरण पर निर्भर है। पूर्व प्रकरण मे यह उल्लेख हो चुका है कि वायु सदैव ऊँचे दबाव से नीचे दबाव की दिशा मे प्रवाहित होती है। वायु की केवल दिशा ही नही, वरन् वेग भी हवा के दबाव पर निर्भर है। दो स्थानो के दबाव मे जितना अधिक अन्तर होगा, उनके बीच मे प्रवाहित होनेवाली वायु का वेग भी उतना ही तीव्र होगा। इसकी व्याख्या भी पूर्व में हो चुकी है। किसी स्थान मे होनेवाली वर्षा वहाँ पर चलनेवाली वायु पर निर्भर है और वायु दबाव पर अवलम्बित है अतएव वर्षा दबाव से ही निर्धारित होती है।

वर्ष भर के औसत दबाव की दृष्टि से पृथ्वी को निम्नलिखित कटिबन्धो में बाँटा जा सकता है —

(१) **स्थायी निम्न वायु भार की विषुवतीय पेटी (The equitorial belt of permanent low pressure)**—इसका विस्तार ५° उ० से लेकर ५° द० अक्षाश तक है। इस कटिबन्ध में सूर्य की किरणे प्राय वर्षभर लम्बवत् पडती है ताप के आधिक्य से यहाँ की वायु गरम होकर फैलती है, फैलने से उसका घनत्व घट जाता है और घनत्व घट जाने से वह ऊपर उठती
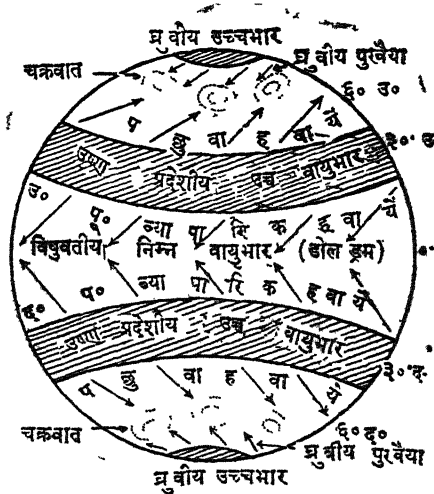
चित्र १२—वायुमंडल की पेटियाँ और हवायें

है। अतएव इस कटिबन्ध मे वायु सदैव ऊपर उठती रहती है, जिससे सदैव दबाव नीचा रहता है। वायु के ऊपर उठने से इस प्रदेश मे वर्ष भर सवाहन की वर्षा होती है। ऊपर उठती हुई वायु चलती हुई नही मालूम होती अतएव यह कटिबन्ध शान्त है। इसे 'डोलड्रम' भी कहते है। प्राचीन काल मे जब पालदार जहाज इस शान्त पेटी मे पड जाते थे तो उन्हे यात्रा मे बहुत समय लग जाता था।

(२) स्थायी उच्च वायुभार की उष्णप्रदेशीय पेटियाँ (The Tropical belts of permanent high pressure)—विषुवतीय कटिबन्ध की वायु वायुमण्डल मे ऊपर जाकर, ध्रुवो की ओर प्रवाहित होने लगती है और ३०° और ३५° अक्षाश के बीच मे दोनो गोलार्द्धो मे नीचे उतरती है (चित्र १३)। वायु के नीचे उतरने से उसका घनत्व बढ जाता है, जिससे दबाव की मात्रा भी
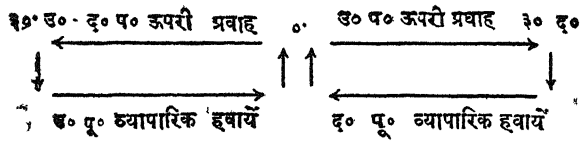
चित्र १३—वायु के संवाहन का प्रवाह

बढ जाती है। अतएव भूमध्यरेखा के उत्तर और दक्षिण मे ३०° और ३५° अक्षाश के बीच मे ऊँचे दबाव के कटिबन्ध है। ये भी शान्त प्रदेश है। उत्तरी गोलार्द्ध के इस शान्त प्रदेश को 'घोडे का अक्षाश' (Horse Latitude) भी कहते है। इसका कारण यह है कि जब योरप निवासी अमरीका मे बस रहे थे, तब वहाँ घोडे भी जहाजो पर लादकर ले जाते थे। जब ये पालदार जहाज शान्त हवा की पेटी मे पड जाते थे, तब उन्हे यात्रा मे बहुत समय लग जाता था। कभी-कभी मार्ग मे चारा-पानी कम हो जाता था, तो घोडे समुद्र मे फेक दिये जाते थे।

(३) स्थायी उच्च वायुभार की ध्रुवीय पेटियां (The Polar belts of permanent high pressure)—ध्रुवीय प्रदेश मे वर्ष भर बर्फ जमी रहती है, जिससे वहाँ दबाव स्थायी रूप से ऊँचा रहता है।

द्रष्टव्य—शीतोष्ण कटिबन्ध मे ६०° उ० और द० के निकट निम्न दबाव की दो पेटियाँ और है। ये पेटियाँ विषुवतीय निम्न दबाव की पेटियो से सर्वथा भिन्न है। इन पेटियो मे चक्रवातो के चलने से दबाव कम है। यद्यपि इन पेटियो मे वर्ष भर का औसत दबाव कम है, तथापि वास्तव मे ये कम दबाव के प्रदेश उसी समय होते है, जब इनमे चक्रवात चला करते है।

२. सनातन हवायें

उपर्युक्त पेटियो के अध्ययन द्वारा यह सरलता से निश्चित किया जा सकता है कि सनातन हवाये किस क्षेत्र मे और किस दिशा मे प्रवाहित होगी। इस संबध मे हमे केवल दो बाते ध्यान मे रखना है —

(१) वायु सदैव ऊँचे दबाव से नीचे दबाव की ओर प्रवाहित होती है।

(२) फैरल के नियम के अनुसार पृथ्वी के घूमने से उत्तरी गोलार्द्ध की हवाये अपनी दाहिनी ओर और दक्षिणी गोलार्द्ध की हवाये अपनी बायी ओर मुड जाती हैं। यह अवश्य है कि विषुवतीय प्रदेश की अपेक्षा ध्रुवो के निकट वायु अधिक मुडती है क्योकि वहाँ भूमध्य रेखा की तुलना मे परिभ्रमण का वेग बहुत अधिक होता है।

उष्णप्रदेशीय अधिक दबाव के कटिबन्ध से हवाये विषुवत् रेखा के कम दबाव के प्रदेश की ओर प्रवाहित होती हैं। उत्तरी गोलार्द्ध मे इन हवाओ की दिशा उ० पू० से द० प० होती है और दक्षिणी गोलार्द्ध मे द० पू० से उ० प०। इन्हे व्यापारिक हवाये (**Trade Winds**) कहते हैं।

उष्णप्रदेशीय अधिक दबाव के कटिबन्ध से हवाये उत्तरी गोलार्द्ध मे उत्तर की ओर और दक्षिणी गोलार्द्ध मे दक्षिण की ओर भी चलती हैं। फैरल के नियम के अनुसार उत्तरी गोलार्द्ध में इनकी दिशा द० प० से उ० पू० और दक्षिणी गोलार्द्ध में उ० प० से द० पू० हो जाती है। इन्हे पछुवा हवाये (**Westerlies**) कहते हैं।

ध्रुवो के अधिक दबाव के प्रदेश से भी हवाये उत्तरी गोलार्द्ध मे दक्षिण की ओर और द० गोलार्द्ध में उत्तर की ओर चला करती हैं। फैरल के नियम के अनुसार उत्तरी गोलार्द्ध में इनकी दिशा उ० पू० से द० प० तथा दक्षिणी गोलार्द्ध मे द० पू० से उ० प० हो जाती है। इन हवाओ को ध्रुवीय पुरवैया (**Polar Easterlies**) कहते हैं। शीतोष्ण कटिबन्ध मे ध्रुवीय पुरवैया हवाये और पछुवा हवाये परस्पर विपरीत दिशा से एक दूसरे के सम्पर्क मे आती हैं। इनके मिलने से चक्रवात बनते हैं।

३. ऋतुओं के अनुसार वायुभार की पेटियों के विवर्तन

यदि पृथ्वी की धुरी २३½° झुकी न होती, तो सूर्य की किरणे विषुवत रेखा पर वर्ष भर लम्बवत् पडती। ऐसी दशा मे दबाव की पेटियाँ स्थायी रहती और उनकी स्थिति में कोई परिवर्तन न होता। किन्तु जैसा कि हम जानते है, जब

उत्तरी गोलार्द्ध मे ग्रीष्म ऋतु होती है, तब सूर्य की किरणे कर्क रेखा पर लम्बवत् पडती हैं, दूसरी ओर जब उत्तरी गोलार्द्ध मे जाडा होता है, तब सूर्य की किरणे मकर रेखा पर लम्बवत् पडती है। सूर्य की किरणो की गति के साथ-साथ दबाव की पेटियाँ भी खिसकती है, किन्तु उतना नही। उत्तरी गोलार्द्ध की ग्रीष्म ऋतु मे विषुवतीय कम दबाव की पेटी विषुवत रेखा के कुछ ही अश उत्तर मे रहती है। इसी प्रकार दक्षिणी गोलार्द्ध के ग्रीष्म मे यह पेटी विषुवत रेखा के कुछ अश दक्षिण मे खिसक जाती है ।

(१) उत्तरी गोलार्ध का जाड़ा

जब उत्तरी गोलार्द्ध मे जाडे की ऋतु होती है, तब वहाँ का स्थल निकटवर्ती महासागर-जल की तुलना मे बहुत अधिक ठण्डा हो जाता है, जिससे वह ऊँचे दबाव (**High Pressure**) का क्षेत्र बन जाता है, अतएव उष्णप्रदेशीय अधिक दबाव की पेटी (**Tropical H. P. Belt**) एशिया और अमरीका पर उत्तर दिशा मे फैल जाती है।
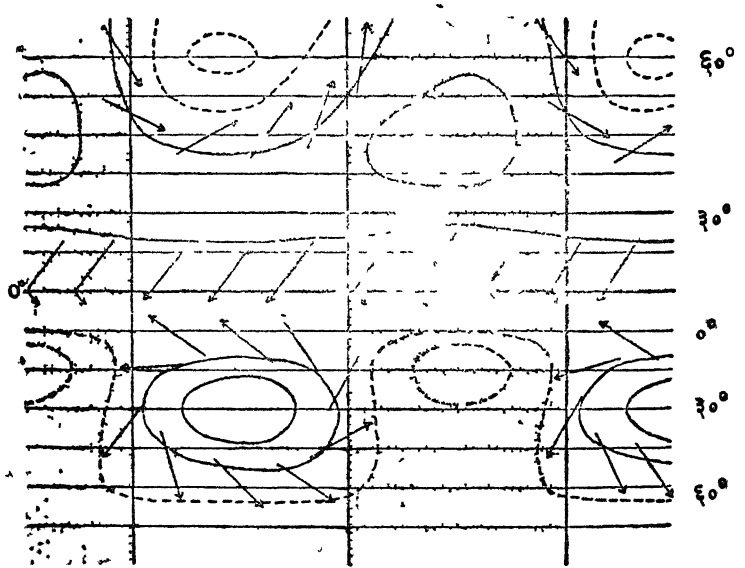
चित्र १४—जनवरी मे जल और स्थल के ऊपर वायुभार की दशा

यही काल दक्षिणी गोलार्द्ध का ग्रीष्म होता है। अतएव दक्षिणी गोलार्द्ध मे स्थलखण्ड जल की अपेक्षा कही अधिक गरम हो जाते है। वे कम दबाव के क्षेत्र बन जाते है। इसका प्रभाव दक्षिणी गोलार्द्ध की उष्ण-प्रदेशीय अधिक दबाव की पेटी (**Tropical H. P. Belt**) पर यह पडता है, कि वह द० अमरीका, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया मे लुप्त हो जाती है।

(२) उत्तरी गोलार्ध का ग्रीष्म

इसकी दशाये जाडो के विपरीत होती है। चित्र १५ से यह कथन स्पष्ट होगा।
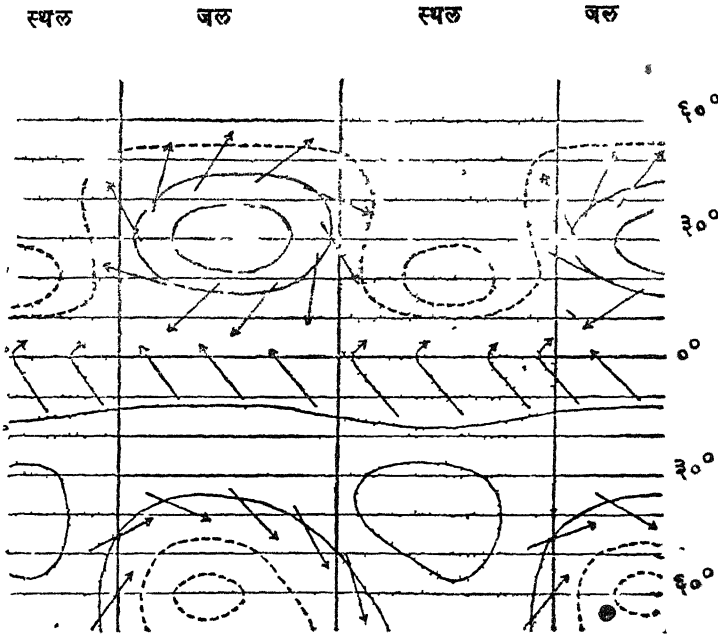
चित्र १५—जुलाई में जल और स्थल के ऊपर वायुभार की दशा

४. वायुभार के वितरण का जलवायु पर प्रभाव

वायुभार का वितरण अनेक अगो मे जलवायु को निर्धारित करता है। इस कथन की पुष्टि के लिये कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं :—

(१) डोलड्रम के प्रदेश में वायु गरम होकर ऊपर उठती है। ऊपर जाने पर उसकी जलवाष्प द्रवीभूत होती है और वर्षा के रूप मे नीचे गिरती है। अतएव इस कटिबन्ध मे सालभर वर्षा होती है और बादल छाये रहते है।

(२) अश्व-अक्षाशो (**Horse Latitude**) पर हवाये ऊपर से नीचे उतरती है, जिससे वे सूखी होती है। यही कारण है कि इन क्षेत्रो मे वर्षा नही होती और आसमान खुला रहता है।

(३) ध्रुवो के अधिक दबाव के प्रदेश से शीतोष्ण कटिबन्ध की ओर हवा चलती है। लगभग ६०° अक्षाश पर ये हवाये पछुवा हवाओ के सम्पर्क मे आती है। इन दोनो वायुराशियो के मिलने से 'चक्रवात' (**Cyclones**) अस्तित्व मे आते है। इन चक्रवातो के कारण शीतोष्ण कटिबन्ध की ऋतुओ मे परिवर्तन होते रहते है।

चतुर्थ परिच्छेद

समभार रेखाओं के विभिन्न रूप

समभार रेखाओ के प्रमुख रूप ये है--(१) चक्रवात (Cyclone) (२) प्रतिचक्रवात (Anti-cyclone) (३) गौण चक्रवात (Secondary cyclone) (४) टक (Wedge) (५) V--आकृति के निम्नन (६)
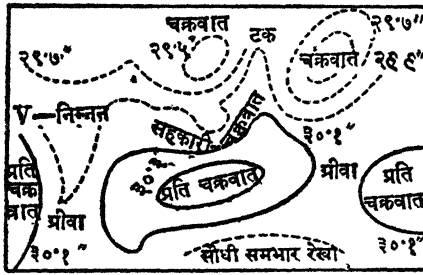
चित्र १६—समभार रेखाओं की विभिन्न व्यवस्थायें

ग्रीवा (Col) तथा (७) सीधी समभार रेखाये। चित्र १६ मे इन्हे प्रदर्शित किया गया है।

१. चक्रवात

(१) **आकृति एवं समभार रेखाओं की व्यवस्था** :—चक्रवात समभार रेखाओ की एक विशेष व्यवस्था है। इसमें समभार रेखायें वृत्ताकार अथवा दीर्घ वृत्ताकार होती है। इसके बीच मे दबाव सबसे कम होता है और बाहर की ओर क्रमश बढ़ता जाता है।

(२) **आकार**-चक्रवात के आकार मे बडे अन्तर पाये जाते है। शीतोष्ण कटिबन्ध मे चक्रवात का व्याम २००० मील तक पाया गया है। उष्णप्रदेशीय चक्रवातो का व्यास कुछ सैकडे मील से कभी भी अधिक नही होता।

चक्रवात के आकार की तुलना मे उसकी ऊँचाई बहुत कम होती है। शीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवात की अधिक से अधिक ऊँचाई ७ या ८ मील होनी है। चक्रवात की तुलना पतली तश्तरी या ग्रामोफोन के रिकार्ड से की जा सकती है।

(३) हवायें—चक्रवात के मध्य मे दबाव सबसे कम होता है अतएव चारों ओर से हवाये चक्रवात के मध्य की ओर प्रवाहित होती है। ये हवाये फैरल के नियम के अनुसार उत्तरी गोलार्द्ध मे अपनी दाहिनी ओर और दक्षिणी गोलार्द्धमे अपनी बायी ओर मुड जाती है। चित्र १७ से स्पष्ट होगा, कि चक्रवात के मध्य मे हवाओ की भँवर बन जाती है।
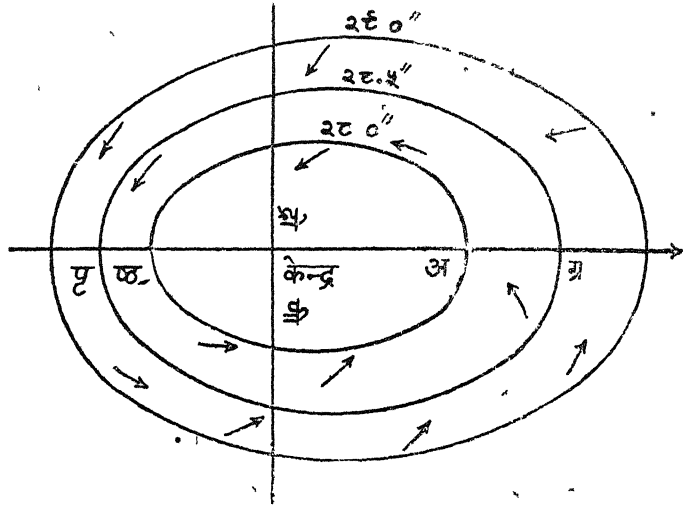
चित्र १७—चक्रवात मे समभार रेखाओं की व्यवस्था और हवाये

सबसे कम दबाव चक्रवात के ठीक बीचोबीच नही होता, वरन् कुछ पीछे की ओर होता है (चित्र १७)। फिर भी उस विन्दु को चक्रवात का केन्द्र कहते है। चक्रवात के अगले भाग की अपेक्षा पिछले भाग मे समभार-रेखाये प्राय पास-पास होती है। अतएव वहाँ वायु का वेग भी अधिक होता है। बहुधा चक्रवात के पिछले भाग की हवाये अगले भाग की अपेक्षा छोटा कोण बनाती है।

(४) गति (क) दिशा—चक्रवात बहुत कम स्थिर रहते है। प्राय वे प्रवाहित होने वाली वायु की दिशा मे चलते रहते है। यही कारण है, कि उत्तरी-पश्चिमी योरप के अधिकाश चक्रवात पूर्व की ओर अग्रसर होते है। व्यापारिक वायु के कटिबन्ध मे इनकी गति पश्चिम की ओर होती है। जब ये उष्णप्रदेशीय पछुवा हवाओ की पेटी मे प्रवेश करते है, तब इनकी दिशा मे परिवर्तन हो जाता है और वे प्रवाहित होनेवाली वायु के अनुसार पूर्व की ओर चलने लगते है।

(ख) **वेग**—चक्रवातो के गति-वेग मे बडे अन्तर पाये जाते है। शीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवात १५ मील प्रति घण्टा से लेकर ४० मील प्रति घण्टा के वेग से चलते है। उष्ण प्रदेशीय चक्रवातो का गति-वेग और भी कम होता है। वे प्रति घण्टे २ मील से लेकर १० मील तक चलते है।

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि चक्रवात मे प्रवाहित होनेवाली हवाओ की गति और स्वय चक्रवात की गति दो नितान्त भिन्न वस्तुये है। उन हवाओ से जो उसके केन्द्र के चारो ओर चलती है, चक्रवात की गति का कोई भी सम्बन्ध नही है। यद्यपि उष्ण-प्रदेशीय चक्रवातो का गति-वेग शीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवातो से कम होता है तथापि उनके अन्दर प्रवाहित होनेवाली हवाओ का वेग शीतोष्ण चक्रवातो की हवाओ से कही अधिक होता है।

(५) **ऋतु सम्बन्धी दशायें**—चक्रवातो की ऋतु सम्बन्धी दशाओ का अध्ययन करने के पूर्व हमे कुछ विशेष शब्द जान लेना आवश्यक है —

चित्र १७ मे एक चक्रवात प्रदर्शित किया गया है। इसमे अकित तीर उसकी गति की दिशा प्रदर्शित करते है। चक्रवात मे सबसे कम दबाव का विन्दु उसके ठीक बीचो-बीच नहीं है, वरन् उसके मध्य-विन्दु से कुछ पीछे हटा हुआ है। फिर भी उसे हम चक्रवात का केन्द्र कहते है। यदि हम चक्रवात के केन्द्र से होती हुई एक ऐसी रेखा खीचे जो उसकी गति की दिशा के प्रति समकोण बनाती हो, तो हम उसे 'द्रोणी' (Trough) कहेगे। द्रोणी-रेखा के आगे के भाग को हम अग्र (Front) कहते है और पिछले भाग को पृष्ठ (Back)।

चित्र १८ (अ) मे चक्रवात की सामान्य ऋतु-दशाये प्रदर्शित की गई है।

(६) **शीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवात—(Temperate Cyclones)**—इनकी रचना, आकृति, आकार, समभार रेखाओ की व्यवस्था आदि को विवेचना ऊपर की पक्तियो में हो चुकी है।

(क) **दबाव के परिवर्तन**—जब किसी स्थान से शीतोष्ण चक्रवात गुजरता है, तब वहाँ के दबाव मे परिवर्तन होते है। चित्र १८(ब) मे एक चक्रवात प्रदर्शित किया गया है। इस चित्र मे क स्थान पर २९ इच का दबाव है। जैसे-जैसे चक्रवात तीर की दिशा मे आगे बढता है, वैसे-वैसे एक के बाद दूसरी समभार रेखा क से गुजरती है। यह तो स्पष्ट ही है कि २९ इच की समभार रेखा के गुजर जाने के बाद क्रमश कम भार की रेखाये आती है। यह क्रम तब तक चलता है, जब तक चक्रवात का केन्द्र 'क'—स्थान पर नही आ जाता। केन्द्र के गुजरते ही वायु-भार पुन बढने लगता है।

अब हम 'ख' स्थान का विचार करेगे, जो केन्द्र के पथ में नही पडता है। चक्रवात के चलने से यहाँ भी दबाव क्रमश घटेगा यह क्रम उस समय तक

चलता रहेगा जब तक द्रोणी-रेखा नही आ जाती। द्रोणी-रेखा के गुजरते ही दबाव फिर बढना शुरू होगा।

चित्र १८ (अ) चक्रवात मे ऋतु सम्बन्धी दशायें

चित्र १८ (ब)—चक्रवात के गतिशील होने से क एवं ख स्थानो मे होने वाले वायुभा के उत्तरोत्तर परिवर्तनो की तुलना।

जब हम क और ख दोनो स्थानो के दबाव के परिवर्तन की तुलना करते हैं, तब हमें विदित होता है, कि 'क' स्थान की अपेक्षा 'ख' स्थान मे दबाव का पतन (**Fall**) कम होता है। अन्य शब्दो मे, जो स्थान चक्रवात के केन्द्र के पथ मे पडते हैं, उनमें दबाव का परिवर्तन सबसे अधिक होता है।

(ख) **हवायें**—इनकी विवेचना पूर्व मे हो चुकी है। चारो ओर मे हवाये केन्द्र की ओर प्रवाहित होती है। फैरल के नियम के अनुसार ये हवाये उत्तरी गोलार्द्ध मे अपनी दाहिनी ओर और दक्षिणी गोलार्द्ध मे अपनी बायी ओर मुड जाती है। इस प्रकार केन्द्रके चारो ओर हवाओ का भँवर बन जाताहै। चक्रवात के अग्र-भाग की अपेक्षा पृष्ठ मे समभार रेखाये परस्पर निकट होती है, अतएव अग्र की अपेक्षा पृष्ठ मे हवाओ का वेग अधिक होता है। बहुधा चक्रवात के पृष्ठ की हवाये अग्र की अपेक्षा छोटा कोण बनाती है।

(ग) **वर्षा एवं मेघ**—चक्रवात के आगमन की सूचना आकाश मे कुतल मेघो के आगमन से मिलती है। इसके अनन्तर कुन्तल-स्तृत मेघ दृष्टिगोचर होते है। बहुधा ऐसा होता है, कि ये बादल पूर्णत लुप्त हो जाते है और आसमान खुल जाता है, जिससे वर्षा की सभावना नही प्रतीत होती, किन्तु कुछ ही घण्टो के बाद आसमान मे बादलो का एक पतला और सफेद आवरण छा जाता है जिससे वह दूधिया (Milky) हो जाता है। इस समय, यदि दिन होता है, तो सूर्य के चारों ओर और यदि रात होती है तो चन्द्रमा के चारो ओर प्रभा मण्डल (Halo) दिखलाई देता है। प्राय यह प्रभामण्डल श्वेत वर्ण का होता है किन्तु कभी-कभी रगीन भी हो सकता है। काले रग के कॉच मे इसका प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। जैसे-जैसे चक्रवात निकट आता है, वैसे-वैसे मेघो के आवरण की मोटाई बढती जाती है। अन्त मे ऐसी अवस्था आ जाती है, जब आसमान बादलो से पूर्णरूप से ढक जाता है। उस समय वर्षा की मात्रा और वायु का वेग दोनो ही बढ जाते है। केन्द्र के तनिक आगे प्रचण्ड वर्षा (Driving Rain) होती है और हवाये बडी तीव्र होती है।

द्रोणी के गुजर जाने के बाद ऋतु-सम्बन्धी दशाये दर्शक की स्थिति के अनुसार भिन्न होती है। हम दो विशेष स्थितियो की विवेचना करेगे —

(१) मानलीजिये दर्शक की स्थिति तीर के दक्षिण मे है। ऐसी दशा मे द्रोणी के गुजरने के बाद, चक्रवात का चतुर्थ खण्ड (Quadrant) आयेगा। द्रोणी के गुजरते ही हवा के भयानक झाके आते है और वर्षा का घनी बौछार होती है। ये झोके लगातार नही आते है—बीच-बीच मे हवा शान्त रहती है। दो झोको के बीच के शान्तिकाल मे कभी-कभी वायु की दिशा मे अकस्मात परिवर्तन हो जाता है। ये परिवर्तन विशेषकर महासागरो मे बडे खतरनाक सिद्ध होते है।

वायु की दिशा-परिवर्तन के अनन्तर मेघ खण्डित होने लगते है और धीरे-धीरे आसमान खुल जाता है। कुछ देर के लिये पश्चिम की ओर से कुज मेघ आते हुए दिखाई देते है। जैसे-जैसे एक एक मेघ दर्शक के ऊपर आता है, वैसे-वैसे हवा का भयानक झोका आता है और उसके साथ ही साथ पानी अथवा ओलो

की घनी वृष्टि होती है। किन्तु धीरे-धीरे झोको के मध्य का शान्तिकाल बढने लगता है और कालान्तर मे झोके पूर्णत लुप्त हो जाते है, वायुमण्डल शान्त हो जाता है और आसमान खुल जाता है।

(२) दूसरी दशा वह है जब दर्शक केन्द्र के उत्तर मे होता है इस दशा मे द्रोणी के गुजरने के बाद चक्रवात का तीसरा खण्ड (Quadrant) आता है इस दशा मे पूर्वोक्त आकस्मिक ऋतु-परिवर्तन नही होता। द्रोणी के गुजर जाने के बाद भी काफी समय तक बादल छाये रहते है और वर्षा भी होती रहती है। धीरे-धीरे बादल भग हो जाते है और वर्षा भी समाप्त हो जाती है, किन्तु आसमान इतनी जल्दी नही खुलता, जितना चक्रवात के दक्षिणी भाग मे।

(घ) **तापक्रम**—चक्रवात मे तापक्रम के परिवर्तन ऋतु और पहर के अनुसार भिन्न होते है। जाडो मे अग्रभाग अपेक्षाकृत उष्ण रहता है, पृष्ठ भाग ठण्डा होता है और उसमे पाला भी पडता है। गर्मियो के ऋतुपरिवर्तन बहुत कुछ पूर्व दिनो की ऋतु के अनुसार होते है। यदि धूपदार (Sunny) और गरम ऋतु के बाद चक्रवात आता है, तो आसमान का बादलो से ढक जाना ही तापक्रम के पतन का कारण होता है। तापक्रम घट जाने पर भी गरमी कष्टदायक (Oppressive) होती है। अग्रभाग मे प्राय सदैव उष्णार्द्र ऋतु (Muggy) रहती है। पृष्ठ मे आसमान खुला रहता है, जिससे सौर ताप का पूर्ण प्रभाव पडता है। यद्यपि गर्मियो मे यह उष्ण रहता है तो भी इसमे शीतल समीर चला करती है। सक्षेप मे पृष्ठ मे ताजा मौसम (Fresh Weather) रहता है।

(ङ) उष्णप्रदेशीय चक्रवात (Tropical Cyclones)

(अ) विशेषतायें—उष्ण प्रदेशीय चक्रवात शीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवातो से अनेक अर्थों मे भिन्न होते है —

(१) शीतोष्ण चक्रवात की अपेक्षा उष्णप्रदेशीय चक्रवात का क्षेत्रफल बहुत कम होता है।

(२) शीतोष्ण चक्रवात की अपेक्षा उष्ण-प्रदेशीय चक्रवात का गतिवेग बहुत कम होता है।

(३) उष्णप्रदेशीय चक्रवात बहुधा पश्चिम की ओर चलते है क्योकि वे व्यापारिक हवाओ की पेटी मे आते है। शीतोष्ण चक्रवात पूर्व की ओर चलते है क्योकि वे पछुवा हवाओ की पेटी मे आते है।

(४) शीतोष्ण चक्रवात की अपेक्षा उष्णप्रदेशीय चक्रवात मे समताप रेखाये परस्पर निकट होती है, अतएव इनमे हवाओ का वेग अपेक्षाकृत अधिक होता है और वर्षा भी अधिक होती है।

(५) उष्ण प्रदेशीय चक्रवात शीतोष्ण चक्रवात की अपेक्षा अधिक सुडौल (Symmetrical) होता है। उष्ण प्रदेशीय चक्रवात मे समभार रेखायें प्राय वृत्ताकार होती है और निम्नतम दबाव का विन्दु केन्द्र के निकट होता है।

(६) उष्ण प्रदेशीय चक्रवात के प्रत्येक भाग मे तापक्रम और वर्षा का वितरण प्रायः सर्वत्र समान होता ह । शीतोष्ण चक्रवात के अग्र और पृष्ठ भाग मे तापक्रम और वर्षा मे अन्तर होता है।

(ब) उदाहरण उष्ण प्रदेशोय चक्रवात के पूर्ण ज्ञान के लिये एक उदाहरण देना उचित होगा इस सम्वन्ध मे १७ अक्टोबर सन् १९३३ का कोकोनाडा का चक्रवात उल्लेखनीय है। इसकी उत्पत्ति बगाल की खाडी मे अण्डमान द्वीप समूह के निकट १३ अक्टोबर सन् १९३३ की प्रातः काल को हुई थी और यह क्रमशः प्रगति करते करते २० अक्टोबर की प्रात काल लखनऊ पहुँच गया। इस

चित्र १९—उष्णप्रदेशीय चक्रवात का एक उदाहरण

चक्रवात की प्रगति की विभिन्न अवस्थाये तथा वायुभार के मूल्य चित्र १९ मे प्रदर्शित किये गये है।

(८) चक्रवातो की उत्पत्ति—इसके अध्ययन के लिये 'भूसैद्धान्तिकी' के नवम प्रकरण का प्रथम अश देखिये ।

२ प्रतिचक्रवात (Anticyclone)

(१) समभार रेखाओं की आकृति और व्यवस्था

जैसा कि इसके नाम से विदित होता है, प्रति-चक्रवात चक्रवात का उल्टा है। यह वृत्ताकार अथवा दीर्घ वृत्ताकार समभार-रेखाओ की ऐसी व्यवस्था है, जिसके बोच मे दबाव सबसे अधिक होता है और बाहर की ओर क्रमश घटता जाता है।

(२) **हवायें**–प्रतिचक्रवात मे सबसे अधिक दबाव बीच मे होता है, अतएव इसमे हवाये केन्द्र से बाहर की ओर प्रवाहित होती है। ये हवाये फैरल के नियम के अनुसार उत्तरी गोलार्द्ध मे अपनी दाहिनी ओर और दक्षिणी गोलार्द्ध मे अपनी बायी ओर मुड जाती है।
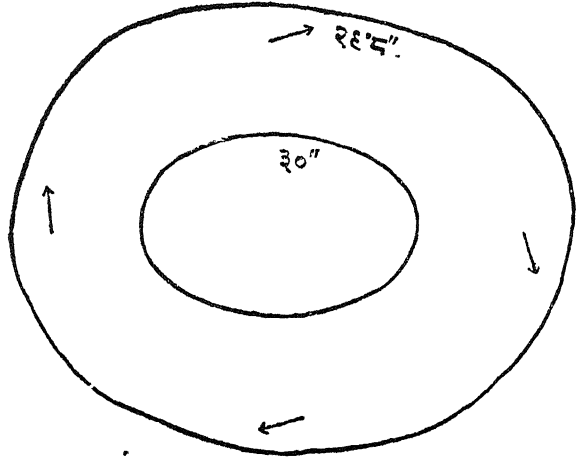
चित्र २०—**प्रतिचक्रवात**

चक्रवात की अपेक्षा प्रतिचक्रवात मे समभार रेखाये दूर-दूर होती है, विशेषकर केन्द्र के निकट, अतएव इसमे चलनेवाली हवाये हल्की होती है। केन्द्र के निकट शान्त-प्रदेश होता है जहाँ अनेक हल्की और परिवर्तनशील हवाये चलती है। प्रति-चक्रवात का सबसे उल्लेखनीय गुण केन्द्र का शान्त होना है।

प्रति चक्रवात के शान्त प्रदेश मे स्थानीय हवाये जैसे जल और स्थल समीर (**Land and sea Breezes**), पर्वत और घाटी की हवाये आदि अनुभव का जा सकती है। चक्रवात के केन्द्र मे यह सभव नही है। प्रति-चक्रवात की बाहरी सीमा पर हवाये नियमित (Steady) होती है और निश्चित दिशामे चलती है यद्यपि वे हल्की होती है।

(३) **गति**—चक्रवात किसी निश्चित पथ पर नही चलता। वह किसी भी दिशा मे जा सकता है, वह किसी भी दिशा मे फैल सकता है और फिर सिकुड सकता है और वह कई दिन तक एक ही स्थान पर स्थिर रह सकता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि धीरे-धीरे उसकी तीव्रता घटती जाती है और कालान्तर मे वह लुप्त हो जाता है।

(४) **ऋतु सम्बन्धी दशायें**–इसका उल्लेख तो ऊपर हो ही चुका है कि

प्रतिचक्रवात के मध्य मे शान्त प्रदेश होता है, जिसमे स्थानीय हवाओ और स्थानीय वर्षा का अनुभव होता है। सामान्यत प्रति-चक्रवात मे दिन मे मोसम सुन्दर और सुहावना होता है और रात मे शीतल और शान्त।

प्रति-चक्रवात एक ही स्थान पर कई दिन तक और कभी-कभी हफ्तो स्थिर रहते है। इसमे मौसम सुहावना होता है और मध्यभाग मे तेज हवाये कभी नही चलती। कभी-कभी हल्की बूदे पड जाती है किन्तु वर्षा बहुत कम होती है।

योरप मे दो प्रकार के प्रति-चक्रवात पाये जाते है--(१) मेघ रहित तथा (२) मेघाच्छादित। गर्मियो मे प्रथम श्रेणी के प्रतिचक्रवातो की प्रमुखता रहती है। इनमे दोपहर मे सूर्य के उज्ज्वल प्रकाश का अनुभव किया जाता है, दोपहर के बाद थोडे से बादल भी हो सकते है, जो शाम तक लुप्त हो जाते है। जाडो मे द्वितीय श्रेणी के प्रतिचक्रवातो की प्रमुखता रहती है। इनसे थोडी वर्षा भी हो जाती है। इनमे बहुधा कुहरा होता है।

प्रतिचक्रवात मे प्राय तापक्रम का उत्क्रमण (Inversion of temperature) पाया जाता है।

चक्रवात की अपेक्षा प्रतिचक्रवात के सम्बन्ध मे हमारा आधुनिक ज्ञान बहुत ही सीमित और अपूर्ण है।

३. चक्रवात एवं प्रति चक्रवात का संक्षिप्त तुलनात्मक अध्ययन

चक्रवात	**प्रतिचक्रवात**
(१) आकृति एवं वायुभार की व्यवस्था	
चक्रवात समभार रेखाओ की एक विशेष व्यवस्था है, जिसमें समभार रेखायें वृत्ताकार अथवा दीर्घवृत्ताकार होती है। इसके बीच मे दबाव सबसे कम होता है और बाहर की ओर क्रमश बढता जाता है।	प्रतिचक्रवात चक्रवात का उल्टा है यह वृत्ताकार अथवा दीर्घवृत्ताकार समभार रेखाओ की ऐसी व्यवस्था है जिसके बीच मे दबाव सबसे अधिक होता है और बाहर की ओर क्रमश घटता जाता है।
(२) हवायें (क) दिशा--	
चक्रवात के मध्य मे दबाव सबसे कम होता है अतएव चारो ओर की हवाये चक्रवात के मध्य की ओर प्रवाहित होती है। ये हवायें फैरल के नियम के अनुसार मुड़ जाती है, जिसमे चक्रवात के मध्य मे हवाओं की भँवर सी बन जाती है।	प्रति चक्रवात मे सबसे अधिक दबाव बीच मे होता है, अतएव इसमे हवाये केन्द्र से बाहर की ओर प्रवाहित होती है। ये हवाये फैरल के नियम के अनुसार उत्तरी गोलार्द्ध मे अपनी दाहिनी ओर और दक्षिणी गोलार्द्ध मे अपनी बायी ओर मुड जाती है।

(ख) वेग—	
चक्रवात मे चलनेवाली हवाये तीव्र और वेगवान होती है। प्राय वे भयकर तूफान का रूप ग्रहण कर लेती है।	प्रतिचक्रवात मे प्रवाहित होनेवाली हवाये मन्द ओर निर्बल होती है। इसमे वायुमण्डल प्राय शान्त रहता है।
(३) तापक्रम —	
(१) ग्रीष्म ऋतु मे कम होता है।	(१) ग्रीष्म ऋतु मे अधिक होता है।
(२) जाडो मे अधिक होता है।	(२) जाडो मे कम होता है।
(४) ऋतु —	
(१) विषम (Rough) एव झोकेदार (Squally)।	(१) शान्त एव शुष्क।
(२) गर्मियों में जत्तवृष्टि, जाडो मे हिमवृष्टि तथा दोनो ऋतुओ मे (विशेषकर गर्मियो मे) बिजली की कडकवाली आँधियाँ (तडित-झंझाये)।	(२) गर्मियो मे खुला हुआ आसमान और प्रखर धूप, जाडो मे कुहरा।
(३) जलवायु के कटिबन्धो के अनुसार चक्रवात की ऋतु मे विभेदन पाये जाते है, फिर भी कुछ ऐसे लक्षण है, जो वस्तुत सभी चक्रत्रातो मे पाये जाते है। इन्हे चित्र १८ (अ) मे प्रदर्शित किया गया है।	(३) प्रतिचक्रवात के मध्य मे शान्त प्रदेश होता है, जिसमे स्थानीय हवाओ और स्थानीय वर्षा का अनुभव होता है। सामान्यत प्रतिचक्रवात मे दिन मे मौसम सुहावना और सुन्दर होता है और रात मे शीतल और शात।
(५) गति —	
चक्रवात प्राय स्थिर नही रहते। वे प्रवाहित होनेवाली वायु की दिशा मे चलते रहते है।	प्रतिचक्रवात किसी निश्चित पथ पर नही चलते। वे किसी भी दिशा मे जा सकते है, किसी भी दिशा मे फूल अथवा फैल सकते है और फिर सिकुड सकते है। वे कई दिनो तक एक ही स्थान पर स्थिर भी रह सकते है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि धीरे धीरे उनकी तीव्रता घटती जाती है और कालान्तर मे वे लुप्त हो जाते है।

३ गौण चक्रवात अथवा सहकारी चक्रवात

(Secondary Cyclone)

(१) परिभाषा

जब किसी बडे चक्रवात के अन्दर छोटा चक्रवात विद्यमान होता है, तो उसे हम गौण या सहकारी चक्रवात कहते है। इसकी पहचान यह है, कि इसके कारण मुख्य चक्रवात का बाहरी किनारा किसी एक भाग मे फूल जाता है। यह आवश्यक नही कि सहकारी चक्रवात मे निम्नतम दबाव का केन्द्र हो ही। चित्र २१ (क) मे निम्नतम दबाव के केन्द्र वाला सहकारी चक्रवात प्रदर्शित किया गया है। चित्र २१ (ख) मे प्रदर्शित सहकारी चक्रवात मे निम्नतम दबाव का कोई निश्चित केन्द्र नही है।

(२) स्थिति

सहकारी चक्रवात मुख्य चक्रवात के किसी भी भाग मे विकसित हो सकते है किन्तु अधिकतर वे दक्षिणी किनारे पर पाये जाते है।

(३) गति

सहकारी चक्रवात प्राय घडी की विपरीत दिशा मे प्रधान चक्रवात क चक्कर लगाते है।
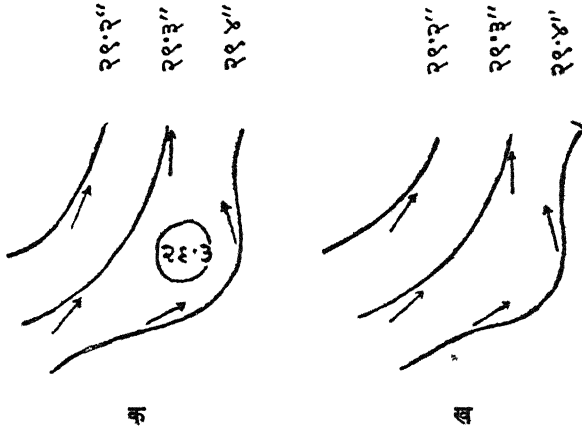
चित्र २१—सहकारी चक्रवात

(४) हवायें

हवाये अधिक दबाव से कम दबाव की ओर प्रवाहित होती है और फैरल के नियम का पालन करती है। सहकारी चक्रवात के अन्दर समताप-रेखाये अपेक्षाकृत दूर-दूर होती है, जिससे उसमे चलनेवाली हवाये हल्की होती है। मोड के उन्नतोदर (Convex) भाग मे समताप रेखाये अपेक्षाकृत पास-पास होती है जिससे वहाँ की हवाये तेज और झोकेदार होती है।

(५) ऋतु सम्बन्धी दशायें

सहकारी चक्रवात का मौसम प्रधान चक्रवात से मिलता जुलता है। इसमे आँधी के झोके और बौछारे बहुत आती है। नियमित (Steady) वर्षा मध्य मे होती है। गर्मियो मे बिजली की कडकवाली आँधियाँ अथवा तड़ित-झंझाये Thunderstorms) बहुधा आती है।

४ टंक (Wedge) एवं ५ V-आकृति के निम्नन

इनका हम तुलनात्मक अध्ययन करेंगे —

चित्र २२—टंक (Wedge)

चित्र २३ **V—आकृति का निम्नन (V-Depression)**
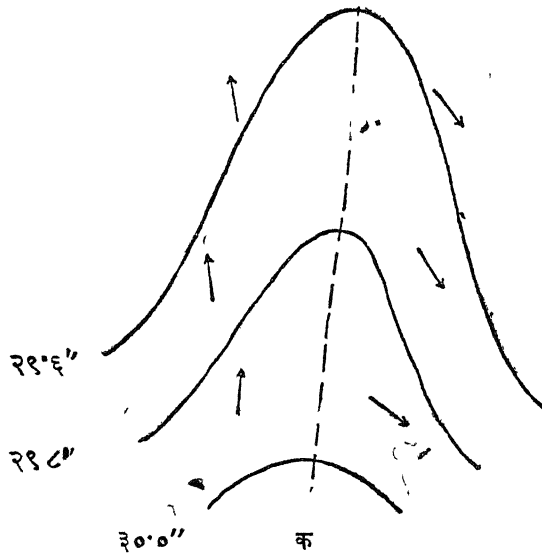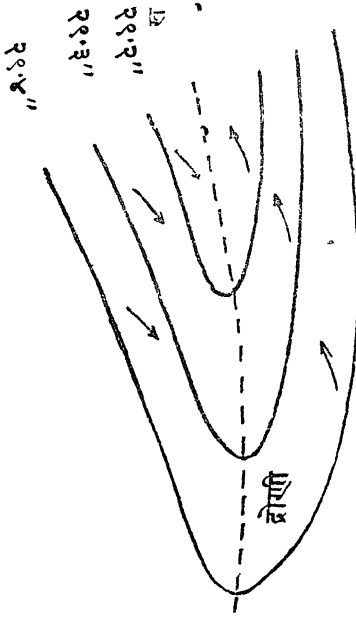
(१) परिभाषा—

इसकी आकृति त्रिभुज के समान होती है। इसमे सबसे अधिक दबाव आधार के मध्य-विन्दु पर होता है जो क्रमश शीर्ष एव शेष दो भुजाओ की दिशा मे घटता जाता है। यह अधिक दबाव का क्षेत्र है, जो दो चक्र-वातो के बीच मे पाया जाता है।

(२) गति

जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है, यह दो चक्रवातो के बीच मे पाया जाता है। जिस दिशा मे चक्रवात चलते है, उसी दिशा मे यह भी जाता है। शीतोष्ण प्रदेश मे इसकी गति पूर्व की ओर होती है।

यह टक (Wedge) का उल्टा होता है। यह कम दबाव का त्रिभुजाकार क्षेत्र है। इसमे सबसे कम दबाव त्रिभुज के आधार के मध्य-विन्दु पर होता है, जो क्रमश शीर्ष और शेष दो भुजाओ की दिशा मे बढता जाता है।

आधार के मध्य-विन्दु से गुजरने-वाली निम्नतम दबाव की रेखा को हम 'द्रोणी' (Trough) कहते है। V—निम्नन की गति की दिशा प्राय द्रोणी के प्रति समकोण बनाती है।

आधार के मध्य-विन्दु से गुजरने-वाली अधिकतम दबाव की रेखा को हम 'शीर्ष' (Crest) कहते है। चित्र मे क ख रेखा शीर्ष है। टक की गति की दिशा प्राय. शीर्ष के प्रति समकोण बनाती है।

(३) हवायें

हवाये सदैव अधिक दबाव से कम दबाव की ओर चलती है और फैरल के नियम का पालन करती है। चित्र २२ मे हवाओ की दिशा तीरो से प्रदर्शित की गई है। समभार-रेखाओ की पारस्परिक दूरी अधिक होने के कारण ये हवाये हल्की होती है।

चित्र २३ मे हवाये तीर द्वारा प्रदर्शित की गई है। समभार रेखाओ की पारस्परिक दूरी अपेक्षाकृत कम होने के कारण हवाओ का वेग अधिक होता है।

(४) ऋतु सम्बन्धी दिशायें

टक प्राय सुन्दर और सुहावनी ऋतु के क्षेत्र होते हैं। इनमे आसमान मेघरहित स्वच्छ एव ज्वलन्त नीले वर्णका होता है।इनमे ताजी (Fresh) हवा चलती है और दबाव क्रमश बढता है। किन्तु यह सुहावना मौसम थोडे ही समय रहता है और थोडी देर बाद उसका स्थान चक्रवातीय मेघ और वर्षा ले लेते है।

V–निम्नन मे ऋतु के आकस्मिक परिवर्तन बहुत होते है। द्रोणी-रेखा पर हवा के भयानक झोके आते है और कभी-कभी तडित झझाये भी आती है। जैसे ही द्रोणी-रेखा किसी स्थान से गुजरती है, वैसे ही वायु की दिशा मे अकस्मात परि-वर्तन होते है। ये परिवर्तन जहाजो के लिये बडे खतरनाक सिद्ध होते है।

V–निम्नन मे बादलो और वर्षा के वितरण मे विभेदन पाये जाते है, किन्तु सामान्यत मौसम चक्रवात के समान होता है, यद्यपि अपेक्षाकृत कुछ तीव्र होता है।

प्राय V–निम्नन चक्रवात के उष्ण अथवा शीतल अग्र (Front) से सम्बन्धित होता है। यदि वह उष्ण

अग्र का होता है तो चक्रवात के आगे बढ जाने के पूर्व उसमे वर्षा होती है। यदि वह शीतल अग्र का होता है तो उसमे आकाश निर्मल रहता है, हल्की बौछारे होती है और मौसम ठण्डा रहता है।

६. ग्रीवा (Col)

(१) परिभाषा

दो ऊँचे और दो नीचे दबाव के स्थानो के बीच का भाग ग्रीवा (Col) कहलाता है।

(२) ऋतु-सम्बन्धी दशायें

ग्रीवाप्रदेश के अन्दर न तो चक्रवात के समान मौसम होता है और न प्रतिचक्रवात जैसा, बल्कि यह एक तटस्थ प्रदेश होता है। इसमें जाडो मे मौसम शान्त होता है और कुहरा पडता है। गर्मियो मे यदि आसमान खुला हो और वायु मे काफी आर्द्रता हो, तो तडितझझाये अथवा बिजली की कडकवाली आँधियाँ आती है।

(३) अवधि

ग्रीवा (Col) दीर्घकाल तक नही रहता।
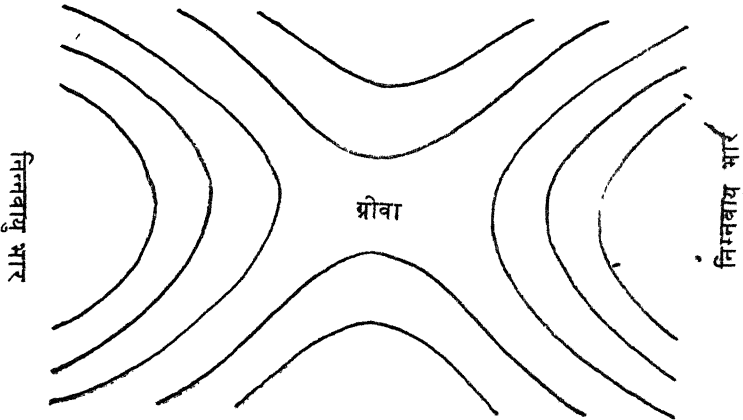
चित्र २४—ग्रीवा

७. सीधी समभार रेखायें

ये दो बडे चक्रवातो अथवा दो बडे प्रतिचक्रवातो के बीच के प्रदेश को दर्शाती हैं। इनमे हवाये अधिक दबाव से कम दबाव की ओर चलती है और फैरल के
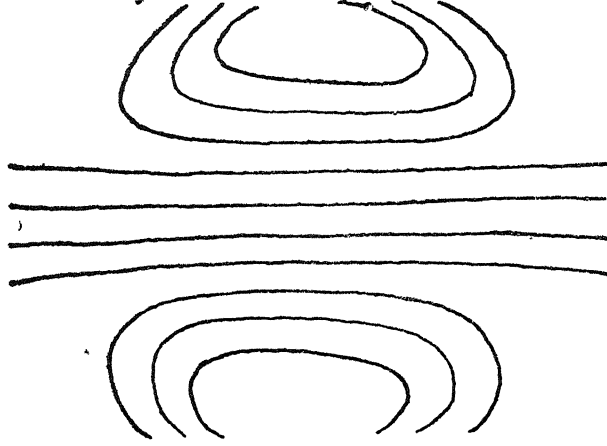
सीधी समभार रेखायें-
चित्र २५

नियम के अनुसार मुड जाती है। यदि इन रेखाओ की पारस्परिक दूरी कम हुई तो इनमे वायु काफी तेजी से चलती है। दूसरी ओर यदि इनकी पारस्परिक दूरी अधिक हुई तो वायु का वेग कम होता है। इनमे अनेक प्रकार के मौसम पाये जाते हैं।

पञ्चम परिच्छेद

स्थानीय हवायें, मौसमी हवायें तथा विशेष प्रकार की आँधियाँ

१. जल समीर और थल समीर (Land and Sea Breezes)

जल की अपेक्षा स्थल गर्म भी अधिक शीघ्रता से होता है और ठंडा भी। दिन में सूर्य के ताप के कारण जल की अपेक्षा स्थल अधिक गरम हो जाता है, जिससे उसके ऊपर की वायु गरम और हल्की होकर ऊपर उठती है। जो स्थान
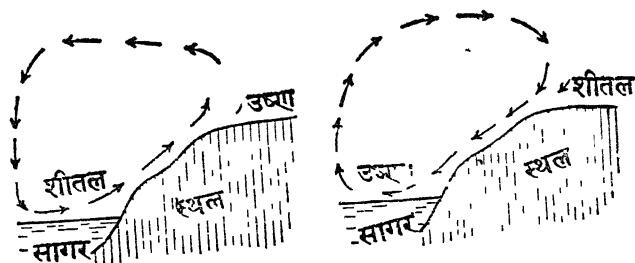
चित्र २६—जल समीर   चित्र २७—थल समीर

रिक्त होता है, उसकी पूर्त्ति के लिये समुद्र की ओर से हवाये चलती है। जल से स्थल की ओर आनेवाली इसी वायु को हम जलसमीर (Sea Breeze) कहते है।

रात्रि की दशा ठीक इसके विपरीत होती है और जल की अपेक्षा स्थल अधिक ठण्डा हो जाता है, जिससे स्थल से जल की ओर वायु चलती है। इसे हम स्थल समीर (Land Breeze) कहते है।

चित्र २६ एव २७ मे स्थल और जल समीर प्रदर्शित की गई है।

इन समीरो को चलने से सागरतट का तापक्रम सम (Moderate) रहता है।

२ मानसून हवायें

ये मौसमी हवायें है। वास्तव मे, मानसून हवाये स्थल और जल समीर का केवल वृहद रूप है। मानसून शब्द की उत्पत्ति एक अरबी शब्द से हुई है, जिसका

अर्थ है, मौसम। जिस सिद्धान्त के अनुसार स्थल और जल समीर क्रमश रात और दिन मे चलती है, उसी के अनुसार मानसून हवाये जाडो और गर्मियो की ऋतु मे चलती है।

गर्मियो मे स्थल महासागर की अपेक्षा अधिक गर्म होता है, अतएव इस ऋतु मे स्थल पर हवा का दबाव कम होता है जल पर अधिक। वायु सदैव अधिक दबाव से कम दबाव की ओर प्रवाहित होती है अतएव इस ऋतु मे समुद्र से स्थल की ओर हवाये चलती है। ये हवाये फैरल के नियम के अनुसार मुड जाती है। समुद्र से आने के कारण इनमे आर्द्रता होती है और इनसे वर्षा होती है।

जाडो मे दशाये विपरीत होती हैं। इस ऋतु मे समुद्र की अपेक्षा स्थल अधिक ठण्डा रहता है, जिससे स्थल के ऊपर हवा का दबाव अधिक होता है और
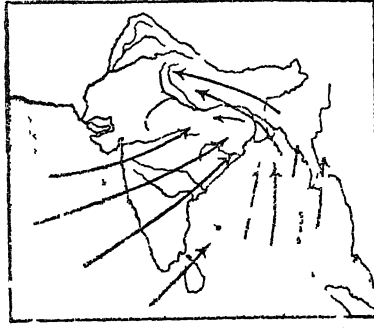
चित्र २८—दक्षिणी पश्चिमी मानसून
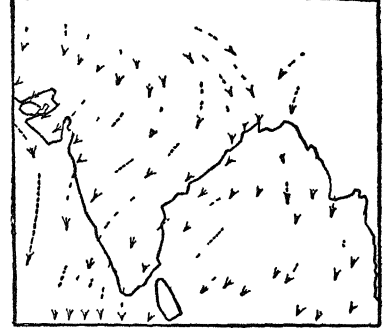
चित्र २९—उत्तरी पूर्वी मानसून

जल पर कम। अतएव हवाये स्थल से जल की ओर चलती हैं। स्थल से आने के कारण ये हवाये सूखी होती है।

चित्र २८ एव २९ मे भारतवर्ष मे चलनेवाली मानसून हवाये प्रदर्शित की गई है।

३. मिस्ट्रल, बोरा तथा सिरौक्को

(क) मिस्ट्रल (Mistral) तथा बोरा (Bora)

वास्तव मे मिस्ट्रल और बोरा, जाडो मे भूमध्य सागर के निम्नन (**Mediterranean Depression**) की ओर अग्रसर होनेवाले ध्रुवीय वायु-प्रवाह (**Polar Air Stream**) के स्थानीय नाम है। योरप के ठण्डे स्थलखण्ड के ऊपर से गुजरने के कारण ये हवाये विशेष ठण्डी होती है और तीव्र भी होती

हैं। इनके मार्ग मे आल्प्स पर्वत की श्रेणियाँ बाधक होती है, जिससे ये विशेष पथो पर ही सीमित है। रोन की घाटी मे इन्हे 'मिस्ट्रल' कहते है और एड्रियाटिक सागर के ऊपरी भाग मे 'बोरा'। उत्तरी अमरीका की शीतल तरगे (Cold waves) बहुत कुछ इसी प्रकार की है।

(ख) सिरौक्को (Sirocco)

भूमध्यसागर के निम्नन (Medit Depression) की ओर प्रवाहित होने वाले उष्णप्रदेशीय वायुप्रवाह (Tropical Air Stream) का ही नाम 'सिरौक्को' है। मरुस्थल के ऊपर से आने के कारण ये हवाये भूमध्यसागर के दक्षिणी तट पर सूखी और धूल से भरी होती है। भूमध्यसागर के ऊपर से गुजरते समय इनमे आर्द्रता का प्रवेश होता है। ऐसी आर्द्र और उष्ण हवाये द० इटली और सिसली मे पाई जाती है।

मिश्र मे सिरौक्को को खामसिम (Khamsim) कहते है, जिसका अरबी भाषा मे अर्थ पचास है। इस वायु का यह नाम इसलिये पडा कि यह लगभग ५० दिन चलती है। यह मार्च के अन्तिम भाग से लेकर मई के आरभ तक चलती है।

इसे द० पू० स्पेन मे लैवेशे (Leveche), लीबिया मे गिबली (Gibli) तथा ट्यूनिस मे 'चिली' (Chili) कहते है।

सिरौक्को के कारण बहुधा बनस्पति नष्ट हो जाती हैं। इससे फसलों को बडी हानि पहुँचती है विशेषकर पूर्ण विकसित अगूर और जैतून की लताओ को।

४. फौन तथा चिनूक हवायें

(क) फौन वायु (The Fohn)

ये हवायें पहाडो के पिछले ढालो पर उतरती है तथा सूखी और गरम होती हैं। उत्तरी आल्प्स की घाटियो मे ये विशेष उल्लेखनीय है। यहीं पर इनका यह नाम पडा। ये हवाये उस समय चलती है, जब आल्प्स के उत्तर की ओर चलनेवाला चक्रवात दक्षिण की वायु को अपनी ओर खीचता है। आकृष्ट वायु आल्प्स के दक्षिणी ढाल पर चढती है, ऊपर जाने पर बादल बनते है और अधिक ऊपर जाने पर वर्षा होती है। जब यह वायु उत्तरी ढाल पर पहुँचती है, उस समय तक उसकी आर्द्रता प्राय समाप्त हो जाती है। अतएव उत्तर की घाटियो मे जब यह वायु चलती है, तो बहुत गरम और सूखी होती है। इससे वायु-मण्डल का तापक्रम १५° से २०° तक बढ जाता है। इसके कारण बर्फ पिघल जाती है और पेड पौदे मकान आदि अतिशय शुष्क हो जाते है।
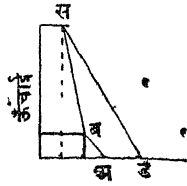
ल ब स वक्र—आल्प्स पर्वत से दक्षिणी ढाल पर बढने वाली वायु के क्रमिक तापक्रम का द्योतक है।

स द वक्र—आल्प्स पर्वत के उत्तरी ढाल पर उतरने वाली वायु के क्रमिक तापक्रम का द्योतक है।

चित्र ३०—फौन वायु के उष्ण प्रभाव की विवेचना

उत्तरी स्विट्जरलैण्ड मे फौन वायु वसन्त ऋतु मे बारम्बार चलती है और जाडो को जमी हुई बर्फ को पिघलाने मे सहायक होती है। शरद काल मे इसकी आवृत्ति (Freqency) वसन्त से कम किन्तु अन्य सभी ऋतुओ से अधिक होती है। इस समय यह फसलो—विशेषकर अगूर के पकने मे सहायक होती है। फौन सामान्यत दक्षिणी वायु है।

(ख) चिनूक (The Chinook)

कनाडा ओर सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे रॉकी पर्वत के पूर्वी भाग पर चलने वाली फौन जैसी उष्ण एव शुष्क वायु को चिनूक कहते है। फौन की तुलना मे चिनूक का प्रभाव-क्षेत्र कही अधिक विस्तृत होता है। ये प्राय पूर्व की ओर चलनेवाले निम्नन के दक्षिणी भाग मे चलती है और इनकी दिशा प्राय दक्षिण-पश्चिम होती है। जाडो और बसन्त मे इन हवाओ की आवृत्ति बहुत होती है। रॉकी पर्वत से नीचे उतरने के कारण ये हवाये गरम और सूखी हो जाती है, अतएव इनके चलने से वायुमण्डल का तापक्रम बढ जाता है। कभी-कभी १५ मिनट के अन्दर तापक्रम ३०° से ४०° तक बढ जाता है। इन हवाओ से जाडो की बर्फ पिघल जाती है, जिससे जानवर जाडो भर चरागाहो मे चर सकते है। इस दृष्टि से इन हवाओ का आर्थिक महत्त्व भी है। फौन का शक्तिशाली होना अथवा बारम्बार चलना इस बात की सूचना देता है कि जाडा मामूली होगा और जानवर चरागाहो मे जाडो भर चर सकेगे। दूसरी ओर फौन वायु की अनुपस्थिति अथवा अभाव का अर्थ यह होता है कि जाडा तीव्र होगा और जानवरो की क्षति होगी।

५. ब्लिज्जर्ड (Blizzard) और बुरान (Buran)

ब्लिज्जर्ड हिमकणो की भयानक आँधी है। संसार के कुछ भागो मे—जैसे अण्टार्कटिका, कैनाडा, साइबेरिया आदि मे—जाडो मे वृष्टि मुख्यत शुष्क एव

सूक्ष्म हिमकणों के रूप मे होती है। हिमवृष्टि के अनन्तर जब तेज हवाये चलती है तब उनमे हिमकण (मुख्यत धरातल के और आशिक रूप से बादलो के) फँस जाते है जिससे धुधली छा जाती है। ये हिमकण इतने सूक्ष्म होते है कि वे दरवाजो और खिडकियो की पतली दरारो मे प्रवेश कर जाते है। जो यात्री ब्लिज्जर्ड मे फँस जाते है, उनका दिशा ज्ञान नष्ट हो जाता है। अण्टार्कटिका के अडैली-लैण्ड (Adelie Land) मे ब्लिज्जर्ड बहुत आते है और इसी कारण उसे 'ब्लिज्जर्ड का गृह' (Home of the Blizzard) भी कहते है।

मध्य एशिया मे इस प्रकार की आँधी को बुरान (Buran) कहते है। ब्लिज्जर्ड के आने से जाडो मे तापक्रम, उत्क्रमण के कारण, अकस्मात बढ जाता है और गर्मियो मे घट जाता है।

९. हरीकेन, टाइफून टॉरनैडो एवं धूल का भूत

(क) हरीकेन (Hurricane)

हरीकेन उस उष्ण प्रदेशीय चक्रवात (Tropical Cyclone) का नाम है, जो पश्चिमी द्वीप समूह और मैक्सिको की खाडी मे आया करता है। इसकी उत्पत्ति प्राय पश्चिमी द्वीप समूह के पूर्व मे केप वर्डे द्वीप समूह (Cape Ver-de Islands) के निकट होती है। यहाँ से वह पश्चिम की ओर चलता है। इसके पथ में पडनेवाले द्वीपो को इससे कभी-कभी बहुत हानि होती है। आगे चलकर यह उत्तर-पूर्व की ओर मुड जाता है। हरीकेन से पश्चिमी द्वीपसमूह के अतिरिक्त सयुक्त राष्ट्र अमेरिका का खाडी तट तथा मध्य अमेरिका का पूर्वी भाग भी प्रभावित होता है। सितम्बर और अक्टोबर के महीनो में यह बहुत आता है।

चित्र ३१—पूर्वी द्वीप समूह के प्रदेश में हरीकन के पथ

(ख) टाइफून (Typhoon)

चीन सागर मे आनेवाले उष्णप्रदेशीय चक्रवातोको टाइफून (Typhoon) कहते है। ये ग्रीष्म ऋतु के अन्त मे और शरद के आरभ मे बहुत आते है। फिलीपाइन द्वीपसमूह अनेक टाइफूनो के पथ मे पडता है। दक्षिणी चीन के तटीय प्रदेश मे भी टाइफून प्रभावशाली होते है। अन्य उष्णप्रदेशीय चक्रवातो की भाँति टाइफून से भी बलवती हवाये चलती है और घनघोर वृष्टि होती है।
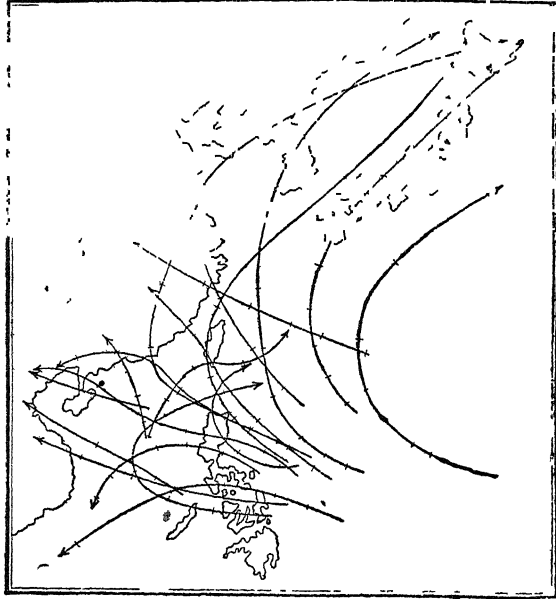
चित्र ३२—चीन के तट पर टाइफन के पथ

यद्यपि स्थल मे प्रवेश करते समय इनकी शक्ति काफी क्षीण हो जाती है, तथापि इनसे काफी विस्तृत क्षेत्र को हानि पहुँचती है। उदाहरण के लिये स्वातो (Swatow) के अगस्त सन् १९२२ ई० के टाइफून मे केन्द्र के गुजरते ही वायु की दिशा मे अकस्मात् परिवर्तन हुआ जिससे एक भयानक लहर अस्तित्व मे आ गई। इस लहर से नगर भर मे अकस्मात् भयानक बाढ आ गई जिससे ५०,००० व्यक्ति काल के गाल मे चले गये।

(ग) टॉरनैडो

टॉरनैडो भयानक भँवरदार आँधी है। इसका क्षेत्रफल अधिक नही होता प्राय इसका व्यास $\frac{1}{8}$ मील के लगभग होता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे रॉकी

पर्वत के पूर्व मे—विशेषकर मिसीसिपी के मध्यवर्ती मैदान मे—टॉरनैडो बहुत आतेहै । इनसे क्षति भी बहुत होती है । इनके केन्द्र मे वायु का वेग २०० मील प्रति घण्टा से भी अधिक होता है । यही कारण है कि इस के केन्द्र मे आ जाने से पेड उखड जाते है ओर मकान नष्ट-भ्रष्ट हो जाते है । यदि टॉरनैडो सागर या नदी के ऊपर से गुजरता है तो उनका पानी टाटी अथवा तुण्ड के रूप मे ऊपर उठ जाता है इसे हम, जल-तुण्ड (Water spout) कहते है । टॉरनैडो मे घनगर्जन एव घनघोर वृष्टि भी होती है । ये वसन्त ऋतु मे और ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ मे बहुत आते है और प्राय सदैव दोपहर को ही आते है ।

(घ) धूल का भूत (Dust Devil)

यह मरुस्थल मे आनेवाली धूल की भँवर है । यह एक स्थानीय वृत्त (Local Phenomena) है, जिसमे धूल केन्द्र के चारो ओर चक्कर खाती है और इस प्रकार वह धरातल से तीन-चार हजार फुट ऊपर उठ जाती है इसका आकार छोटा होता है अर्थात् इसका व्यास कुछ गज ही होता है । मरुस्थल मे आतप के आधिक्य से सवाहन-प्रवाह के उत्पन्न हो जाने से इनकी सृष्टि होती है । धूल के भूत का वेग प्रति घण्टे ५ मील से लेकर १५ मील तक होता है और कभी-कभी ३० मील तक पाया गया है । आकार मे छोटा होने के कारण इनसे कोई विशेष हानि नही होती । वायुयान भी इनसे प्रभावित नही होते ।

७. हरमैटन एवं विली विली

(क) हरमैटन (Harmattan)

यह वास्तव मे उ० पू० व्यापारिक वायु का ही रूपान्तर है, जो जाडे की शुष्क ऋतु मे सहारा मरुस्थल के ऊपर से होकर गिनी की खाडी की ओर चलती है । यह वायु असाधारण रूप से सूखी होती है और शुष्क ऋतु के प्रभाव को बहु-गुणित कर देती है । इस वायु के चलने से वनस्पति सूखकर नष्ट हो जाती है, बहुधा पेडो के तने फट जाते है । इसके कारण आपेक्षिक आर्द्रता १० प्रतिशत से भी कम हो जाती है । इसमे प्राय सूक्ष्म धूलि-कणो की मात्रा अधिक होती है, जिससे यह और भी कष्टदायक हो जाती है ।

(ख) विली-विली (Willy-Willy)

यह उष्ण-प्रदेशीय चक्रवात होते है, जो उत्तरी-पश्चिमी आस्ट्रेलिया मे ग्रीष्म ऋतु के अन्तिम भाग मे चला करते है । इनकी उत्पत्ति टिमौर सागर (Timor Sea) मे होती है । यहाँ से वे द० प० की ओर बढते है । इनसे पियर (Pear) मछली के उद्योग को हानि पहुँचती है । तदनन्तर ये द० पू० की ओर मुड जाते है

और तट मे प्रवेश करते है। इनसे तटीय प्रदेश को बडी हानि पहुँचती है और कभी-कभी घनघोर वृष्टि भी होती है। फिर ये ग्रेट आस्ट्रेलियन बाइट (**Great**
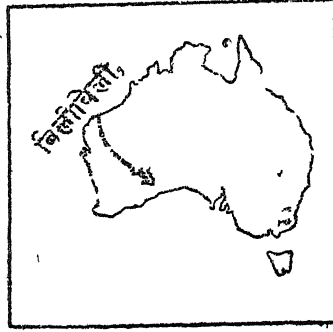
चित्र ३३—बिली बिली का पथ

Australian Bight) की ओर अग्रसर होते है। आन्तरिक भागो मे विली बिली की शक्ति क्षीण हो जाती है और लोग उसका इसलिये स्वागत करते है, कि उससे वर्षा होती है।

षष्टम् परिच्छेद

सूर्यातपन

[INSOLATION.]

१. परिभाषा

Insolation शब्द Incoming Solar Radiation (आगन्तुक सौर विकिरण) का सक्षिप्त रूप है ।

किसी निश्चित समय मे पृथ्वी के किसी निश्चित क्षेत्र मे सूर्य से जो ताप प्राप्त होता है, उसे हम सूर्यातपन (Insolation) कहते हैं।

गणित द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि पृथ्वी को सूर्य से प्रति वर्ग सेण्टीमीटर प्रति मिनट १ ९४ कैलॉरी ताप मिलता है। ताप की यह मात्रा प्राय सर्वत्र स्थिर है, अतएव इसे 'सौर्य-स्थिराक' (Solar Constant) कहते हैं।

२. ताप का उद्गम

ताप का मूलस्त्रोत अथवा उद्गम सूर्य है। सूर्य का व्यास पृथ्वी की तुलना में सौ गुना से भी अधिक है और सौर-पृष्ठ का तापक्रम १०,०००° फ० से भी अधिक है। इसी से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ताप की कितनी प्रचुर मात्रा सूर्य से विकीर्ण होती होगी। पृथ्वी सूर्य से लगभग ९ करोड ३० लाख मील दूर है, जिससे वह सौर-ताप का केवल दो अरब वाँ भाग ग्रहण कर पाती है। सौर-ताप के इस न्यून अश पर ही पृथ्वी के अधिकाश प्राकृतिक और प्राय समस्त जीव-सम्बन्धी वृत्त (Phenomena) अवलम्बित है। इसके अतिरिक्त जलवायु को जितनी बातें प्रभावित करती है, उनमे यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

यह आगणन किया गया है, कि पृथ्वी को सूर्य से जो ताप मिलता है, उसका ३७ प्रतिशत भाग मेघों और वायुमण्डल के धूलि-कणो से परावर्तित (Reflect) हो जाता है, ६ प्रतिशत भाग वायुमण्डल की गैसे सोख लेती है और केवल ५७ प्रतिशत भूपृष्ठ तक पहुँचता है।

३. सूर्यातपन (Insolation) को प्रभावित करने वाले प्रतिकारक

निम्नलिखित प्रतिकारक सूर्यातपन (Insolation) की मात्रा को प्रभावित करते है :—

(१) **सूर्य की किरणों द्वारा निर्मित कोण**--तिरछी किरणावली (**Pencil of rays**) लम्बवत् किरणोकी अपेक्षा अधिक क्षेत्रको प्रभावित करती है। अतएव कोई भी ऐसा स्थान जहाँ सूर्य ठीक सिर के ऊपर चमकता है, अपने उत्तर और दक्षिण के स्थानो की अपेक्षा अधिक तप्त होता है। निम्नाकित विवेचना से यह कथन स्पष्ट होगा --
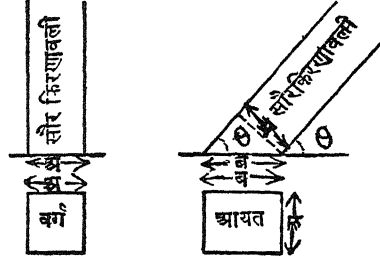
चित्र ३४--सूर्यातपन की मात्रा पर सूर्य की किरणो द्वारा निर्मित कोण का प्रभाव

दशा १ मे

प्रभावित क्षेत्र $= अ \times अ$

$= अ^2$

$= अ^2 \times १$

$= अ^2 \times \frac{१}{ज्या\ ९०^\circ}$

[क्योकि ज्या ९० = १]

दशा २ मे

प्रभावित क्षेत्र $= अ \times ब$

$= अ\ ब$

$\frac{अ}{ब} =$ ज्या θ (जहाँ θ = सूर्य की किरणो द्वारा निर्मित कोण)

अथवा $अ = ब$ ज्या θ

अथवा $ब = \frac{अ}{ज्या\ \theta}$

$अ\ ब = अ . \frac{अ}{ज्या\ \theta}$

$= \frac{अ^2}{ज्या\ \theta}$

$अ^2 . = \frac{१}{ज्या\ \theta}$

उपर्युक्त दोनो दशाओ मे सूर्यातपन द्वारा प्रभावित क्षेत्र $\frac{१}{\text{ज्या}\theta}$ का अनुक्रमानुपाती (Directly Proportional) है। यह तो स्पष्ट ही है कि यदि किरणावली का ताप अपेक्षाकृत कम क्षेत्रफल मे फैलता है, तो प्रत्येक इकाई क्षेत्रफल को अधिक ताप मिलता है अथवा सूर्यातपन अधिक होता है । दूसरी ओर, यदि क्षेत्रफल अधिक होता है तो प्रति इकाई-क्षेत्रफल को कम ताप मिलता है अथवा सूर्यातपन की मात्रा कम होती है, क्योकि किरणावली के ताप की मात्रा तो उतनी ही रहती है। अन्य शब्दो मे, क्षेत्रफल और सूर्यातपन परस्पर उत्क्रमानुपाती (Inversely Proportional) है । अतएव, किसी स्थान पर प्राप्त होने वाला सूर्यातपन ज्याθ अथवा सूर्य की किरणो द्वारा निर्मित कोण के ज्या (Sine) के अनुरूप होता है ।

(२) **वायुमण्डल की मोटाई**—जैसा कि चित्र ३५ से स्पष्ट होगा लम्बवत् किरणो की अपेक्षा तिरछी किरणो को वायुमण्डल में अधिक दूरी तय करना
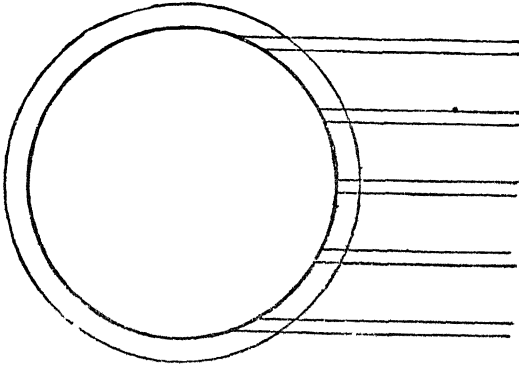
चित्र ३५—सूर्यातपन की मात्रा पर वायुमण्डल की मोटाई का प्रभमव

पडती है वायुमण्डलके निम्नतम स्तर अर्थात् परिवर्तमण्डल (Troposphere) में बहुत सी ऐसी गैसे रहती है, जो ताप का शोषण कर लेती है। इस प्रकार की गैसों मे जलवाष्प (Water Vapour) तथा कार्बन डाइ-ऑक्साइड विशेष उल्लेखनीय है। अतएव जब सौर किरणो को परिवर्त-मण्डल मे अधिक लम्बा मार्ग तय करना पडता है, तब उनके ताप का कुछ अश उपर्युक्त गैसो के कारण लुप्त हो जाता है और धरातल को लम्बवत् क्षेत्र की अपेक्षा कम ताप मिलता है। अन्य शब्दो मे सूर्य की किरणे जितनी तिरछी होती जायगी, सूर्यातपन (Insolation) उतना ही कम होगा।

(३) **दिन और रात की अवधि** --दिन मे पृथ्वी सौर-विकिरण को ग्रहण करती है और रात मे जब वह ठण्डी होती है तब उससे ताप विकीर्ण (Radiate) होता है। अतएव उन स्थानो मे जहाँ रात की अपेक्षा दिन बडा होता है, सूर्यातपन उन स्थानो से अधिक होता है, जहाँ दिन की अपेक्षा रात बडी होती है।

(४) **जल और स्थल का वितरण**--जल और स्थल दोनो मे ताप को ग्रहण करने की क्षमता समान नही है। यदि दोनो को समान ताप पहुँचाया जाता है, तो जल की अपेक्षा स्थल अधिक गरम हो जाता है। अतएव सूर्यातपन पर महाद्वीपो और महासागरो के वितरण का प्रभाव पडता है।

जल की अपेक्षा स्थल के अधिक गरम अथवा ठण्डे होने के निम्नलिखित कारण है ---

(१) द्रव जल का आपेक्षिक ताप ठोस पृथ्वी से कही अधिक है। एक घन फुट रेत को १° फ० गरम करने के लिये जितना ताप लगता है, उससे दुगुना ताप इसी आयतन के पानी को इतना ही गरम करने के लिये आवश्यक है।

(२) स्थल की अपेक्षा जल मे सूर्य की किरणे अधिक गहराई तक प्रवेश कर जाती है। स्थल मे तीन फुट के नीचे तापक्रम के दैनिक परिवर्तन का अनुभव नही होता, किन्तु जल मे उसे ६० फुट की गहराई तक अनुभव किया जा सकता है।

(३) जल अस्थिर है। जब उसका एक भाग गर्म हो जाता है, तब वह दूसरे स्थान को बह जाता है। इसके विपरीत स्थल स्थिर है, वह एक ही स्थान पर स्थित रहता है, अतएव उसका सीमित क्षेत्र ही सौर-ताप को ग्रहण करता है।

(४) सूर्य से जो ताप जल को मिलता है, उसका कुछ भाग भाप के बनने मे नष्ट हो जाता है। स्थल मे भाप नही बनती, अतएव स्थल को सूर्य से जितना भी ताप मिलता है, वह सब उसके तापक्रम के बढाने के काम आता है।

(५) जल-पृष्ठ पर सौर-ताप का परावर्त्तन (Reflection) स्थल की अपेक्षा अधिक होता है। अन्य शब्दो मे, स्थल की अपेक्षा जल कम ताप को ग्रहण करता है।

(६) वाष्पीकरण की क्रिया के कारण महासागरो के ऊपर बदली छायी रहती है। जलवाष्प और मेघो का यह आवरण सूर्य और पृथ्वी दोनो के विकिरण मे बाधक होता है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है, कि पृथ्वी के विकिरण की तुलना मे सौर-विकिरण कही अधिक महत्त्वपूर्ण है।

(५) **धरातल का वर्ण**--सूर्यातपन पर धरातल के रग का भी प्रभाव पडता है। उदाहरण के लिये काले रग की मिट्टी और चट्टाने हल्के रग की भूमि की अपेक्षा अधिक ताप ग्रहण करती है।

(६) **सौर कलंकों (Sunspots) की संख्या**--किन्ही अशो मे सौर-

विकिरण सूर्य के धब्बो (Sun-Spots) की सख्या पर भी निर्भर है। जब इन धब्बो की सख्या अधिक होती है, तब सौर-विकिरण अधिक होता है और जब इनकी सख्या कम होती है, तब सौर-विकिरण भी कम होता है।

(७) **पृथ्वी से सूर्य की दूरी**—सूर्यातपन की मात्रा सूर्य से पृथ्वी की दूरी पर भी अवलम्बित है। सूर्य से पृथ्वी की दूरी सदा एक सी नही रहती। उसमे
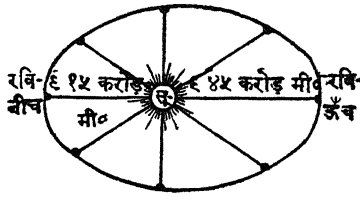
चित्र ३६

४ सूर्यातपन का वितरण

सूर्यातपन के वार्षिक वितरण की दृष्टि से ससार को तीन भागों में बाँटा जा सकता है —

(१) वार्षिक वितरण

(क) **विषुवत् रेखा का प्रदेश**—इसका विस्तार २०° उ० से लेकर २०° द० तक है। इसमे दो महत्तम विन्दु (Maxima) और दो लघुतम विन्दु (Minima) होते हैं, अर्थात् इस क्षेत्र में सूर्यातपन वर्ष में दो बार उच्चतम हो जाता है और दो बार निम्नतम। इस प्रदेश में सूर्यातपन शून्य कभी नही होता।

(ख) **मध्य अक्षांश का प्रदेश**—इसका विस्तार २०° से लेकर ६६½° अक्षाश तक है। इसमे एक महत्तम विन्दु होता है और एक लघुतम विन्दु अर्थात् इस क्षेत्र में सूर्यातपन वर्ष मे एक बार उच्चतम हो जाता है और एक बार निम्नतम। विषुवनीय प्रदेश की भाँति इसमे भी सूर्यातपन कभी शून्य नही होता।

(ग) **ध्रुवीय प्रदेश**—यह क्षेत्र आर्कटिक वृत्त के उत्तर मे तथा ~~अन्टार्कटिक~~ वृत्त के दक्षिण मे विद्यमान है। इसमे सूर्यातपन वर्ष मे एक बार उच्चतम हो

१— Peri-helion (Peri=Near; helios=Sun) इसमें सूर्य से पृथ्वी की दूरी लगभग ९ १५ करोड मील होती है।

२—Aphelion (Apo=away; helios=Sun) इसमे सूर्य से पृथ्वी की दूरी लगभग ९ ४५ करोड मील होती है।

जाता है। वर्ष के कुछ भाग मे सूर्य का प्रकाश यहाँ नही पहुँचता। अतएव उस
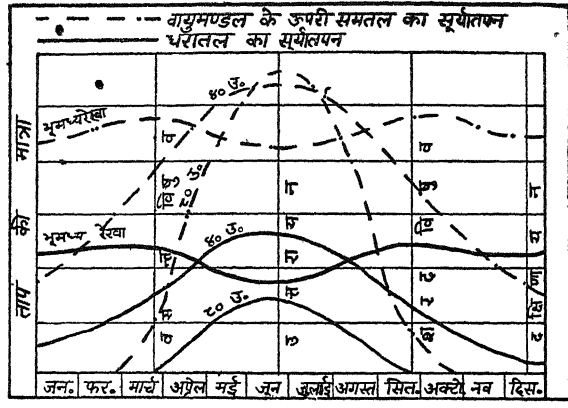
चित्र ३७—रवि-नीच (Perihelion) और रवि ऊँच (Aphelion) अन्तर होते रहते है। रवि-नीच (Peri-helion) की अपेक्षा रवि ऊँच (Aphelion) की दशा मे सूर्य से पृथ्वी की दूरी अधिक होती है। अतएव दूसरी दशा मे सूर्यातपन प्रथम दशा की अपेक्षा ६ ६ प्रतिशत अधिक होता है।

समय इस क्षेत्र को ताप बिल्कुल नही मिलता। अन्य शब्दो मे वर्ष के भाग विशेष मे इस क्षेत्र मे सूर्यातपन शून्य पर पहुँच जाता है।

चित्र ३७ मे सूर्यतपन का वार्षिक वितरण प्रदर्शित किया गया है।

(२) देशान्तर के अनुरूप सूर्यातपन का वितरण

वार्षिक औसत के विचारसे तथा दो विशेष दिन—वसन्त और शरद विषुवत[1] (Spring and autumn equi-noxes) को—सूर्यातपन विषुवत रेखा पर सबसे अधिक होता है और ध्रुवो की ओर क्रमश घटता जाता है। निम्नलिखित दो प्रतिकारको के अनुसार महत्तम सूर्यातपन की पेटी विषुवत-रेखा के उत्तर और दक्षिण मे खिसकती रहती है —

(१) सूर्य की किरणो द्वारा निर्मित कोण—सूर्य की किरणे लम्बवत् दिशा के जितनी निकट होगी, सूर्यातपन उतना ही अधिक होगा।

वसन्त विषुव (Spring equinox) अर्थात् २१ मार्च।

शरद विषुव (Autumn equinox) अर्थात् २३ सितम्बर।

इन दोनो दिन मध्यान्ह मे विषुवत-रेखा पर सूर्य की किरणे बिल्कुल लम्बवत् पडती है।

(२) **दिन की अवधि**—दिन जितना ही लम्बा होगा, सूर्यातपन भी उतना ही अधिक होगा।

५. वायुमण्डल का ताप-सन्तुलन (Heat Balteance)

पृथ्वी का औसत तापक्रम सदैव एकसा रहता है, न वह बढता है और न वह घटता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है, कि पृथ्वी सूर्य से जितना ताप ग्रहण करती है, उतना ही ताप वह विकिरण द्वारा खो देती है। यद्यपि यह सन्तुलन सम्पूर्ण पृथ्वी के लिये ठीक है, तथापि इसे किसी विशेष अक्षाश पर लागू नही किया जा सकता। ३७° अक्षाश के नीचे आगन्तुक सौर विकिरण पृथ्वी से विकिरण द्वारा निकलने वाले ताप की अपेक्षा अधिक होता है। दूसरी ओर ३७° अक्षाश के ऊपर सूर्यातपन पृथ्वो के विकिरण से कम होता है। इस कथन के अनुसार विषुवतीय प्रदेश का तापक्रम निरन्तर बढना चाहिये और ध्रुवीय प्रदेशो का तापक्रम निरन्तर घटना चाहिये किन्तु यह वास्तविकता नही है। प्रकृति का यह सिद्धान्त है कि ताप अधिक तापक्रम से कम तापक्रम की ओर प्रवाहित होता है। यह सिद्धान्त यहाँ भी लगता है। हवाओ के चलने का कारण यही सिद्धान्त है। वास्तव मे विभिन्न अक्षाशो पर सूर्यातपन के असमान वितरण के कारण ही वायुमण्डल की अनेक प्रक्रियाये और ऋतु-परिवर्तन होते है।

सप्तम् परिच्छेद

तापक्रम का क्षैतिज वितरण

[HORIZONTAL DISTRIBUTION OF TEMPERATURE]

१. तापक्रम क्या है ?

जो स्थान जितना ही उष्ण होता है, उसका तापक्रम उतना ही अधिक होता है। इसी प्रकार जो स्थान जितना शीतल होता है, उसका तापक्रम उतना ही कम होता है। अतएव तापक्रम का अर्थ है उष्णता अथवा शीतलता की मात्रा। किसी स्थान का तापक्रम वहाँ के धरातल के निकट की वायु का तापक्रम है।

२. तापक्रम मापन

किसी स्थान के तापक्रम को ज्ञात करने के लिये प्राय दो रीतियाँ अपनाई जाती है —

१ स्टेवेन्सन स्क्रीन

तापक्रम का यथार्थ मूल्य ज्ञात करने के लिये स्टेवेन्सन स्क्रीन (Stevenson's
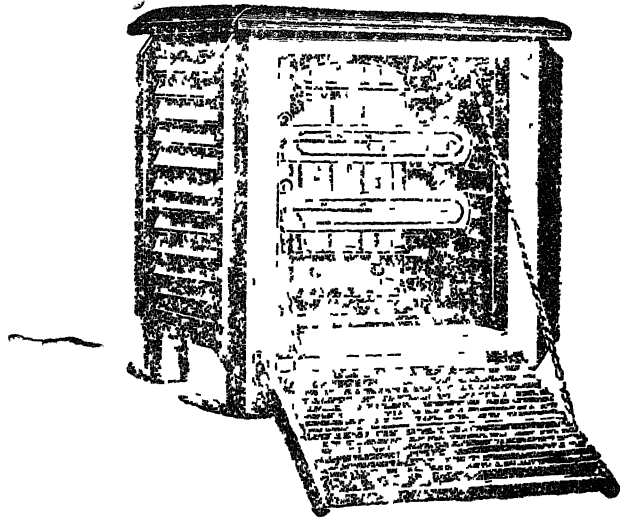
चित्र ३८—स्टेवेन्सन स्क्रीन

Screen) का उपयोग किया जाता है। चित्र ३८ मे स्टेवेन्सन स्क्रीन प्रदर्शित

की गई है। यह लकडी की आयताकार सन्दूक जैसी होती है, जो तीन चार फुट ऊँचे चार पायो पर रखी रहती है। धूप के प्रभाव को बचाने के लिये इसकी छत दोहरी होती है। दोनो छतो के बीच मे वायु रहती है। इसकी दीवालो मे रेल की खिडकी की तरह तिरछी दरारे रहती है, जिनमे होकर वायु सुगमता से आजा सकती है, किन्तु सूर्य की किरणो से रक्षा हो जाती है। पृथ्वी के विकिरण के प्रभाव को रोकने के लिये इसका फर्श भी दोहरा होता है। थर्मामीटर को लटकाने के लिये इसके अन्दर एक लकडी का फ्रेम होता है। इसके अन्दर थर्मामीटर स्थापित करते समय यह ध्यान रखा जाता है, कि उसका बल्ब यथासभव छत, फर्श और किनारे की दीवालो के बीचोबीच हो।

२ हवा में झुलाया जानेवाला थर्मामीटर

प्राय तापक्रम-निर्धारण के लिये हवा मे झुलायाजानेवाला थर्मामीटर अथवा भ्राम्य तापमापक (Sling Thermometer) काम मे लाया जाता है इसमें एक बडी सुविधा यह होती है, कि इसे सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाया जा सकता है। इसके विपरीत स्टेवेन्सन स्क्रीन वहुत भारी होती है और उसके ले जाने मे कठिनाई होती है।

यह एक सामान्य थर्मामीटर होता है, जिसके ऊपरी सिरे पर डोरा बधा रहता है। इस डोरे की सहायता से थर्मामीटर को मन्द वेग से खुली हवा मे झुलाया जाता है। झूलते समय थर्मामीटर वायु के नवीन कणो के सस्पर्श मे आता है और उनके तापक्रम को ग्रहण कर लेता है। अतएव, धूप होते हुए भी यह थर्मामीटर वायु के तापक्रम को प्राप्त कर लेता है, । यदि धूप तेज हो, तो झूलते हुए थर्मामीटर के ऊपर छाता खोल देना चाहिये।

३. समताप रेखायें (ISOTHERMS)

भूपृष्ठ पर ताप के वितरण को हम समताप रेखाओ द्वारा प्रदर्शित करते हैं। समताप रेखा वह कल्पित रेखा है, जो उन स्थानो के मिला देने में बन जाती है जहाँ के सागर-समतल का तापक्रम समान हो। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि समताप रेखाये बनाने के पूर्व हम प्रत्येक स्थान पर सागर समतल का तापक्रम ज्ञात करते है। इसका कारण यह है कि तापक्रम ऊंचाई के अनुसार बदलता रहता है, यदि हम सागर समतल का तापक्रम न ले तो विषुवत् रेखा पर स्थित हिमाच्छादित पहाड की चोटी और आर्कटिक वृत्त से एक ही समताप रेखा गुजरेगी, जिससे बडी भ्रान्ति होगी उसे देखकर तो यही ज्ञान होगा कि भूमध्यरेखा और

आर्कटिक वृत्त का तापक्रम एकसा है। इस गलत धारणा के निवारण के लिये ऊँचाई का विचार आवश्यक है। अतएव समताप रेखा खीचने के लिये हम प्रत्येक स्थान के तापक्रम का सागर समतल पर मूल्य ज्ञात करते हैं। इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। मान लीजिये समताप रेखा बनाने के लिये हमे नैनीताल का तापक्रम लेना है। नैनीताल समतल नही है और उसके प्रत्येक स्थान की ऊँचाई भिन्न है। तब हमारे समक्ष यह प्रश्न उठता है कि हम आखिर किस स्थान का तापक्रम ले। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार स्थान चुनने लगे, तब तो बडी गडबडी मच जाय। इसे दूर करने के लिये भी तापक्रम का सागर समतल पर मूल्य ज्ञात करना आवश्यक है। नैनीताल मे कितने भी ऊँचे नीचे स्थान क्यो न हो किन्तु सागर समतल पर प्रत्येक का तापक्रम एक ही होगा।

सामान्यत धरातल से प्रत्येक ३२० फुट की ऊँचाई पर तापक्रम १° फ० घट जाता है। उदाहरण के लिये यदि किसी स्थान पर धरातल का तापक्रम ७०° फ० हो तो ९६० फुट की ऊँचाई पर उसका तापक्रम ६७° फ० होगा। समताप रेखाये खीचने के पूर्व हम प्रत्येक स्थान का सागर समतल का तापक्रम इसी नियम के अनुसार निर्धारित कर लेते हैं।

चित्र ३९ मे समताप रेखाओ द्वारा भारतवर्ष का मई का औसत तापक्रम प्रदर्शित किया गया है।
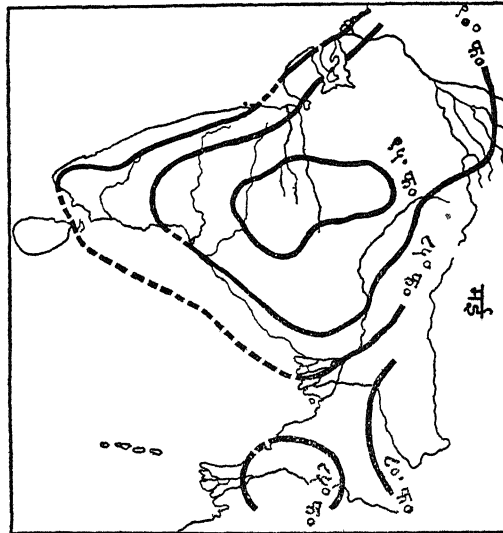
चित्र ३९—भारतवर्ष की मई की समताप रेखाये

४. किसी स्थान के तापक्रम को प्रभावित करने वाले प्रतिकारक

किसी स्थान का तापक्रम निम्नलिखित प्रतिकारको पर निर्भर है —

(१) अक्षाश
(२) ऊँचाई
(३) धरातल के ढाल की दिशा
(४) प्रवाहित होनेवाली हवाये
(५) समुद्र से दूरी
(६) समुद्र की धाराये
(७) मेघ एव वर्षा

(१) अक्षांश

साधारणत भूमध्य रेखा के निकट तापक्रम सबसे अधिक होता है और जैसे-जैसे हम ध्रुवो की ओर जाते है, तापक्रम क्रमश घटता जाता है। इसका कारण यह है, कि भूमध्य रेखा के निकट सूर्य की किरणे सीधी पडती है और ध्रुवों की ओर वे अधिकाधिक तिरछी होती चली जाती है। जैसा कि चित्र से स्पष्ट होगा, लम्बवत् किरणावली की अपेक्षा तिरछी किरणावली धरातल के अधिक क्षेत्र को प्रभावित करती है, जिससे प्रति इकाई क्षेत्रफल को अपेक्षाकृत कम ताप मिलता है। इसके अतिरिक्त लम्बवत् किरणावली की अपेक्षा तिरछी किरणावली परिवर्तमण्डल (Troposphere) मे अधिक लम्बे पथ से गुजरती है, जिससे उसके ताप की अधिक मात्रा को वहाँ की गैसे सोख लेती है।

(२) ऊँचाई

यद्यपि ताप का मुख्य उद्गम सूर्य है, तथापि वह वायुमण्डल को सीधे (Directly) नही गरम करता। पहले वह विकिरण (Radiation) द्वारा पृथ्वी को गरम करता है। जब भूपृष्ठ गरम हो जाता है, तब वह सचालन द्वारा वायुमण्डल के निम्नतम स्तर को गरम करता है। इस प्रकार ताप क्रमश नीचे से ऊपर की ओर प्रवाहित होता है। यही कारण है, कि सागर-तल पर ऊँचे स्थानो की अपेक्षा तापमान अधिक होता है और ज्यो-ज्यो ऊँचाई बढती जाती है, तापक्रम घटता जाता है। सामान्यत धरातल के निकट प्रत्येक ३२० फुट की ऊँचाई पर तापक्रम १° फ० कम हो जाता है। ऊँचाई के साथ तापक्रम के घटने का एक कारण यह भी है कि ऊपर के दबाव के कारण नीचे की हवा ऊपर की हवा से अधिक घनी होती है, जिससे उसमे ताप को ग्रहण करने की अधिक क्षमता होती है।

(३) धरातल के ढाल की दिशा

तापक्रम पर धरातल के ढाल की दिशा का भी प्रभाव पडता है। यह कथन चित्र ४४ से स्पष्ट होगा। इस चित्र मे ढाल पर स्थित दो स्थान अ और ब प्रदर्शित किये गये है। अ स्थान का ढाल सूर्य के सम्मुख है, किन्तु ब स्थान का ढाल सूर्य के विमुख है। चित्र से यह बात स्पष्ट होगी, कि समान किरणावली से आनेवाला ताप 'अ' की अपेक्षा 'ब' पर अधिक क्षेत्रफल को प्रभावित करेगा, जिससे अ की अपेक्षा ब का तापक्रम कम होगा।

ढाल का प्रभाव हवाओ पर भी पडता है और हवाये तापक्रम को प्रभावित करती है। इस प्रकार भी परोक्ष रूप से ढाल तापक्रम को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिये उत्तरी गोलार्द्ध मे दक्षिण की ओर मुखवाले ढाल उत्तर की ठण्डी हवाओ से उन्मुक्त रहते है, जिससे उनका तापक्रम उतना कम नही हो पाता, जितना कि वह अन्यथा होता।

(४) प्रवाहित होनेवाली हवायें

प्रवाहित होनेवाली हवाओ का प्रभाव उस स्थान के तापक्रम पर निर्भर करता है, जहाँ से हवाये आती है। समुद्र से आनेवाली वायु तापमान को सम बनाती है अर्थात् गर्मी के तापक्रम को घटाती है और जाडो के तापक्रम को बढाती है। इसके विपरीत स्थल से आनेवाली हवा गर्मी के तापक्रम को बढाती है और जाडे के तापक्रम को घटाती है। इसके अतिरिक्त ठण्डे प्रदेशो से आनेवाली हवाये तापक्रम को घटाती है और उष्ण प्रदेशो से आनेवाली हवाये तापमान को बढाती है।

(५) समुद्र से दूरी

स्थल की अपेक्षा जल गरम भी देर से होता है और ठण्डा भी। गर्मी की ऋतु मे समुद्र स्थल की अपेक्षा ठण्डा रहता है अतएव समुद्र से चलनेवाली पवन स्थल के तापक्रम को घटा देती है। जाडो मे समुद्र स्थल की अपेक्षा गरम रहता है, अतएव समुद्र से चलनेवाली पवन स्थल का तापक्रम बढा देती है। अन्य शब्दो मे समुद्र से चलनेवाली पवन अथवा समीर (Sea-breeze) तापक्रम को सम बनाती है। यह जलसमीर केवल समुद्रतट के प्रदेशो तक ही सीमित रहती है, यही कारण है, कि समुद्र के निकट जलवायु सम होती है। इसके विपरीत समुद्र से दूर स्थित प्रदेशो मे परम (Extreme) जलवायु पाई जाती है।

(६) समुद्र की धारायें

धाराये स्वय तटों के जलवायु को प्रभावित नही करती वरन् उनके ऊपर चलनेवाली हवाओ का प्रभाव तट पर पडता है। यदि वायु की दिशा समुद्र से

स्थल की ओर हुई तो—गरम धारा तापक्रम को बढा देगी और ठण्डी धारा तापक्रम को घटा देगी। यदि वायु की दिशा स्थल से समुद्र की ओर हुई तो धारा का तट पर बहुत कम प्रभाव पडता है। उदाहरण के लिये सयुक्त राष्ट्र अमेरिका के पूर्वी तट पर हवाये गर्मियो में समुद्र से स्थल की ओर चलती है अतएव गल्फ स्ट्रीम से तटीय प्रदेश का तापमान बढ जाता है, किन्तु जाडो मे हवाये स्थल से समुद्र की ओर चलती है अतएव जाडो मे गल्फ-स्ट्रीम का अमेरिका के पूर्वीतट पर कोई विशेष प्रभाव नही पडता। इसी प्रकार कनाडा के पूर्वी-तट पर लैब्रेडोर की धारा का जाडो मे विशेष प्रभाव नही पडता क्योकि उस समय हवाये स्थल से समुद्र की ओर चलती है, किन्तु गर्मियो मे यह पूर्वी कनाडा के तापक्रम को बहुत घटा देती है, क्योकि उस समय समुद्र से स्थल की ओर हवायें चलती हैं।

(७) मेघ एवं वर्षा

ऐसे प्रदेशो में जिनमे वर्षा अधिक होती है और आकाश मे प्राय बादल छाये रहते है, उन स्थानो की तुलना में जहाँ आकाश खुला रहता है, तापक्रम कम होता है क्योकि जलवाष्प का स्तर सूर्य की किरणो के मार्ग मे बाधक होता है। यही कारण है कि विषुवतीय प्रदेश का औसत तापक्रम जहाँ वर्ष भर बादल छाये रहते है और वर्षा होती है, कर्क और अयन रेखा के प्रदेशो से कम है।

(५) भूपृष्ठ पर तापक्रम का सामान्य वितरण

(१) औसत वार्षिक समताप रेखाये (Mean Annual Isotherms)

औसत वार्षिक समताप रेखाये अक्षाश रेखाओ के प्राय समानान्तर होती है अर्थात् उनकी दिशा पूर्व-पश्चिम होती है। इसका कारण यह है कि तापक्रम सूर्यातपन (Insolation) पर निर्भर है और सूर्यातपन की मात्रा अक्षाश रेखाओ के अनुसार होती है।

(२) जल और स्थल के वितरण का प्रभाव

जैसा कि पूर्व मे उल्लेख हो चुका है समान ताप से जल की अपेक्षा स्थल अधिक गरम हो जाता है। यही कारण है कि विषुवत रेखा के निकट स्थल पर समताप रेखाये ध्रुवो की ओर झुक जाती है और जल पर विषुवत रेखा की ओर दूसरी ओर जल की अपेक्षा स्थल ठण्डा भी जल्दी होता है। इस कारण ध्रुवो के निकट समताप रेखाये विषुवतीय क्षेत्र के विपरीत दिशा मे झुक जाती है। अन्य शब्दो मे ध्रुवीय प्रदेश में स्थल पर समताप रेखाये विषुवत रेखा की ओर झुक जाती है और जल पर ध्रुवो की ओर।
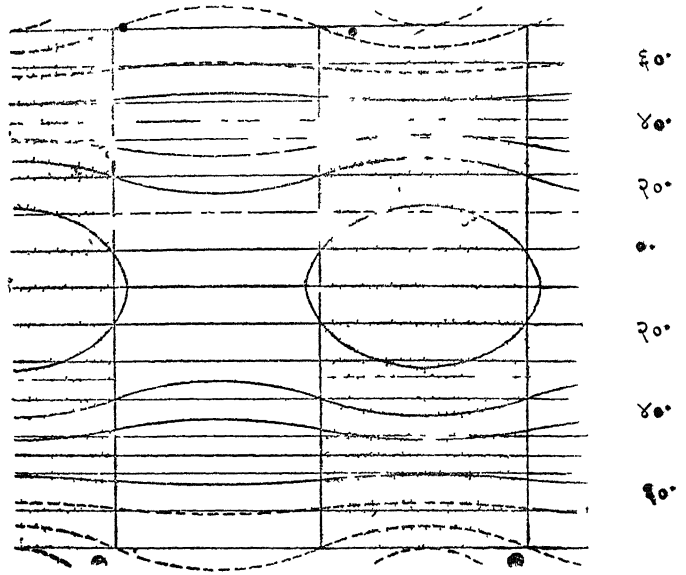
चित्र ४०—तापक्रम के क्षैतिज वितरण पर जल और स्थल का प्रभाव

ध्रुवीय और विषुवतीय प्रदेशो के मध्य मे किसी अक्षाश पर स्थल और जल का तापक्रम प्राय एकसा होगा और वहाँ पर समताप रेखाये लगभग सीधी होंगी।

(३) हवाओं का प्रभाव

हवाये भी तापक्रम के वितरण को प्रभावित करती है। उदधि के 'सागर का तापक्रम' शीर्षक प्रकरण मे यह स्पष्ट किया गया है कि जिस तट से हवाये चलती है, उसका तापक्रम घट जाता है और जिस तट की ओर वे जाती है उसका तापक्रम बढ जाता है। हवाओ का प्रभाव इसी सिद्धान्त के अनुसार होता है।

४०° उ० अक्षाश के उत्तर मे तथा ४०° द० अक्षाश के दक्षिण मे पछुवा हवाये चलती है। इनका प्रभाव यह पडता है कि महाद्वीपो के पश्चिमी तट का तापक्रम बढ जाता है और पूर्वीतट का तापक्रम घट जाता है। अतएव चित्र ४१ मे हवाओं का प्रभाव प्रदर्शित करने के लिये हमे चाहिये कि पछुवा हवा के क्षेत्र मे समताप रेखाओ को पूर्वीतट पर विषुवत् रेखा की ओर खिसका दे और पश्चिमी तट पर ध्रुवो की ओर।

कर्क और अयन रेखाओ के बीच मे व्यापारिक हवाये चलती है। इनकी दिशा प्राय पूर्व से पश्चिम है अतएव इनका प्रभाव यह पडता है कि महाद्वीपो
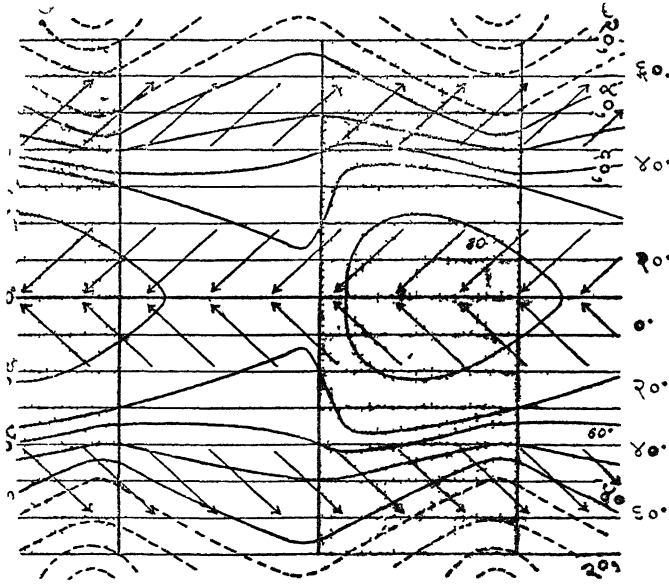
चित्र ४१—समताप रेखाओ की आकृति पर हवाओ का प्रभाव

के पूर्वी किनारो का तापक्रम बढ जाता है और पश्चिमी किनारो का तापक्रम घट जाता है। अतएव चित्र ४१ मे हवाओ के प्रभाव को प्रदर्शित करने के लिये हमे चाहिये कि समताप-रेखाओ को पूर्वीतट पर ध्रुवो की ओर खिसका दे और पश्चिमी तट पर विषुवत रेखा की ओर।

(४) ऋतुओ के अनुसार परिवर्तन

चित्र ४१ मे समताप रेखाये तापक्रम का वार्षिक औसत प्रदर्शित करती है। तापक्रम के मासिक औसत की भी समताप-रेखाये बनाई जा सकती है, किन्तु वे वार्षिक औसत से भिन्न होगी। उत्तरी गोलार्द्ध मे जुलाई प्राय सबसे गरम महीना होता है और जनवरी सबसे ठण्डा, अतएव जुलाई की समताप रेखाये ग्रीष्म ऋतु का प्रतिनिधित्व कर सकती है और जनवरी की समताप रेखाये जाडो का।

(क) जुलाई की समताप रेखायें

चित्र ४२ में ४५° उ० अक्षाश के उत्तर मे स्थल जल की अपेक्षा ठडा है, किन्तु जुलाई मे यह दशा नही रहती। यह उत्तरी गोलार्द्ध का ग्रीष्म काल होता है अतएव इसमे उत्तरी गोलार्द्ध के महाद्वीप सागर की अपेक्षा गरम होते है। अतएव ४५ उ०° अक्षाश के उत्तर मे चित्र ४२ की समताप रेखाओ के मोड उलट जाते है अर्थात् वे समुद्र मे विषुवत रेखा की ओर झुक जाती है और स्थल में उत्तर की ओर।
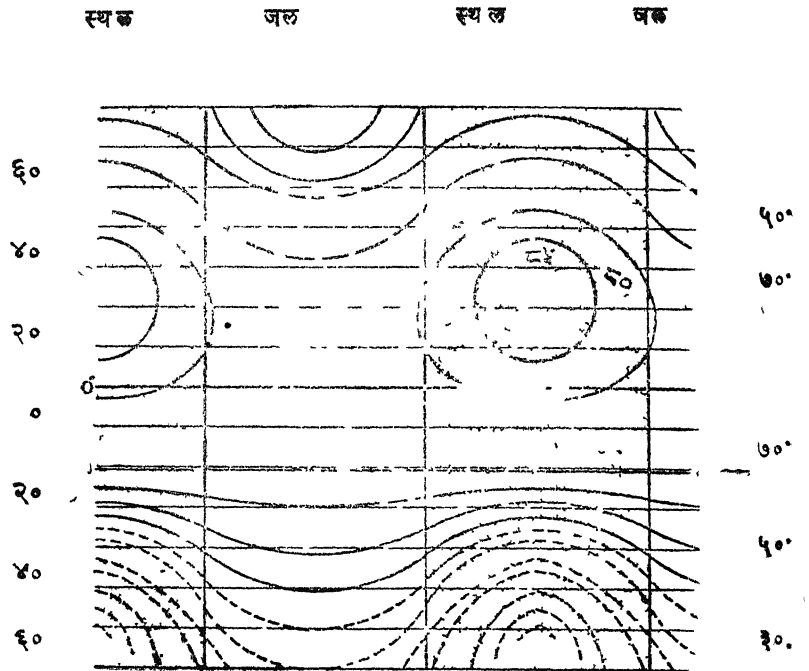
चित्र ४२—जुलाई मे तापक्रम का सामान्य वितरण

कर्क और मकर रेखा के बीच की समताप रेखाओ मे थोडा ही परिवर्तन करना होगा। इस क्षेत्र मे जल की तुलना मे स्थल सदैव अधिक गरम रहता है। जुलाई मे यह अन्तर औसत की तुलना मे विषुवत रेखा के उत्तर मे थोडा बढ़ जायगा और दक्षिण में थोडा घट जायगा। इसमे सबसे अधिक तापक्रम औसत तापक्रम के चित्र की तुलना मे कुछ उत्तर की ओर होगा।

दक्षिणी गोलार्द्ध मे जुलाई जाड का महीना है । मकर रेखा के दक्षिण मे जल की अपेक्षा स्थल ठण्डा होगा। वार्षिक औसत मे भी यही बात लागू होती थी, किन्तु जाडो मे यह अन्तर अधिक बढ जाता है, अतएव इस क्षेत्र मे समताप रेखाओ के मोड पूर्ववत् दिशा मे रहते है, केवल उनकी मात्रा बढा दी जाती है।

(ख) जनवरी की समताप रेखायें

जुलाई की समताप रेखाओ का अध्ययन कर लेने के बाद जनवरी की समताप रेखाओ की विस्तृत विवेचना अनावश्यक है। जनवरी मे उत्तरी गोलार्द्ध मे जाडे की ऋतु होती है और दक्षिणी गोलार्द्ध मे ग्रीष्म की। अतएव जनवरी की समताप रेखाये बनाने के लिये केवल इतना ध्यान रखना चाहिये कि जलाई मे जो बात उत्तरी गोलार्द्ध के लिये लागू होती थी, वह अब दक्षिणी गोलार्द्ध को लागू होगी और जो बात तब दक्षिणी गोलार्द्ध को लागू होती थी, वह अब उत्तरी गोलार्द्ध को लागू होगी। संक्षेप मे दोनों गोलार्द्धों की दशाओ में अदला-बदली हो जाती है। वास्तव में यदि जुलाई की समताप रेखाओ के मानचित्र के उत्तरी अथवा दक्षिणी किनारे पर एक आईना रख दिया जावे, तो उसमे जो प्रतिबिम्ब बनेगा, वह जनवरी की समतापरेखाओ के अनुरूप होगा। चित्र ४४ से यह कथन स्पष्ट होगा।

६ तापान्तर (Range of temperature)

१ तापन्तर के विभिन्न भेद

तापान्तर शब्द अनेक अर्थों मे प्रयुक्त होता है :—

(१) परम तापान्तर (**Absolute Range of temperature**)
= किसी स्थान पर कभी भी (**Ever**) अनुभव होनेवाला सबसे अधिक और सबसे कम तापक्रम का अन्तर।

(२) औसत वार्षिक परम तापान्तर (**Mean Annual Extreme Range**)
= कई वर्षों के परम तापान्तर का औसत।

(३) वार्षिक तापान्तर (**Annual Range**)
= सबसे गरम महीने का औसत तापक्रम—सबसे ठण्डे महीने का औसत तापक्रम।

(४) औसत वार्षिक तापान्तर
= कई वर्षों के वार्षिक तापान्तर का औसत।

तापान्तर शब्द का प्रयोग अधिकतर औसत वार्षिक तापान्तर के अर्थ मे होता है।

२•तापान्तर को प्रभावित करनेवाले प्रतिकारक

निम्नलिखित प्रतिकारक तापान्तर को प्रभावित करते है —

(क) अक्षाश

(ख) ऊँचाई

(ग) समुद्र से दूरी

(घ) धरातल का ढाल

(ङ) समुद्र की धाराये तथा प्रवाहित होनेवाली हवाये

(च) मेघ एव वर्षा।

(क) **अक्षांश**—सामान्यत विषुवत रेखा के निकट तापान्तर कम होता है और ध्रुवो की ओर बढता जाता है। विषुवत रेखा के निकट प्राय वर्ष भर सूर्य की किरणे सीधी पडती है और जितने ही हम उत्तर अथवा दक्षिण की ओर बढते है उतना ही सूर्य की किरणे अधिक तिरछी होती जाती है और दिन और रात की अवधि का अन्तर बढता जाता है।

विषुवत रेखा के निकट औसत वार्षिक तापान्तर असाधारण रूप से कम होता है। वास्तव मे इस प्रदेश मे जाडे और गर्मियो की ऋतुये ही नही होती। उदाहरण के लिये सिगापुर मे मई का औसत तापक्रम ८१ फ० है और जनवरी का ७८ फ०।

शीतोष्ण कटिबन्ध मे जाडे और गर्मियो की निश्चित ऋतुये होती है। उदाहरण के लिये न्यूयार्क मे जुलाई का औसत तापक्रम ७५° फ० है और जनवरी का ३०° फ०। इस प्रकार यहाँ का तापान्तर ४५° है।

सामान्यत हम यह आशा करते है कि ध्रुवीय प्रदेश मे तापान्तर बहुत अधिक होगा क्योकि यहाँ एक ऐसी ऋतु होती है जिसमे सूर्य के कभी दर्शन नही होते और दूसरी एक ऋतु है जिसमे सूर्य कभी डूबता ही नही। इस क्षेत्र मे जाडो का तापक्रम अवश्य बहुत कम होता है, किन्तु गर्मियो मे तापक्रम अधिक नही होता क्योकि एक तो सूर्य की किरणे बहुत तिरछी पडती है; दूसरे बर्फ के पिघलने मे ताप का अधिकाश भाग व्यय हो जाता है।

वरखोयस्क का जुलाई का औसत तापक्रम ५९° फ० है और जनवरी का —५८° फ०। इस प्रकार यहाँ का तापान्तर ११७° फ० है।

(ख) **ऊँचाई**—सामान्य नियम यह है कि ऊँचाई जितनी बढती जाती है तापक्रम उतना ही कम होता जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि नीचे स्थानो की अपेक्षा ऊँचे स्थानो का तापक्रम जुलाई और जनवरी दोनो मे कम होगा। इससे तापान्तर पर कोई प्रभाव न पडेगा। यह कथन एक उदाहरण से स्पष्ट

की किरणे सीधी पडती है और जितने ही हम उत्तर अथवा दक्षिण की ओर बढते है उतना ही सूर्य की किरणे अधिक तिरछी होती जाती है और दिन और रात की अवधि का अन्तर बढता जाता है।

विषुवत रेखा के निकट औसत वार्षिक तापान्तर असाधारण रूप से कम होता है। वास्तव मे इस प्रदेश मे जाडे और गर्मियो की ऋतुये ही नही होती। उदाहरण के लिये सिगापुर मे मई का औसत तापक्रम ८१° फ० है और जनवरी का ७८° फ० ।

शीतोष्ण कटिबन्ध मे जाडे और गर्मियो की निश्चित ऋतुये होती हैं। उदाहरण के लिये न्यूयार्क मे जुलाई का औसत तापक्रम ७५° फ० है और जनवरी का ३०° फ०। इस प्रकार यहाँ का तापान्तर ४५° है।

सामान्यत हम यह आशा करते है कि ध्रुवीय प्रदेश मे तापान्तर बहुत अधिक होगा क्योकि यहाँ एक ऐसी ऋतु होती है जिसमे सूर्य के कभी दर्शन नही होते और दूसरी एक ऋतु है जिसमे सूर्य कभी डूबता ही नही। इस क्षेत्र में जाडों का तापक्रम अवश्य बहुत कम होता है, किन्तु गर्मियो मे तापक्रम अधिक नही होता क्योकि एक तो सूर्य की किरणे बहुत तिरछी पडती है, दूसरे बर्फ के पिघलने मे ताप का अधिकाँश भाग व्यय हो जाता है।

वरखोयंस्क का जुलाई का औसत तापक्रम ५९° फ० है और जनवरी का –५८° फ। इस प्रकार यहाँ का तापान्तर ११७° फ० है।

(ख) ऊँचाई—सामन्य नियम यह है कि ऊँचाई जितनी बढती जाती है तापक्रम उतना ही कम होता जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि नीचे स्थानो की अपेक्षा ऊँचे स्थानों का तापक्रम जुलाई और जनवरी दोनो मे कम होगा। इससे तापान्तर पर कोई प्रभाव न पड़ेगा। यह कथन एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। मान लीजिये सागर-समतल पर स्थित किसी स्थान का जुलाई और जनवरी का तापक्रम क्रमश ८०° और ५०° है और ऊँचे धरातल पर स्थित किसी अन्य स्थान का जुलाई और जनवरी का तापक्रम क्रमश ७०° और ४०° है। स्पष्ट है कि इन दोनो स्थानो का तापान्तर एक ही है ८०°-५०° = ३०°, ७०°-४०° = ३०°। इस दृष्टि से ऊँचाई का तापान्तर पर कोई भी प्रभाव नही पडता।

ऊँचाई एक अन्य रीति से भी तापक्रम को प्रभावित करती है। ऊँचे स्थान दिन में सूर्यातपन (Insolation) अधिक मात्रा मे ग्रहण करते है और रात मे उनसे विकिरण भी अधिक होता है। इससे ऊँचे स्थानो मे दिन रात का तापान्तर (Diurnal Range) अधिक होता है, किन्तु उससे उनके औसत तापक्रम पर विशेष प्रभाव नही पडता।

ऊँचे स्थानों की वायु नीचे स्थानों की अपेक्षा विरल (Rare) होती है, जिससे उसमे ताप को ग्रहण करने की शक्ति अपेक्षाकृत कम होती है। अतएव जब धरातल पर सौर-शक्ति अधिक मात्रा मे आती है, तो नीचे स्थानो की अपेक्षा ऊँचे स्थान उसे कम ग्रहण कर पाते है, जिससे उनका तापक्रम उतना ऊँचा नही होता, जितना कि वह अन्यथा होता। इसके अतिरिक्त एक और प्रतिकारक भी विचारणीय है। नीचे स्थानो की अपेक्षा ऊँचे स्थानों मे मेघावरण की मात्रा अधिक होती है। मेघ सूर्य की किरणों के पथ मे बाधक होते है और उनके ताप के कुछ भाग को सोख लेते है। विरल वायुमण्डल और मेघावरण के कारण ऊँचे स्थानो का दिन का तापक्रम कुछ घट जाता है जिससे तापान्तर भी प्राय प्रभावित होता है अर्थात् थोडा सा कम हो जाता है।

ऊँचाई के प्रभाव का स्वतन्त्र अध्ययन कठिन है। वायु की दिशा, समुद्र की दूरी, धरातल की आकृति एव अन्य प्रतिकारको के साथ इसके प्रभाव का अध्ययन अधिक सुविधाजनक होता है।

(ग) समुद्र से दूरी—जैसा कि पूर्व मे उल्लेख हो चुका है, समुद्र तापक्रम को सम बनाता है अर्थात् वह जाडो के तापक्रम को बढाता है और गर्मियो के तापक्रम को घटाता है, अतएव जो स्थान समुद्र के तट पर स्थित होते है, उनमें तापान्तर कम होता है। महाद्वीपो के अभ्यन्तर तक समुद्र का प्रभाव नहीं पहुँचता, जिससे वहाँ तापान्तर की मात्रा बहुत होती है। उदाहरण—

नगर	जुलाई तापक्रम	जनवरी तापक्रम	तापान्तर
लाहौर	९५°	५४°	४१°
बम्बई	८३°	७४°	९°

(घ) धरातल का ढाल—सूर्य की ओर मुखवाले ढाल विमुख ढाल की अपेक्षा गर्मियो मे अधिक गरम होते है और जाडो मे कम ठण्डे। गर्मियो मे इनके
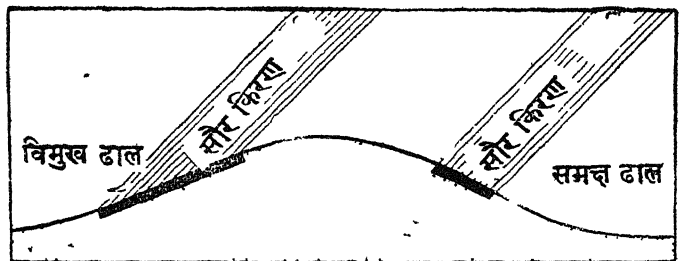
चित्र ४४—तापक्रम पर धरातल के ढाल का प्रभाव

अधिक गरम होने का कारण यह है कि सूर्य के सामने पडने से इनमे सूर्यातपन अधिक होता है चित्र ४४ से यह कथन स्पष्ट होगा। जाडो मे इनके कम ठण्डे होने का कारण यह है, कि विमुख ढाल आडमे पड जाने से बहुत ठण्डे हो जाते है। यदि उपर्युक्त दोनो प्रभाव बराबर हुए तब तो तापान्तर पर कोई प्रभाव न पडेगा, किन्तु सामान्यत ऐसा नहीं होता, अतएव तापान्तर प्रभावित होता है।

(ङ) **समुद्र की धारायें तथा प्रवाहित होनेवाली हवायें**—इस सम्बन्ध मे केवल दो उदाहरण दिये जा रहे हैं उनसे इस प्रभाव मे निहित सिद्धान्त स्पष्ट हो जायगा :—

(१) संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के पूर्वी तट पर गर्मियो मे हवाये समुद्र से स्थल की ओर चलती है, अतएव इस ऋतु में गल्फ-स्ट्रीम से तटीय प्रदेश का तापक्रम बढ़ जाता है। जाडो मे हवाये स्थल से जल की ओर चलती है, अतएव जाड़ो में अमरीका के पूर्वी तट पर गल्फ-स्ट्रीम का कोई भी प्रभाव नही पडता। इस प्रकार इस दशा मे धारा और वायु के कारण तापान्तर बढ गया है।

(२) कैनाडा के पूर्वी तट पर बहनेवाली लैब्रेडोर की शीतल धारा का जाडों मे विशेष प्रभाव नहीं पडता क्योंकि उस समय हवायें स्थल से जल की ओर चलती है किन्तु गर्मियो मे इस धारा के कारण पूर्वी कैनाडा का तापक्रम बहुत घट जाता है क्योंकि उस समय समुद्र से स्थल की ओर हवाये चलती है। इस प्रकार इस दशा मे धारा और वायु के कारण तापान्तर कम हो गया है।

(च) **मेघ एवं वर्षा**—जिन स्थानो में वर्ष भर बादल छाये रहते है और घनघोर वृष्टि होती है, उनका गर्मियो का औसत तापक्रम अपेक्षाकृत कम होता है, क्योकि बादल सौर ताप के कुछ अश को सोख लेते है, और कुछ ताप वाष्पीकरण की क्रिया में व्यय हो जाता है। दूसरी ओर, जाडे की ऋतु में बादलों का आवरण पृथ्वी के विकिरण को रोकता है अर्थात् बादलों के कारण जाडो का औसत तापक्रम अपेक्षाकृत अधिक होता है। अन्य शब्दो मे बादल और वर्षा के कारण औसत वार्षिक तापान्तर कम हो जाता है। यही कारण है कि ब्रिटिश द्वीप समूह मे तापान्तर बहुत कम होता है ।

अष्टम् परिच्छेद

तापक्रम का लम्बवत् वितरण

(Vertical Distribution of Temperature)

१. तापक्रम की लम्बवत् प्रवणता

(Vertical gradient of temperature)

जब हम धरातल से वायुमण्डल मे ऊपर की ओर जाते है, तो तापक्रम क्रमशः घटता जाता है। प्रत्येक ३२० फुट की ऊँचाई पर तापक्रम १° फ० कम हो जाता है। इसे हम तापक्रम की लम्बवत् प्रवणता कहते हैं।

२ ऊँचाई के साथ तापक्रम घटने का कारण

सामान्यतः हम यह आशा करते है कि अधिक ऊँचाई पर तापक्रम अधिक होगा, क्योकि वह धरातल की अपेक्षा सूर्य से निकट है, जिससे वहाँ सूर्य की किरणे अधिक प्रखर होती है। यह सत्य भी है। इसका प्रमाण यह है, कि मैदान की अपेक्षा पर्वतो पर मनुष्य का चेहरा धूप से जल्दी झुलस जाता है। यह सत्य होते हुए भी मैदान की अपेक्षा पहाडो की वायु ठण्डी होती है। अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि हवा के गरम होने का प्रत्यक्ष कारण सूर्य की किरणें नही हैं।

वायु को सूर्य के विकिरण की अपेक्षा पृथ्वी के सस्पर्श से अधिक ताप मिलता है। जब हम आग के निकट बैठते है, तब हम उसके ताप का अनुभव करते है, यद्यपि हमारे और आग के बीच की वायु ठण्डी रहती है। इसी प्रकार सूर्य की किरणे पृथ्वी को गर्म करती है, यद्यपि बीच का वायुमण्डल ठण्डा रहता है। जब धरातल गर्म होता है, तब वह सचालन द्वारा वायु के सबसे नीचे स्तर को गरम करता है। फिर ताप एक स्तर से दूसरे स्तर मे होता हुआ ऊपर की ओर फैलता जाता है। गरम होने से वायु ऊपर उठती है; जो स्थान रिक्त होता है, उसकी पूर्ति ऊपर की अपेक्षाकृत ठण्डी वायु करती है, फिर वह भी गर्म होकर ऊपर उठती है। इस प्रकार संवाहन की धाराये अस्तित्व मे आ जाती है।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है, कि ताप के ऊपर फैलने मे संचालन और संवाहन दोनो क्रियाये सहायक होती है।

निम्नलिखित प्रयोग द्वारा इस कथन की पुष्टि की जा सकती है कि वायु के ताप पर सूर्य की किरणो का सीधा प्रभाव नही पडता--

प्रयोग--किसी ऐसे दिन जब धूप निकली हो और वायुमण्डल शान्त हो एक थर्मामीटर लेकर खुली हवा मे, जहाँ धूप हो, लटका दीजिये। आप देखेंगे कि थर्मामीटर का पारा तुरन्त ऊपर चढता है और तापक्रम बढ जाता है। इसके बाद आप उसी थर्मामीटर को उसी धूप और उसी हवा मे हिलाइये। आप देखेंगे कि थर्मामीटर को हवा में हिलाते ही, उसका तापक्रम गिर जाता है। इसका कारण यह है कि यद्यपि सूर्य थर्मामीटर को गरम करता है,तथापि बीच की हवा पर उसका प्रभाव नही पडता; जब हम थर्मामीटर को हिलाते है, तब वह वायु के कणो के सम्पर्क मे आता है। वायु का तापक्रम कम होता है; यही कारण है कि उसके सस्पर्श मे आने से थर्मामीटर का तापक्रम घट जाता है। दूसरी ओर, जब हम थर्मामीटर को धूप मे शान्तिपूर्वक लटकते रहने देते है, तब सूर्य की किरणे थर्मामीटर को गरम करती है और तब सचालन द्वारा थर्मामीटर अपने निकट की वायु को गरम करता है।

उपर्युक्त प्रयोग से स्पष्ट है, कि ऊँचाई के साथ तापक्रम के घटने का कारण यह है, कि वायु नीचे से गरम होती है। इसके अतिरिक्त एक दूसरा कारण भी है, जो हवा के दबाव पर अवलम्बित है। वह यह है :--

जब वायु दबती है, यदि उस समय न उसमे ताप का प्रवेश कराया जावे और न उसमें से ताप निकाला जावे, तब उसका तापक्रम बढ़ जाता है। यही कारण है, कि हवा भरते समय साइकिल का पम्प गरम हो जाता है। दूसरी ओर दबाव के घटने से जब वायु फैलती है, यदि उस समय उसमें न ताप का प्रवेश कराया जाय और न उसमे से ताप निकाला जाय, तब उसका तापक्रम घट जाता है।

वायु का दबाव वायुमण्डल के ऊपरी भाग की अपेक्षा धरातल के निकट अधिक होता है। अतएव जब किसी भी कारण वायु ऊपर उठती है, तब वह अधिक दबाव से अपेक्षाकृत कम दबाव के क्षेत्र मे जाती है। दबाव के कम हो जाने से वह फैलती है और उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार उसका तापक्रम घट जाता है। दूसरी ओर, जब वायुमण्डल के ऊपरी भाग की वायु नीचे उतरती है, तब वह कम दबाव के क्षेत्र से अधिक दबाव के क्षेत्र में आती है, जिससे वह दबती है और उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार उसका तापक्रम बढ़ जाता है।

इस प्रकार वायुमण्डल के निचले भागो मे तापक्रम अधिक है और वह ऊपर की ओर घटता जाता है।

३. अभिन्न स्थायी एवं अस्थायी साम्य
(Indifferent, Stable and Unstable equilibrium)

जब किसी वायु-प्रवाह के पथ मे पहाडी आ जाती है, तब उस वायु को पहाडी पर चढने के लिये बाध्य होना पडता है। जब वायु ऊपर चढते हुए पहाडी की चोटी पर पहुँचती है, उस समय उसके समक्ष तीन विकल्प (Alternatives) होते है —

(१) या तो वह ऊपर चढती चली जाती है।

(२) या वह पहाडी के पिछले ढाल पर नीचे उतरती है।

(३) या वह वही चोटी पर स्थिर रहती है।

वायु उपर्युक्त तीन विकल्पो मे किसे अपनायेगी, यह तापक्रम की लम्बवत् प्रवणता पर निर्भर है।

मान लीजिए, हमारे पास ऐसी शुष्क वायु है, जिसका तापक्रम ३० इच के दबाव पर ६०° फ० है। यदि इस वायु का दबाव घटाकर २९ इच कर दिया जाता है, तो उसका तापक्रम ५५° फ० हो जाता है। यदि दबाव को और भी घटाकर २८ इच कर दिया जाय तो वायु का तापक्रम ५० फ० हो जाता है।

चित्र ४५ मे एक पहाडी दिखलाई गई है और वायुमण्डल की विभिन्न ऊँचाइयो पर तापक्रम और दबाव प्रदर्शित किये गये है। मान लीजिये वह सूखी हवा, जिसका ऊपर उल्लेख हो चुका है, इस क्षेत्र मे प्रवाहित होती है। जब यह वायु पहाडी के सम्पर्क मे आती है, तब उसे चित्रानुसार ढाल पर चढने के लिये बाध्य होना पडता है। धरातल पर इस वायु का तापक्रम ६०° फ० है, क्योकि वहाँ
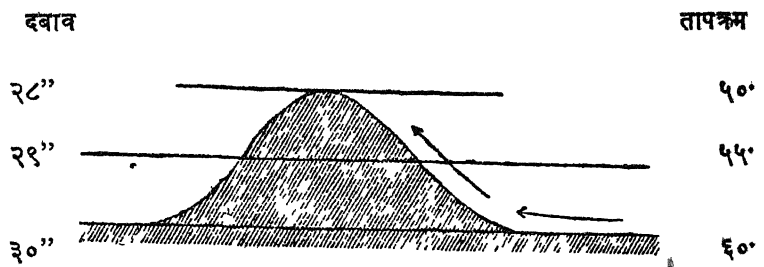
चित्र ४५—अभिन्न साम्य

पर ३० इच का दबाव है। वायुमण्डल की वायु का भी धरातल पर यही तापक्रम है। ९०० फुट की ऊँचाई पर दबाव एक इच घट जाता है अर्थात् २९ इच रह

जाता है। अतएव, जब शुष्क वायु ढाल पर ९०० फुट की लम्बवत् ऊँचाई तय कर लेती है, तब उस पर २९ इच का दबाव हो जाता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है; २९ इच के दबाव पर उपर्युक्त शुष्क वायु का तापक्रम ५५° फ० हो जाता है। इस ऊँचाई पर वायुमण्डल की वायु का भी यही तापक्रम है। इसी प्रकार पहाडी की चोटी पर पहुँचकर शुष्क वायु का तापक्रम ५०° फ० रह जाता है और यही तापक्रम इस ऊँचाई पर स्थित वायुमण्डल की वायु का भी है।

अन्य शब्दो मे, इस दशा मे, बाध्य होकर ढाल पर चढनेवाली वायु और उसी समतल की वायुमण्डल की वायु का तापक्रम प्रत्येक ऊँचाई पर समान है। तापक्रम समान होने से इन वायु-राशियो का घनत्व भी एक सा होगा। अतएव यदि प्रवाहित होनेवाली वायु किसी भी समय ढाल पर कही भी रुक जाती है, तब वह वही पर स्थिर रहती है, अर्थात् न वह ऊपर जाती है और न नीचे आती है। ऐसी दशा में हम यह कहते है कि वायु अभिन्न साम्य (Indifferent equilibrium) की अवस्था में है। इस दशा मे वायुमण्डल की प्रवणता ५° फ० प्रति ९०० फुट है, जो शुष्क वायु की प्रवणता है।

यह आवश्यक नही है कि वायुमण्डल के तापक्रम की प्रवणता सदैव ५ फ० प्रति ९०० फुट ही हो। वह कम भी हो सकती है और अधिक भी। चित्र ४६ में एक पहाडी दिखलाई गई है और वायुमण्डल की विभिन्न ऊँचाइयों पर दबाव और तापमान प्रदर्शित किये गये है। इस दशा मे वायुमण्डल की प्रवणता ६° प्रति ९०० फुट है।
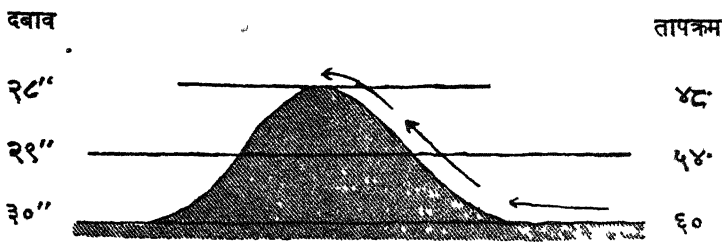
चित्र ४६—अस्थायी साम्य

यदि शुष्क वायु को इस पहाडी पर चढने के लिये बाध्य होना पडता है, तो ९०० फुट की ऊँचाई पर जब उस पर २९ इच का दबाव होता है, तब उसका तापक्रम ५५° फ० हो जाता है। किन्तु उसी समतल की वायु का तापक्रम ५४° फ० है। अन्य शब्दों में ऊपर चढनेवाली वायु वायुमण्डल की वायु से हल्की होती है अतएव यदि वायुप्रवाह रुक भी जाय, तो भी यह वायु ऊपर चढेगी। इसी

प्रकार १८००.फुट की ऊँचाई पर ऊपर चढनेवाली वायु का तापक्रम ५०° फ० होगा जब कि उसी समतल पर वायुमण्डल की वायु का तापक्रम केवल ४८° फ० है। अतएव, इस दशा मे भी प्रवाह रुक जाने पर ढाल की वायु ऊपर उठेगी। ऐसी दशा मे यह कहा जाता है कि वायु अस्थायी साम्य (**Unstable Equilibrium**) की अवस्था मे है।

एक और भी अवस्था हो सकती है, जो चित्र मे प्रदर्शित की गई है। इस दशा में जब शुष्क वायु ९०० फुट का ऊँचाई पर पहुँचती है, तब उसका तापक्रम ५५° फ० होता है और इसी समतल पर वायुमण्डल की वायु का तापमान ५६° है। अन्य शब्दो मे ऊपर चढनेवाली वायु वायुमण्डल की वायु को अपेक्षा भारी हो जाती है अतएव, ऐसी दशा मे, यदि ऊपर चढनेवाली वायु का प्रवाह किसी भी समय रुक जाय तो वायु ऊपर न जाकर नीचे उतरती है। इससे यह भी स्पष्ट होगा कि यदि वायु पहाडी की चोटी तक पहुँच जाती है, तो उसके
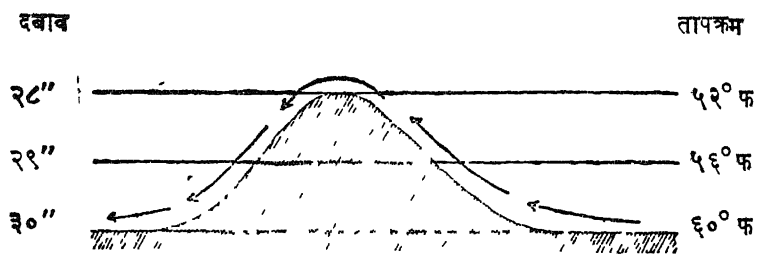
चित्र ४७—स्थायी साम्य

बाद वह दूसरी ओर नीचे उतरती है। इस साम्य को स्थायी साम्य (Stable Equilibrium) कहते है।

सक्षेप मे—

(१) अभिन्न साम्य की दशा मे यदि किसी भी वायु राशि को ऊपर या नीचे जाने के लिये बाध्य होना पडता है, तो वह वायुमण्डल के तापक्रम को ग्रहण कर लेती है और जब प्रवाह-शक्ति क्षीण हो जाती है तब वह वही स्थिर रहती है जहाँ वह पहुँच चुकी है।

(२) अस्थायी साम्य की दशा मे यदि किसी वायु-राशि को ऊपर चढने के लिये बाध्य होना पडता है, तो वह वायुमण्डल की अपेक्षा गरम हो जाती है, अतएव वह प्रवाह-शक्ति क्षीण हो जाने पर भी ऊपर उठती है; इसके विपरीत

यदि उसे नीचे उतरने के लिये बाध्य होना पडता है, तो वह वायुमण्डल की अपेक्षा अधिक ठण्डी हो जाती है अतएव प्रवाह-शक्ति क्षीण हो जाने पर भी वह नीचे उतरती है। अन्य शब्दो मे इस साम्य मे प्रवाह पूर्ववत् दिशा मे जारी रहता है।

(३) स्थायी साम्य की दशा मे यदि किसी वायुराशि को ऊपर चढने के लिये बाध्य होना पडता है, तो वह वायुमण्डल की अपेक्षा शीतल हो जाती है अतएव प्रवाह-शक्ति के क्षीण हो जाने पर वह नीचे उतर कर अपने पूर्ववत समतल पर आ जाती है; दूसरी ओर यदि उसे नीचे उतरने के लिये बाध्य होना पडता है तो वह वायुमण्डल की अपेक्षा उष्ण हो जाती है अतएव प्रवाह-शक्ति के क्षीण होने पर वह ऊपर चढ़कर अपने पूर्ववत् समतल पर आ जाती है। अन्य शब्दों मे इस साम्य मे प्रवाह विपरीत दिशा मे होता है।

४ सामान्य प्रवणता (Normal Gradient)

तापक्रम के अभिन्न साम्य की प्रवणता को हम सामान्य प्रवणता (Normal Gradient) कहते है। उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है, कि अस्थायी साम्य की दशा मे प्रवणता सामान्य प्रवणता की अपेक्षा अधिक होती है और स्थायी साम्य मे कम।

५ प्रवणता पर जलवाष्प का प्रभाव

शुष्क वायु की सामान्य लम्बवत् प्रवणता आर्द्र वायु की अपेक्षा कम होती है इसका कारण् यह है कि आर्द्र वायु के द्रवीभवन से गुप्त-ताप विकसित होता है, जिससे तापक्रम अपेक्षाकृत धीरे-धीरे घटता है।

६ वायुमण्डल के विभिन्न स्तरों की लम्बवत् प्रवणता

लम्बवत् प्रवणता के विचार से वायुमण्डल के तीन भाग किये जा सकते है —

(१) नीचे का स्तर—इसका विस्तार धरातल से लेकर लगभग १०,००० फुट की ऊँचाई तक है। इसकी प्रवणता शुष्क वायु की औसत प्रवणता से कम होती है क्योकि इसमें जलवाष्प की मात्रा रहती है।

(२) मध्य का स्तर—इसका विस्तार लगभग १०,००० फुट की ऊँचाई से लेकर लगभग ३३,००० फुट तक है। इसकी प्रवणता शुष्क वायु की औसत प्रवणता के लगभग समान है।

(३) ऊपर का स्तर—इसका विस्तार ३३,००० फुट के ऊपर है। इसमें प्रवणता नहीं है और कही-कही अत्यन्त मन्द वेग से उलटी प्रवणता पाई जाती है।

उपर्युक्त तथ्य उत्तरी पश्चिमी योरप के अवलोकनो पर आधारित है। संसार के अन्य भागो मे इन सख्याओ मे थोडा अन्तर होगा।

७ पर्वतों का तापक्रम

दिन की दशा—दिन मे सूर्य की किरणो से पहाड गरम होता है और जो वायु उसके धरातल के निकट होती है, सस्पर्श द्वारा वह भी गरम होती है। अतएव पहाड के निकट की वायु का तापक्रम अपने समतल की शेष वायु की तुलना मे अधिक होता है जिससे समतापीय पृष्ठ (Isothermal Surface) पहाड के निकट ऊपर की ओर मुड जाता है, जैसा कि चित्र ४८ मे प्रदर्शित किया गया है।
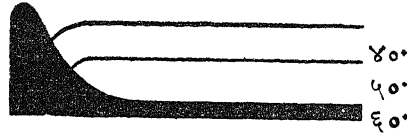
चित्र ४८—पर्वत के पार्श्व का दिन मे तापक्रम

पहाड के धरातल की वायु के ऊपर उठने से जो स्थान रिक्त होता है, उसकी पूर्ति के लिये मैदान की ओर से ठण्डी हवा चलती है इस प्रकार, यद्यपि पहाड का तापक्रम मैदान की अपेक्षा अधिक होता है, तथापि उसके धरातल की वायु का तापक्रम कम होता है।

रात्रि की दशा—रात्रि मे दशाये बिल्कुल विपरीत हो जाती है। पहाड के ठण्डे होने से सस्पर्श द्वारा उसके धरातल के निकट की वायु भी ठण्डी होती है
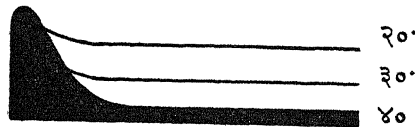
चित्र ४९—पर्वत के पार्श्व का रात्रि मे तापक्रम

यह वायु अपने समतल की शेष वायु की तुलना मे अधिक ठण्डी होती है, जिससे समतापीय पृष्ठ पहाड के निकट नीचे की ओर झुक जाता है। चित्र ४९ से यह कथन स्पष्ट होगा। इस दशा मे पहाड के धरातल की ठण्डी वायु अपने समतल की शेष वायु की अपेक्षा अधिक भारी होने के कारण ढाल के अनुरूप नीचे उतरती है।

८ पर्वत और घाटी की हवायें

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि जब वायुमण्डल शान्त होता है, तब दिन मे वायु ढाल के अनुरूप पहाड के ऊपर चढती है और रात मे ठण्डी हवा पहाड से ढाल पर नीचे उतरती है।

९ तापक्रम का उत्क्रमण (Inversion of temperature)

जाडो मे रातें लम्बी होती है। यदि वायुमण्डल शान्त हुआ तो चित्र ४९ की दशा घण्टो बनी रहती है। ठण्डी वायु, जो पहाड से ढाल पर नीचे उतरती है, घाटी के तल मे क्रमश एकत्र होती रहती है। इस प्रकार घाटी के निचले भाग मे ठण्डी हवा की राशि आरूढ होती है, किन्तु उसके ऊपर की वायु अपेक्षाकृत उष्ण होती है क्योकि उसे ठण्डे धरातल के सस्पर्श मे नही आना पडा। इस उष्ण वायु के ऊपर की वायु ठण्डी होती है, क्योकि सामान्य नियम के अनुसार ऊँचाई के साथ तापक्रम घटता जाता है।
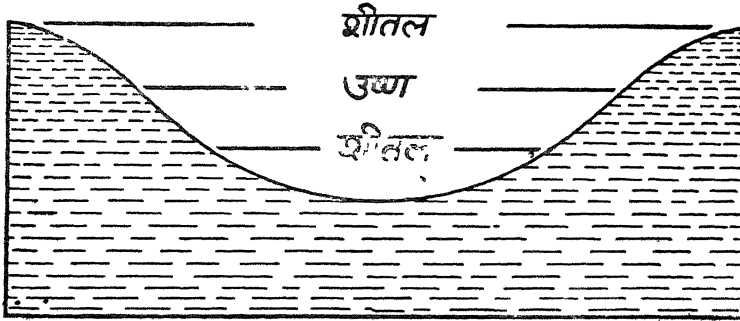
चित्र ५० तापक्रम का उत्क्रमण

सामान्यत:, ज्यो-ज्यो हम वायुमण्डल मे नीचे से ऊपर की ओर जाते हैं त्यो-त्यो तापक्रम क्रमश घटता जाता है। वायु के उष्ण स्तर के ऊपर हमें शीतल स्तर मिलता है और उसके ऊपर और भी शीतल स्तर मिलता है। अन्य शब्दों में, जब हम ऊपर जाते हैं, तब हमे स्तरो का क्रम इस प्रकार मिलता है—उष्ण शीतल, अधिक शीतल। इस विशेष दशा मे घाटी मे ठण्डी हवा के एकत्र हो जाने से स्तरो का क्रम इस प्रकार हो गया है—शीतल, उष्ण, शीतल। तापमान के सामान्य क्रम के इस प्रकार उलट जाने को हम 'तापक्रम का उत्क्रमण' (Inversion of temperature) कहते हैं।

आल्प्स पर्वत की घाटियो मे तापक्रम का उत्क्रमण बहुत होता है।

१० पठार का तापक्रम

पठार और पर्वत मे यही मुख्य भेद है कि पठार पर्वत की अपेक्षा बहुत चौडा होता है। अतएव पठार का तापक्रम (चित्र ५१) पर्वत के तापक्रम (चित्र ४८) से मिलता-जुलता है, अन्तर केवल यह होता है, कि पठार के समतल धरातल के ऊपर समतापीय पृष्ठ (Isothermal Surfaces) मैदान की भाँति क्षैतिज होते हैं। चित्र ५१ से प्रकट है कि सागर समतल से समान ऊँचाई पर पठार के ऊपर की वायु मैदान के ऊपर की वायु की अपेक्षा गरम होती है। गरम होने के कारण वह हल्की होती है और ऊपर उठती है। उसके रिक्त स्थान की पूर्ति के लिये मैदान के ऊपर की ठण्डी हवाये आती है। अतएव, यद्यपि स्वय पठार का तापक्रम अधिक होता है, तथापि उसके धरातल पर ठण्डी हवाये प्रवाहित होती हैं।
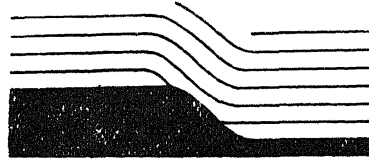
चित्र ५१ पठार का तापक्रम

पठार जितना ही अधिक ऊँचा होगा उसके ऊपर की वायु और उसी समतल पर मैदान की वायु के तापक्रम मे उतना ही अधिक अन्तर होगा। यह अन्तर जितना ही अधिक होगा, मैदान से पठार की ओर चलने वाली वायु का वेग उतना ही अधिक होगा। एशिया मे चलनेवाली मानसून हवाओ के वेगवान होने का एक कारण मध्यवर्ती पठार का ऊँचा होना है।

नवाँ परिच्छेद

आर्द्रता

१. वायु मे विद्यमान जलवाष्प और उसका उद्गम

जलवाष्प (Water-Vapour) वायुमण्डल के निचले स्तरो मे रहती है। इसकी मात्रा सभी स्थानो मे एकसी नही रहती--उदाहरण के लिये जलाशयो के निकट यह अधिक मात्रा मे पाई जाती है और मरुस्थलो के ऊपर न्यून होती है। इसके अतिरिक्त किसी एक स्थान पर जलवाष्प की मात्रा सदैव एक सी नही रहती। समय के अनुसार उसमे अन्तर होते रहते है। किसी भी स्थान पर वर्षा-ऋतु में जलवाष्प की मात्रा बढ जाती है और ग्रीष्म ऋतु मे कम हो जाती है।

वायुमण्डल की यह जलवाष्प नदी, तालाब, झील, सागर आदि के जल के वाष्पीकरण (Evoporation) से बनती है। यहाँ तक कि हिम और बर्फ में भी अल्प मात्रा में वाष्पीकरण होता है।

२ परम आद्र ता (Absolute Humidity) एवं आपेक्षिक आद्र ता (Relative Humidity)

किसी विशेष तापक्रम पर वायु के इकाई आयतन में विद्यमान भाप की मात्रा को हम उस वायु की परम आर्द्रता (Absolute Humidity) कहते हैं। मानलीजिये ७०° फ० तापक्रम पर एक घन फुट वायु मे ५ ग्राम भाप वर्तमान है; ऐसो दशा में वायु की परम आर्द्रता ५ ग्राम हुई।

जब वायु में इतनी भाप रहती है, जितनी वह अधिक से अधिक ग्रहण कर सकती है, तब हम उस वायु को भाप से सतृप्त (Saturated) वायु कहते है। मान लीजिये ७० फ० पर एक घन फुट वायु को भाप से सतृप्त करनेपर उसमें १० ग्राम भाप आती है। अन्य शब्दों में ७० फ० तापक्रम परएक घन फुट वायु अधिक से अधिक १० ग्राम ग्रहण कर सकती है। ऐसी दशा में यदि हम ५ ग्राम और १० ग्राम के अनुपात को प्रतिशत में प्रकट करे तो उसे हम उपर्युक्त वायुकी आपेक्षिक आर्द्रता (Relative Humidity) कहते है अन्य शब्दों में किसी वायु की आपेक्षिक आर्द्रता प्रतिशतमें प्रगट किया गया वह सम्बन्ध है, जो उस वायु में विद्यमान भाप की मात्रा में और उसी तापक्रम पर, उसी आयतन

की सतृप्त वायु की भाप की मा त्रा मे होता है उपर्युक्त दशा मे वायु की परम आर्द्रता ५ ग्राम है और उसकी आपेक्षिक आर्द्रता ५० % है।

सक्षेप में, वायु मे वर्तमान भाप और उसमें सम्भव अधिक से अधिक भाप का प्रतिशत मे प्रकट किया गया सम्बन्ध ही आपेक्षिक आर्द्रता है।

३. ओसांक (Dew Point)

वायु गरम होने पर फैलती है, जिससे उसका आयतन बढ जाता है। आयतन के बढ जाने से उसकी भापको ग्रहण करने की क्षमता भी बढ जाती है।

दूसरी ओर ठण्डी होने पर वायु सिकुडती है। आयतन के घट जाने से उसकी भाप को ग्रहण करने की सामर्थ्य भी घट जाती है।

अतएव, जब वायु को क्रमश ठण्डा किया जाता है, तो उसकी भाप को ग्रहण करने की शक्ति भी क्रमश घटती जाती है। अन्त मे एक ऐसी अवस्था आ जाती है, जब वह इतनी भाप ग्रहण कर लेती है, जितनी अधिक से अधिक उसमे आ सकती है। अन्य शब्दो मे, वायु भाप से सतृप्त (Saturated) हो जाती है यदि इसके बाद भी उसे ठण्डा किया जाता है, तो भाप का द्रवीभवन (Condensation) आरम्भ हो जाता है। द्रवीभवन का अर्थ है भाप का जलकणो मे परिवर्तन। जिस तापक्रम पर द्रवीभवन आरम्भ होता है, उसे हम ओसाक (Dew Point) कहते है।

सक्षेप मे, ओसाक वह तापक्रम है जिस पर वायु अधिक से अधिक भाप ग्रहण कर सकती है।

४. धूलि-कणों का महत्त्व

भाप के द्रवीभूत होने के लिये वायु मे धूलिकण होना आवश्यक है। द्रवित होकर भाप धूलि-कणो पर ही गिरती है। यदि वायु मे धूलि-कण न हो, तो वह बहुत अधिक ठण्डा करने पर भी द्रवित न होगी। घनवातिकी शास्त्र (Meteorology) मे धूलिकणो की बडी महत्ता है। यदि धूलिकण न होते तो कुहासा, कुहरा, पाला, वर्षा, मेघ कुछ भी न होता।

५. ओस (Dew), पाला (Frost), कुहरा (Fog) और कुहासा (Mist)

(क) ओस (Dew)

सौर ताप से दिन भर की तपी पृथ्वी सन्ध्या समय सूर्यास्त होते ही ठण्डी होने लगती है। पृथ्वी के ठण्डे होने से वायुमण्डल का सबसे निचला स्तर, जो धरातल का सस्पर्श करता है, ठण्डा होता है। जैसे-जैसे वायु का तापमान घटता है, वैसे-वैसे उसकी जलवाष्प को ग्रहण करनेकी क्षमता भी क्षीण होती जाती है।

कालान्तर मे एक ऐसी अवस्था आ जाती है, जब वायु जलवाष्प से सतृप्त हो जाती है, अर्थात् उसमे इतना जलवाष्प रहता है, जितना कि वह अधिक मे अधिक ग्रहण कर सकती है ऐसी दशा मे यदि वायु तनिक भी और ठण्डी होती है तो जलवाष्प द्रवित होकर ओस के रूप मे ठण्डे पदार्थों पर गिर पडती है। यहाँ पर यह उल्लेख कर देना अनुचित न होगा कि ताप के अच्छे सचालको की अपेक्षा बुरे सचालको पर ओस अधिक पडती है। यही कारण है, कि मकानो और चट्टानो की अपेक्षा घास-पात पर ओस अधिक पाई जाती है।

(ख) पाला, तुषार अथवा तुहिन (Frost)

यदि ओसाक (Dew Point) ३२°फ० से कम हुआ तो जलवाष्प जलकणो के रूप मे द्रवित न होकर हिमकणो के रूप मे द्रवीभूत होती है। इसे ही हम तुहिन, तुषार अथवा पाला कहते है।

(ग) कुहरा (Fog)

उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि ओस वही बनती है, जहाँ वायु अपने सेअधिक शीतल पदार्थ के सस्पर्श मे आने से ठण्डी होती है और द्रवित होकर जलकणो के रूप मे उस पर गिर पडती है। किन्तु यदि वायुमण्डल के निचले स्तर भाग-विशेष मे शीतल न होकर सर्वत्र समान रूप से ठण्डे हो, तब समस्त वायु के अन्दर द्रवीभवन (Condensation) होता है। इस प्रकार वायु मे जलकणो के व्याप्त हो जाने को हम 'कुहरा' कहते है। कुहरा से हमारी दृश्यता (Visibility) घट जाती है और हमे १००० मीटर दूर स्थित वस्तुये दिखलाई नही देती।

(घ) कुहासा अथवा कूहा (Mist)

पतले कुहरे को हम कुहासा अथवा कूहा कहते है। घनवातिकी विज्ञान (Meteorology) के अनुसार हम इस वृत्त (Phenomenon) को कुहासा तब कहते है, जब हम इसमे १००० मीटर से अधिक दूर तक देख सके, यदि दृश्यता १००० मीटर से घट जाती है, तो हम इसे कुहासा न कहकर कुहरा कहते है।

६. आर्द्रतामापक

जिस यत्र से आर्द्रता नापी जाती है उसे हम आर्द्रतामापक अथवा हाइग्रोमीटर (Hygrometer) कहते है। हाइग्रोमीटर ग्रीक भाषा का शब्द है (Hygros=Wet, Metron = a Measure) जिसका अर्थ है आर्द्रता नापने का यत्र। आर्द्रतामापक मुख्यत. दो प्रकार के होते है —

(१) रासायनिक आर्द्रतामापक (Chemical Hygrometers)।
(२) भौतिक आर्द्रतामापक (Physical Hygrometers)।

(१) रासायनिक आर्द्रतामापक

इस यत्र की सहायता से वायु के किसी निश्चित आयतन मे विद्यमान जलवाष्प की मात्रा ज्ञात की जा सकती है। यह यत्र चित्र ५२मे प्रदर्शित किया गया है। इसके प्रमुख अग निम्नलिखित है —
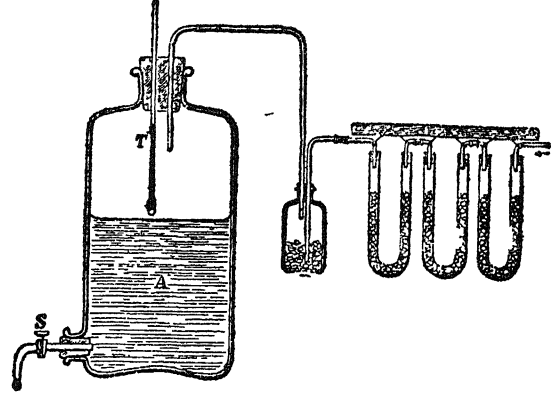
चित्र ५२—रसायनिक आद्रतामापक

(१) 'क' एक टोटीदार बोतल है, जिसमे पानी भरा रहता है। टोटी के खोल देने से जब पानी बाहर निकलता है, तब रिक्त स्थान की पूर्त्ति के लिये यह बोतल 'ख' से वायु को खीचती है। इसी आधार पर इस बोतल को वायु-चूषक(Aspirator) की सज्ञा दी गई है।

(२) 'ख' एक छोटी सी बोतल है, जो नली द्वारा वायुचूषक से संबधित है। इसमे गाढा गन्धक का तेजाब भरा रहता है। यही बडी बोतल 'क' की नमी को U–नलियो तक पहुँचने से रोकती है।

(३) 'ग' सकेत तीन U–नलियो का द्योतक है। इनमे शुष्क कैलशियम क्लोराइड भरा रहता है। कैलशियम क्लोराइड मे यह विशेष गुण है कि वह आर्द्रता को सोख लेता है।

सर्वप्रथम दोनों U–नलियों को शेष उपकरणों से प्रथक करके तौल लेते है, फिर उनको जोडकर वायुचूषक में पानी के समतल को नोट कर लेते है। इसके बाद टोंटी को खोलकर वायुचूषकसे धीरे-धीरे पानी बाहर निकाला जाता है, जिसके फलस्वरूप वायु U–नलियो में से होती हुई वायुचूषकमें प्रवेश करती

दसवाँ परिच्छेद

वृष्टि [PRECIPITATION]

किसी क्षेत्र पर वायुमण्डल से गिरनेवाली समस्त जल की राशि को हम 'वृष्टि' कहते हैं। इसके तीन रूप हैं—(१) जलवृष्टि (२) हिमवृष्टि तथा (३) हिमोपल वृष्टि अथवा ओले गिरना।

१. जलवृष्टि

(१) जलवृष्टि के प्रकार

जलवृष्टि तीन प्रकार की होती है —

(क) पर्वतीय वर्षा (Relief Rainfall)

(ख) सवाहन की वर्षा (Convectional Rainfall)

(ग) चक्रवातीय वर्षा (Cyclonic Rainfall)

(क) पवतीय वषा

जब किसी वायु-प्रवाह के पथ मे पर्वत आ जाता है, तब उसे उस पर चढने के लिये बाध्य होना पडता है। ज्यो २ यह वायु ऊपर जाती है, त्यों २ उसके ऊपर का दबाव घटता जाता है। दबाव के घटने से वायु फैलती है और ठण्डी होती है। ठण्डे होने से उसकी आपेक्षिक आर्द्रता बढ जाती है। आपेक्षिक आर्द्रता क्रमश बढती है और कालान्तर में ऐसी अवस्था आ जाती है, जब वायु जलवाष्प से संतृप्त (Saturated) हो जाती है। इसके पश्चात् वाष्प का द्रवीभवन (Condensation) होता है, जिससे मेघ बनते हैं। और ऊपर जाने पर मेघ द्रवीभूत होकर बरस पडते हैं।

पर्वत पर चढ़ने वाली वायु की ये विभिन्न अवस्थाये चित्र ५८ में अकित की गई हैं।

चित्र ५८—पर्वतीय वर्षा की विभिन्न अवस्थाये

(ख) संवाहन की वर्षा

विषुवत रेखा के निकट सूर्य की किरणे लगभग वर्ष भर सीधी पडती हैं, जिससे वहाँ का धरातल उष्ण हो जाता है और सचालन (Conduction) द्वारा वायुमण्डल के सबसे नीचे स्तर को गरम करता है। यह वायु गरम होकर फैलती है। फैलने से उसका घनत्व कम हो जाता है। घनत्व के कम हो जाने से वह ऊपर उठती है।

इस वायु के ऊपर उठ जाने से जो स्थान रिक्त होता है, उसकी पूर्ति के लिये उत्तर और दक्षिण से हवाये चलती है, किन्तु उनकी भी वही दशा होती है और वे भी ऊपर उठती है।

ऊपर उठने वाली वायु प्रायः उन्ही क्रमिक अवस्थाओ से गुजरती है, जिनसे पर्वत पर चढने वाली वायु गुजरती है। इन अवस्थाओ का उल्लेख पर्वतीय वर्षा के अतर्गत हो चुका है। चित्र ५९ मे ये अवस्थाये अकित की गई है।

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि पर्वतीय वर्षा और सवाहन की वर्षा मे कुछ अन्य अन्तर है, जैसे—

(१) पर्वतीय वर्षा नियमित (Steady) होती है, किन्तु सवाहन की वर्षा प्रायः बौछार के रूप मे होती है और उसके साथ बिजली की कडक वाली आँधी आती है। पर्वतीय वर्षा मे वायु ढाल के ऊपर चढती है, जिससे वह धीरे २ ठण्डी होती है किन्तु सवाहन की दशा मे वायु लम्बवत् दिशा मे

ऊपर चढ़ती है जिससे वह शीघ्रता से ठण्डी होती है। अतएव द्वितीय दशा मे वर्षा का तेज बौछार के रूप मे होना स्वाभाविक ही है।

वायु का ऊपर उठना

वर्षा
मेघ रचना
द्रवीभवन
संतृप्ति
आपेक्षिक आर्द्रता बढना
वायु का ठण्डा होना
वायु का और फैलना
दबाव घटना
वायु का ऊपर उठना
वायु का फैलना
सचालन द्वारावायु का उष्णहोना
सौरताप से भूतलका उष्ण होना

वायु का ऊपर उठना

वायु प्रवाह | वायु प्रवाह

चित्र ५८—सवाहन की वर्षा की विभिन्न अवस्थायें

(२) दोपहर मे धरातल सबसे अधिक गरम होता है अतएव सवाहन की वर्षा प्राय दोपहर के बाद ही होती है। पर्वतीय वर्षा किसी भी समय हो सकती है।

तड़ि-झंझा अथवा बिजली की कड़क वाली आंधी (Thunderstorm)

जब ताप के आधिक्य के कारण सवाहन वेग से होता है, तभी बिजली की कडक वाली आँधियाँ बहुत आती है। ऐसी दशा में मेघ विद्युन्मय (Electrically charged) हो जाते है, जिसे वे या तो अन्य बादलो को विसर्जित (Discharge) करते है, या पृथ्वी को। विद्युत-प्रभार (Electric charge) का उत्पत्ति बूदो के टूटने (Breaking) से होती है। यह ज्ञात हुआ है कि वर्षा-जल की बूदो का व्यास चौथाई इच से अधिक होना सभव नही है। यदि बूद में इससे बडा आकार ग्रहण करने की प्रवृत्ति होती है, तो वह टूट जाती है। जिस समय बूदें टूटती है, उसी समय मेघ विद्युन्मय (Electically charged) हो जाते हैं। यह भी ज्ञात हुआ है कि बूदो के गिरने का वेग २४ फुट प्रति सेकण्ड से अधिक नही हो सकता। अतएव, जब बूद

गिरती है, यदि उस समय वायु २४ फुट प्रति सेकण्ड अथवा इससे अधिक वेग से ऊपर उठ रही हो, तो बूंद धरातल तक नही पहुँच पाती। प्राय ऐसा होता है कि बूंद कुछ दूर तक वायुमण्डल मे नीचे आती है, फिर वह ऊपर उठने वाले वायु प्रवाह मे फस जाती है और उसके साथ फिर ऊपर उठ जाती है। इस प्रकार वह अनेक बार नीचे आती है और फिर ऊपर जाती है, तब कही काफी समय के बाद धरातल पर पहुँचती है।

(ग) चक्रवातीय वर्षा

चक्रवात वृत्ताकार अथवा दीर्घ वृत्ताकार समभार रेखाओ की ऐसी व्यवस्था है, जिसमे बीच मे दबाव कम होता है और चारों ओर क्रमश बढता जाता है। हवाये सदैव अधिक भार से कम भार की ओर प्रवाहित होती है, अतएव चक्रवात मे चारो ओर से हवाये मध्य की ओर प्रवाहित होती है। ये हवाये फैरल के नियम के अनुसार उत्तरी गोलार्ध मे अपने दाहिनी ओर और दक्षिणी गोलार्ध मे अपने बॉयी ओर मुड जाती है। इस प्रकार चक्रवात मे हवाओ का भवर बन जाता है। चक्रवात स्थिर नही रहते। वे सदा चलते रहते है।

चक्रवात की रचना के लिये दो असमान तापक्रम की वायु-राशियाँ आवश्यक होती है। समशीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवात ध्रुवीय वायु-प्रवाह और उष्णप्रदेशीय (Tropical) वायु-प्रवाह के परस्पर सपर्क में आने से बनते है। ध्रुवीय वायु-प्रवाह शीतल ध्रुवीय क्षेत्रो की दिशा से आता है और उष्णदेशीय वायु-प्रवाह उष्ण कटिबन्ध की ओर से।

चक्रवात के निर्माण की विवेचना चतुर्थ परिच्छेद मे हो चुकी है।

उष्ण कटिबन्ध की वायु स्वभावत उष्ण होती है, अतएव उसका घनत्व कम होता है। दूसरी ओर ध्रुवीय वायु ठण्डी होती है, जिससे उसका घनत्व अपेक्षाकृत अधिक होता है। जब ये दोना वायुराशियाँ परस्पर मिलती हैं, तो ध्रुवीय वायु भारी होने के कारण धरातल के निकट रहती है और उष्णप्रदेशीय वायु उसके ऊपर चढ़ जाती है। दोनो वायु राशियो के विभा-

चित्र ६०—चक्रवात की उत्पत्ति

जन का समतल ढाल की भाति तिरछा होता है जैसा कि चित्र ६० में प्रद-

शित किया गया है। जिस प्रकार पर्वतीय वर्षा की दशा मे वायु ढाल पर ऊपर चढ़ती है, ठीक उसी भाति उष्णप्रदेशीय वायु भी ऊपर चढती है और उन्ही उत्तरोत्तर अवस्थाओ से गुजरती है अर्थात् वह फैलती है, ठण्डी होती है, उसकी आपेक्षिक आर्द्रता क्रमशः बढ़ती है, वह सन्तृप्त होती है, उसमे द्रवीभवन होता है और अन्त मे वर्षा होती है।

यहाँ पर यह उल्लेख कर देना उचित होगा कि चक्रवातीय वर्षा चक्रवातीय क्रियाशीलता (Cyclonic activity) पर निर्भर है, उसका धरातल की आकृति और तापक्रम को दशा से कोई सबध नही है। उन क्षेत्रो मे भी चक्रवातीय वर्षा सभव है, जहाँ पर्वतीय वर्षा बिल्कुल नही होती।

(२) जलवृष्टि के वितरण को प्रभावित करने वाले प्रतिकारक

(१) **ऊँचाई**—मैदान की अपेक्षा पर्वतो पर वर्षा अधिक होती है क्योकि वहाँ तक पहुँचने के लिये वायु को ऊपर चढना पडता है, जिससे उसकी आर्द्रता क्रमश. बढती जाती है और वह कालान्तर मे वर्षा का कारण होती है। इस सिद्धान्त की विस्तृत विवेचना पूर्व मे हो चुकी है। इस सबध मे यह उल्लेखनीय है, कि वर्षा की मात्रा पर्वत की ऊँचाई और दिशा दोनो पर निर्भर है। यदि पर्वत अधिक ऊँचा होता है, तो उसके उस पार्श्व पर जो हवाओ के सम्मुख पड़ता है वाष्प का अधिकाँश भाग द्रवीभूत हो जाता है और विमुख पार्श्व पर अपेक्षाकृत कम वर्षा होती है। पश्चिमी घाट के पश्चिम मे अधिक वर्षा होने का यही कारण है। दूसरी ओर, यदि पर्वत नीचा होता है, तो उसके दोनो ढालो पर समान रूप से वर्षा होती है। पर्वत की दिशा यदि वायु की दिशा के समानान्तर होती है तो उससे वर्षा नही होती है। अरावली की पर्वत श्रेणियाँ द० प० मानसून वायु की दिशा के समानान्तर है, अतएव उनसे वृष्टि नही होती है। राजस्थान के मरुस्थल होने मे इन पर्वतश्रेणियों की दिशा भी बहुत कुछ उत्तरदायी है। यदि ये समकोण दिशा मे होती, तो द० प० हवायें इनसे टकराकर वर्षा करती।

(२) **समुद्र से दूरी**—जो स्थान समुद्र के निकट होते है, उनमें उन स्थानो की अपेक्षा जो समुद्र से दूर होते है, वर्षा अधिक होती है। आर्द्र वायु स्थल मे जितने अन्दर प्रवेश करती है, उतनी ही वह शुष्क होती जाती है।

(३) **प्रवाहित होनेवाली हवायें**—जो हवाये समुद्र से आती है, वे आर्द्र होती है, अतएव उनसे वर्षा होती है। इसके विपरीत स्थल से आने वाली हवायें सूखी होती है।

(४) **महासागर की धारायें**--गरम धारा के ऊपर प्रवाहित होने वाली वायु आर्द्र होती है और उससे वर्षा होती है। ठण्डी धारा के ऊपर प्रवाहित होने वाली हवायें प्राय सूखी होती है।

(५) **चक्रवातों की क्रियाशीलता (Cyclonic Activity)**--चक्रवातों से कभी २ पर्वतों के समुद्र-विमुख ढाल पर भी वर्षा हो जाती है जैसे इग्लैण्ड मे पैनाइन पर्वत (Pennines) के पूर्वी भागो मे। इसके अतिरिक्त चक्रवातो से कभी २ उन क्षेत्रो मे भी वर्षा हो जाती है जहाँ शुष्क हवायें चलती है। उदाहरण के लिये पजाब मे कभी २ चक्रवात द्वारा जाडो में वर्षा हो जाती है। इस ऋतु मे, अन्यथा, स्थल से आने वाली शुष्क मानसून वायु चलती है।

(६) **अक्षांश**--विषुवत रेखा के निकट सूर्य की किरणें प्राय वर्ष भर सीधी पडती है, जिससे वहाँ वाष्पीकरण बहुत होता है। अतएव विषुवत रेखा के क्षेत्र मे अन्य क्षेत्रो की तुलना मे औसत जलवर्षा अधिक होती है। विषुवत रेखा के उत्तर और दक्षिण मे सूर्य की किरणे तिरछी होती चली जाती है, जिससे वाष्पीकरण की मात्रा घटती जाती है और वर्षा भी कम होती चली जाती है।

(३) जल वर्षा का सामान्य वितरण

यह उल्लेख तो पूर्व मे ही हो चुका है कि वायु के ठण्डे होने से वर्षा होती है। ज्यों २ वायु ठण्डी होती है, त्यों २ उसकी आपेक्षिक आर्द्रता बढती जाती है। कालान्तर मे एक ऐसी अवस्था आ जाती है, जब वायु जल-वाष्प से सतृप्त हो जाती है। इसके अनन्तर वर्षा होती है।

वायु के शीतल होने की तीन रीतियाँ है --

(१) जब वायु अपेक्षाकृत उष्ण प्रदेश से शीतल प्रदेश की ओर प्रवाहित होती है।

(२) जब वायु सवाहन के कारण अथवा पहाड आदि के मार्ग में आ जाने से ऊपर उठती है।

(३) जब उष्ण वायु, जिसमे जलवाष्प की मात्रा काफी होती है शीतल वायु के सम्पर्क मे आती है।

दूसरी ओर, वायु ज्यो २ गर्म होती है त्यो २ उसकी आपेक्षिक-आर्द्रता घटती जाती है। अतएव ऐसे प्रदेश जहाँ की प्रवाहित होने वाली वायु क्रमश उष्ण होती रहती है, वर्षा रहित अथवा सूखी होती है। वायु के उष्ण होने की दो मुख्य रीतियाँ हैं --

(१) जब वायु अपेक्षाकृत शीतल प्रदेश से उष्ण प्रदेश की ओर प्रवाहित होती है।

(२) जब वायु वायुमण्डल मे नीचे उतरती है।

ससार मे जलवर्षा का सामान्य वितरण उपर्युक्त सिद्धान्तो पर आधारित है, जैसा कि निम्नलिखित तथ्यो से स्पष्ट है —

(१) विषुवत रेखा के क्षेत्र मे, सवाहन के कारण वायु सदा ऊपर उठती रहती है, अतएव इस कटिबन्ध मे वर्षा बहुत होती है।

(२) ३०° अक्षाश के निकट वायुमण्डल मे हवाये ऊपर से नीचे उतरती है, अतएव ये क्षेत्र शुष्क अथवा वर्षा रहित कटिबन्ध है।

(३) शीतोष्ण कटिबन्ध मे ध्रुवो की शीतल वायु-राशि उष्णप्रदेशीय (**Tropical**) उष्ण वायु-राशि के सम्पर्क मे आती है, जिससे यहाँ चक्रवातीय वर्षा (**Cyclonic Rain**) होती है।

(४) ध्रुवीय प्रदेश मे तापक्रम इतना नीचा होता है कि यहाँ जलवर्षा का प्रश्न ही नही उठता ; हिमवर्षा अवश्य बहुत होती है।

सबसे अधिक वर्षा विषुवतीय कटिबन्ध मे होती है, क्योकि यहाँ प्राय वर्ष भर सूर्य की किरणे लम्बवत् पडती है, जिससे सवाहन बहुत होता है।
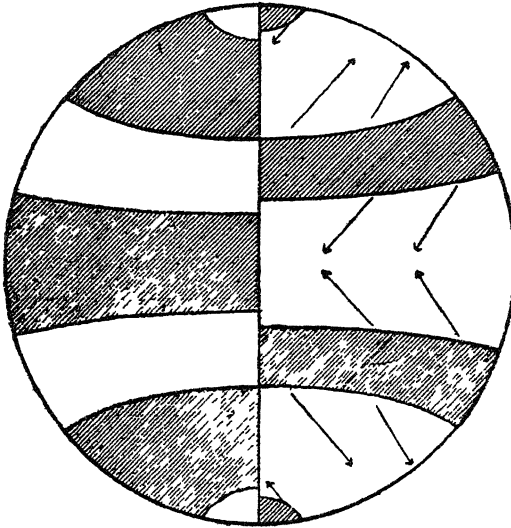
चित्र ६१—वर्षा और वायुभार का सम्बन्ध

चित्र ६१ मे दबाव और वर्षा की पेटियो का परस्पर सबध प्रदर्शित किया गया है। इस चित्र के अध्ययन से यह विदित होगा कि ३०° अक्षाश वाली

शुष्क पेटी अधिक दबाव के कटिबन्ध की अपेक्षा विषुवत रेखा की ओर कुछ बढी हुई है। इसका कारण यह है कि उत्तरी गोलार्ध मे इसके दक्षिणी किनारे पर और दक्षिणी गोलार्ध मे इसके उत्तरी किनारे पर, हवाये विषुवत रेखा की ओर प्रवाहित होती है, अतएव सूखी होती है। इसी प्रकार वर्षा का ध्रुवीय कटिबन्ध भी दबाव की पेटी की तुलना मे विषुवत रेखा की ओर कुछ बढा हुआ है। इसका भी वही कारण है अर्थात् उत्तरी गोलार्ध मे ध्रुवीय पेटी के दक्षिण मे और दक्षिणी गोलार्ध मे ध्रुवीय पेटी के उत्तर मे हवाये ठण्डे प्रदेश से गर्म प्रदेश की ओर चलती है, जिससे वे सूखी होती है।

जल और स्थल के वितरण का प्रभाव

इस सबध मे निम्नलिखित तथ्य उल्लेखनीय है —

(१) वाष्पीकरण की अधिकाँश क्रिया महासागरों मे होती है, अतएव स्थल की अपेक्षा महासागरो पर वर्षा भी अधिक होती है।
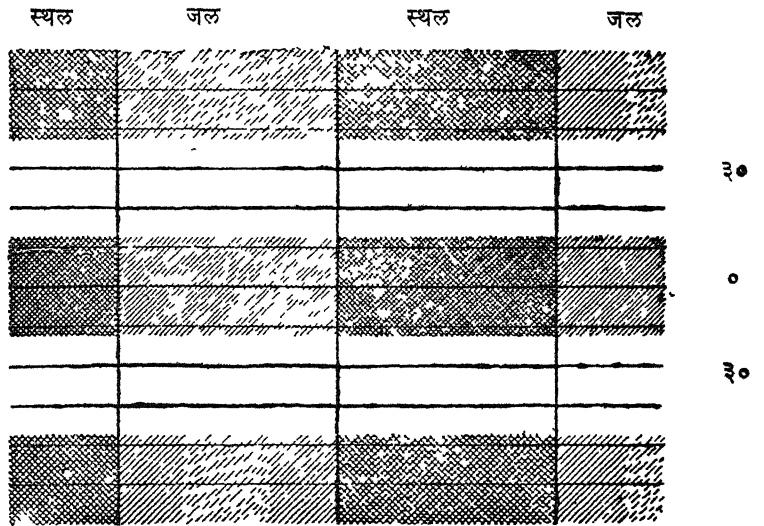
चित्र ६२—वर्षा पर जल और स्थल के वितरण का प्रभाव

(२) शीतोष्ण कटिबन्ध मे वर्षा मुख्यत चक्रवातो से होती है और वह महाद्वीपो के आन्तरिक भागो की अपेक्षा तट पर अधिक होती है।

(३) विषुवत रेखा के कटिबन्ध मे वर्षा वायु के ऊपर उठने से होती है और महाद्वीपो पर उसका वितरण सर्वत्र समान होता है।

उपर्युक्त सभी प्रभाव चित्र ६२ मे प्रदर्शित किये गए है।

इसके अतिरिक्त वर्षा की सभी पेटियो मे उत्तरी और दक्षिणी किनारो की ओर वर्षा की मात्रा क्रमश: घटती जाती है। ये गुण चित्र मे प्रदर्शित नही किया गया है।

वायु का प्रभाव

शीतोष्ण कटिबन्ध मे पछुवा हवाये चलती है। उनके कारण सागर की आर्द्रता महाद्वीपो के पश्चिमी तट मे तथा स्थल की शुष्कता महासागरो के पश्चिमी तट मे प्रवेश कर जाती है। चित्र ६३ से यह कथन स्पष्ट होगा। वास्तव में पछुवा हवाओ के कारण शीतोष्ण कतिबन्ध के सूखे और वर्षा वाले भाग पूर्व की ओर खिसक जाते है। चित्र ६३ और चित्र ६२ की तुलना से यह कथन स्पष्ट होगा।
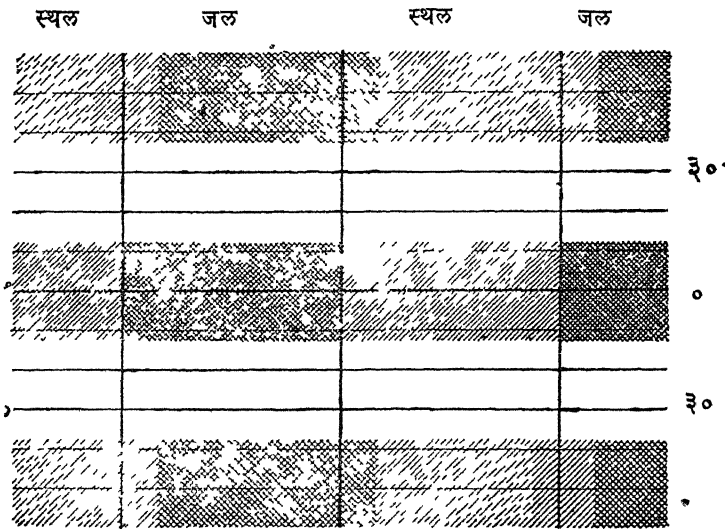
चित्र ६३—वर्षा पर वायु का प्रभाव

उष्ण कटिबन्ध मे व्यापारिक हवाये चलती है। ये हवाये अपेक्षाकृत शीतल प्रदेश से उष्ण प्रदेश की ओर प्रवाहित होती है, अतएव सामान्यत इनसे वर्षा नही होती। केवल विशेष परिस्थितियो मे इनसे वर्षा होती है, उदाहरण के लिये पथ मे पहाडी आ जाने से जब इन्हे ऊपर चढना पडता है। अनुकूल परिस्थितियो मे इनसे महाद्वीपो के पूर्वी तट पर पश्चिमी तट की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है।

ऋतु-परिवर्तन के कारण वर्षा की पेटियो का खिसकना

ऋतुओं के साथ वर्षा की पेटियाँ भी खिसकती रहती हैं। जहाँ तक स्थानान्तरण की मात्रा का सबध है, प्रत्येक पेटी अधिक से अधिक लगभग ८७ उत्तर या दक्षिण खिसक जाती है। अन्य शब्दो मे उत्तरी गोलार्ध की गर्मी की ऋतु मे विषुवतीय वर्षा-कटिबन्ध का मध्य भाग ८° उत्तर पर पहुँच जाता है और जाडो की ऋतु मे ८° दक्षिण अक्षाश पर पहुँच जाता है।

चित्र ६४ मे विभिन्न ऋतुओ मे वर्षा की पेटियो की स्थिति प्रदर्शित की गई है। इस चित्र के अध्ययन से ससार के विभिन्न भागो के वर्षा सबधी अनेक तथ्य स्पष्ट हो जाते है। उदाहरण के लिये इस चित्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि भूमध्य सागरीय जलवायु के प्रदेश मे (३० और ४० अक्षाश के बीच मे) वर्षा जाडो मे क्यो होती है और गर्मियो मे क्यो नही होती।
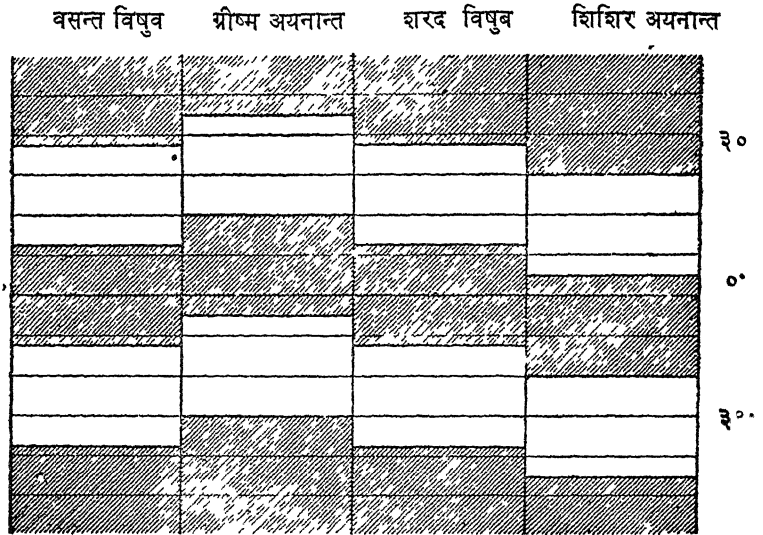
चित्र ६४—जल वृष्टि की पेटियो का विवर्तन

इस चित्र से यह भी पता चलता है कि ५° और २०° अक्षाश के बीच में जाडे सूखे होते है और गर्मियो मे वर्षा होती है।

इसके अध्ययन से वर्षा सबधी और भी तत्यों का ज्ञान होता है, (१) सभी पेटियो के मध्य भाग मे ऋतु-सबधी परिवर्तन सबसे कम होता है।

(२) विषुवत रेखा पर वर्ष भर वर्षा होती है।
(३) शीतोष्ण कटिबन्ध के अधिकाँश भाग मे सभी ऋतुओ मे वर्षा होती है।
(४) शुष्क कटिबन्धो का मध्य–भाग प्राय वर्ष भर सूखा रहता है। आदि

समवर्षा रेखाये (Isohyets)

कभी २ मानचित्रो मे वर्षा का वितरण समवर्षा रेखाओ द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। समवर्षा रेखा वह कल्पित रेखा है, जो उन स्थानो के मिला देने से बन जाती है, जहाँ वर्षा की मात्रा समान हो।

संसार में सबसे अधिक जलवर्षा का स्थान

चिरापूजी (आसाम) मे वार्षिक जलवर्षा लगभग ४६० इच होती है, जो ससार मे सबसे अधिक है।

२. हिमवृष्टि (Snow fall)

(१) सिद्धान्त एवं प्रकार

जब जलवाष्प के द्रवीभवन का तापक्रम ३२° फ० से कम होता है, तब वह पानी मे परिणत न होकर हिम में परिणत होती है। आरम्भ में हिम सूक्ष्म स्फटो (Crystals) के रूप मे होती है। धीरे २ अनेक हिम-स्फट परस्पर चिपक कर एक हो जाते हैं। इस प्रकार अपेक्षाकृत बडे आकार के शल्कल (Flakes) अस्तित्व मे आ जाते हैं।

हिमवृष्टि दोनो ही रूप मे होती है—(१) हिम के पृथक स्फटो के रूप मे तथा (२) हिम शल्कलो (Snow flakes) के रूप मे। वायुमण्डल मे नीचे उतरते समय प्राय हिम पिघल जाती है, जिससे धरातल पर वह जल-वर्षा के रूप मे गिरती है। अतएव, कभी २ ऐसा होता है, कि जब धरातल पर जलवर्षा होती है, उसी समय निकटवर्ती पर्वतो पर हिमवृष्टि होती है।

सामान्यत हिम का एक फुट जलवर्षा के एक इच के बराबर माना जाता है, किन्तु यह सबध हिम की प्रकृति और सरचना पर निर्भर है।

(२) हिमवृष्टि का सामान्य वितरण

ध्रुवीय प्रदेशों में वर्ष के अधिकाँश भाग मे वृष्टि हिम के रूप में होती है। जैसे २ हम ध्रुवों से विषुवत रेखा की ओर बढते है, वैसे २ हिमवृष्टि का काल और मात्रा दोनो ही घटते जाते है, यहाँ तक कि लगभग ४०° अक्षांश

के अनन्तर सागर समतल पर हिमवृष्टि नही होती । हाँ, ऊँचे स्थानो की बात दूसरी है। ऊँचे भागो मे तो विषुवत रेखा पर भी हिमवृष्टि होती है ।

(३) हिमरेखा (Snow Line)

पर्वतो पर स्थायी हिम की निचली सीमा को हिमरेखा (Snow-Line) कहते है।

किसी स्थान पर हिम रेखा की ऊँचाई निम्नलिखित प्रतिकारको पर निर्भर है ---

(१) तापक्रम---किसी स्थान पर सागर---समतल का तापक्रम जितना ही अधिक होगा, हिमरेखा वहाँ उतनी ही ऊँची होगी । यही कारण है कि विषुवत-रेखा की ओर हिमरेखा की ऊँचाई बढती जाती है। आर्कटिक वृत्त के निकट हिमरेखा सागर-समतल पर होती है, विषुवत-रेखा की दिशा मे वह ऊँची होती चली जाती है। ऋतुओ के अनुसार तापक्रम मे विभेदन होते रहते है, अतएव हिमरेखा की ऊँचाई भी ऋतुओ के साथ बदलती रहती है। किसी भी स्थान पर शीत ऋतु की अपेक्षा ग्रीष्म-ऋतु मे हिमरेखा की ऊँचाई अधिक होगी ।

(२) धरातल की आकृति---पर्वतो के प्रपाती प्रवण (Steep Slope) पर हिम का अधिकाश भाग हिमधाव (Avalanche) के रूप मे नीचे खिसक जाता है। दूसरी ओर, पर्वतो के मन्द प्रवण (Gentle Slope) पर हिम उस समय तक अपने स्थान पर स्थिर रहती है, जब तक वह पिघलती नही है। अतएव प्रपाती प्रवण की अपेक्षा मन्द प्रवण पर हिम रेखा की ऊँचाई कम होती है।

(३) हिमवृष्टि की मात्रा---यदि अन्य प्रतिकारको का विचार न किया जाय तो आर्द्र क्षेत्रो की अपेक्षा शुष्क क्षेत्रो मे हिमरेखा ऊँची होती है। उदाहरण के लिये हिमालय पर्वत के उत्तरी ढाल पर हिमरेखा दक्षिणी ढाल की अपेक्षा दो हजार फुट ऊपर रहती है, यद्यपि उत्तरी ढाल की अपेक्षा दक्षिणी ढाल का तापक्रम अधिक है। इससे स्पष्ट है कि यहाँ पर हिमवृष्टि की मात्रा का अन्तर तापक्रम के अन्तर से अधिक महत्वपूर्ण है। द० प० मानसून वायु की जलवाष्प का अधिकाँश भाग हिमालय के दक्षिणी भाग मे द्रवीभूत हो जाता है।

संसार के विभिन्न भागों में हिमरेखा की ऊँचाई

विषुवत रेखा के निकट हिमरेखा सागर-समतल से १८००० फुट से लेकर २०००० फुट की ऊँचाई पर पाई जाती है। हिमालय पर्वत के दक्षिणी

ढाल पर इसकी ऊँचाई १६००० फुट है और उत्तरी ढाल पर १८००० फुट। आल्प्स और पिरेनीज मे इसकी ऊँचाई ८००० फुट से १००00 फुट तक है उत्तरी स्कैण्डिनेविया मे इसकी ऊँचाई ४००० फुट के लगभग है और ध्रुवो के निकट यह सागर-समतल पर पाई जाती है।

हिमालय की हिमरेखा

हिमालय पर्वत मे अनेक श्रेणियाँ है। यह कथन कि हिमालय के दक्षिणी ढाल की अपेक्षा उत्तरी ढाल पर हिमरेखा अधिक ऊँचाई पर पाई जाती है, समस्त श्रेणियो के समूह के लिये है, किसी एक पृथक श्रेणी के लिये नही। यदि हम किसी एक श्रेणी का विचार करते है, तो विपरीत दशा पाते है अर्थात् किसी एक श्रेणी के दक्षिणी ढाल पर हिमरेखा की ऊँचाई उत्तरी ढाल से अधिक है। चित्र ६५ से यह कथन स्पष्ट होगा।

चित्र ६४—हिमालय पर्वत की हिमरेखा

प्रत्येक श्रेणी के दोनो ढालो पर वृष्टि की मात्रा प्राय. समान है किन्तु उत्तरी ढाल की अपेक्षा दक्षिणी ढाल पर ताप अधिक होता है, अतएव हिमरेखा प्रत्येक श्रेणी मे उत्तरी ढाल पर नीची है और दक्षिणी ढाल पर ऊँची। सबसे दक्षिण वाली श्रेणी मे बीच की क्षेणी की अपेक्षा हिम-वृष्टि अधिक होती है, अतएव उसकी हिमरेखा मध्यश्रेणी की हिमरेखा से नीची है। इसी प्रकार मध्य-श्रेणी की हिम-रेखा उत्तरी श्रेणी से नीची है। अतएव, यद्यपि प्रत्येक श्रेणी मे हिमरेखा का ढाल दक्षिण की ओर है, तथापि जब हम समस्त पर्वत श्रेणियो को एक समूह की दृष्टि से देखते है, तब हमे ज्ञात होता है कि हिमरेखा उत्तर मे दक्षिण की अपेक्षा अधिक ऊँची है।

३ हिमोपल वृष्टि अथवा ओलो की वर्षा (Hail)

हिमोपल वृष्टि मे कुज-वर्षुक (Cumulo-nimbus) मेघो से हिम के कठोर पिण्ड धरातल पर गिरते है। इस प्रकार की वृष्टि के साथ बिजली की कडक वाली आँधियाँ अथवा तडित्-झंझाय (Thunder-storms) बहुधा आया करती है। हिमोपल अथवा ओले अनेक

आकृतियो के होते है और कभी २ इनका आकार भी काफी बडा होता है। चार इच तक के व्यास के ओले पाये गए है, जिनका भार दो पौण्ड से भी अधिक होता है। ओलों के बनने की क्रिया अब भी विवादास्पद है। ओलो मे एकान्तर पर (Alternately) पारदर्शक एव अपारादर्शक कर्पर (Shells) होते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि जब जमे हुए पानी की बूद बादलो मे से होकर नीचे आती है, तब उसके ऊपर पानी की तह इकट्ठी हो जाती है। जैसे २ बूद नीचे आती है, वैसे २ इस तह का पानी जमता जाता है। सवाहन के प्रवाह के कारण जब बूद फिर ऊपर जाती है तब उस पर पानी की दूसरी तह जम जाती है। इस तह का पानी बहुत शीघ्रता से जमता है क्योकि ऊपर तापक्रम घटता जाता है और बूद बड़े वेग से ऊपर जाती है। ओले के धरातल तक पहुचने के पूर्व यह क्रिया अनेक बार होती है अर्थात् बूद अनेक बार ऊपर जाती है और नीचे आती है। ओले की अपारदर्शक तहे पानी के जल्दी जमने की द्योतक है। यह तभी होता है जब बूद ऊपर जाती है। दूसरी ओर, पारदर्शक तहे पानी के धीरे २ जमने की सूचक है। यह तब होता है, जब बूद नीचे आती है।

वृष्टि मापन

यह उल्लेख तो ऊपर हो ही चुका है, कि वृष्टि के अन्तर्गत जलवृष्टि, हिम वृष्टि तथा हिमोपल वृष्टि तीनो आते है। जिस यत्र से वृष्टि नापी जाती है, उसे वर्षा-मापक (Rain Gauge) कहते है। चित्र ६६ मे वर्षा-मापक प्रदर्शित किया गया है। इस यत्र मे एक बेलनाकार बर्तन के अन्दर बोतल रहती है। इस बोतल मे एक कीप (Funnel) लगी रहती है। बोतल मे एकत्र हुए पानी को नापने के लिये एक मापक जार होता है। इस मापक-जार के अक कीप के क्षेत्रफल के अनुसार होते है। यह कथन उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। मान लीजिये कीप के मुख का क्षेत्रफल १५ वर्गइच है। ऐसी दशा में उसे एक इच भरने के लिये १५ घन इच जल की आवश्यकता होगी। अतएव किसी जार मे १५ घन इच पानी भर कर १ इच का चिन्ह लगा देते है। इसी प्रकार ३० घन इच पानी भर कर दो इच का चिन्ह लगा दिया जाता है। अन्य शब्दो मे मापक जार के चिह्न घन इंच प्रदर्शित नही करते वरन् कीप के मुख के बराबर के क्षेत्र की गहराई दर्शाते है।

सही वृष्टि-मापन के लिये अनेक पूर्वोपाय अपेक्षित है :—

(१) यदि वर्षामापक यंत्र को धरातल पर रखा जाय तो कीप के बाहर

उठे हुए छींटे उसमें प्रविष्ट जाते हैं। अतएव बोतल में जल की मात्रा वास्तविक
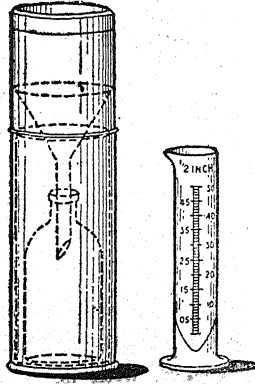
चित्र ६६—वृष्टि मापक

वृष्टि जल से अधिक हो जाती है। यही कारण है कि इंग्लैंड में वर्षा मापक को धरातल से एक फुट की ऊँचाई पर रखा जाता है।

(२) कीप में गिरने वाले जल का कुछ भाग छिटककर बाहर गिर जाता है। इसे रोकने के लिये कीप का किनारा दो तीन इंच तक लम्बवत् होना चाहिये।

(३) जब वृष्टि हिम के रूप में होती है, तब कभी २ वृष्टि समाप्त होने के पूर्व कीप का मुंह हिम से भर जाता है और वायुरोध के कारण वह बोतल में नहीं गिरती। ऐसी दशा में कीप में नापकर गरम पानी डाल देना चाहिये, जिससे हिम पिघलकर बोतल में चली जाय। बाद में मापित वृष्टि से गरम पानी के आयतन को घटा देना चाहिये।

भारतवर्ष और अंग्रेजी भाषा वाले देशों में वर्षा इंचों में नापी जाती है। इस कथन का कि किसी स्थान में ३ इंच वर्षा हुई यह अर्थ होता है कि यदि वर्षा जल वहीं स्थिर रहता, जहाँ गिरा था, न उसका प्रवाह होता, न भूमि द्वारा शोषण और न ही वाष्पीकरण, तो धरातल पर उसका ३ इंच मोटा स्तर बन जाता।

परिशिष्ट

विभिन्न परीक्षाओं मे पूछे गये प्रश्न :—

1. What is Inesolation ? Show what the atmosphere does to the incoming solar radiation and outgoing terrestrial radiation. Give the distribution of insolation over the earth's surface (Agra B A 1955)

2. What is the polar front ? How does a cyclone develop along the polar front ? Describe the general weather conditions associated with it. (Agra B A. 1955).

3 Write notes on—

(a) Inversion of temperature (Agra B A. 1955).

(b) Composition of the atmosphere Agra B. A Part I 1955)

(c) Fog and Frost (Agra B A Part I 1955)

4. Explain the 'Vertical Gradient of temperature.' How does it effect a wind (assuming that it is free from water vapour) forced to ascend a mountain-side ?

(Agra B A Part.I 1955).

5. Discuss fully the factor which control the divernal variations of temperature (Agra B A Part I, 1955).

6 Describe the structure and characteristics of the various layers of the atmosphere and trace out their influence, if any, on waether changes (Agra B. A Part I, 1955).

7. Discuss the distribution over the earth's surface and the factors that modify such distribution

(Ajmer Inter, 1952 , Agra 1951 and 1947).

8. Discuss the thermal and dynamic control of average pressure distribution over the earth's surface.

(Agra B A 1949).

9. Explain the origin of cyclones in middle latitudes and discuss their effects on the weather of those areas.

(Agra B. A. 1949).

10 State the characterstic feature of cyclonic and anti-cyclonic weather (Agra B A 1948)

11 Discuss the distribution and periodic variation of atmosphere humidity and precipitation *on* the surface of the earth. (Agra B A 1950)

12 Write notes on—

(a) Clouds (Agra B A 1950 and 1952)

(b) Fohn Winds
(Agra B A 1950 and U P Inter 1955 and '35)

(c) Inversion of temperature
(I A S Compet '53, Ajmer Inter '52, Agra B A '52, Allahabad M A '53, Allahabad B A '50)

(d) Humidity (Agra B A 1952)

(e) Periodic Winds (Agra B A 1952)

(f) Wedge (Banaras B A and B. Sc 1953)

(g) Barometric gradient
(Banaras B A and B Sc 1953)

(h) Westerlies (Ajmer Inter 1950)

13. Explain the origin of temperate cyclones How do they differ from tropical storms ? Discuss their effects on weather (Agra B A 1951)

14 Rainfall in the equitoreal region is of the convectional type'. Explain why this should be so, and point out the inter-relationship of temperature, pressure and rainfall (Agra B. A 1952)

15 Discuss the general distribution of rainfall on the globe with due regard to the seasonal influence of winds and the distribution of land and sea (U P Inter 1937)

16 What are cyclones ? How are they caused ? What is their relation to local weather ? Illustrate with diagrams Name the areas where cyclones are most common
(U. P Inter 1940)

17 Account for the origin of Temperate Cyclones Trace roughly the passage of such cyclone in winter over Western Europe (U P Inter 1946)

18 Describe the 'Planetary Wind's What other types of winds occur on the earth's surface and how do they arise (U P Inter 1948)

19 Explain the factors favouring the formation of rain, indicating regions where such types, as you suggest, prevail (U P Inter 1950)

20 Write notes on—

(a) Land and Sea Breezes (U P Inter 1944 and 45),

(b) Buys Ballots Law (U P. Inter 1948)

(c) Ante-Cyclone. (U P Inter 1949)

(d) Tornads (U. P Inter. 1935)

(e) Ante-Cyclonic conditions (U P Inter 1936)

(f) The Minstral (U P Inter 1936 Agra M A 1950)

(g) Cyclone (U P Inter 1943 and 49)

21 Distinguish between tropical and temperate cyclones Explain the mode of origin of the former (Banaras B A and B Sc 1949).

22 What are local winds ? Explaining their mode of origin, describe the more important types (Banaras B A and B Sc 1949).

23 Discuss the factors which govern the distribution of insolation over the surface of the earth Banaras B A and B Sc 1950)

24 Give an account of tropical cyclones and their mode of origin (Banaras B A and B Se 1950)

25 Compare and contrast the characteristic features of Temperate and Tropical Cyclones (Banaras B A. and B Sc. 1951)

26 Discuss the influence of altitude upon—

(i) Pressure,

(ii) Temperature and

(iii) Precipitation

(Banaras B A and B Sc 1953)

27 Describe the circulation of the atmosphere on the earth and show that it is directly influenced by insolation

(Allahabad B A 1949)

28 Explain the term 'Relative Humidity' Mention the various forms of precipitation on the earth's surface

(Ajmer Inter 1950)

29 Explain carefully the term 'Cyclones' How do they originate ? Contrast between Temperate and Tropical Cyclones (Ajmer Inter 1951).

30 Write notes on—

(a) Cirro—cumulus (I A S Compet 1953)

(b) Chinook (I A S Compet 1953).

(c) Water—Spout

(I A S Compet 53 and Agra B A 1953)

(d) Hail (Allahabad M A 1949)

(e) Sirocco (Allahabad M A 1949)

(f) Insolation (Agra B A 1953).

31 What is a cyclone ? Describe the weather associated with it (Nagpur Inter 1951)

32 Discuss the principal theories of the origin of cyclonic depressions (Agra M. A 1947)

33 Write notes on—

(a) V—Depression (Agra M A 1950).

(b) Upper atmosphere investigations

(Agra M A. 1949).

34 Describe the various stages in the development of a depression and give the generalized tracks of tropical cyclones and temperate depressions (Agra B A 1953)

35. Write notes on—

(a) Doldrums (Nagpur Inter. 1950)

(b) Suring of the wind—System (Nagpur Inter 1950).

- —— -

लेखक की ओर से

निवेदन

राष्ट्रभाषा हिन्दी मे भूगोल और भूगर्भ-शास्त्र मे ही नही, प्रायः प्रत्येक वैज्ञानिक विषय मे उच्चतम् कक्षाओ के योग्य ग्रन्थो का नितान्त अभाव है। इसी रिक्ति की पूर्त्ति के उद्देश्य से मैंने भूगोल और भूगर्भ-शास्त्र के प्रमुख सिद्धान्तो की रूप-रेखायें प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

प्रश्न किया जा सकता है कि लिखने की ही जिज्ञासा थी तो अपेक्षाकृत नीची कक्षाओ के निमित्त कुछ लिखा होता, एकदम उच्चतम् कक्षाओ के नाम पर यह दुस्साहस करने की कौन सी आवश्यकता थी और क्या अधिकार था।

इसका उत्तर यह है---

सन् १९४५ ई० मे श्रद्धेय राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने ये उद्‌गार प्रकट किये थे ---'हिन्दी को मै राष्ट्रभाषा इसलिये नही मानता कि इसे बीस करोड व्यक्ति बोलते और समझते है, इसलिये भी नही कि भारतीय सस्कृति की गगा इसमें अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित हो रही है, इसलिये भी नही कि यह प्रगतिशील सरस और वैज्ञानिक है, मै इसे राष्ट्रभाषा केवल इसलिये मानता हूँ कि इसी मे हमारी दासता की प्रतीक अग्रेजी को निकाल भगाने की क्षमता है। ' टण्डन जी की सुवाणी सुफल हुई और हिन्दी स्वतत्र भारत की राष्ट्रभाषा के आसन पर अभिषिक्त हुई। फिर भी कुछ लोगो को उपर्युक्त उद्धरण के अतिम बारह-चौदह शब्दो की सार्थकता मे सन्देह है । मेरा यह तुच्छ प्रयास इसी सन्देह के उन्मूलन के लिये है । हिन्दी आज इतनी उन्नत नही जितनी अग्रेजी तो इसका कारण यह नही है कि उसमे अग्रेजी के समान विकसित होकर समृद्धशाली बनने के अकुर विद्यमान नही है, वरन् केवल इसलिये कि उसे पनपने का अवसर ही नही दिया गया । यदि हिन्दी मे भूगोल और भूगर्भ-शास्त्र जैसे वैज्ञानिक विषयो के उच्चतम् कक्षाओं के योग्य ग्रन्थ लिखे जा सकते है, तब साधारण पुस्तके तो लिखी ही जा सकती हैं, यह निर्विवाद है। यही मेरा कहना है और यही मेरे दुस्साहस का कारण भी । जहाँ तक अधिकार का प्रश्न है, मुझे महाकवि हरिऔध के निम्नलिखित शब्दो से बडा प्रोत्साहन मिला है---'बने या न बनें, सेवा-प्रणाली सुखद या हृदयग्राहिणी हो या न हो, मातृभाषा की सेवा करने का अधिकार सभी को है।' अपेक्षाकृत नीची कक्षाओ के प्रति भी मै उदासीन नही हूँ । 'आरम्भिक आपरीक्षण'

(Elementary Survey) व्यवहारिक एव प्रायोगिक भूगोल (Practical and Experimental Geography) आदि मेरी रचनाये—इसी दिशा के प्रयास के परिणाम है।

सन् १९४९ ई० मे मैने 'प्राकृतिक भूगोल की भूमिका' लिखना आरम्भ किया था। यह ग्रन्थ चार भागो मे विभक्त है—(१) अवनि (२) उदधि (३) अन्तरिक्ष तथा (४) भू सैद्धान्तिकी। स्पष्ट है, कि यह कृति मेरे अभीष्ट ग्रन्थ का चतुर्थ खण्ड मात्र है। सन् १९५० ई० मे इस ग्रन्थ का लेखन कार्य समाप्त हो गया होता, किन्तु कुछ मानवजन्य परिस्थितियो के कारण मुझे इसे स्थगित कर देना पडा। सन् १९५१ ई० मे नागपुर विश्वविद्यालय की भूगोल की एम० ए० कक्षा का अध्यापन-कार्य करते समय मैने यह अधूरा काम फिर से हाथ मे ले लिया और इसकी कुछ प्रगति भी हुई। इसी समय भारतीय शिक्षा-जगत मे उच्च कक्षाओ मे शिक्षा के माध्यम का प्रश्न उठा। अनेक विद्वानो ने हिन्दी की शक्ति पर सन्देह प्रकट किया। मैने सोचा कि हिन्दी के पक्ष की पुष्टि के लिये किसी वैज्ञानिक विषय का कम से कम एक ऐसा ग्रन्थ भी तो हो जो उच्चतम् कक्षाओं के काम आ सके। अतएव मैने उपर्युक्त चौथे खण्ड का इसी दृष्टि से परिमार्जन और सवर्धन किया कि वह भूगोल ही नही, वरन् भूगर्भशास्त्र की भी सर्वोच्च कक्षाओ के लिये उपयोगी सिद्ध हो सके। इसी विचार से मैने इसमे भूगोल और भूगर्भ-शास्त्र के एम० ए०—एम० एस-सी० के पाठ्यक्रम मे निर्धारित प्राय. समस्त सिद्धान्तो का समावेश कर दिया है तथा प्रकरणो के अन्त मे परीक्षाओ मे पूछे गए प्रश्न भी दे दिये हैं।

जहाँ तक प्रयुक्त भाषा का सबध है, मैने सस्कृतमयी हिन्दी को अपनाया हैं। इस विषय मे दो मत नही हो सकते। तो भी मैने व्यवहार में आने वाले अन्य भाषाओं के शब्दो का बहिष्कार नही किया है।

इन सिद्धान्तो की रूप-रेखा खीचते समय मेरे मस्तिष्क मे तीन प्रमुख ध्येय रहे है—(१) यथासभव सक्षेप (२) सरलता और (३) स्पष्टता। फिर भी संभव है, मेरी भाषा कुछ पाठको को क्लिष्ट लगे। यथार्थता (Exactness) और परिशुद्धता (Accuracy) का बलिदान किये बिना यह पुस्तिका और सरल न हो सकती थी ? यह मुझे स्वीकार न था। सुविज्ञ पाठक भी इससे सहमत होगे।

मेरा केवल इतना ही तात्पर्य है कि छात्रगण इन सिद्धान्तों की रूप-रेखाओं को पढकर उनकी वास्तविक पृष्ठभूमि से अवगत हो जावें—तनन्तर अंग्रेजी के प्रामाणिक ग्रन्थों के अध्ययन द्वारा अपने ज्ञान की अभिवृद्धि करें। मैंने इस ग्रन्थ में नवीन से नवीनतम विचारों का भी समावेश करदिया है। उदाहरण के लिये पृथ्वी की उत्पत्ति के संबंध में होयल एव लिटिलटन का सिद्धान्त।

यथासंभव भारतीय उदाहरण देने का भी मैंने प्रयास किया है, जैसे भूसन्तोल के सबंध मे ।

विषय-विन्यास की दृष्टि से हिन्दी मे अपने ढग का यह प्रथम ग्रन्थ हो सकता है, किन्तु मौलिकता का मिथ्या अभिमान मैं नहीं करना चाहता। वस्तुत इस प्रकार का कोई ग्रन्थ सर्वांग मौलिक हो भी नही सकता। जिन लेखकों की कृतियो से सहायता ली गई है उनमे स्टियर्स[1] ऊलरिज-मॉरगन,[2] डुटॉयट,[3] वौरसैस्टर,[4] वाडिया,[5] होम्स[6] और लेक[7] का मैं विशेष आभारी हूँ।

इस तुच्छ कृति को गुरुवर श्रद्धेय डा० राजनाथ जी पी-एच०, डी० (लन्दन) के कर कमलो मे समर्पित करते हुए मुझे सकोच हो रहा है। 'जयद्रथ-बध' के आरम्भ मे कविवर श्री मैथिलीशरण जी गुप्त ने आचार्य द्विवेदी जी के प्रति जो विनय की है, उसकी पुनरावृत्ति ही मेरे लिये यहाँ पर उचित होगी—

× × ×

'आर्य !
पाई तुम्ही से वस्तु जो, कैसे तुम्हे अर्पण करूँ?
पर क्या परीक्षा रूप मे पुस्तक न यह आगे धरूँ ?
अतएव मेरी धृष्टता यह ध्यान मे मत लीजिये।
कृपया इसे स्वीकार कर कृत-कृत्य मुझको कीजिये।।'

आदरणीय डा० विद्यासागरजी दुबे ने इस ग्रन्थ की प्रस्तावना लिखकर मुझे अनुगृहीत ही नही गौरवान्वित भी किया है। सरस्वती-विहार नागपुर के

---

1. Steers I. A, The Unstable Earth. Some recent (views in Geomorphology (Mathuen & Co. Ltd, London)
2. Woolridge S. W, and Morgan R. S, The Physical Basis of Geography An outline of Geomorphology (Long man Green & Co. New york)
3 Du Toit, A L, Our Wandering Continents An hypothesis of Continental Drifting (Oliver nnd Boyd Edinburgh)
4. Worcester, P. G., A Text-Book of Geomorphology (P. van Nostrend Comp. Ino. Toronto).
5. Wadia D. N, Geology of India (Mac Millan & Co. London).
6 Holmes A, Principles of Physical Geology (Thomas Nelson & Co. Ltd Paris)
7 Lake P., Physical Geography (University Press Cambridge,)

सचिव डा० लोकेशचन्द्र डी० लिट० ने व्याकारण संबधी सशोधन किये है, एतदर्थ मै उनका हार्दिक आभारी हूँ।

अन्त में मै अपने सुविज्ञ पाठको और सहृदय आलोचको का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट करना चाहूँगा कि मेरी यह कृति हिन्दी मे अपने प्रकार का प्रथम प्रयास है, अतएव इसमे दोष तो होगे ही। मै उन्हे विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि रचनात्मक समालोचना का मै सदैव स्वागत करूँगा और उचित सशोधन सुझाने के लिये मै उनका कृतज्ञ होऊँगा। इसके समस्त दोषो का परिहार दूसरे सकरण मे अवश्य हो जायगा। इस समय सहृदय पाठक क्षीर-नीर विवेक से काम लें और त्रुटियो के लिये मुझे क्षमा करे।

मेरी इस साधना द्वारा विद्यार्थी-समाज का यदि कुछ भी लाभ हो सका, तो मै अपने श्रम को सफल समझूगा।

—जनार्दन प्रसाद श्रीवास्तव

भूगोल–विभाग
टी० डी० कॉलिज
जौनपुर
२० ७-१९५५

अनुक्रमणिका

प्रथम परिच्छेद

"पृथ्वी की उत्पत्ति, आयु और आन्तरिक रचना"

(THE ORIGIN, AGE AND INTERIOR OF THE EARTH)

[क] पृथ्वी की उत्पत्ति

पृथ्वी की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे मुख्य विचारधारायें निम्नांकित हैं :—

१. काण्ट का सिद्धान्त

रूप-रेखा :—काण्ट एक जर्मन दार्शनिक थे। इन्होने सौरमडल की उत्पत्ति का सर्वप्रथम सिद्धान्त सन् १७५५ ई० मे प्रस्तुत किया। इनके सिद्धान्त के
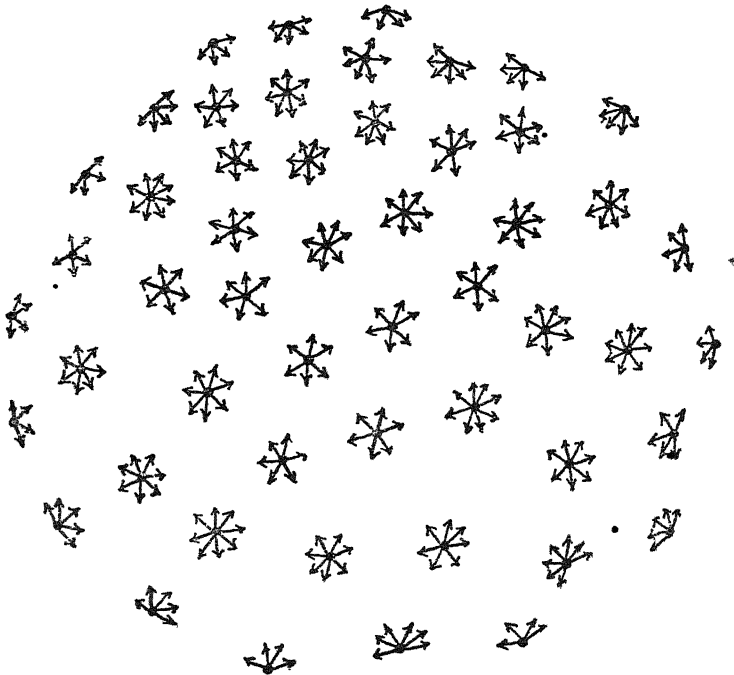
चित्र १—आद्य-पदार्थ के कण

अनुसार, आरम्भ मे आद्य-पदार्थ (Primordial Matter) के कठोर कण

ब्रह्माण्ड भर मे बिखरे हुए थे (चित्र १)। ये अलौकिक रीति से उत्पन्न हुए थे। पारस्परिक-गुरुत्वाकर्षण (Gravitational Attraction) के कारण ये एक दूसरे मे टकराने लगे। इससे ताप उत्पन्न हुआ। यही नही, गतियो (Velocities) के एक ही दिशा मे केन्द्रित हो जाने से, ये परिभ्रमण करने लगे। इस प्रकार, कालान्तर मे, आद्य-पदार्थ के एक शीतल एव ठोस मेघ ने उष्ण, वातीय (Gaseous) परिभ्रामी (Rotating) नीहारिका (Nebula) का रूप ग्रहण कर लिया। चित्र २ मे एक नीहारिका प्रदर्शित की गयी है। काण्ट के अनुसार सौरमण्डल की उत्पत्ति नीहारिका से हुई है। नीहारिका के परिभ्रमण का वेग क्रमश बढता गया। वेग-वृद्धि के कारण केन्द्रापसारी बल (Contrifugal force) भी बढने लगा, जिससे उसके मध्यवर्ती भाग मे (अर्थात् विषुवतरेखीय प्रदेश मे) उभार (Bulge) हो गया। परिभ्रमण के साथ साथ यह उभार भी बढने लगा। अन्त मे एक
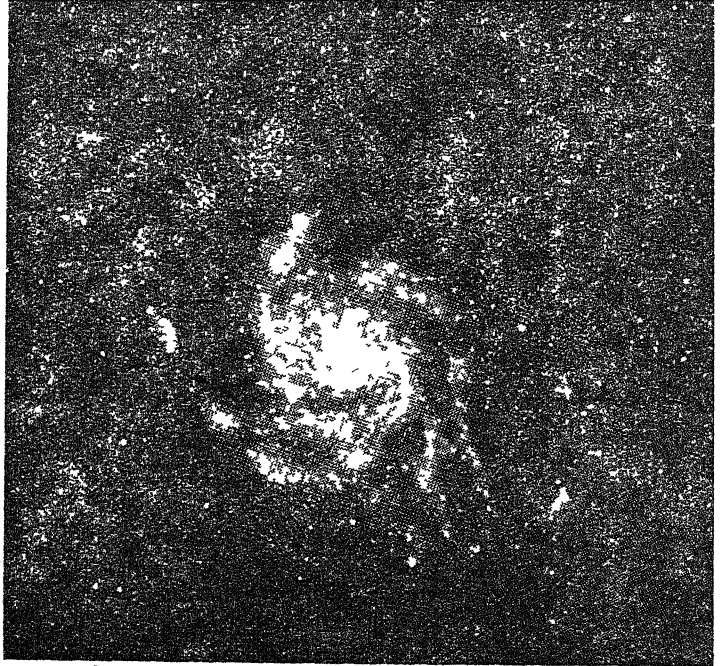
चित्र २—नीहारिका

ऐसी अवस्था आ गई जब उभार के पदार्थ वलय (Ring) के रूप मे पृथक होकर निकलने लगे। इस प्रकार नौ वलय बनकर अलग हो गए। ये

वलय द्रवीभूत होकर ग्रह बन गए और मध्यवर्ती अवशिष्ट पुञ्ज सूर्य कहलाने लगा। इन ग्रहो के घनीभूत होने से पहले इनसे इसी रीति से उपग्रह बने है। इस प्रकार सौरमण्डल अस्तित्व मे आया। जैसा कि ऊपर के विवरण से स्पष्ट है, काण्ट के सिद्धान्त की आधार-शिला न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का नियम है।

समीक्षा—गति विज्ञान (Dynamics) गणित की एक शाखा है। इसमे उन वस्तुओ की विवेचना की जाती है, जिनमे गति हो। इस विज्ञान मे एक बडा ही प्रसिद्ध सिद्धान्त है, जिसे 'कोणीय आवेग की स्थिरता का सिद्धान्त' (Conservation of angular momentum)[1] कहते है। इसके अनुसार आद्य-पदार्थ के कठोर कणो के आपस मे टकराने से परिभ्रमण उत्पन्न नही हो सकता।

२. लाप्लास (Laplace) की उपकल्पना

रूप-रेखा :—लाप्लास[2] फ्रास के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। सौर-परिवार की उत्पत्ति के विषय मे इनका सिद्धान्त मौलिक नही है। इन्होने काण्ट के सिद्धान्त मे कुछ परिवर्तन कर दिये है। इन्होने अपने सिद्धान्त की रचना सन् १७८९ ई० मे की। इन्होने काण्ट के सिद्धान्त के उन दोषो का निराकरण कर दिया है, जिनके कारण उसका विरोध हुआ। लाप्लास आद्य-पदार्थ की उत्पत्ति के विषय मे कुछ भी नही कहते और अपने सिद्धान्त का श्रीगणेश एकदम ऐसी नीहारिका से कर देते है, जो उष्ण वाति से निर्मित है और परिभ्रामी है। इस प्रकार इन्होने अपनी उपकल्पना को 'कोणीय आवेग की स्थिरता के सिद्धान्त' के प्रहार से बचा लिया है। शेष बातो मे यह उपकल्पना काण्ट के ही से समान है। इस सिद्धान्त के अनुसार नीहारिका के शीतल और घनीभूत होने से सौरमण्डल की उत्पत्ति हुई है। शीतल होने से नीहारिका सकुचित हुई, जिससे उसका आयतन घट गया। आयतन घट जाने से उसके परिभ्रमण का वेग बढ गया और साथ ही केन्द्रापसारी बल (Centrifugal force) भी। जब केन्द्रापसारी बल नीहारिका की विषुवत-रेखा पर होने वाले गुरुत्वाकर्षण के बिल्कुल बराबर हो गया, तब नीहारिका मे से पदार्थ के वलय[3] पृथक होकर निकलने लगे—क्योकि ऐसी अवस्था मे उनमे भार[4] नही रह जाता। ये वलय

---

1 The principle of conservation of Angular Momentum states—'If no external forces are acting in a system the angular momentum remains the same and no interaction between the different parts can change its total amount of rotation.'

2. Marquis de Laplace.

3. Rings.

4. Weight.

घनीभूत होकर ग्रह बन गए। इसी प्रकार एक के बाद दूसरा ग्रह बनता रहा और मध्यवर्ती अवशिष्ट पुञ्ज सूर्य बन गया। जिस प्रकार नीहारिका से ग्रह बने है, ठीक उसी रीति से ग्रहो से उपग्रह बन गए है।

समीक्षा

पक्ष मे प्रमाण :— (१) सौरपरिवार का आधुनिक अध्ययन इस उपकल्पना के अनुकूल है।

(२) इस उपकल्पना से इस बात की पुष्टि हो जाती है, कि सौर परिवार के सभी ग्रह एक ही धरातल पर और एक ही दिशा मे परिभ्रमित होते है।

(३) इस सिद्धान्त के अनुसार आरम्भ मे सभी ग्रह वातीय अवस्था[1] मे थे, बाद मे शीतल होने से वे तरल[2] हुए और ठोस पपडी अन्त मे बनी। अन्य साधनो से मिले हुए प्रमाण भी इसकी पुष्टि करते है। उदाहरण के लिये आधुनिकतम भू-भौतिकी की अवधारणाये (Latest Geophysical Conceptions) पृथ्वी की तरल अवस्था का समर्थन करती है।

(४) अन्य नीहारिकाओ का ज्योतिषीय अध्ययन इस सिद्धान्त के पक्ष मे है।

आपत्तियां (१) लाप्लास के अनुसार वातीय नीहारिका लाखो वर्ष उत्तापदीप्त (Incandescent) रही। लॉर्ड कैल्विन ने यहाँ पर यह आपत्ति की है, कि एक प्रसृत वाति (Diffused Gas) इतने अधिक काल तक उत्तापदीप्त कैसे रही।

(२) नीहारिका की वातियो[3] का अणुक वेग (Molecular velecities) इतना तीव्र और अनियमित होगा कि गुरुत्वाकर्षण (Gravitational Force) के कारण उनका ग्रह के रूप मे इकट्ठा हो जाना सम्भव नही प्रतीत होता।

(३) परिभ्रमण के बढ जाने से कोणीय आवेग (Angular Momentum) इतना अधिक नही हो सकता कि उससे नीहारिका विदीर्ण हो जाय।

(४) मोल्टेन का कथन है कि वलयो के घनीभूत होने से ऐसे गोले नही बन सकते जैसे ग्रह है। गति-विज्ञान के अध्ययन मे यह ज्ञात होता है कि ऐसी दशा मे अपेक्षाकृत छोटे और असमान ग्रह बनेगे जो सौरपरिवार के ग्रहो से बिल्कुल ही भिन्न होगे।

---

1. Gaseous State
2. Liquid.
3. Gases.

(५) नीहारिका के कणो मे पारस्परिक सलाग (Cohesion) की मात्रा कम होगी। ऐसी दशा मे वलयो का निर्माण लगातार होगा, रुक रुक कर नही जैसा कि इस सिद्धान्त की कल्पन ह।

(६ इन सभी तथ्यो के अतिरिक्त जब हम वारुण (Uranus) एव हरिग्रह[1] (Neptune) नामक उपग्रहो की ज्ञात प्रतिगामी गतियो (Retrograde Motion) पर विचार करते है, तब हम इसी निष्कर्ष पर पहुचते है कि सोरपरिवार की उत्पत्ति लाप्लास के अनुसार नही हुई है।

३ चैम्बरलिन की ग्रहाणु विषयक उपकल्पना

(Planetesimal hypothesis by Chamberlin)

रूपरेखा—सन् १९०४ ई० मे चैम्बरलिन और मोल्टन (Moulton) नामक दो विद्वानो ने मिलकर यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। इसके अनसार सूर्य और एक अन्य विशाल तारे के पारस्परिक आकर्षण से ग्रह ७स्तित्व मे आये है। इस सिद्धान्त के अनुसार एक अत्यन्त विशाल तारा सूर्य के निकट से गुजरा। जब वह सूर्य के अत्यन्त निकट आ गया तब उसके तीव्र बेला-बल (Tidal Force) के कारण सौर-पृष्ठ विदीर्ण होने लगा और उससे छोटे २ टुकडे निकल कर अलग होने लगे। यद्यपि समस्त ग्रहो की मात्रा सोरमण्डल की मात्रा का केवल ७०० वॉ अश है, तथापि उनमे समस्त परिभ्रमण की शक्ति का ९८% भाग वर्तमान है। अतएव, यह अनुमान किया गया कि सौर-पदार्थ के छोटे २ टुकडे बहुत दूर दूर तक बिखर गये। ये टुकडे चचु (Jet) की आकृति के थे। इन्हे वह महान तारा अपनी दिशा मे खीच ले गया। इन टुकडों के अन्दर अपेक्षाकृत बडे आकार के केन्द्रक (Nuclei) इकट्ठे हो गए और उन्होने सौर-पदार्थ के बिखरे हुए टुकडो को, जिन्हे ग्रहाणु (Planetesimal) कहा गया है, अपने मे मिला लिया। इस प्रकार कालान्तर मे ये बिखरे हुए टुकडे प्रौढ ग्रह बन गए।

समीक्षा—इस सिद्धान्त मे अनेक दोष है और विस्तृत विवेचन करने पर असफल सिद्ध होता है। कुछ प्रमुख आपत्तियॉ ये है —

(१) इस सिद्धान्त के अनुसार ग्रह सदैव ठोस रहे है, किन्तु अन्य प्रमाणो से विदित होता है कि पृथ्वी किसी समय तरल अवस्था मे अवश्य थी।

(२) परस्पर टकराने मे ग्रहाणुओ का वाति अथवा धूलि के रूप मे बिखर जाना अधिक उचित लगता है और इकट्ठा हो जाना युक्तिसगत नही प्रतीत होता।

---

1. It appears greenish in telescope.

नीहारिका और ग्रहाणु उपकल्पनाओं की तुलना :—

नीहारिका उपकल्पना	ग्रहाणु उपकल्पना
१. पृथ्वी की उत्पत्ति केवल एक ग्रह से हुई है।	पृथ्वी की उत्पत्ति दो ग्रहो के पारस्परिक आकर्षण से हुई है
२ अपनी आदिम अवस्था मे पृथ्वी वाति (Gas) थी।	अपनी आदिम अवस्था मे पृथ्वी ठोस (Solid) थी।
३ आरम्भ मे पृथ्वी उष्ण थी।	आरम्भ मे पृथ्वी शीतल थी।
४ पृथ्वी का तापमान क्रमश क्षीण होता रहा है।	पृथ्वी का तापमान क्रमश बढता रहा है।
५ पृथ्वी की आदिम अवस्था मे वायुमण्डल वर्तमान था।	पृथ्वी की आदिम अवस्था मे वायुमण्डल नही था।

४. उल्का सम्बन्धी सिद्धान्त (Meteoric Theories)

ऐसे दो सिद्धान्त प्रसिद्ध है :—

(१) **लौक्येर (Lockyer) का सिद्धान्त :—**सन् १९१९ ई० मे लौक्येर ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। यह सिद्धान्त लाप्लास की उपकल्पना का ही परिवर्तित रूप है। जो तर्क उसके विरुद्ध प्रस्तुत किये जाते हैं, इसके विरुद्ध भी वे उतने ही सत्य है। अतएव यह सिद्धान्त भी अस्वीकृत कर दिया गया है।

समीक्षा :—इस सिद्धान्त मे नीहारिका के स्थान पर उल्काओ के समूह की कल्पना की गई है। इनके निरन्तर सघट्टन (Collision) से ताप, प्रकाश और वाति की उत्पत्ति हुई। पारस्परिक आकर्षण के कारण उल्का-समूह का मध्यवर्ती भाग एक निविड केन्द्रीय पिण्ड बन गया, जिसे हम सूर्य कहते है। बहिर्वर्ती उल्का जो सूर्य की परिक्रमा करने लगे, क्रमश इकट्ठे होते गए। ताप द्वारा ये ग्रहो (Planets) मे परिणत हो गए।

आपत्तियाँ

मुख्य आपत्तियॉ ये हैं :—

(१) उल्काओं का इकट्ठा होकर समूह बनाने की उपकल्पना असम्भव सी लगती है। तीव्र वेग से घूमते हुए पिण्डो को निकट लाने मे गुरुत्वाकर्षण नितान्त असमर्थ है।

(२) चैम्बरलिन का कथन है कि नीहारिका की रचना के लिये उल्का पर्याप्त न होगे।

(२) **श्मिडट (Schmidt) का सिद्धान्त** — हाल ही मे डा० ओ० जे० श्मिड्ट ने एक नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इसका सबध भी उल्काओ से है। आकाशगगा (Galaxy) के मध्य भाग मे कुछ धुधला सा पदार्थ रहता है, जो सभव है, उल्काओ से बना हो। इस सिद्धान्त के अनुसार जब सूर्य आकाश-गगा के गुरुत्व-केन्द्र (Centre of Gravity) के निकट से गुजर रहा था, उस समय उसने कुछ उल्का-पदार्थ आकर्षित कर लिया। यह उल्का पदार्थ सूर्य की परिक्रमा करने लगा। कालान्तर मे एक ही दिशा मे गतिशील कण मिलकर एकत्र हो गए और ग्रह बन गए। उपग्रहो की सृष्टि ग्रहाणु कल्पना (Planetesimal Hypothesis) के अनुसार हुई है।

५ जीन्स तथा जैफ्रे का वेला विकर्षण (Tidal Disruption) का सिद्धान्त

रूप रेखा—सन् १९१६ ई० मे जीन्स और जैफ्रे ने मिलकर सौरमण्डल
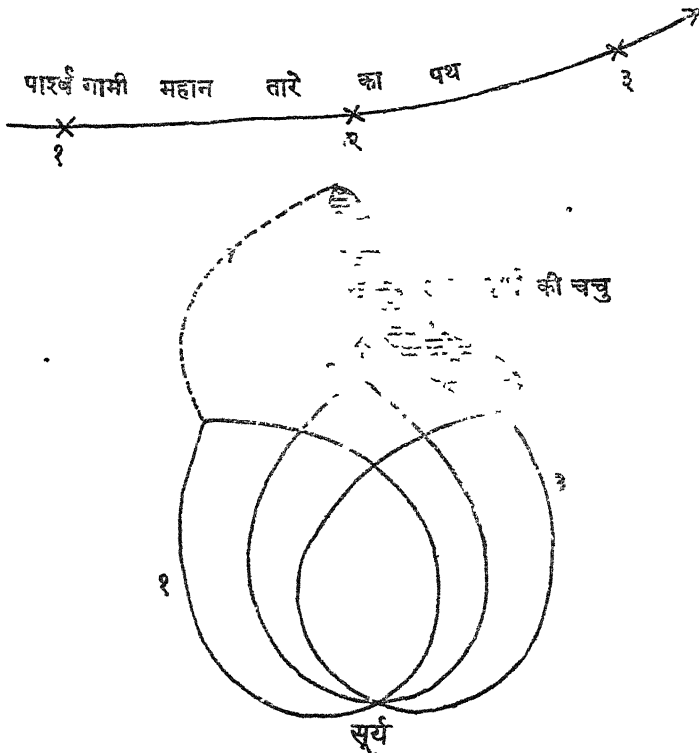
चित्र ३—जीन्स का सिद्धात

की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे एक अन्य ही विवरण प्रस्तुत किया है। यह

सूर्य के वेला-विकर्षण (Tidal Disruption) पर आधारित है। इस सिद्धान्त के अनुसार सूर्य से कई गुना भारी एक तारा उसके इतने निकट से गुजरा कि उसके तीव्र वेला-बल (Tidal Force) के कारण सूर्य विदीर्ण होने लगा और उसमे से सौर-पदार्थ के टुकडे निकलकर पृथक होने लगे। इन टुकडो की आकृति चचु (Jet) जैसी थी, अर्थात् ये बीच मे मोटे और सिरो पर पतले थे। इनमे पदार्थ की मात्रा इतनी पर्याप्त थी कि ये बिखरे नही। चचु के अन्दर इन्होने गुरुत्वाकर्षण के कारण गुच्छो का रूप धारण कर लिया। कालान्तर मे यही गुच्छे स्वतत्र ग्रह बन गये और सूर्य की परिक्रमा करने लगे। फिर बाद मे इन ग्रहो ने सूर्य के (और सभवत उस महान तारे के भी) आकर्षण के फलस्वरूप समान क्रिया द्वारा उपग्रहो को जन्म दिया। इस उपकल्पना के अनुसार उपग्रह वातीय अवस्था से तरल अवस्था मे आये और तब घनीभूत हुए।

समीक्षा

पक्ष मे प्रमाण—(१) महान तारे के वेला बल के कारण सौर-पदार्थ के जो टुकडे निकलेगे वे बीच मे मोटे और सिरो पर पतले होगे। सौर मण्डल की रचना, जो चित्र ४ मे दर्शायी गई है—इसका समर्थन करती है।

(२) इस सिद्धान्त मे पृथ्वी की तरल अवस्था का भी उल्लेख है, जो भौमिकीविदो (Geologists) की धारणाओ के अनुकूल है।
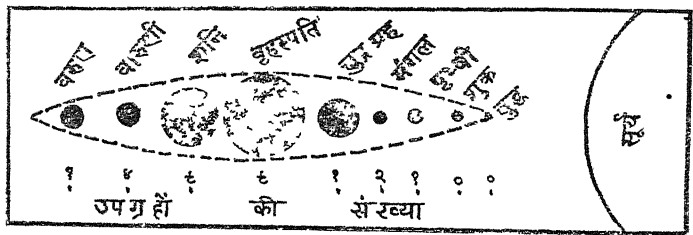
चित्र ४—सौर मण्डल

(३) यह सिद्धान्त केवल ग्रहो का ही नही, वरन् उपग्रहो और क्षुद्र ग्रहो की भी उत्पत्ति, स्थिति और आकार का सफल स्पष्टीकरण करता है। इसके अतिरिक्त इसकी सहायता से सौर परिवार की अनेक बाते समझ में आ जाती हैं।

विपक्ष मे प्रमाण—इस सिद्धान्त के अनुसार मगल का आकार बडा होना चाहिये था किन्तु यह सत्य नही है (चित्र ४)। इस शका का समाधान इस प्रकार किया जा सकता है, कि बहुत सम्भव है पहले वह बडा ही रहा हो और बाद मे उसका आकार घट गया हो।

६ होयल और लिटिलटन का सिद्धान्त
(Hoyle-Lyttleton Theory)

द्वितीय महायुद्ध आरम्भ होने के कुछ ही पहले कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के दो नवयुवक गणितज्ञो ने मिलकर एक बिल्कुल नवीन सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। इन विद्वानो के नाम फ्रैड होयल (Fred Hoyle) तथा रैमण्ड लिटिलटन (Raymond Lyttleton) है। प्राय यह कहा जाता है कि ब्रह्माण्ड मे वर्तमान वातीय मेघ के द्रवीभूत होने से ग्रह बने है। इन्होने इस कथन का गणित द्वारा विश्लेषण किया है। ये इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि प्रत्येक ग्रह का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि वह इस वातीय मेघ के पदार्थ को कितना खीच सकता है। किसी ग्रह मे यह पदार्थ ज्यो-ज्यो एकत्र होता जाता है, त्यो-त्यो उसका तापमान भी बढता जाता है। लाखो वर्षो के बाद तापक्रम इतना अधिक हो जाता है कि उससे केन्द्रकीय प्रतिक्रिया (Nuclear Reaction) उत्पन्न हो जाती है। अन्य ग्रह इस केन्द्रकीय प्रतिक्रिया से शक्ति (Energy) ग्रहण करते है। इसके बाद का इतिहास बहुत कुछ इस तथ्य पर निर्भर करता है कि यह तारा जिस क्षेत्र से गुजरता है, उसमे वातीय मेघ की मात्रा कितनी है। जहाँ तक सूर्य का सम्बन्ध है, वह अभी तक ऐसे क्षेत्रो से गुजरता रहा है जिनमे वातीय मेघ की मात्रा बहुत कम थी, अतएव उसने बहुत ही कम पदार्थ ग्रहण किया है। यही कारण है कि वह अभी तक मध्यम वर्ग का औसत तारा बना हुआ है। हमारे लिये यह सौभाग्य का विषय है। यदि कोई तारा तेजी से और अधिक मात्रा मे पदार्थ ग्रहण करता है, तो उसका परिणाम भयानक होता है। कुछ लाख वर्षो के बाद ही, उसमे विस्फोट होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार इस विस्फोट के टुकडो से ग्रह बन जाते है। यह किस प्रकार होता है, इसकी विस्तृत विवेचना, होयल और लिटिलटन ने अपने प्रबन्ध मे की है।

निष्कर्ष

विश्व की सृष्टि का विषय बडा ही रहस्यपूर्ण है। इस विषय पर समय-समय पर विद्वानो ने अपने विचार प्रकट किये है। इन विचारों और सिद्धान्तो का प्रतिपादन उतना ही असीम है, जितना स्वय विश्व।

[ख] पृथ्वी की आयु

ससार भर के विचारक बहुत प्राचीन काल से पृथ्वी की आयु जानने के लिये प्रयास करते आ रहे है। इस विषय मे भिन्न-भिन्न देशो मे भिन्न-भिन्न धारणाये प्रचलित है। उदाहरण के लिए, फारस के विद्वानो का विश्वास है कि पृथ्वी १२,००० वर्ष पुरानी है। बाइबिल के अनुसार सृष्टि की रचना ईसा से ४०००

वर्ष पहले हुई। भारतीय पण्डित-वर्ग सूर्य-सिद्धान्त के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पृथ्वी की आयु दो अरब वर्ष है। भाग्यवश, आधुनिकतम वैज्ञानिक रीतियों से भी यही संख्या आती है।

पृथ्वी की आयु निर्धारित करने के लिये अनेक रीतियाँ हैं। इनमें से कुछ प्रमुख नीचे दी जा रही हैं —

१—सागर की लवणता पर आधारित रीति—सागरजल खारा अथवा लवणमय होता है। यह खारापन अथवा लवणता उन लवणों के कारण होती है, जो नदियाँ अपने जल के साथ सागर को समर्पित करती हैं। अतएव लवणता क्रमश बढती जाती है। किसी भी सागर के जल का आयतन निर्धारित किया जा सकता है और उसकी औसत लवणता भी निश्चित की जा सकती है। इन दोनों संख्याओं की सहायता से समस्त सागर मे वर्तमान लवण की मात्रा का आगणन (Estimate) किया जा सकता है। यह भी ज्ञात किया जा सकता है कि एक वर्ष मे लवणता कितनी बढती है। उपर्युक्त संख्याओं की सहायता से पृथ्वी की आयु ज्ञात की जा सकती है। यदि इसे पृथ्वी की यथार्थ आयु न भी माना जाय, तो कम से कम इससे सागर बनने के बाद की पृथ्वी की आयु तो आ ही जाती है। सागर मे वर्तमान सोडियम (Sodium) और कैलशियम (Calcium) के लवणों के अध्ययन से पृथ्वी की आयु लगभग १२ करोड़ वर्ष ठहरती है।

आपत्तियाँ—(१) इस सिद्धान्त मे यह मान लिया जाता है कि आरम्भ में सागर खारे नही थे, वरन् उनका पानी मीठा था। इसका खण्डन कैम्ब्रियन युग के घोंघे और अन्य जीवों के अवशेष करते हैं। इन जीवों का जीवन ही लवणों पर निर्भर है।

(२) अपक्षरण (Erosion) की मात्रा सदैव एक सी नही रही है। कभी अपक्षरण अधिक हुआ है तो कभी कम। उसी के अनुसार लवणता मे भी अन्तर हुए हैं। अतएव, यह कल्पना कि सागर मे प्रत्येक वर्ष नमक की एक निश्चित मात्रा मिलती रही है, युक्तिसंगत नही है।

(३) आग्नेयक्रिया (Igneous Activity) अथवा लावा के संवाहन (Convectional currents in the magma) द्वारा भी बहुत से लवण पृथ्वी के गर्भ से पृष्ठ पर आ गये हैं।

२. अवसादन (Sedimentation) पर आधारित रीति

पृथ्वी की पर्पटी (Crust) बन जाने के बाद हिम, वायु, जल आदि अभिकर्ताओं[1] ने उसके धरातल को घिसना आरम्भ कर दिया। अपक्षरित[2] पदार्थ

1. Agents.
2 Eroded.

सागर में एकत्र होने लगा। तब से लेकर आज तक लगभग ५ लाख फुट मोटा स्तर बन गया है। यदि हमे किसी प्रकार यह ज्ञात हो जाय कि प्रतिवर्ष कितना मोटा स्तर बनता रहा है, तो हम सरलता से पृथ्वी की आयु निर्धारित कर सकते है। अनुसन्धान से ज्ञात होता है कि जलज शिलाओ की अधिक से अधिक मोटाई ५१४,००० फुट है। यह भी निश्चित किया गया है, कि प्रति ८८० वर्ष में १ फुट मोटा स्तर बनता है। इस प्रकार पृथ्वी की आयु लगभग ४० करोड वर्ष आती है।

आपत्तियॉ—(१) अवसादन सदा एक सा नही होता अतएव किसी वर्ष स्तर अधिक मोटा बना होगा, और किसी वर्ष अपेक्षाकृत कम मोटा।

(२) फिर इन स्तरो मे भी अपक्षरण हुआ होगा। उसका विचार भी तो आवश्यक है।

(३) डा० सैमुअल हटन का कथन है कि सागर मे नमक घुला होने के कारण अवसाद अधिक नीचे धँस गये होगे।

३ जीव-विकास पर आधारित रीति

जब पृथ्वी ठण्डी हुई और उसका तापमान इतना क्षीण हो गया कि उस पर प्राणी रह सकें, तब ब्रह्मा ने जीवो की उत्पत्ति की। भूपृष्ठ पर आनेवाले सर्वप्रथम जीव एक ही कोशा (Cell) वाले थे। बहु-कोशावान (Multi-cellular) जीव बाद मे आये। आरम्भ के जीवो मे रीढ की हड्डी नही थी। यही कारण है कि उनके अवशेष नहीं मिलते। बाद के जीवो मे कठोर अग होने लगे, जिस कारण उनके अवशेष मिल जाते है। जीव विकास की सबसे महत्वपूर्ण घटना मानव की सृष्टि है। मानव की विशेषता उसका मस्तिष्क है। एक कोशावाले जीवो से लेकर मानव की सृष्टि तक—जीव-विकास की जो विभिन्न अवस्थाये हुई है—उनका विचार करके पृथ्वी की आयु निर्धारित की जा सकती है। प्राणिकीविदों (Biologists) ने इस रीति से पृथ्वी की आयु लगभग १०० करोड वर्ष निर्धारित की है।

४ ज्योतिष की रीतियाँ

पृथ्वी की आयु ज्योतिष की अनेक रीतियो से निश्चित की जा सकती है। इन रीतियों की विस्तृत विवेचना न सरल है और न यहाँ सम्भव ही। इनमे से दो रीतियो का सकेतमात्र नीचे किया जा रहा है —

(१) पृथ्वी की धुरी की ऊनेन्द्रता (Ellipticity) स्थिर नही है। उसमें अन्तर होते रहते है प्रसिद्ध फ्रासीसी ज्योतिषी लाप्लास ने इसका गभीर अध्ययन किया है और वे उससे इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि पृथ्वी की आयु लगभग ३ करोड १० लाख वर्ष है।

(२) हैरोल्ड जैफ्री ने ज्वार-भाटे के सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी की आयु २५ × १०⁹ वर्ष निर्धारित की है।

५ भौतिक शास्त्र की रीतियाँ

भौतिक शास्त्र की सहायता से भी पृथ्वी की आयु निर्धारित की जा सकती है। ये रीतियाँ भौतिक गुणो पर आधारित है। उदाहरण के लिये शिलाओ की चालकता (Conductivity of rocks) के अध्ययन से उनकी आयु निकाली जा सकती है। यहाँ पर प्रत्येक रीति का उल्लेख सम्भव नही है। केवल एक भौतिक रीति सक्षेप मे नीचे दी जा रही है —

पृथ्वी का अभ्यन्तर अत्यन्त उष्ण है। अतएव भूपृष्ठ से ताप का विकिरण (Radiation) होता रहता है। ताप के निकल जाने से पृथ्वी ठण्डी होती रहती है। यदि पृथ्वी के शीतल होने का वेग निश्चित कर लिया जाय, तो पृथ्वी की आयु ज्ञात की जा सकती है। लॉर्ड कैल्विन ने इस रीति से पृथ्वी की आयु ४ करोड वर्ष निर्धारित की है।

आपत्तियां—(१) पृथ्वी के अन्दर तेजोद्गर (Radio active) पदार्थ है। उनके वियोजन (Disintegration) मे अपरिमित ताप विकसित होता है। इस रीति मे इसका विचार नही किया गया है।

(२) सौर-विकिरण (Solar Radiation) सदैव एक सा नही होता। वह घटता बढता रहता है।

६. तेजोद्गिरण (Radio-activity) पर आधारित रीति

पृथ्वी की आयु निश्चित करने की यह नवीनतम और आधुनिकतम रीति है।

पृथ्वी की पर्पटी मे अनेक तेजोद्गर (Radio-active) पदार्थ विद्यमान है। इन पदार्थों मे यह विशेषता होती है, कि उनके अणुओ (Atoms) का वियोजन (Disintegration) होता रहता है। वियोजन के फलस्वरूप एक तत्त्व दूसरे तत्त्व मे परिणत हो जाता है। जब यह क्रिया होती है तब ताप की वृहत् मात्रा उद्विकसित होती है। इस प्रकार एक तत्त्व से दूसरा, दूसरे से तीसरा, तीसरे से चौथा, चौथे से पॉचवा तत्त्व बनता जाता है। इस प्रकार की शृखला के अन्त मे एक विशेष प्रकार का सीसा (Lead) शेष रह जाता है। इस सीसे के अध्ययन से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आरम्भ मे वह क्या था, उसमे कितने परिवर्तन हुए है, उससे कितना ताप विकसित हुआ है और आरंभिक तत्त्व से उस तत्त्व तक परिवर्तन होने मे कितना समय लगा है। इस प्रकार किसी शिला की, जिसमें इस प्रकार का सीसा विद्यमान हो, आयु निकाली जा सकती है। इस रीति से हम भू-पर्पटी की विभिन्न शिलाओ की आयु निर्धारित

कर सकते है और सबसे पुरानी शिला की आयु से भूपर्पटी की आयु का अनुमान लगाया जा सकता है।

सीसे के समान हीलियम भी तेजोद्गिरण की क्रिया से उत्पन्न होती है और उसकी मात्रा से भी शिलाओ की आयु निर्धारित की जा सकती है। उदाहरण के लिये, शिलाओ की आयु निकालने के दो सूत्र नीचे दिये जा रहे है —

$$\text{शिला की आयु} = \frac{Pb}{Ur} \times 6600 \text{ Million Years}$$ (होम्स के अनुसार)

$$= \frac{He}{Ur} \times 96 \text{ Million Years}$$ (रूथरफोर्ड के अनुसार)

तेजोद्गर तत्त्वो की सख्या लगभग ४० है। इनमे से मुख्य रेडियम, यूरेनियम और थोरियम है। सन् १८९५ ई० मे हैनरी बैक्वेरल ने यूरेनियम के इस गुण का पता लगाया। तदुपरान्त सन् १८९८ ई० मे मैडम क्यूरी ने ज्ञात किया कि थोरियम के लवणो मे भी यह विशेषता पाई जाती है। सन् १९०२ मे श्री एव श्रीमती क्यूरी ने रेडियम का अन्वेषण किया, जो यूरेनियम की तुलना मे १० लाख गुना अधिक तेजोद्गर है। इन तत्त्वो के इसी गुण का उपयोग अथवा दुरुपयोग 'परिमाणु बम' (Atom Bomb) है।

जौन जौली ने खनिजो की आयु निकालने की एक अन्य रीति की खोज की है। यह भी तेजोद्गिरण पर आधारित है। उसने अभ्रक मे बहुत से एककेन्द्रीय[१] वृत्त देखे जिन्हे उसने नैकवर्ण प्रभामण्डल (Pleochroic haloes) की सज्ञा दी। यदि हमे इन वृत्तो का व्यास और वियोजन का वेग ज्ञात हो, तो हम खनिज की आयु ज्ञात कर सकते है।

निष्कर्ष

पृथ्वी की आयु के सम्बन्ध मे आरभ मे जो गणनाये की गई, उनसे इसका मूल्य अपेक्षाकृत बहुत कम आता था। तेजोद्गर पदार्थो की खोज के उपरान्त यह मूल्य लगभग २०००,०००,००० वर्ष आया। आधुनिकतम रीतियो से यह सख्या और भी अधिक आती है। गणनाओ के ये विभेद अन्वेषक को उलझन मे डाल देते है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय मनीषियो ने पृथ्वी की आयु का सही मूल्य निकाल लिया था, किन्तु दुर्भाग्य से उनकी गणनाये अब सुलभ नही है। या तो वे कही छिपी पडी है या आक्रमणकारियो ने उन्हे नष्ट कर दिया है।

(ग) पृथ्वी की आन्तरिक रचना

(The Interior of the Earth)

हमारे पास ऐसे कोई भी साधन नही है, जिनकी सहायता से हम प्रत्यक्षत देख सके कि पृथ्वी के अन्दर क्या है। कुँओ और खानो की गहराई तो बडी ही नगण्य होती है। अभी तक जितने सछिद्र (Bore-holes) किये गये है, उनमे सबसे गहरा लगभग तीन मील का है। जब हम इस तीन मील की गहराई को पृथ्वी के अर्धव्यास के समक्ष रखते है, जो लगभग ४००० मील है, तब हम अनुभव करते है कि पृथ्वी के अन्तर के अध्ययन के लिये सछिद्र नितान्त उपेक्षणीय है। अतएव हमे परोक्ष रीतियो (Indirect methods) की शरण लेना पडती है।

(१) पृथ्वी का अभ्यन्तर

गरम सोते तथा ज्वालामुखी आदि यह प्रमाणित करते है कि पृथ्वी का अभ्यन्तर उष्ण है। पृथ्वी के अन्दर तापमान गहराई के साथ बढता जाता है। यह निश्चित किया गया है कि प्रत्येक ६४ फुट की गहराई के बाद तापक्रम १° फ बढ जाता है। इस हिसाब से पृथ्वी के धरातल से ६० मील नीचे तापक्रम इतना अधिक होगा कि वहॉ पर कोई भी शिला ठोस अवस्था मे नही रह सकती। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि पृथ्वी की पर्पटी लगभग ६० मील मोटी है। अन्य शब्दो मे यदि पृथ्वी को सेव (Apple) मान लिया जाय तो पर्पटी छिलका होगी। आधुनिक खोजो से ज्ञात होता है कि भूपर्पटी मे आन्तरिक भागो की अपेक्षा तेजोद्गर पदार्थ (Radio-active Elements) अधिक मात्रा में वर्तमान है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सभव है अधिक नीचे तापक्रम इतने अधिक वेग से न घटता हो।

पृथ्वी के अभ्यन्तर के विषय मे तीन विचार-धाराये है। कुछ विद्वानो का विचार है कि पृथ्वी का केवल ऊपरी पृष्ठ ठोस है, अन्दर सर्वत्र तरल है। अपने कथन की पुष्टि के लिये ये ज्वालामुखी के उद्गारो का उदाहरण देते है। यदि यह कथन सत्य होता तो यह तरल पदार्थ सूर्य और चन्द्रमा के आकर्षण से प्रभावित अवश्य होता और इस प्रकार पृथ्वी के धरातल पर ज्वार (Tide) होते। किन्तु वास्तव मे ऐसा नहीं होता। अतएव यह विचारधारा अमान्य सिद्ध होती है। दूसरी विचारधारा यह है कि पृथ्वी का अभ्यन्तर वातीय (Gaseous) है। यह भी असत्य है, क्योकि यदि पृथ्वी के अन्दर केवल वातियाँ (Gases) होती तो सम्पूर्ण पृथ्वी का औसत-घनत्व इतना अधिक न होता

1. Concentric

जितना कि वह है। तीसरी विचारधारा यह है, कि पृथ्वी में एक ठोस आन्तरक (Solid Core) है। यह तथ्य कि दबाव बढ जाने से प्रत्येक पदार्थ का द्रवणांक (Melting Point) बढ जाता है—इसका समर्थन करता है। एक अन्य विचारधारा यह है कि आन्तरक (Core) और पर्पटी (Crust) तो ठोस है, किन्तु मध्य का भाग तरल है।

सम्पूर्ण पृथ्वी का औसत घनत्व ५.५ है और पर्पटी की उपरिष्ट शिलाओ मे से अधिकाश का घनत्व ३ से भी कम है। इससे यह विदित होता है कि केन्द्रीय आन्तरक (Central Core) का घनत्व बहुत ही अधिक है अर्थात् उसका मूल्य लगभग ७ या ८ अवश्य होगा। पहले यह समझा गया कि ऊपर के शिला-स्तरो के वृहद भार के कारण घनत्व इतना अधिक है किन्तु प्रयोग (Fxperiments) इसका खण्डन करते है। प्रयोगो से यह ज्ञात होता है, कि दबाव बढ जाने से घनत्व बढता तो अवश्य है, किन्तु केवल एक निश्चित सीमा तक उसके आगे नही। पृथ्वी के अभ्यन्तर का घनत्व इतना अधिक होना इस प्रकार समझ मे नही आता। अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि पृथ्वी का आन्तरक बहुत भारी पदार्थो से बना है। अनेक प्रमाण इस कथन की पुष्टि करते है, कि वह लोहा और निकैल (Nickel) के मिश्रण से बना है —

(१) पृथ्वी के गोले की परिदृढता (Rigidity) जो इस्पात (Steel) से कुछ ही कम है।

(२) पृथ्वी का चुम्बकत्व—यह अनुमान किया जाता है कि पृथ्वी का यह गुण आन्तरक (Core) मे विद्यमान लोहे और निकैल के कारण ही है। लोहा और निकैल दोनो ही बडे शक्तिशाली चुम्बकीय पदार्थ[1] है।

(३) उल्काओ (Meteorites) के अध्ययन से विदित होता है कि उनकी रचना मे लोहे और निकैल के योगिको (Compounds) का महत्वपूर्ण अश रहता है। वे भी तो इसी सौर परिवार के सदस्य है, अतएव पृथ्वी की रचना उनसे मिलती-जुलती हो सकती है।

आन्तरक (Core) के ठीक ऊपर शिला पदार्थो का एक स्तर है जिसका कम से कम ऊपरी भाग तो अवश्य ही मणिभीय (Crystalline) है। यह स्तर आन्तरक से उसी प्रकार अलग हुआ होगा, जिस प्रकार लोहे के गलाने पर धातु-मैल (Slag) ऊपर आ जाता है। इस प्रकार इससे पृथ्वी की तरल अवस्था का भी समर्थन हो जाता है।

स्वैस (Suess) की उपकल्पना है कि स्थल खण्डो की जलज शिलाओ (Sedimentary cover) के नीचे कणाश्म (Granite) से मिलते-जुलते पदार्थ का स्तर है। इसे उसने सियाल (Sial) कहा है, क्योंकि इसमे सिलिकन

---

1. Magnetic Substances.

और ऐल्यूमीनियम का प्राचुर्य है [Silicon + Aluminium i.e. Si + Al = Sial]। इसके नीचे अधिक घनत्ववाले पदार्थों का अपेक्षाकृत मोटा स्तर है—जिसे उसने सिमा (Sima) कहा है [Silicon + Magnesium i.e. Si + Ma = Sima]।

(२) भूकम्प शास्त्र के प्रमाण (Evidence of Seismology)

जब भूकम्प होता है, तब उसक उद्गम से तरगे सभी दिशाओ मे अग्रसर होती है। चित्र ६ से यह कथन स्पष्ट होगा। इसमे उ विन्दु भूकम्प का उद्गम है। यह पृथ्वी के धरातल से प्राय पचास-साठ मील नीचे होता है। भूकम्प की तरगे तीन प्रकार की होती है —

(१) प्रधान तरगे (Primary Waves)—इन्हे अँगरेजी मे (P-waves) भी कहते है। ये ध्वनि-तरगा के समान होती है। इनमे पदार्थ के कण गति की दिशा मे ही प्रदोलित (Oscillate) होते है।

(२) गौण तरगे (Secondary waves)—इन्हे अँगरेजी मे (S-waves) भी कहते है। ये प्रकाश तरगो से मिलती जुलती है। इनमे कणो का प्रदोलन (Oscillatian) गति की दिशा के प्रति समकोण बनाता है।
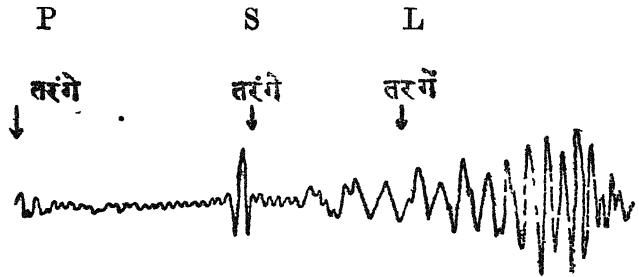
चित्र ५—भूकम्प की तरगे

(३) पृष्ठ तरगे (Surface waves)—इन्हे अँगरेजी मे S-waves भी कहते है। जैसा कि इनके नाम से प्रकट है, ये पृथ्वी के धरातल तक ही सीमित रहती है और अभ्यन्तर मे नही जाती। इनका आवृत्तिकाल (Period) अपेक्षाकृत लम्बा होता है।

चित्र ५ मे भूकम्प की तरगो के प्रकार प्रदर्शित किये गये है। भूकम्प के उद्गम से आरम्भ होकर ये लहरे सभी दिशाओ मे धरातल की ओर अग्रसर होती है। यदि पृथ्वी की रचना सर्वत्र एक सी होती तो ये लहरे सीधी रेखाओ मे आगे बढती, किन्तु वास्तव मे पृथ्वी की रचना सब जगह एक सी नही है। उसमे भिन्न-भिन्न घनत्व के अनेक स्तर है। जहाँ भी दो भिन्न घनत्व के स्तर मिलते है, वही पर इन तरगो मे वर्त्तन (Refraction) और परावर्त्तन (Reflection) होता है। ऐसे समतलो को जो दो भिन्न घनत्व के स्तरो को पृथक करता है

'विचालिता तल' (Anamoly Plane) अथवा 'विरततातल' (Discontinuity Plane) कहते है। पृथ्वी के अभ्यन्तर मे घनत्व के बार-बार बदलने से तरग का मार्ग टेढा हो जाता है।

हाल ही मे नवीन तरगो के दो वर्गों की खोज हुई है —

(१) Pg—Sg तरगे—ये P—S तरगो के समान है, किन्तु इनकी गति का वेग अपेक्षाकृत कम है।

(२) P*—S* तरगे—ये भी P—S तरगो से मिलती-जुलती है, किन्तु इनका गति-वेग P—S वर्ग और Pg—Sg वर्ग की तरगो के बीच का है।

तरगो के मुड जाने से भूपृष्ठ के कुछ प्रदेश भूकम्प से बिल्कुल भी प्रभावित नही होते। ऐसे प्रदेशो को 'छाया-प्रदेश' (Shadow Zone) की सज्ञा दी गई है। चित्र ६ मे उन्हे प्रदर्शित किया गया है।
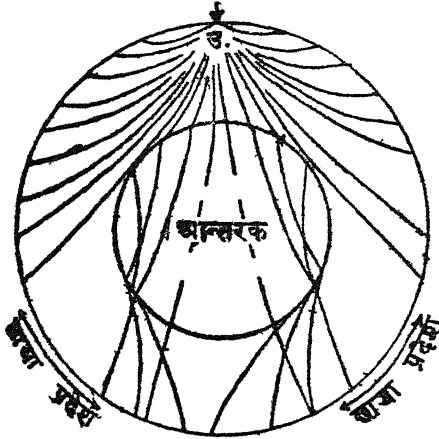
चित्र ६—पृथ्वी मे भूकम्प की तरगो के पथ

इन तीन वर्गों की तरगो के अनुसधान से यह निष्कर्ष निकलता है कि पृथ्वी में तीन प्रकार के स्तर है —

(१) सबसे कम वेगवान तरगे अर्थात् Pg—Sg तरगें हल्के पदार्थों से बने सबसे ऊपर के स्तर मे प्रवाहित होती है।

(२) सबसे अधिक वेगवान तरगे अर्थात् P—S तरगे भारी पदार्थों से बने सबसे नीचे वाले स्तर मे प्रवाहित होती है।

(३) मध्यवर्ती (Intermediate) वेग की तरगे अर्थात् P*—S* तरगे बीच के स्तर मे प्रवाहित होती है।

इस प्रकार तरगो का अध्ययन इस कथन की पुष्टि करता है कि पृथ्वी मे तीन स्तर है, जिनका घनत्व गहराई के साथ बढ़ता जाता है।

किसी भी तरग के गति-वेग से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह जिस स्तर मे से होकर आई है, उसका घनत्व, सपीड्यता (Compressibility) और अन्य भौतिक गुणो का मूल्य क्या है। यह कथन निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। मान लीजिए किसी लडके को यह आदेश दिया जाय कि वह मैदान, मरुस्थल और कीचड प्रत्येक मे एक एक मील दौडे। स्पष्ट है कि वह मैदान की दूरी सबसे शीघ्र पूरी कर लेगा, मरुस्थल मे एक मील दौडने मे उसे अधिक समय लगेगा और कीचड मे पैर फँसने से उसे सबसे अधिक समय लगेगा। अतएव यदि हमे यह ज्ञात हो कि लडके के दौडने का वेग क्या है, तो हम तुरन्त ही यह बतला सकते है कि वह मैदान मे दौडा है या मरुस्थल मे अथवा कीचड मे। ठीक यही दशा भूकम्प की तरगो की भी है। उनके वेग से हम पृथ्वी की आन्तरिक रचना का अनुमान कर सकते है।

भूकम्प की तरगो के अध्ययन से भूपर्पटी की रचना के सम्बन्ध मे ये निष्कर्ष निकलते है :—

(१) ऊपरी स्तर के गुण बहुत कुछ कणाश्म (Granite) से मिलते-जुलते है।

(२) मध्यवर्ती स्तर के गुण बेसाल्ट (Basalt) से मिलते है। डैली और जैफ्रे के अनुसार इस स्तर मे बेसाल्ट ग्लास (Basalt Glass) का प्राधान्य है और होम्स तथा वैजेनर के अनुसार उसमे एम्फिब्रोलाइट (Amphibolite) का प्राचुर्य है।

(३) नीचे के स्तर के पदार्थ बेसाल्ट से भारी है और उनमे ओलीवीन (Olivine) की मात्रा बहुत है। इसे ड्यूनाइट (Dunite) या पैरिडोटाइट (Peridotite) का स्तर कहा गया है।

जहाँ तक मोटाई का सम्बन्ध है, जैफ्रे का विचार है कि ऊपरी स्तर (योरप के नीचे) १०, १२ किलोमीटर मोटा है और मध्यवर्ती स्तर २०-२५ किलोमीटर। जर्मनी और जापान के भूकम्पवेत्ता इन स्तरो को और भी मोटा मानते है। नीचे के स्तर की मोटाई के विषय मे निश्चित सख्याये नही दी गई है—तो भी इतना तो निर्विवाद है कि—वह ऊपर के दोनो स्तरो से अधिक मोटा है।

यह ज्ञान हुआ है कि L तरगो का वेग स्थल की अपेक्षा सागरनितल में (विशेषकर प्रशान्त नितल मे) अधिक है। इससे यह विदित होता है कि कणाश्म (Granite), जिससे स्थल-खण्ड बने है, सागर नितल मे कम है। L तरगो का वेग अटलाण्टिक की अपेक्षा प्रशान्त नितल मे अधिक है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अटलाण्टिक नितल मे अब भी कणाश्म (Granite) काफी मात्रा में वर्तमान है।

L तरगे पृष्ठ तक ही सीमित है अतएव उनसे पृथ्वी के अन्तर का कुछ भी

ज्ञान नही होता। पृथ्वी के अभ्यन्तर के जानने के लिये P—S तरगों का अध्ययन आवश्यक है। गहराई के साथ इन तरगो का गति-वेग बढता जाता है। यह वृद्धि प्राय पृथ्वी की त्रिज्या के ३/१० भाग की गहराई तक पाई जाती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इतनी गहराई तक पृथ्वी स्थिति-स्थापक (Elastic) ठोस पदार्थ से बनी है। ओल्डैम (Oldham) ने सन् १९०६ ई० मे यह ज्ञात किया कि अभिकेन्द्र (Epintre) से १२०° या अधिक के अन्तर पर तरगे लुप्त हो जाती है। क्योकि ये तरगे तरल पदार्थों मे प्रवाहित नही होती अतएव इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि पृथ्वी का आन्तरक (Core) आधी त्रिज्या तक फैला हुआ है और वह तरल है। आधुनिकतम खोजो से कुछ और बातो का पता चला है किन्तु उनसे मुख्य निष्कर्ष मे कोई अन्तर नही पडता।

(३) पृथ्वी के अभ्यन्तर के स्तर

(The Zones of the Earth's Interior)

पृथ्वी की आन्तरिक रचना के विषय मे विद्वानो के भिन्न-भिन्न मत है। चित्र ७ मे एक बहुजनमान्य मत प्रदर्शित किया गया है। इसके अनुसार पृथ्वी मे निम्नलिखित स्तर है :—

(१) आन्तरक (Core)—आयतन मे यह पृथ्वी का छटवाँ भाग है। पृथ्वी के चुम्बकत्व (Magnetism) और परिदृढत्व (Rigidity) से भी

चित्र ७—पृथ्वी की आन्तरिक रचना

इसका समर्थन होता है। यह लोहे और निकैल (Nickel) के मिश्रण से बना है। इसका घनत्व ११.६ है।

(२) लोहे और मिश्रित सिलिकेट का स्तर—इसकी मोटाई लगभग १७०० किलोमीटर है। आयतन मे यह पृथ्वी का चौथाई भाग है। इसके ऊपरी भाग मे मुख्यत सिलिकेट है और निचले भाग मे मुख्यत लोहा है।

(३) सिलिकेट का भीतरी स्तर—इसकी मोटाई लगभग ११४० किलोमीटर है। इसका घनत्व ३ १ से ४ ७५ तक है।

(४) सिलिकेट का ऊपरी स्तर अथवा बाह्य पृष्ठ—इसकी मोटाई लगभग ६० किलोमीटर है। इसका घनत्व २ ७ से २ ९ तक है।

इस प्रकार की सरचना का समर्थन निम्नलिखित विज्ञान भी करते है —

(१) विश्वोत्पत्ति शास्त्र (Cosmogeny)

(२) भौतिक शास्त्र विशेषकर शिलाओ की सपीड्यता का प्रायोगिक अध्ययन (Experimental studies in the compressibility of rocks)

(३) उल्का-विज्ञान (The Science of Meteorites.)

प्रश्नावली

1 Discuss the principal theories concerning the origin of the earth. (Ban M Sc Geol. 1951).

2. What are the latest views on the origin of the earth? Discuss the merits of the various theories.
(Ban. M.Sc. Geol 1949).

3. Trace the evolution of ideas concerning the origin of the earth. Discuss the recent theory in detail.
(Ban. M.Sc. Geol. 1940).

4 Enumerate the various theories of the origin of the solar system and discuss fully how the latest one is an improvement on others. (Ban M.Sc. Geol. 1938).

5. What are the defects of Laplace's hypothesis of the origin of the solar system? Give an account of the tidal theory and explain its merits. (Ban M.Sc. Geol. 1936).

6. Describe any one of the radio-active methods of determining the age of a rock.
(Lucknow M. Sc. Geol. 1951).

7. Give an account of the different methods of estimating the age of the earth. (Banaras M.Sc, Geol. 1948).

8. What are the various methods of determining the

age of the earth? Which of them do you think more satisfactory and why? (Banaras M Sc. Geol. 1939).

9 Describe the salient features of the most reliable method by which we can measure the age of the earth in solar years and give reasons as to why you regard the method to be reliable (Lucknow M Sc. 1949)

10. Discuss the different views held in respect of the crust and the sub-stratum of the earth

(Lucknow M.Sc. Geol. 1951).

11. Write an essay on the physical state of the earth's interior. (Ban M A. & M.Sc. Geog. 1949).

12 Outline the views advanced by geologists and geophysicists regarding the constitution of the earth's interior, giving in each case the evidences on which they are based. (Ban. M.Sc. Geol. 1950).

13. Write an essay on the interior constitution of the earth. (Ban. M Sc Geol. 1948 and 1945).

14. Summarize the nature of the interior of the earth and explain fully the reasons that led to their formation.

(Banaras M.Sc Geol. 1951)

15 Sketch in outline a picture of the earth s metallic nucleus and the surrounding rock-shells with the help of earthquake records. (Banaras M Sc. Geol. 1951).

16. Sketch briefly a picture of structure of the earth How do seismograph records provide the most powerful available means of exploring the earth's interior ?

(Agra B A. Geography 1952).

17 Give a resume of the present state of our knowledge about the internal structure and constitution of the earth. Discuss evidence on which it is based. Draw a neat diagram to illustrate your answer.

(Banaras M.A. and M.Sc Geog, 1953).

18. Discuss the main theories in regard to the composition and physical state of the interior of the earth

(Banaras M.Sc. Geology 1953).

द्वितीय परिच्छेद

"महाद्वीपों और महासागर-नितलों की उत्पत्ति तथा स्थायित्व"

[THE ORIGIN AND PERMANENCY OF CONTINENTS AND OCEAN-BASINS]

(क) उत्पत्ति विषयक प्रमुख उपकल्पनायें

महाद्वीपों और महासागरो की उत्पत्ति के सबध मे अनेक उपकल्पनाये की गई है। इनमे से कुछ प्रमुख अत्यन्त सक्षेप मे नीचे दी जा रही है —

(१) **लॉर्ड कैल्विन**—सभव है, पृथ्वी की वातीय प्रावस्था (Gaseous Phase) समाप्त होने के पूर्व महाद्वीप न्यष्टि-आतञ्च (Nuclear Clots) रहे हो अर्थात् अपनी आरम्भिक अवस्था मे जब पृथ्वी गैस का पुज थी—उस समय महाद्वीप ऐसे आकर्षण के केन्द्र थे, जहाँ आद्य पदार्थ विशेष रूप से एकत्र हुए है।

(२) **सौलेस**—पृथ्वी के धरातल के वर्धन (Bulges) और निम्नन (Depressions) वायुमण्डल के दबाव (Atmospheric Pressure) की विभिन्नता के द्योतक है। अन्य शब्दो मे जहाँ पर वायु का भार अधिक था, वहाँ महासागर बन गए और जहाँ वायु का भार कम था वहाँ महाद्वीप बन गए।

(३) **ग्रहाणु (Planetesimal) सम्बधी उपकल्पना**—इसके अनुसार पृथ्वी के प्राकृतिक विभाग ग्रहाणुओ के असम पात[1] के कारण बने है अर्थात् जहाँ पर ग्रहाणुओ का पात अधिक हुआ है, वहाँ महाद्वीप बन गए है और जहाँ इनका पात कम हुआ है, वहाँ महासागर बन गए है।

(४) **लोथियन ग्रीन**—इन्होने यह उपकल्पना की है कि आरम्भ मे पृथ्वी चतुर्नीक (Tetrahedron) के रूप मे थी (चित्र ८)। इस चतुर-नीक के चारो फलको[2] पर महासागर थे और क्षैतिज-तटो[3] पर महाद्वीप थे।

---

1. Infall.
2. Faces.
3. Horizontal Edges.

आर्कटिक महासागर ऊपरी फलक पर था और अण्टार्कटिका महाद्वीप निम्नतम विन्दु पर स्थित था।
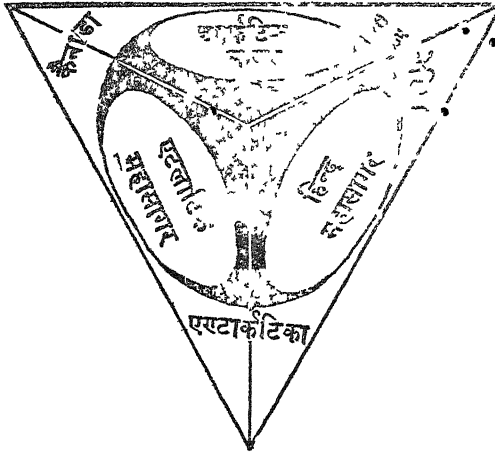
चित्र ८—लोथियन ग्रीन की उपकल्पना

(५) जे० डबल्यू० ग्रेगरी

इन्होने लोथियन ग्रीन की उपर्युक्त उपकल्पना का और भी अधिक विकास किया है। अपने पक्ष के समर्थन के लिये इन्होने अनेक भौगोलिक तथ्य उपस्थित किये है :—

(१) उत्तरी गोलार्ध मे स्थल का आधिक्य।

(२) महान भौगोलिक इकाइयो—अर्थात् महाद्वीप और महासागरों की तिकोनी आकृति।

(३) स्थलखडो का ध्रुवो के प्रति त्रिविकरक (Tri-radial) विन्यास।

(४) स्थलखण्डो और महासागरो का पारस्परिक प्रतिध्रुवीय (Anti-podal) होना।

इतने अनुकूल प्रमाण होते हुए भी, दुर्भाग्य से, गणित का एक ही तथ्य इस उपकल्पना को असफल सिद्ध कर देता है —

'चतुरनीकीय विरूपण (Tetrahedral Deformation) समतोल की आकृति (Figure of equilibrium) के अनुरूप नहीं है।' [1].

(६) प्रो० लैपवर्थ

इनके अनुसार महाद्वीप और महासागर विस्तृत भजो (Broad Folds) के प्रतिनिधि है। महाद्वीप शीर्ष (Crest) के द्योतक है और महासागर पाद (Trough) के।

1. A tetrahedral deformation does not correspond with a figure of equilibrium.'

सिद्धान्त की समीक्षा

प्रथम तो ऐसे कोई भी प्रमाण नही है, जिनसे यह सिद्ध होता हो कि महाद्वीप और महासागर भज है, फिर यदि उन्हे भज मान भी लिया जावे, तो उनके बनने की क्रिया स्पष्ट नही होती ।

अतएव, लैपवर्थ की उपर्युक्त उपकल्पना अस्वीकृत कर दी गयी ।

(७) लव

जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है, लैपवर्थ की उपकल्पना अस्वीकृत कर दी गई थी, किन्तु लव ने इसे पुन जीवन प्रदान कर दिया । इन्होने गणितीय विश्लेषण (Mathematical Analysis) से यह सिद्ध किया ह कि यदि किसी भोम-पदार्थ [1] का भ्वाकृष्टि-केन्द्र (Centre of Gravity) और आकृति-केन्द्र (Centre of Form) एक ही विन्दु पर नही होता है, तब उसमे विरूपण [2] होता है अर्थात् उसका कुछ भाग ऊपर उठ जाता है और कुछ अश नीचे धस जाता है । इस धारणा के अनुसार जैसा विन्यास (Configuration) होना चाहिये, महाद्वीपो की आकृति बहुत कुछ वैसी ही है ।

समीक्षा

नवीन भूभौतिकीय अवधारणाये (Geo-Physical Conceptions) इस उपकल्पना के अनुकूल नही है ।

(८) जीन्स

इनके अनुसार चन्द्रमा को जन्म देने के पश्चात् तथा एक अन्य उपग्रह को जन्म देने के पूर्व जब पृथ्वी रुचिफल (Pear) के आकृति की थी, तभी
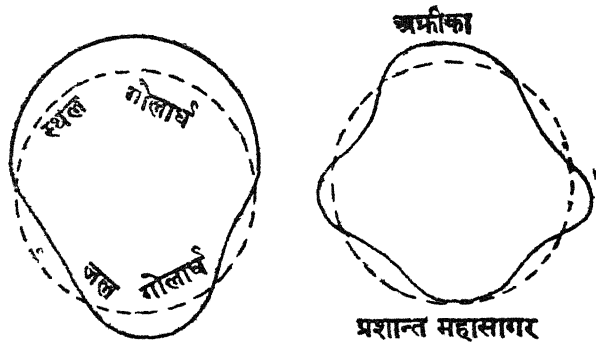
चित्र ९—जीन्स तथा सौलैस के अनुसार पृथ्वी का विरूपण

1. Earth-body.
2. Deformation.

उसमे घनीभवन हुआ। स्पष्ट है, कि ऐसी पृथ्वी मे निम्नलिखित अवयव अवश्य होगे—(१) एक स्थल-गोलार्ध (२) रुचिफल की ग्रीवा के अनुरूप महासागर की वलयाकार मेखला और (३) स्थल गोलार्ध के प्रतिध्रुव (Antipodal) एक छोटा द्वीप। चित्र ९ इस कथन की पुष्टि करता है। यदि जीन्स के अनुसार पृथ्वी की आरभिक रचना को सही मान लिया जावे तो उसके शीतल होने के समय दोनो गोलार्धो मे पारस्परिक आकर्षण होगा, जिसके फलस्वरूप विषुवतीय कटिबन्ध मे वर्धन (Bulges) उत्पन्न हो जायँगे।

सौलेस ने यह प्रदर्शित किया है कि पृथ्वी के स्थल और जल का वर्तमान वितरण बहुत कुछ उपर्युक्त उपकल्पना के अनुरूप है।

जीन्स तथा सौलेस की उपर्युक्त उपकल्पना के सन्दर्भ मे औसमण्ड फिशर (Osmond Fisher) के उस सुझाव की ओर सकेत कर देना उचित होगा, जिसके अनुसार प्रशान्त-महासागर स्थलमण्डल से चन्द्रमा के पृथक हो जाने के फलस्वरूप उत्पन्न चकता[1] का द्योतक है।

९. स्वैस (Suess) का सिद्धान्त

स्वैस के अनुसार भूपर्पटी को दो विभागो मे बाँटा जा सकता है:—

(१) अवरोधी भाग (Resistant Parts)

(२) अनवरोधी भाग (Non-resistant Parts)

(१) अवरोधी भाग— ये इतने अधिक कठोर है, कि इनपर भजन की क्रिया (Folding) का कोई भी प्रभाव नही पडता। इनके अतर्गत कैनाडा (जिसे लॉरैन्शियन शील्ड भी कहते है), पूर्वी साइबेरिया (अगारालैण्ड) आदि आते है। चित्र १० मे इन्हे विन्दुओ और तिरछी रेखाओ द्वारा दर्शाया गया है।

(२) अनवरोधी भाग—इनकी पर्पटी अपेक्षाकृत निर्बल और कोमल है, अतएव भजन की क्रिया (Folding) से ये तुरन्त प्रभावित होते है।

महाद्वीप अवरोधी पर्पटी पर स्थित है अथवा अनवरोधी पर्पटी के उन भागो पर है जो भजन (Folding) के फलस्वरूप ऊपर उठ गए है। भजन की यह क्रिया महाद्वीपो से ही आरम्भ होती है। दूसरी ओर, महासागर भूपर्पटी के अनवरोधी भाग पर स्थित है अथवा अवरोधी भाग के उन अंशों मे विद्यमान है जो विभगन (Faulting) द्वारा नीचे धस गए है।

(१०) जौली का तेजोद्गिरण (Radio-Activity) का सिद्धान्त

सक्षेप मे, यह सिद्धान्त इस प्रकार है:—

---

1. घाव का चिन्ह

(१) महाद्वीपों के नीचे के स्तर मे सिलिकन (Silicon) और मैगनेशियम (Magnesium) नामक खनिजों का बाहुल्य है। यही कारण है
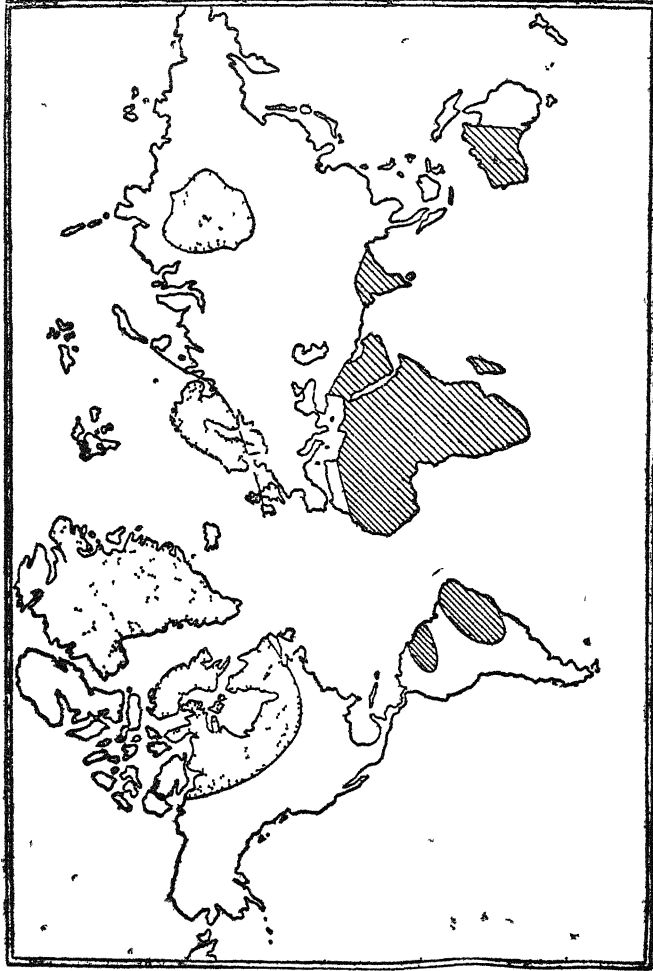
चित्र १०—भूपर्पटी के अवरोधी एवं अनवरोधी भाग (द्रष्टव्य—इस चित्र में लौरेशिया के अवरोधी भाग बिन्दुओं द्वारा तथा गोण्डवानालैण्ड के अवरोधी भाग तिरछी रेखाओं द्वारा प्रदर्शित किये गये हैं)

कि भूपर्पटी के इस स्तर को Si + Ma = Sima (सिमा) कहते हैं। सिमा में तेजोद्गर (Radio-active) पदार्थ बहुत पाये जाते हैं। इन तेजोद्गर पदार्थों का वियोजन (Disintegration) होता रहता है, जिससे बड़ी अधिक मात्रा में ताप उद्विकसित होता है।

(२) सिमा के ऊपर महाद्वीपो का स्तर है। इसमें सिलिकन (Silicon) और एल्यूमीनियम (Aluminium) नामक खनिज प्रचुरता से पाये जाते है। इसीलिये इसे Si + Al = Sial (सियाल) की सज्ञा भी दी गई है। सियाल में सिमा से भी अधिक मात्रा मे तेजोद्गर पदार्थ विद्यमान है। इस स्तर का कुछ ताप विकिरण (Radiation) द्वारा निकल जाता है किन्तु इसके तेजोद्-गर पदार्थों से इतना अधिक ताप निकलता है कि उससे विकिरण द्वारा खोये हुए ताप की पूर्ति सरलता से हो जाती है।

(३) परिणाम यह होता है कि सिमा मे जो ताप एकत्र होता रहता है वह बाहर नही निकलने पाता। इस प्रकार ताप के लगातार एकत्र होते रहने से सिमा का ताप बढ जाता है और फलस्वरूप उसका ऊपरी भाग पिघल जाता है।

(४) सिमा के द्रवित होने से उसका घनत्व घट जाता है, जिससे उसमें तैरने वाले महाद्वीप कुछ नीचे धस जाते है। कालान्तर में जब सिमा ठण्डा होकर पुन जमना शुरू होता है तब उसके ऊपर का सियाल का स्तर आकार मे बडा पड़ता है, जिससे उसमे स्वभावत· सिकुडन पड जाती है। इसी सिकुडन या भजन (Folding) के फलस्वरूप महाद्वीप और महासागर अस्तित्व मे आये है।

(ख) स्थायित्व (Permanency)

भूमिका—भूमण्डल मे विद्यमान जल और स्थल के छोटे मोटे रूप-धेय जैसे झील, तालाब, पहाडी आदि अपक्षरण (Erosion) या उन्मज्जन-निमज्जन (Elevation and subsidence) की क्रियाओ से बन सकते है, किन्तु महाद्वीप और महासागर जैसे महान प्राकृतिक विभाग इस प्रकार कदापि नही बने है। इस प्रकार की कल्पना भी बुद्धि को ग्राह्य नही है। भूपृष्ठ की ये महान इकाइयाँ और उनका विन्यास पूर्वकालीन युगों में कहाँ तक स्थायी रहा है—यह प्रश्न भौमिक जगत में पिछली एक शताब्दी से विवाद का विषय रहा है।

इस विषय मे दो मत है—एक स्थायित्व का पोषक है, तो दूसरा अस्थायित्व का।

(१) **अस्थायित्व की विचारधारा**—निम्नलिखित भौमिकीय प्रमाणो से सिद्ध होता है कि महाद्वीप और महासागर नितल स्थायी नही है —

(१) तट–रेखाओ में विवर्तन (Shifting) होता रहता है।

(२) अनेक स्थलखण्डा मे महासागरीय निक्षेप (Marine Deposits) उपलब्ध हुए है। इससे स्पष्ट है कि कभी न कभी वहाँ पर महासागर अवश्य था।

अस्थायित्व की विचारधारा के अनुयायी भूगर्भवेत्ता इस निष्कर्ष पर पहुचे है —'महासागर-नितल अपेक्षाकृत उथली द्रोणियाँ है । इनमे बालू और पक[1] के निक्षेप स्तरश[2] स्थापित होते रहे है । नितल के ऊपर उठ जाने से महासागर महाद्वीपो मे परिणत हो गए है और महासागरो के जल की बाढ से महाद्वीपो ने महासागरो का रूप ले लिया है ।'

२-**स्थायित्व की विचार धारा** —नवीन अनुसधानो से ज्ञात होता है कि उपर्युक्त विचारधारा सही नही है और महाद्वीप तथा महासागर-नितल स्थायी है ।

सर्वप्रथम सन् १८४६ ई० मे डाना (Dana) ने महाद्वीप एव महासागर-नितल के स्थायित्व का प्रतिपादन किया था। उन्होने कहा कि महाद्वीपो और महासागरो मे स्थानान्तरण कभी भी नही हुआ है और पृथ्वी के इन महान विभागो का विन्यास सदैव स्थायी रहा है ।

जिन प्रमाणो से महासागर-नितल के स्थायित्व का समर्थन होता है, उनमे मुख्य ये है —

(१) सागर नितल की आकृति स्वय अपने स्थायित्व की द्योतक है । उन्नीसवी शताब्दी मे सपन्न ध्वनीकरण (Sounding) से विदित होता है कि महासागर-नितल का प्रच्छेद (Cross-Section) आकृति मे वाष्पीकरण के पात्र (Evoporation Basin) की अपेक्षा रस-तत्तिका (Soup Plate) से अधिक मिलता जुलता है । इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक काल मे अथाह सागर स्थली (Deep Sea Plain) के उन्मज्जन से महाद्वीप कभी नही बने। जब कभी भी नवीन द्वीप अस्तित्व मे आये है, तो उथले महाद्वीपीय निधाय (Continental Shelf) मे ही।

(२) महाद्वीपो मे पाये जाने वाले निक्षेप महाद्वीपीय निधाय (Continental Shelf) तथा महाद्वीपीय प्रवण (Continental Slope) मे पाये जाने वाले निक्षेपो से मिलते जुलते है और अथाह सागर स्थली (Deep Sea Plain) के निक्षेप से सर्वत भिन्न है । अथाह सागर के निक्षेप केवल कुछ महासागरीय द्वीपो (Oceanic Islands) मे पाये जाते है ।

स्थल-सेतुओं (Land Bridges) की अवधारणा

यद्यपि उपर्युक्त प्रमाण अत्यन्त स्पष्ट है, तथापि जीवशास्त्र (Zoology) की कुछ अवधारणाये इसके विरुद्ध है । स्थल के कुछ जीवो का वितरण बडा ही आश्चर्यजनक है । उदाहरण के लिये अन्धे साँप और कुछ विशेष जाति की

1. Mud
2. Layer by Layer.

तितलियाँ केवल दक्षिणी महाद्वीपो मे पाई जाती है। इनके वितरण के स्पष्टीकरण के लिये जैविकीविद् यह कल्पना करते है कि अत्यन्त प्राचीन काल मे ये महाद्वीप सहस्त्रो मील लम्बे स्थल-सेतुओ से मिले हुए थे। कालान्तर मे ये सेतु नष्ट होकर डूब गये। यह कल्पना असम्भव सी लगती है, क्योकि ये सेतु ऐसे हल्के पदार्थो से बने होगे, जिनके डूबने का प्रश्न ही नही उठता। फिर इनसे इतने दूर स्थित देशो का एक साथ हिमनदियो द्वारा प्रभावित होना भी तो स्पष्ट नही होता।

प्रश्नावली

1. What is the evidence for and against the conception of 'Permanency of Continents and Ocean basins'? What theory or theories best explain the present configuration of the earth's surface? (Ban M.Sc. Geol. 1948)'

2. Comment on the following statement—
'Land and sea are almost everywhere antipodal.'
(Ban. M Sc. Geol. 1947)

3 Do you agree with the idea of the permanence of ocean-basins? If not, why? Show in what way the modern theories about the crust of the earth affect this idea. (Ban. M Sc. Geol. 1939.)

4. Give an account of the various views concerning the origin of continents and and oceans
(Ban. M.Sc. Geol. 1936)
(Lucknow M Sc. Geol 1950.)

5. Write a short essay on 'Permanence of oceen Basins.
(Lucknow M.Sc. Geol. 1948 and 1952.)

6. Analyse some of the more important modern views on the permanency or otherwise of continents and oceans.
(Allahabad M.A. Geog. 1947).

7. Discuss fully the formation of ocean-basins dealing carefully with the important hypothesis on this subject.
(Allahabad M A. Geog. 1949)

8 Discuss the relative merits of various theories advanced to explain the fundamental division of the earth's crust into continents and ocean-basins
(Agra M.A Geography 1953).

9 Discuss briefly the origin of ocean basins.
(Agra M A. Geography 1951).

10. Are ocean-basins permanent? Discuss.
(Banaras M A and M.Sc. Geog. 1953).

तृतीय परिच्छेद

महाद्वीपीय प्रवाह

(CONTINENTAL DRIFT)

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

स्नाइडर (Snider) ने सन् १८५८ ई० मे तथा टेलर (Taylor) ने सन् १९०८ ई० में ये विचार प्रकट किये थे कि पूर्वकाल मे महाद्वीप प्रवाहित हुए है, किन्तु इस सिद्धान्त का श्रेय प्रो० वैजेनर को दिया जाता है क्योंकि उन्होंने इसकी पुष्टि के लिये अनेक प्रमाण एकत्र किये और इसे व्यवस्थित रूप प्रदान किया। इन्होने इस सिद्धान्त का प्रणयन सन् १९१२ ई० मे किया था, किन्तु प्रथम महायुद्ध के कारण विज्ञान-जगत् ने इसकी ओर विशेष ध्यान नही दिया। अपने प्रबन्ध (Thesis) का परिष्कार और सशोधन कर इन्होंने उसे सन् १९२२ ई० मे जर्मन भाषा मे प्रकाशित किया। सन् १९२४ ई० मे इसका अँगरेजी सस्करण निकला। तभी से यह सिद्धान्त महान वाद-विवाद का विषय रहा है।

सिद्धान्त के विकास का कारण

भूगर्भ-शास्त्र के अनेक ऐसे प्रमाण मिलते हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है, कि पूर्वकाल मे जलवायु का वितरण वर्तमान काल से बिल्कुल भिन्न था। उदाहरण के लिये राजपूताना मे हमे हिमनदियो (Glaciers) के चिन्ह मिलते हैं, जिनसे ज्ञात होता है, कि वहाँ कभी न कभी अत्यन्त शीतल जलवायु व्याप्त था। इसी प्रकार अण्टार्कटिका मे कोयला पाया जाना वहाँ पर किसी समय अपेक्षाकृत उष्ण जलवायु के होने का द्योतक है। जलवायु के इन महान विभेदनो का स्पष्टीकरण करना, विज्ञान-जगत के समक्ष एक समस्या थी।

इस विषय मे दो ही सभावनाये हो सकती है :—

या तो (१) स्थलखण्ड स्थिर रहे और जलवायु के कटिबन्धों मे विवर्तन होता रहा।

अथवा (२) जलवायु के कटिबन्ध स्थिर रहे और स्थलखण्डो की स्थिति में अन्तर होते रहे।

वैजेनर का सिद्धान्त उपर्युक्त दूसरी सभावना पर आधारित है।

सक्षेप मे, महाद्वीपीय-प्रवाह के सिद्धान्त का विकास पूर्वकालीन जलवायु के महान विभेदनो का स्पष्टीकरण करने के लिये हुआ।

सिद्धान्त की रूपरेखा

इस सिद्धान्त के अनुसार पुराकल्प (Palaeozoic Era) मे —

१—दक्षिणी अमरीका, अफ्रीका, प्रायद्वीपीय भारत (Peninsular India) आस्ट्रेलिया और अण्टार्कटिका एक दूसरे से जुडे हुए थे और एक महान स्थलखण्ड का निर्माण करते थे, जिसे 'गोण्डवानालैण्ड' (Gondwana-land) कहते है।

२—दूसरी ओर उ० अमरीका, यूरोप और एशिया एक दूसरे से जुडे हुए थे और एक दूसरे स्थलखण्ड का निर्माण करते थे, जिसे 'लॉरेशिया (Laurasia) कहते है।
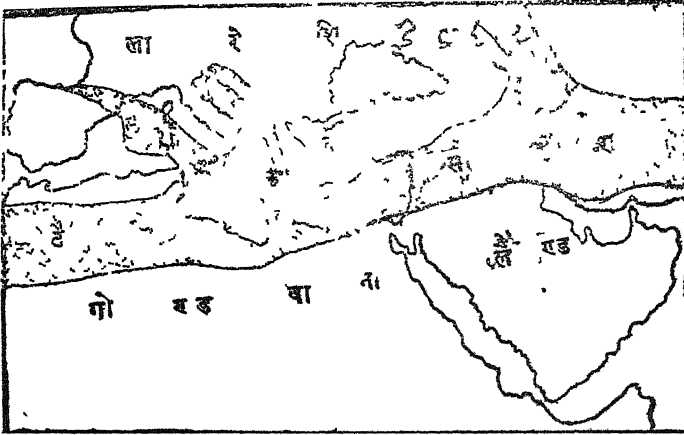
चित्र ११—लॉरेशिया, टैथिस सागर और गोण्डवानालैण्ड

लॉरेशिया उत्तर मे था और गोण्डवानालैण्ड दक्षिण मे और इनके मध्य मे
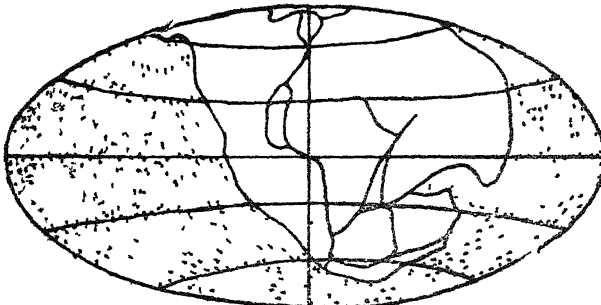
चित्र १२—पैगेइया

एक सकरा सा सागर था, जिसे भूगर्भ-वेत्ताओ ने टैथिस-सागर (Tethys sea) की सज्ञा दी है। लॉरेशिया और गोण्डवानालैण्ड को मिलाकर पैंगेइया (Pangaea) कहा गया है।

इस युग मे वर्तमान महाद्वीपो के अनेकभाग जलमग्न थे और दक्षिणी ध्रुव दक्षिणी अफ्रीका के तट पर स्थित था।

वैजेनर,के अनुसार, कालान्तर मे, पैंगेइया के विभिन्न भाग विदीर्ण होकर प्रवाहित होने लगे। महाद्वीपीय प्रवाह की विभिन्न क्रमिक अवस्थाये चित्र १३
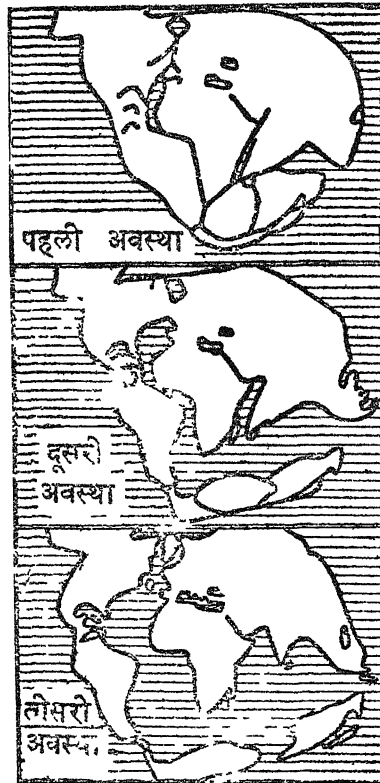
चित्र १३—पैंगेइया की उत्तरोत्तर अवस्थायें

में प्रदर्शित की गई है। एक प्रवाह पश्चिम की ओर हुआ, जिसके अन्तर्गत उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के महाद्वीप थे। दूसरा प्रवाह भूमध्य-रेखा की ओर हुआ, जिससे अफ्रीका आदि प्रभावित हुए। 'महाद्वीपो का वर्तमान विन्यास इस प्रकार अस्तित्व मे आया।'

वैनेजेर के अनुसार पैंगेइया के दक्षिणी भाग मे विदारण की मुख्य क्रिया मध्य-कल्प (**Mesozoic Era**) मे हुई और उत्तरी भाग मे तृतीयक कल्प (**Tertiary Era**) मे।

यह सिद्धान्त पर्वतो की उत्पत्ति पर भी प्रकाश डालता है। उदाहरण के लिये आल्प्स श्रेणी का निर्माण अफ्रीका और योरप के निकट आने के फलस्वरूप हुई भजन (**Folding**) की क्रिया है।

वादविवाद (Discussion)

(क) अनुकूल प्रमाण

इस सिद्धान्त के पक्ष मे अनेक प्रमाण है, जिनमे कुछ निम्नलिखित है :—

(१) भूगोल के प्रमाण—इनमे सबसे अधिक महत्वपूर्ण अटलाटिक महासागर के पूर्वी और पश्चिमी तटो की समान आकृति है। चित्र १४ से यह स्पष्ट
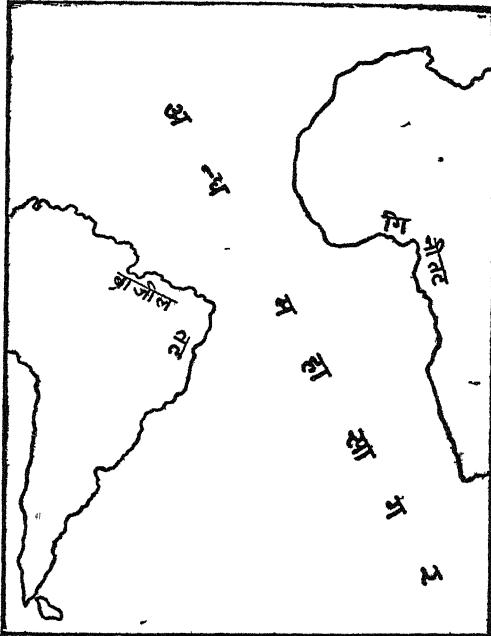
ब्राजील-तट तथा गिनी तट की आकृति का साम्य

है कि यदि ब्राजील का पूर्वी तट अफ्रीका के गिनी-तट के निकट लाया जावे तो वे दोनो एक दूसरे मे अच्छी तरह सट जाते है।

(२) भूगर्भ-शास्त्र के प्रमाण—भूगर्भ-वेत्ताओं ने अटलाण्टिक महासागर के दोनो तटो पर विद्यमान शिलाओं और पर्वत-श्रेणियों का अध्ययन किया है और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि उनके गुणो मे बडा साम्य है । वे न केवल भौमिकीय इतिहास (Geological History) की दृष्टि से वरन् सरचना (Structure) की दृष्टि से भी समान है । यह समानता भौमिकीय प्रक्रम (Geological Succesion) अभिनति-कोण (Dip), भजन-रेखाओं (Fold lines) की दिशा आदि अनेक प्रमाणो पर आधारित है ।

(३) ज्यामिति (Geodesy) के प्रमाण—अभिनवकाल मे यह ज्ञात हुआ है कि ग्रीनलैण्ड अब भी अत्यन्त मन्द वेग से कैनाडा की ओर प्रवाहित हो रहा है । यदि ग्रीनलैण्ड जैसा विशाल द्वीप खिसक सकता है, तो अन्य महाद्वीपो के प्रवाहित होने मे आश्चर्य की कौन सी बात है ?

(४) पुरासात्विकी (Palaentology) के प्रमाण—पुरासात्विकी में हम जीवो और पादपों के अवशेषो (Fossils) का अध्ययन करते है । इस विज्ञान के विशेषज्ञो ने भी अटलाण्टिक के दोनो तटो की परीक्षा की है और वहाँ पर पाये जाने वाले अवशेषो की तुलना की है । उनमे उन्हे पर्याप्त साम्य मिला है ।

चित्र १५—महाद्वीपीय प्रवाह द्वारा गौण्डवानालैण्ड के उत्तर-कार्बोनिफैरस हिमयुग का स्पष्टीकरण ।

(५) प्राणिकी शास्त्र (Biology) के प्रमाण—योरोप में कुछ ऐसे जीव

पाये जाते है, जो ऋतु विशेष मे पश्चिम की ओर जाकर अटलाटिक महासागर मे डूब जाते है। उनके इस आचरण से प्राणिकीविदो ने यह निष्कर्ष निकाला है कि उनकी यह आदत उस समय से चली आ रही है, जब अमेरिका योरप से जुडा हुआ था। उस समय ये जीव ऋतु-विशेष मे अमेरिका चले जाते थे जिस प्रकार अनेक भारतीय पक्षी ऋतु विशेष मे हिमालय की ओर चले जाते है।

(६) पुराजलवायुकी (Palaeo-Climatology) के प्रमाण—महाद्वीपीय-प्रवाह के सिद्धान्त द्वारा पूर्वकालीन जलवायु के महान विभेदन समझ मे आ जाते है। वास्तव मे इस सिद्धान्त का प्रणयन इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये हुआ था, जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है। चित्र १५ से परमो-कार्बोनिफैरस हिमयुग स्पष्ट हो जाते है। इस चित्र का छायादार भाग हिमानी द्वारा प्रभावित प्रदेश का द्योतक है।

(ख) प्रतिकूल प्रमाण

इस सिद्धान्त के विपक्ष मे भी अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये गये है। उनमें कुछ ये है :—

(१) ज्योतिष (Astronomy) के प्रमाण—वैजेनर का कथन है कि अमेरिका का पश्चिम की ओर प्रवाह वेला-बल (Tidal Force) के कारण हुआ। ज्योतिषवेत्ताओ ने गणित द्वारा यह निश्चित किया है कि अमेरिका को पश्चिम की ओर प्रवाहित करने के लिये जिस बल की आवश्यकता होगी वह वर्तमान वेला-बल का दस अरब गुना होगा। प्रथम तो यह सभव ही नही, फिर यदि इसे सभव भी मान लिया जावे, तो उससे पृथ्वी का परिभ्रमण (Rotation) रुक जायगा।

(२) भौतिकशास्त्र (Physics) के प्रमाण—भौतिकशास्त्रियो का कथन है कि आलगत्व (Viscosity) के कारण महाद्वीपो का प्रवाह सभव ही नही है।

(३) पुरासात्वि की (Palaentology) के प्रमाण—कुछ समान और समकालीन अवशेष, जैसे जिह्वापर्ण (Glossopteris) ऐसे स्थानो मे पाये जाते है, जो इस सिद्धान्त के अनुसार कभी भी निकट नही रहे है।

(४) भूगोल के प्रमाण—अटलाण्टिक महासागर के बीच मे एक समुद्रान्तर कूट (Submarine Ridge) विद्यमान है। यदि इस सिद्धान्त के अनुसार अमेरिका का पूर्वीतट, योरप और अफ्रीका के पश्चिमी तट से चिपका हुआ था, तो यह कूट कहाँ था ?

(५) जलवायुकी (Climatology) के प्रमाण—यद्यपि इस सिद्धान्त से जलवायु के अनेक पूर्वकालीन विभेदन न स्पष्ट जाते है, तथापि समस्त नही।

(६) भूगर्भ-शास्त्र के प्रमाण—भूगर्भ-वेत्ताओ ने जब अटलाण्टिक के

उभयतटो का गभीर अध्ययन किया, तो वे भी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ये दोनो तट किन्ही अशो मे समाकृत भले ही हो, सर्वांग समान नही है।

(७) अन्य आपत्तियाँ—इनमे कुछ ये है —

(क) वैजैनर के अनुसार प्रवाह विषुवत रेखा की ओर हुआ है। यदि यह सत्य होता तो महाद्वीपीय खण्डो को विषुवत रेखा के निकट एकत्र हो जाना चाहिये था।

(ख) इस सिद्धान्त मे दो विरोधी बातो का उल्लेख है। एक ओर तो यह कहा जाता है कि सिमा (Sima) के ऊपर सियाल (Sial) प्रवाहित हुआ और दूसरी ओर यह भी कहा जाता है कि सिमा मे सियाल के अग्रभागो (Frontal Edges) के भजन (Folding) करने की सामर्थ्य है, जिससे पर्वतो की उत्पत्ति होती है।

(ग) कुछ आलोचक यह प्रश्न करते है कि पैंगेइया का विदारण पुराकल्प (Palaeozoic Era) ही मे क्यो हुआ ? उसके पूर्व अथवा पश्चात् क्यो नही ?

(घ) इस सिद्धान्त के अनुसार योरप और अमेरिका एक दूसरे से पृथक हुए है किन्तु इस पार्थक्य के फलस्वरूप हुई भजन की क्रिया के प्रमाण क्या है और कहाँ है ?

(ङ) वर्तमान भजित (Folded) पर्वतश्रेणियो को यदि अपने मूलरूप मे प्रस्तारित (Unfold) कर दिया जाय, तो महाद्वीपो का जो स्वरूप बनेगा वह इस सिद्धान्त के अनुकूल न होगा।

(च) यदि पैंगेइया का विदारण वैजैनर के कथन के अनुसार हुआ है, तो जो समता अटलाण्टिक महासागर के दोनो तटो पर पाई जाती है, वह न होनी चाहिये थी, क्योकि बाद मे हुई विभगन (Faulting) आदि की क्रियाये उसे नष्ट कर देती। अतएव यह सिद्धान्त स्वय अपना खण्डन करता है। . आदि।

वैजेनर के सिद्धान्त की कटु आलोचना होने का एक कारण यह भी है कि उसने पर्वतो की उत्पत्ति विषयक 'तापीय सकोचन के सिद्धान्त' (The Theory of Thermal Contraction) की पूर्ण उपेक्षा की है। जिस समय महाद्वीपीय-प्रवाह का प्रणयन हुआ, उस समय तापीय सकोचन के सिद्धान्त की बड़ी प्रतिष्ठा थी।

निष्कर्ष

सक्षेप मे, यद्यपि वैजेनर के सिद्धान्त को कोई भी सवशित अथवा मूल-रूप मे मानने को तैयार नही है, तथापि जब तक इससे अधिक सफल और यथार्थ सिद्धान्त का अनुसन्धान नही होता—कम से कम—तब तक—भूगोल और भौमिकी जगत मे इसका मान रहेगा।

प्रश्नावली

1 Discuss the nature of evidence assembled by Wegener in favour of his theory of Continental Drift and draw a sketch map showing Wegener's Pangaea

(Banaras M Sc. Geol 1951).

2 Write a critical account of the inter-continental drift theory of Wegener. (Agra M A Geog 1947)

(Ban. M A and M Sc Geog. 1948.)

3. Discuss Wegener's theory of Continental Drift and explain with its help the major variations of climate in the past geological ages (Ban M A, and M Sc Geog 1950)

4. Do yon believe in the hypothesis of land-bridges or in that of drifting of continents for reconstructing the palaeogeography of Gondwana times? Give full reasons in support of your belief. (Banaras M.Se. Geol 1950).

5. Write an essay on the theory of continental drift detailing its merits and demerits.

(Ban M,Sc Geol, 1945).

6. Are the continents a permanent feature of the earth's surface? Discuss the evidence bearing on the geological history of the Gondwanaland.

(Ban. M.Sc. Geol 1946).

7. Write a short essay on Continental Drift.

(Lucknow M.Sc. Geol. 1948).

8. Analyse some of the more important modern views on the permanency or otherwise of continents and oceans.

(Allahabad M A. Geog. 1947).

9. Discuss the 'Drift Theory' of Wegener and show why it is not universally accepted. (Allahabad 1952).

10. 'The new orientation of our outlook on world tectonics is due to Wegener.' Discuss

(Allahabad M.A. Geog 1948).

11. What are the main evidences in support of the theory of Continental Drift. (Banaras M.Sc. Geol. 1953).

चतुर्थ परिच्छेद

भूसन्तोल

(ISOSTASY)

भूमिका

डटन (Dutton) नामक एक अमरीकी भूगर्भ-वेत्ता ने सन् १८८९ ई० मे सबसे पहले ISOSTASY (भूसन्तोल) शब्द का प्रयोग किया। Isostasy का शाब्दिक अर्थ है--सन्तुलन की ओर प्रवृत्ति। भूसन्तोल पृथ्वी की पर्पटी के विभिन्न प्राकृतिक विभागो के सन्तुलन का द्योतक है। डटन ने ही सर्वप्रथम क्षति-पूर्ति की अवधारणा (Concept of Compensation) का प्रतिपादन किया। इसकी विस्तृत विवेचना आगे की गई है। इसके अनुसार भू-पृष्ठ के उठे हुए भागो (जैसे पर्वतो) के नीचे कम घनत्व के पदार्थ हैं और निचले क्षेत्रो (जैसे सागर नितल) के नीचे अधिक घनत्व के पदार्थ हैं। ज्यामिति-वेत्ताओं (Geodesists) ने इस सिद्धान्त को और आगे विकसित किया है।

अक्ष-रेखा मापन (Latitude Measurements)

अक्षरेखा का ज्योतिषीय निर्धारण स्वतन्त्ररूप से लटकते हुए साहुल (Plumb Bob) की दिशा के अनुसार होता है। यदि पृथ्वी बिल्कुल गोल होती और उस पर सर्वत्र समान गहराई के सागर का आवरण होता तो साहुल प्रत्येक स्थान पर सागर-पृष्ठ के प्रति अभिलम्ब (Normal) रहता, किन्तु यह वास्तविकता नही है। न तो पृथ्वी बिल्कुल गोल ही है और न ही उस पर सर्वत्र समान ऊँचाई का जल का स्तर है। इसके अतिरिक्त द्वीप, पर्वत और पठार जैसे उठे हुए भाग अपने आकर्षण द्वारा साहुल को प्रभावित करते हैं, जिससे वह अभिलम्ब दशा मे नही रहने पाता इस प्रकार के विक्षेप त्रिकोणीकरण (Deflection) का अनुभव सर्वप्रथम सन् १८५१ ई० मे सिन्ध-गगा के मैदान मे ज्यामितीय-आप-रीक्षण (Geodetic Survey) करते समय किया गया। यह ज्ञात हुआ कि दो स्थानो के अक्षाशो का अन्तर ज्योतिष की रीति मे तथा त्रिकोणीकरण (Triangulation) की रीति से एक सा नही आता। इनमे से एक स्थान हिमालय पर्वत से सौ मील से भी कम दूरी पर था। इससे यह अनुमान किया गया कि हिमालय पर्वत ने सीसमुण्ड को अपनी ओर आकर्षित किया होगा, जिससे यह अन्तर हो गया है। प्रैट (Pratt) ने इस आकर्षण का मूल्य निर्धारित किया,

और तदनुसार समस्त गणना (Calculations) मे परिवर्तन किये गये। उसने पर्वत-पिण्डो का घनत्व २ ७ माना, जो भूपर्पटी की शिलाओ का औसत घनत्व है। इतना सब करने पर भी विक्षेप के गणित (Calculated) और ईक्षित (Observed) मूल्य समान न हुए। जितना विक्षेप वास्तव में हुआ, गणित के अनुसार, उससे कही अधिक होना चाहिये था। अतएव इस अन्तर के समाधान के लिये दो वैकल्पिक (alternativo) उपकल्पनाये उपस्थित की गई —

(१) पर्वत बहुत ही हल्के पदार्थों से बने है और उनका घनत्व इतना अधिक नही है, जितना कि अनुमान किया गया है ।

(२) भूपृष्ठ के उठे हुए भागो अथवा वर्धनो (Bulges) के नीचे कम घनत्व के पदार्थ है और निचले प्रदेशो के नीचे अधिक घनत्व के।

प्रथम उपकल्पना के समर्थको ने तो यहाँ तक कह डाला कि पर्वत केवल बुलबुले है और वे पूर्णत अथवा आशिक रूप से खोखले है। भूगर्भ शास्त्र के प्रमाण इसके विरुद्ध है। अतएव द्वितीय दृष्टिकोण को मान्यता मिली। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला गया कि—

'भू पृष्ठ के ऊपर उठे हुए भागो के आकर्षण के आधिक्य की क्षतिपूर्ति नीचे घनत्व की न्यूनता से हो जाती है।'

म्वाकृष्टि मापन (Gravity Measurements)

म्वाकृष्टि के गणित और ईक्षित मूल्यों (Calculated and observed values) के अध्ययन से भी हम उपर्युक्त निष्कर्ष पर पहुँचते है।

म्वाकृष्टि के मूल्य को निम्नलिखित प्रतिकारक प्रभावित करते है —
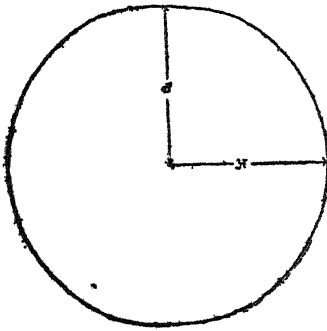
(१) अक्षाश (२) देशान्तर (३) ऊँचाई (४) भौम्याकृति (Topography)

चित्र १६—उपगोल पृथ्वी

(इस चित्र से यह स्पष्ट होगा, कि पृथ्वी बिल्कुल गोल नही है, वरन् ध्रुवो पर चपटी है। यही कारण है कि पृथ्वी के मध्य-विन्दु से ध्रुवो की दूरी (व) विषुवत् रेखा की दूरी (अ) से कम है।)

(१) अक्षांश—म्वाकृष्टि सम्बन्धी समस्त गणनाओ मे पृथ्वी के समस्त पुञ्ज को उसके मध्य-बिन्दु पर सकेद्रित मानते है। पृथ्वी ध्रुवो पर चपटी है। अन्य शब्दो मे विषुवत-रेखा की अपेक्षा ध्रुव पृथ्वी के मध्य-बिन्दु से अधिक निकट है। अतएव विषुवत-रेखा की अपेक्षा ध्रुवो पर म्वाकृष्टि का मूल्य अधिक है। चित्र १६ से यह कथन स्पष्ट होगा।

(२) देशान्तर—किसी भी देशान्तर पर--विशेष कर विषुवत-रेखा पर—पृथ्वी की रचना समान नही है—कही वह ऊँची है, तो कही नीची। अतएव पृथ्वी के मध्य-बिन्दु से उसकी दूरी असमान है और तदनुसार म्वाकृष्टि का मूल्य भी भिन्न है।

(३) ऊँचाई—म्वाकृष्टि के मूल्य को प्रभावित करने वाला तीसरा प्रतिकारक ऊँचाई है, क्योकि विभिन्न ऊंचाइयो पर स्थित स्थान पृथ्वी के मध्य-बिन्दु से विभिन्न दूरियो पर होगे और तदनुसार म्वाकृष्टि के मूल्य मे भी अन्तर होगे।

(४) भौम्याकृति—स्थल और जल के विभिन्न रूप भी साहुल को प्रभावित करते है। उदाहरण के लिये, पर्वत आकर्षण करते है।

म्वाकृष्टि के गणित मूल्य कोई इक्षित मूल्य पर लाने के लिये उपर्युक्त सभी प्रतिकारको पर विचार किया गया और तदनुसार सशोधन भी किये गये, किन्तु फिर भी उनमे अन्तर बना ही रहा। अतएव यह निष्कर्ष निकाला गया कि—

'भूपृष्ठ के ऊपर उठे हुए भागो की क्षतिपूर्त्ति नीचे घनत्व की न्यूनता से हो जाती है।'

क्षतिपूर्ति की अवधारणा

(The Concept of Compensation)

म्वाकृष्टि के गणित मूल्य को ईक्षित मूल्य के समान लाना ही भूसन्तोल की प्रधान व्यवहारिक समस्या है। इस समस्या के सन्तोषजनक हल के लिये यह आवश्यक है कि हमे यह ठीक प्रकार से ज्ञात हो जावे कि भूपृष्ठ के नीचे घनत्व कहाँ पर और किस प्रकार घटता-बढता है।

हेफोर्ड (**Hayford**) ने यह विचार रखा कि पृथ्वी मे एक ऐसा समतल है, जिसके उपर शिलाओ के घनत्व मे भिन्नता है, किन्तु उसके नीचे घनत्व सर्वत्र समान है। इसे उसने क्षतिपूति के समतल का नाम दिया। चित्र १७ मे

क्षतिपूर्ति का समतल प्रदर्शित किया गया है। क्षतिपूर्ति के समतल पर स्थित
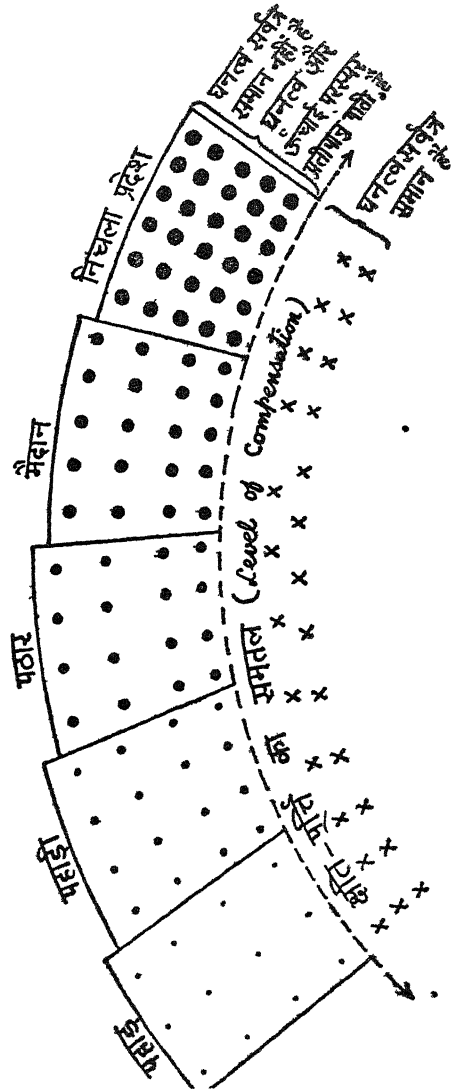
चित्र १७

समान क्षेत्रफल के आधार वाले निकटवर्ती स्तम्भो मे घनत्व और ऊँचाई प्रतीपानुपाती (**Inversely proportional**) है अर्थात्

$$\text{घनत्व} \propto \frac{१}{\text{ऊँचाई}}$$

उपर्युक्त सूत्र की सहायता से हम क्षतिपूर्ति के समतल को निर्धारित कर सकते हैं। हेफोर्ड ने यह ज्ञात किया कि यदि हम क्षतिपूर्त्ति के समतल को धरातल से लगभग २०९ किलोमीटर की गहराई पर मान ले, तो ग्वाकृष्टि सम्बन्धी अन्तर ९० प्रतिशत कम हो जाता है।

इन सभी सशोधनो के उपरान्त भी ग्वाकृष्टि का गणित मूल्य ईक्षित मूल्य के बिल्कुल समान नही होता। इसका कारण स्थानीय शिलाओ की सरचना का विभेदन है।

भूसन्तोल के सम्बन्ध में भौगोलिक एवं भौमिकीय दृष्टिकोण

स्तम्भो की कल्पना वास्तव मे गणित मे की जाती है। प्रकृति मे इस प्रकार के स्तम्भ विद्यमान नही है, अतएव वे पृथ्वी की यथार्थ सरचना के द्योतक नही है।

अब हम स्तम्भ-अवधारणा की दृष्टि से यह विचार करेगे कि यदि स्तम्भो के सन्तुलन मे कुछ व्यतिक्रम हो जाता है, तो उसका क्या प्रभाव पडता है। यदि अपक्षरण (**Erosion**) के कारण कोई पर्वत-स्तम्भ घिस जाता है, तो उसका भार
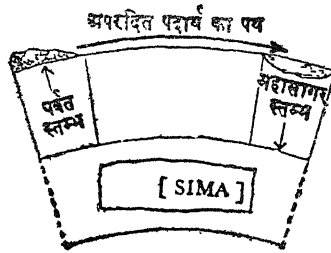
चित्र १८—भूसतोल का व्यतिक्रम

घट जाता है। दूसरी ओर पर्वत स्तम्भ का अपक्षरित पदार्थ महासागर स्तम्भ मे एकत्र होता है, जिससे उसका भार बढ जाता है। फलस्वरूप पर्वत स्तम्भ ऊपर उठ जाता है और महासागर स्तम्भ नीचे धँस जाता है। यह तथ्य चित्र १८ से स्पष्ट होगा। पर्वत स्तम्भ के ऊपर उठने से भूपर्पटी मे जो स्थान रिक्त होता है, उसकी पूर्त्ति के लिये सिमा (**Sima**) दूसरी दिशाओ से उस ओर प्रवाहित होता है। भूगर्भ शास्त्र इसकी पुष्टि करता है। किन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि ज्यामितिवेत्ताओ की यह अवधारणा कि पृथ्वी की पर्पटी ऐसे स्तम्भो से बनी है, जिनमें स्वतत्ररूप से ऊपर उठने और नीचे धँसने की गतियाँ होती रहती है,

न्यायसंगत नहीं है। ईक्षित तथ्य इसके प्रतिकूल है। इसके अतिरिक्त यह अवधा-धारणा एक ओर तो क्षैतिज-गतियो की पूर्ण उपेक्षा करती है और दूसरी ओर उदग्र-गतियो (Vertical movements) का अतिरजन। इससे प्रकट है, कि ज्यामिति-वेत्ता पृथ्वी की सरचना से भली भाँति परिचित नहीं हैं

पृथ्वी मे भिन्न घनत्व के पदार्थ स्तम्भ के रूप मे नही वरन् स्तरो (Layers) अथवा कर्परो (Shells) के रूप मे विद्यमान है और हमे इसका विचार करना आवश्यक है।

सन् १८५९ ई० मे एरी (Airy) ने यह विचार प्रस्तुत किया कि पर्वतो के मूल सिमा मे धँसे हुए है (चित्र १९ ग) इस प्रकार कम घनत्ववाले पर्वतमूल अधिक घनत्व के सिमा मे प्रविष्ट होकर उसके आकर्षण को घटा देते है। अन्य शब्दों मे, इस उपकल्पना के अनुसार पर्वत सिमा पर तैरते है।
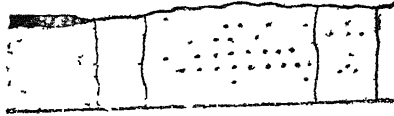
(क) हेफोर्ड तथा बौवी की धारणा

(ख) जौली की धारणा
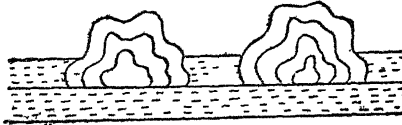
(ग) एरी की धारणा

चित्र १९—भूसन्तोल के सम्बन्ध मे विद्वानो की धारणायें

सन् १९३५ ई० मे जौली (Joly) ने यह प्रदर्शित किया कि उपर्युक्त दोनो कल्पनाओ मे विशेष अन्तर नही है। उसने बतलाया कि जहाँ हेफोर्ड और बौवी (Bowie) ने पृथ्वी की सरचना को गणित के दृष्टिकोण के अनुसार माना है वहाँ उन्होने समान क्षेत्रफल के नीचे समान मात्रा वाले प्लावन के मौलिक सिद्धान्त की भी अवहेलना नही की है। जौली ऐसी पर्पटी को जिसमे क्षतिपूर्ति के समतल के उपर घनत्व और ऊचाई प्रतीपानुपाती हो अकारण अव्यवहारिक और असम्भव मानता है। वह इसे गणितज्ञो की कपोल-कल्पना समझता है।

उसका कथन है कि यदि यह सम्भव भी हो तो भौमकीय प्रक्रियाये इस अवस्था को अधिक काल तक न रहने देगी। जौली ने हेफोर्ड द्वारा प्रसाधित एक अन्य उपकल्पना की ओर ध्यान आकर्षित किया है (चित्र १९ ख) जिसके अनुसार—

(१) सबसे ऊपर समान घनत्व का एक स्तर है, जो हल्की महाद्वीपीय पर्पटी से बना है।

(२) उसके नीचे लगभग १० मील मोटा ऐसा स्तर है जिसमे घनत्व एकसा नही है क्योकि इसमे ऊपर के कम घनत्ववाले पदार्थ के कुछ भाग धँसे हुए हैं। वास्तव मे, यह महाद्वीपीय कर्पर के असम आधार (Irregular base of continental shell) का सरल प्रदर्शनमात्र है, जिसमे क्षतिपूर्त्ति का कोई समतल निहित नही है। दूसरी ओर इसमे एक ऐसा स्तर है, जिसमे पारस्परिक घनत्व-पूरक पदार्थ वितरित है।

भारतवर्ष में भूसन्तोल सम्बन्धी दशायें

ज्यामिति (Geodesy) की दृष्टि से भारतवर्ष मे अनेक विशेषताये पाई जाती हैं। ससार के अन्य किसी भाग मे भ्वाकृष्टि के मूल्य मे इतने असाधारण विभेदन नही पाये जाते, जितने उत्तरी भारत मे। कर्नल बुर्राड के अनुसार द्रव का समतल क्षैतिज दशा से इतना अधिक कही भी विचलित नही होता जितना भारतवर्ष मे। भारत मे ही सर्वप्रथम यह ज्ञात हुआ कि—

(१) हिमालय के ऊपर उठे हुए वर्धन के नीचे कम घनत्व के पदार्थ हैं।

(२) सिन्ध-गगा के मैदान के नीचे अधिक घनत्व के पदार्थ की एक श्रृखला विद्यमान है।

(३) पूर्वी और पश्चिमी घाटो मे दोलक (Peudulum) का विक्षेप सागर की ओर होता है, दक्षिणी पठार की ओर नही।

उपर्युक्त अनुसन्धानो ने विकसित होकर 'भूसन्तोल' के सिद्धान्त का रूप ग्रहण कर लिया, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। हिमालय प्रदेश की अपेक्षा दक्षिणी पठार मे भूसन्तोल की दशाये कही अधिक सम्पन्न हैं। यही कारण है, कि दक्षिणी भारत मे भूकम्प कभी नही आते, जब कि उत्तरी भारत मे वे बारबार आते है।

अब हम भूसन्तोल की दृष्टि से भारतवर्ष के प्रमुख प्राकृतिक विभागों का अध्ययन करेंगे—

१. हिमालय प्रदेश

हिमालय प्रदेश के विभिन्न स्थानो में सीसमुण्ड (Plumb Bob) और दोलक (Pendulum) के विक्षेपो (Deflections) के ईक्षित (Obs-

erved) और गणित (Calculated) मूल्यो मे बडे ही असाधारण अन्तर पाये जाते हैं । यह तथ्य निम्नाकित तालिका से स्पष्ट होगा—

स्थान (Places)	उत्तरी विक्षेप (Deflection towards North)	
	गणित मूल्य (Calculated Value)	ईक्षित मूल्य (Observed Value)
देहरादून	८६ सैकण्ड	३१ सैकण्ड
मरी	४५ सैकण्ड	१२ सैकण्ड
कलियाना	५८ सैकण्ड	१ सैकण्ड

उपर्युक्त अको से स्पष्ट है कि हिमालय पर्वत से काफी क्षतिपूर्ति हो जाती है । बाह्य-हिमालय मे अल्प-क्षतिपूर्ति (Under-Compensation) होती है और मध्य-हिमालय मे अति-क्षतिपूर्ति (Over-Compensation) होती है ।

२—सिन्ध-गंगा का मैदान

सिन्ध-गगा के मैदान मे विक्षेप निश्चित रूप से दक्षिण की ओर होता है, हिमालय की ओर नहीं । २३° उ० अक्षाश तक दक्षिणी विक्षेप बढता जाता है, इसके दक्षिण मे विक्षेप उत्तर की ओर होने लगता है । इस आश्चर्यजनक तथ्य का स्पष्टीकरण कर्नल बुर्राड ने किया है । इनके अनुसार सिन्ध-गगा के मैदान के नीचे अधिक घने पदार्थो से बनी एक श्रृखला विद्यमान है, जो उडीसा से उत्तर-पश्चिम की दिशा मे जबलपुर होती हुई कलाट तक चली गई है । म्वाकृष्टि सम्बन्धी आधुनिक मापन इस कल्पना की पुष्टि करते है ।

डा० राजनाथ का दृष्टिकोण

काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय के भूगर्भ-विभाग (Department of Geology) के अध्यक्ष डा० राजनाथ भी उपर्युक्त कल्पना को सही मानते है । इसकी पुष्टि के लिये इन्होने अनेक प्रमाण भी प्रस्तुत किये है । इन्हे इलाहाबाद

और बनारस के जिलो मे बहुत से हाथी-दाँत के अवशेष मिले है। जिन पदार्थों मे ये अवशेष पाये गये है, वे पोटवार के पठार की तृतीयक युग (Tertiary period) की मृत्तिका (clay) से मिलने-जुलते है। इलाहाबाद के निकट नैनी मे मछिद्रण (Bore-hole) किया गया। उसमे भूमि के नीचे बहुत गहरे एक भज-चाप (Anticline) मे हाथी-दाँत का एक टुकडा मिला है।

३ दक्षिणी लावा का क्षेत्र (Deccan Trap)

इसकी रचना अपेक्षाकृत अधिक घनत्व के पदार्थो से हुई है। भारी पदार्थो से निर्मित होने के कारण इसे धन-विचालिता (Positive Anamoly) देना चाहिये किन्तु यह ऋण-विचालिता (Negative Anamoly) देता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है, कि इसके नीचे कम घनत्व के पदार्थ विद्यमान है।

४ बम्बई तट

बम्बई के तट पर साहुल का विक्षेप सागर की दिशा मे होता है। यह अनुमान किया जाता था कि उसके पूर्व मे पश्चिमी घाट के स्थित होने से, विक्षेप पूर्व-दिशा मे होगा। विक्षेप के विपरीत दिशा मे होने का कारण यह भी हो सकता है कि बम्बई-तट और पश्चिमी-घाट के बीच मे कम घनत्व के पदार्थ विद्यमान हो, जो पश्चिमी-घाट के भारी पदार्थो की क्षतिपूर्ति कर देते हो।

निष्कर्ष

यह सत्य है कि भूसन्तोल के सिद्धान्त मे अनेक दोष है, फिर भी यह अनेक ऐसे तथ्यो का स्पष्टीकरण करता है, जो अन्य भाँति समझ मे नही आते।

प्रश्नावली

1. Discuss the theory of Isostasy as developed by geologists and geodesists and explain in this connection the concept of compensation (Banaras M Sc. Geol 1951)

2 Give a concise account of the theory of Isostasy illustrating your answer with examples from India.
(Agra M.A. Geog. 1948.)

3 Write a critical essay on the doctrine of Isostasy. Can this doctrine be used as a major premise in discussions of geomorphological problems
(Banaras M.A and M Sc. Geog 1948)

4. Discuss the theory of Isostasy.
(Banaras M A. and M.Sc. Geog. 1949)

5. Examine critically the doctrine of Isostasy as originally conceived by Airy and Pratt and subsequently modified by others (Ban M.A. and M.Sc. Geog. 1950.)

6 Is the earth's crust in continuous isostatic equilibrium ? Discuss the isostatic processes in relation to geological history (Banaras M Sc. Geol 1949).

7. What do you understand by the theory of mountain compensation ? What observations led to the formulation of the theory and in what ways has it been elaborated and expanded subsequently ? (Banaras M Sc Geol. 1947)

8. What are the principal views on the condition of crustal equilibrium ? Which of them explains the geological phenomena best ? (Banaras M.Sc. Geol. 1944).

9. Write a short essay on Isostasy. (Lnknow M.Sc. Geol. 1952).

10. Explain what is meant by Isostatic adjustment and how this is brought about ? (Lucknow M.Sc. Geol, 1951).

11 Write an essay on the theory of Isostasy with special reference to its contribution to the various problems of Geology. (Lucknow M Sc Geol 1950)

12. Discuss the theory of Issotasy and show how it helps iu solving certain earth problems. (Allahabad M.A. Geog. 1947).

13. Examine critically the salient aspects of the theory of Isostasy and discuss how far it explains problems of physical geography. (I. A. S. Competition Examination 1953).

14. Discuss the theory of Isostasy and evaluate the purpose it has served. (Allahabad, 1952).

15. Write notes on (*a*) Gravity anomaly. (Agra M.A. Geography 1950).

(*b*) Isostasy. (Agra B.A. Geography 1953).

16. Briefly discuss the theory of Isostasy and its application. (Agra B.A. Geography 1947).

17. Explain fully the principle of Isostasy and its bearing on geosynclinal deposition and subsequent elevation of mountains. (Agra B.A. Geography 1954).

पंचम परिच्छेद

"पर्वतों की उत्पत्ति"

(ORIGIN OF MOUNTAINS)

'पर्वतो की उत्पत्ति के लिये आवश्यक बल (Forces) कहाँ से आये ?'—यह प्रश्न बडे महत्व का है। इस विषय मे अनेक मत है। कुछ प्रमुख उपकल्पनाये नीचे दी जा रही है।

१ तापीय संकोचन का सिद्धान्त

(The Thermal Contraction Theory)

सिद्धान्त की रूप रेखा—पृथ्वी का अभ्यन्तर (Interior) अत्यन्त उष्ण है। अतएव, पृथ्वी के धरातल से विकिरण (Radiation) द्वारा ताप निकलता रहता है। ताप के घट जाने से पृथ्वी की पर्पटी सकुचित होती है अथवा सिकुडती है। संकोचन की यह क्रिया पर्वतो की उत्पत्ति के लिये आवश्यक बल प्रदान करती है।

समीक्षा—पृथ्वी के अन्दर बहुत से तेजोद्गर (Radio-Active) पदार्थ वर्तमान है। इनका वियोजन (Disintegration) होता रहता है अर्थात् वे एक तत्त्व से दूसरे तत्त्व मे परिणत होते रहते है। जब यह क्रिया होती है, तब बहुत बडी मात्रा मे ताप विकसित होता है। यह ताप पृथ्वी के धरातल पर विकिरण द्वारा खोये हुए ताप से कही अधिक है। अतएव, भूपर्पटी के सिकुडने का प्रश्न ही नही उठता।

इस प्रकार उपर्युक्त सिद्धान्त जिसमे तेजोद्गर पदार्थो (Radio-active Substances) का विचार नही किया गया है, अमान्य सिद्ध होता है।

जैफ्रे (Jeffreys) का स्पष्टीकरण—'पृथ्वी किस प्रकार ठण्डी हुई ?' इस विषय मे जैफ्रे की अपनी धारणा है। गभीर अध्ययन के उपरान्त ही इन्होंने यह धारणा बनाई है। इस धारणा के अनुसार इन्होने उपर्युक्त सिद्धान्त की नवीन व्याख्या की है। इनकी इस व्याख्या ने इस अमान्य सिद्धान्त को पुन मान्य सिद्ध कर दिया है।

इनका कथन है कि जब पृथ्वी की पर्पटी बनी, उस समय से लेकर आज तक पृथ्वी का मध्य भाग विशेष शीतल नही हुआ है । जहाँ तक बाहरी भाग का सम्बन्ध है, इसमे किसी नियत समय मे प्रत्येक स्तर अपने ठीक नीचे वाले स्तर की अपेक्षा अधिक ठण्डा होता है। ठण्डा होने से वह सिकुडती है, किन्तु नीचे का उष्ण पदार्थ उसके सिकुडने मे बाधक होता है । इस प्रकार स्थलमण्डल मे प्रत्याबल की अवस्था (State of Stress) उत्पन्न हो जाती है । ये बल उस समय तक एकत्र होते रहते है, जब तक ऐसी अवस्था नही आ जाती कि उनकी सामूहिक शक्ति शिलाओ की परिदृढता (Rigidity) से बढ जाय। जब ऐसी अवस्था आ जाती है, तब पर्वतो के निर्माण की क्रियाये आरम्भ हो जाती है। ये क्रियाये उस समय तक जारी रहती है, जब तक प्रत्याबल काफी घट नही जाता। फिर शान्ति का युग आता है, जिसमे गिरि-निर्माण की क्रिया नही होती, किन्तु प्रत्याबल उस समय भी इकट्ठे होते रहते है । जब प्रत्याबल फिर काफी हो जाते है और उनका मूल्य शिलाओ की परिदृढता से अधिक हो जाता है—तब पुन पर्वत बनने लगते है। इस प्रकार यह चक्र चला करता है ।

आपत्तियाँ—मुख्य आपत्तियाँ ये है —

(१) भूपर्पटी के सकोचन का केवल यही एक कारण नही है कि पृथ्वी के ठण्डे होने से वह सिकुडती है । अन्य कारण भी तो है और उनका विचार आवश्यक है —

(१) शिलाद्रव (Magma) मे मणिभ (Crystalls) बनना।

(२) पृथ्वी के अन्दर से गैसो और वाष्प का निकलना। जैफ्रे ने इनका विचार नही किया है। अतएव जैफ्रे की गणना से जितना सकोचन आता है, वह वास्तविक सकोचन से कम है ।

(२) ग्रेनाइट को पृथ्वी के बाह्य स्तर की शिलाओ का प्रतिनिधि मानकर जैफ्रे ने गणित से यह निकाला है कि पृथ्वी की सृष्टि से लेकर आज तक ऐसे पाँच युग हुए है, जिनमे पर्वत बने है । यह निष्कर्ष बहुत कुछ सही है, किन्तु इसमें एक दोष है। उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार ज्यो-ज्यो पृथ्वी ठण्डी होती गई, त्यो-त्यो दो उत्तरोत्तर गिरि-निर्माण के युगो का अन्तर बढता गया, किन्तु अन्य प्रमाणो से यह सिद्ध होता है कि यह अन्तर प्राय बराबर रहा है ।

(३) यदि पृथ्वी के शीतल होने से पर्वत बनते है, तो समस्त भूपृष्ठ पर पर्वत बनना चाहिये था, किन्तु हम देखते है कि पर्वत केवल विशेष कटिबन्धों मे ही सीमित है ।

(४) इसके अतिरिक्त कुछ परिमाणात्मक (Quantitative) आपत्तियाँ भी है उदाहरण के लिये यह असभव प्रतीत होता है कि पिछले २० करोड वर्षों मे पृथ्वी इतनी अधिक ठण्डी हुई होगी कि उससे आल्प्स और हिमालय पर्वत

बनसके। इन पर्वतो के निर्माण के लिये संकोचन की जितनी मात्रा आवश्यक है—उसका अंशमात्र ही पृथ्वी के शीतल होने से उपलब्ध हो सकता है।

इनके अतिरिक्त अन्य आपत्तियाँ भी की गई है, जिनका उल्लेख यहाँ सभव नही है।

२. महाद्वीपीय प्रवाह का सिद्धान्त

(The Theory of Continental Drift)

सिद्धान्त की रूप रेखा—महाद्वीपीय प्रवाह की विस्तृत विवेचना तीसरे प्रकरण मे की गई है।

वैजेनर ने पर्वतो की उत्पत्ति और महाद्वीपीय प्रवाह मे निश्चित सम्बन्ध स्थापित किया है। इनके अनुसार—

(१) प्रवाहित होने वाले स्थलखण्डो के अग्रभाग (**Frontal Edges**) रोधी (**Resistant**) सागर नितल के कारण भजित (**Folded**) हुए है। उदाहरण के लिये रॉकी पर्वत इसी प्रकार बने हैं।

(२) आरगैण्ड (**Argand**) और स्टॉब (**Staub**) का विचार है कि अफ्रीका के उत्तर की ओर प्रवाहित होने से टैथिस मे एकत्र अवसाद (**Sediments**) भजित हुए है। इसी प्रकार साईबेरिया के कठोर खण्डो के दक्षिण दिशा मे प्रवाहित होने से हिमालय बना है।

आपत्तियाँ

महाद्वीपीय प्रवाह के विपक्ष मे दिये गये प्रमाणो मे सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि अभी तक उन बलो का जिनके कारण महाद्वीप प्रवाहित हुए है—स्पष्टीकरण नही हो सका है। उदाहरण के लिये वैजेनर का कथन है कि अमेरिका का पश्चिमी दिशा मे प्रवाह वेला-बल (**Tidal Force**) के कारण हुआ है। ज्योतिषवेत्ताओ ने गणित द्वारा यह निश्चित किया है कि अमेरिका को पश्चिम की ओर प्रवाहित करने के लिये, जिस बल की आवश्यकता होगी वह वर्तमान वेला-बल का दस अरब गुना होगा। प्रथम तो यह सभव ही नही, फिर यदि इसे सभव भी मान लिया जावे, तो उससे पृथ्वी का परिभ्रमण रुक जायगा। भौतिक शास्त्र के विद्वानों का कहना है कि सिमा (**Sima**) के आलगत्व (**Viscosity**) के कारण महाद्वीप प्रवाहित नही हो सकते।

३. डैली (Daly) की उपकल्पना

इस सिद्धान्त की सक्षिप्त रूप-रेखा यह है—

रूप रेखा—जब भूद्रोणी (**Geosyncline**) में एकत्र अवसाद (**Sediments**) का भार बहुत अधिक हो जाता है, तब वह नीचे धँसती है और उसकी

और स्थलखण्डों का अव सर्पण (Downsliding) होता है । इससे उसका नितल फट जाता है और उसके टुकडे नीचे बेसाल्ट मे चले जाते है (चित्र २०)
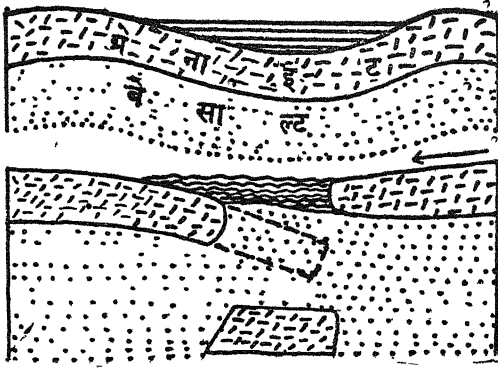
चित्र २०—डैली के अनुसार पर्वतो का बनना

नीचे ताप की मात्रा बहुत अधिक होती है, जिससे ये टुकडे गरम होकर फैलते हैं। इसके अतिरिक्त नितल के विदीर्ण हो जाने से भूद्रोणी के अवसाद पृथ्वी के आन्तरिक ताप से गरम होकर फैलते है। उनकी इस क्रिया से जलज शिलाओ के ऊपरी स्तर मे ऊर्ध्व-गति (Uplift) होती है ।

आपत्ति—यदि इस कल्पना को सही मान लिया जाय तो इससे उन्मज्जन अथवा ऊर्ध्व-गति तो समझ में आ जाती है, किन्तु यह स्पष्ट नही होता कि भजन के लिये आवश्यक क्षैतिज-बल कहाँ से आये ?

४. भूसन्तोल के पुनर्व्यवस्थापन का सिद्धान्त

(Theory of Isostatic Readjustments)

भूसन्तोल की विस्तृत विवेचना चौथे प्रकरण मे की गई है । इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमरीकी ज्यामितिवेत्ताओ (Geodesists) ने किया है । इसके अनुसार भूपर्पटी के ऊपरी स्तर को समान आधार (Base) और समान ऊँचाई के एक से स्तम्भो मे बाँटा जा सकता है । साधारणतः इन स्तम्भो मे सन्तुलन रहता हैं। चित्र १८ में प्रदर्शित एक स्तम्भ पर्वत का द्योतक है और दूसरा 'सागर' का। नदियाँ पर्वतो का अपक्षरण (Erosion) करती रहती है, जिससे उनका भार घटता रहता हैं। दूसरी और अपक्षरित पदार्थ महासागरों में एकत्र होता रहता है, जिससे उनका भार बढता जाता है ।

जब पर्वत-स्तम्भ का भार काफी घट जाता हैं और सागर-स्तम्भ का भार काफी बढ जाता है—तब सन्तुलन की दशा नहीं रह पाती । पर्वत-स्तम्भ हल्का

होने से ऊपर उठता है और सागर-स्तम्भ भारी होने से नीचे धँसता है। इस सिद्धान्त के अनुसार स्तम्भो का ऊपर उठना और नीचे धँसना गिरि-निर्माण का आवश्यक अग है।

आपत्तियाँ--(१) पर्वतो की उत्पत्ति के लिये क्षैतिज बल (Horizontal forces) आवश्यक है--इस सिद्धान्त मे उनका कोई उल्लेख नही है। उदग्र गतियो (Vertical movements) से क्षैतिज-बल उत्पन्न नही हो सकते।

(२) सभव है, भूसन्तोल से पर्वतो की उत्पत्ति पर प्रभाव पडता हो, किन्तु उससे पर्वत नही उत्पन्न होते। पर्वतो की उत्पत्ति का कारण तो कुछ और ही है। जब इन कारणो से पहाड बनने की क्रिया आरम्भ हो जाती है--तब भूसन्तोल का सिद्धान्त कार्य करता है।

(५) भूद्रोणी विषयक उपकल्पना
(The Geosynclinal Theory)

भूद्रोणी (Geosyncline)

भूपृष्ठ के उन लम्बे, सकरे, निचले और क्रमश धँसनेवाले क्षेत्रो को जिनमे नदियो द्वारा लाये गये अवसाद (Sediments) के एकत्र होने से पर्वत बन जाते है--भूद्रोणी कहते है।

गिरि-निर्माण की अवस्थायें

भंजित पर्वत श्रेणियो (Folded Mountain Ranges) के जीवन के इतिहास को तीन भागो मे बाँटा जा सकता है :--

(१) गिरि-निर्माण का पूर्वकाल (Pre-Orogenic Period)--यह पर्वतो के जीवन का आरम्भिक काल है। इसमे पर्वतो की सृष्टि के लिये उपयुक्त स्थान तैयार होता है, जिसे भूद्रोणी कहते है। इसमे नदियाँ अपने अवसाद (Sediments) डालती रहती है। अवसाद के वृहद् भार से भूद्रोणी क्रमश धँसती रहती है।

(२) गिरि-निर्माण काल (Orogenic Period) इस काल मे क्षैतिज दिशा से आनेवाले दबाव के कारण भूद्रोणी के स्तरो मे भजन (Folding) तथा विभगन (Faulting) होता है।

(३) गिरि-निर्माण का उत्तर-काल (Post Orogenic Period)--पर्वत श्रेणी बन जाने के बाद वायु, हिम, वर्षा आदि अभिकर्त्ता (agents) उसका अपक्षरण शुरू कर देते है, जिससे उसकी ऊँचाई क्रमश घटने लगती है।

पृष्ठ-प्रदेश और अग्र-प्रदेश
(Hinterland and Foreland)

पृष्ठ प्रदेश--भजित श्रेणियाँ बनते समय जिस दिशा से मुख्य बल आता है,

उस दिशा के प्रदेश को पृष्ठ-प्रदेश (Hinterland or backland) कहते है। जैसे हिमालय पर्वत बनने के लिये तिब्बत की ओर से दबाव पडा, अतएव इस दशा मे तिब्बत पृष्ठ-प्रदेश हुआ। इसके विपरीत आल्प्स की रचना मे मुख्य दबाव दक्षिण की ओर से आया, अतएव वहाँ पर उत्तरी अफ्रीका पृष्ठ-प्रदेश है।
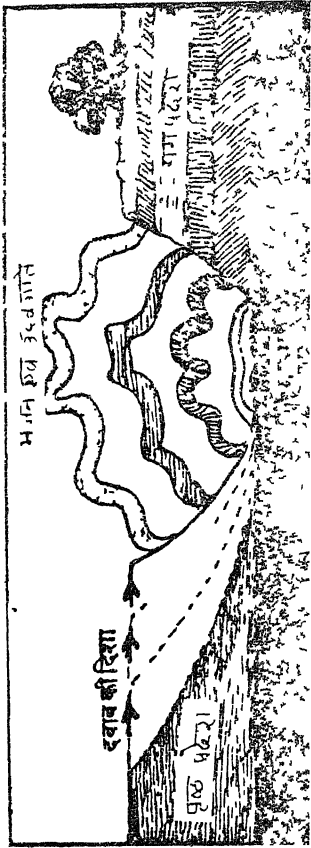
चित्र २१—भंजित पर्वत (Folded Mountain) का निर्माण

अग्रप्रदेश (Foreland)—भजन का मुख्य बल जिस दिशा की ओर लगता है, उसे अग्र-प्रदेश कहते है उदाहरण के लिये हिमालय पर्वत के बन मे दक्षिणी पठार (Deccan Plateau) अग्र प्रदेश था, क्योकि इसने तिब्बत की ओर से आनेवाले दबाव को रोका। इसी प्रकार आल्प्स की रचना मे दक्षिणी योरप अग्र-प्रदेश था।

गिरि निर्माण का इतिहास

अब हम गिरि-निर्माण का थोडा विस्तृत अध्ययन करेंगे। यह तो पहले कहा जा चुका है, कि गिरि-निर्माण की क्रिया आरम्भ होने के लिये यह आवश्यक है कि कही पर एक निचला क्षेत्र हो, जिसमें निकटवर्ती ऊँचे स्थलो से अवसाद एकत्र होते हो। ऐसा क्षेत्र प्राय. सागर होता है,। यद्यपि यह आवश्यक नही है। एकत्र हुए अवसाद के दबने से स्तर बनते रहते है इन स्तरो की मोटाई बहुत अधिक होती है। पर्वतो की रचना के लिये यह आवश्यक भी है। प्राय· स्तरों की ऊँचाई लगभग २५,००० फुट तक होती है।

एकत्र हुए अवसाद के वृहद् भार के कारण भूद्रोणी नीचे की ओर धँसती है। इसे अवसादन की अधोगति (Sedimentation subsidence) कहते है। इसकी एक सीमा होती है और भूद्रोणी की समस्त अधोगति इस प्रकार नही

हुई है। जब दो विरोधी दिशाओ से दबाव पडता है, तब भूद्रोणी के स्तर मुड जाते है और उसके दोनो छोर एक दूसरे के निकट आ जाते है। इन छोरो के निकट आने से भूद्रोणी की गहराई बढ जाती है। इसे सर्पीडन की अधोगति (Compression subsidence) कहते है। भूद्रोणी के क्रमश सकरे और गहरे होने की क्रिया चलती रहती है और साथ ही उसमे अवसाद भी एकत्र होते रहते है। किसी नियत काल मे भूद्रोणी की जितनी गहराई बढती है, अवसाद उससे कही अधिक पूर्ति कर देते है। फल यह होता है कि भूद्रोणी क्रमश भरती रहती है। कालान्तर मे भूद्रोणी अवसादो से बिल्कुल भर जाती है।

इसके बाद गिरि-निर्माण (Orogenesis) की अवस्था आती है। जब दो विरोधी दिशाओ से दबाव पडता है, तब भूद्रोणी मे एकत्र हुआ अवसाद भजित हो जाता है। जब दबाव की मात्रा अधिक होती है, तो कभी-कभी विभग (Faults) भी बन जाते है। विभगन के कारण प्राय एक स्तर दूसरे स्तर के ऊपर चढ जाता है जिससे भूद्रोणी पर भार की मात्रा और भी बढ जाती है और वह नीचे धँसती है। इस प्रकार की अधोगति को भजन या विभगन की अधोगति (Folding or Faulting Subsidence) कहते है। जब दबाव की मात्रा घटती है, तब भूद्रोणी के स्तर ऊपर उठते है। यहॉ पर यह भी उल्लेखनीय है कि स्तरो के नीचे धँसने से उनकी जडे अधिक तापमान के क्षेत्र में चली जाती है। वहाँ वे गरम होकर फैलती है। यह भी ऊर्ध्वगति (Uplift) का एक कारण है। इस प्रकार क्षैतिज संपीडन (Horizontal Compression) के बाद ऊर्ध्वगति होती है।

इसके बाद गिरि-निर्माण की उत्तरकालीन अवस्था (Post Orogenic Period) आती है। पर्वत-श्रेणियो के बन जाने के बाद अपक्षरण के विभिन्न अभिकर्त्ता (agents of erosion) जैसे हिम, वायु, वर्षा, पाला आदि अपना कार्य आरम्भ कर देते है। अपक्षरण से पर्वत घिसते रहते है और उनकी उँचाई क्रमश कम होती जाती है। इसकी महत्ता इस तथ्य से समझी जा सकती है कि पश्चिमी आल्प्स मे अपक्षरण से आठ नौ मील मोटा स्तर घिसकर नष्ट हो चुका है।

(६) जौली का तापीय चक्र का सिद्धान्त
(The Thermal Cycle Theory of Joly)

संक्षेप मे यह सिद्धान्त इस प्रकार है —

(१) महाद्वीपो के नीचे सिमा (Sima) के स्तर में तेजोद्गर (Radioactive) पदार्थ बहुत पाये जाते हैं। इनका वियोजन (Disintegration) होता रहता हैं, जिससे बडी अधिक मात्रा में ताप विकसित होता हैं।

(२) सिमा (Sima) के ऊपर सियाल (Sial) का स्तर हैं, जिससे महाद्वीप बनें हैं। सियाल (Sial) में सिमा (Sima) से भी अधिक मात्रा

मे तेजोद्गर (Radio-active) पदार्थ पाये जाते है। इस स्तर का कुछ ताप विकिरण द्वारा अवश्य निकल जाता है किन्तु इसके तेजोद्गर पदार्थों से इतना अधिक ताप निकलता है, कि उससे विकिरण द्वारा खोये हुए ताप की पूर्ति सरलता से हो जाती है।

(३) परिणाम यह होता है कि सिमा मे जो ताप एकत्र होता रहता है, वह बाहर नही निकलने पाता। इस प्रकार ताप के लगातार एकत्र होते रहने से सिमा (Sima) का तापमान बढ जाता है और उसका ऊपरी भाग पिघल जाता है।

(४) सिमा के द्रवित होने से उसका घनत्व घट जाता है, जिससे उसमे तैरनेवाले महाद्वीप कुछ नीचे धँस जाते है और उनके निचले प्रदेश जलमग्न हो जाते है।

(५) जब अनुपर्पटी (Subcrust) द्रवित अवस्था मे होती है, उस समय पर्पटी जो ठोस है, तनाव की अवस्था मे रहती है। किन्तु ज्यो-ज्यो अनुपर्पटी का घनीभवन (Solidification) होता जाता है, त्यो-त्यो वह सिकुडती जाती है। अनुपर्पटी मे सिकुडन होने से महाद्वीप के किनारे पर पर्वत बन जाते है और सागर नितल मे भी हल्के उभार और गड्ढे हो जाते है।

समीक्षा—(१) आलोचक इस सिद्धान्त से सन्तुष्ट नही है। उनका कहना है कि इस सिद्धान्त के अनुसार जो दबाव होगा, वह इतना समर्थ न होगा कि उससे पर्वत बन सके।

(२) इस सिद्धान्त से परिप्रशान्त श्रेणियाँ (Circum-Pacific Chains) की रचना तो समझ मे आ जाती है, किन्तु यह स्पष्ट नही होता कि अटलाण्टिक के तट पर इस प्रकार की श्रेणियाँ क्यो नही है। मध्य एशिया के पर्वतो के अस्तित्व का भी इससे स्पष्टीकरण नही होता।

(३) इस सिद्धान्त मे एक गुण अवश्य है। इसमे क्षैतिज दबाव से होनेवाले भजन और उन्मज्जन की क्रियाओ का अन्तर स्पष्टत व्यक्त है।

(७). होम्स का संवाहन का धाराओं का सिद्धान्त
(HOLME'S THEORY OF CONVECTIONAL CURRENTS.)

गिरि-निर्माण की क्रिया अब भी अनुमान और कल्पना का विषय है। पृथ्वी का स्थायित्व और सन्तुलन भ्वाकृष्टि (Gravity) के कारण है। इस सतुलन में यदि व्यतिक्रम (Disturbance) होता है, तो ताप के कारण। तापक्रम के बढ जाने से प्रस्तार एव द्रवीभवन होता है। इसके विपरीत, ताप के क्षीण होने से घनीभवन तथा सकोचन होता है। अतएव, जब हम गिरि-निर्माण के विषय मे विचार करते है, तब इसी निष्कर्ष पर पहुँचते है कि इस क्रिया का सम्बन्ध ताप सम्बन्धी परिवर्तनो से अवश्य होगा।

पृथ्वी अपनी आरंभिक अवस्था मे तरल थी। उस समय जब उसके शीतल होने की क्रिया आरम्भ हुई होगी, तब उसकी अनुपर्पटी (Substratum) में सवाहन की धाराये (Convection Currents) अवश्य अस्तित्व मे आ गई होगी। फलस्वरूप कुछ स्थानो मे अपेक्षाकृत उष्ण एव हल्का पदार्थ ऊपर उठकर भूपर्पटी के नीचे तक पहुँच गया होगा। यही नही, उसका कुछ भाग सचालन द्वारा बाहर भी निकल गया होगा। प्रत्येक सवाहन की धारा ऊपर पहुँच कर चारो दिशाओ मे फैलती है। ऊपर ऊपर प्रवाहित होनेवाली जब दो धारायें परस्पर टकराती है, तब वे नीचे की ओर प्रवाहित होती है। चित्र २२ से यह कथन स्पष्ट होगा। नीचे की ओर प्रवाहित होने वाली सवाहन की धाराओ मे अपेक्षाकृत ठण्डा और भारी पदार्थ होता है। मध्यवर्ती और किनारो के स्तम्भो के घनत्व मे अन्तर होता है। घनत्व का यह विभेदन प्रवाह की क्रिया के लिये आवश्यक बल प्रदान करता है । इस प्रकार का प्रवाह-क्रम उस मसय तक चलता रहता है, जब तक पदार्थ का द्रवणाक (Freezing Point) नही पहुँच जाता।

जब तक तेजोद्गर पदार्थो की खोज नही हुई थी, तब तक यह अनुमान किया जाता था कि सवाहन द्वारा पृथ्वी के ठण्डे होने की क्रिया अधिक मसय तक न चली होगी। यदि पृथ्वी के अभ्यन्तर को किसी प्रकार कुछ ताप सतत रूप से उपलब्ध हो सके, जो सचालन, (Conduction) विकिरण (Radiation) और आग्नेय क्रिया (Igneous Activity) द्वारा खोये गये ताप की पूर्ति कर सके---तो सवाहन की धाराओ का क्रम जारी रह सकता है। पृथ्वी के अभ्यन्तर मे विद्यमान तेजोद्गर पदार्थ (Radio-active substances) इस आवश्यक ताप को सतत रूप से प्रदान करते है । तेजोद्गर पदार्थो का उल्लेख पूर्व मे हो चुका है। इन पदार्थो मे यह विशेषता होती है कि उनके अणुओ (Atoms) का वियोजन (Disintegration) होता रहता है। वियोजन के फलस्वरूप एक तत्त्व दूसरे तत्त्व मे परिणत हो जाता है । जब यह क्रिया सम्पन्न होती है, तब ताप की बहुत बडी मात्रा उद्विकसित होती है । तेजोद्गर पदार्थो के सामान्य उदाहरण यूरेनियम, रेडियम, थोरियिम आदि हैं। इनकी खोज ने सवाहन प्रवाह के सिद्धान्त को आधार प्रदान किया है।

भूपर्पटी पर उसके ठीक नीचे क्षैतिज दिशा मे प्रवाहित होनेवाली सवाहन की धाराओं का प्रभाव पडता है। जहाँ ये अपसृत (Diverge) होती है अथवा फैलती है, वहाँ भूपर्पटी मे खिचाव अथवा आनति (Tension) उत्पन्न हो जाती है। इसके विपरीत जहाँ ये धाराये ससृत (Converge) होती है अथवा मिलती है, वहाँ भूपर्पटी मे दबाव उत्पन्न हो जाता है। अतएव पर्वतीकरण (Orogenesis) उन स्थानो मे होता है जहाँ दो विपरीत दिशाओ से

धाराये मिलती है और फिर नीचे की ओर चली जाती है। इस प्रकार भूपृष्ठ
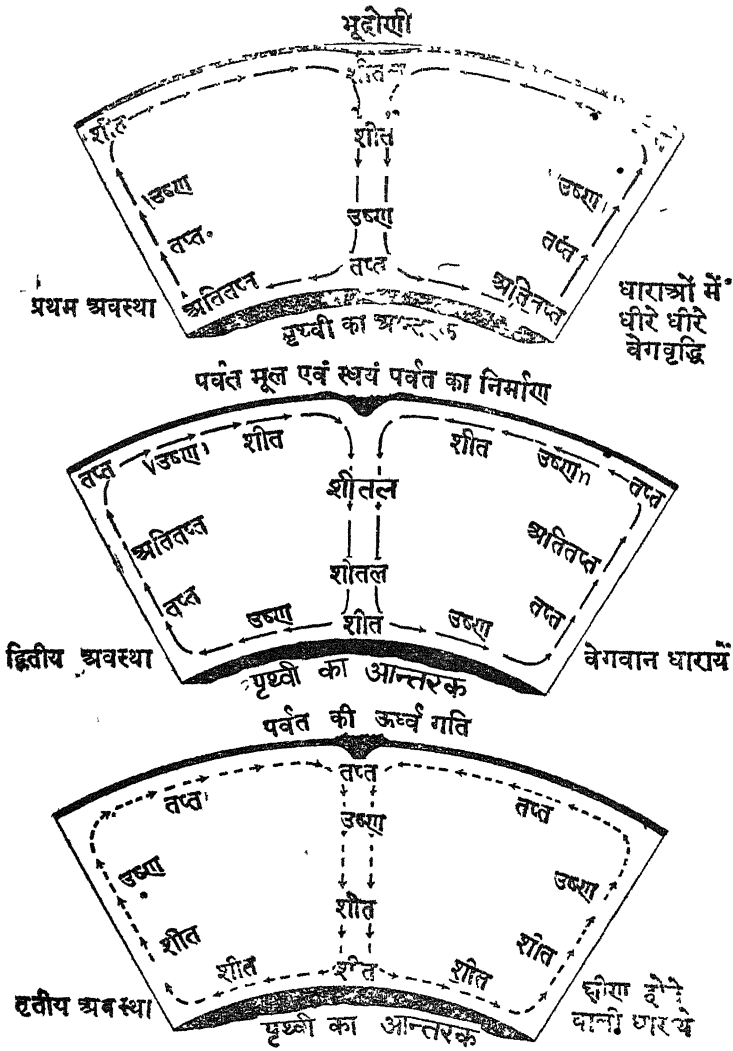
चित्र २२—पृथ्वी के अन्दर संवाहन की धाराओ की विभिन्न अवस्थाये

के विशेष भागो मे ही पर्वतो का बनना स्पष्ट हो जाता है। चित्र २३ से टेथिस सागर मे तथा प्रशान्त के तटो पर पहाडो का बनना स्पष्ट हो जाता है।
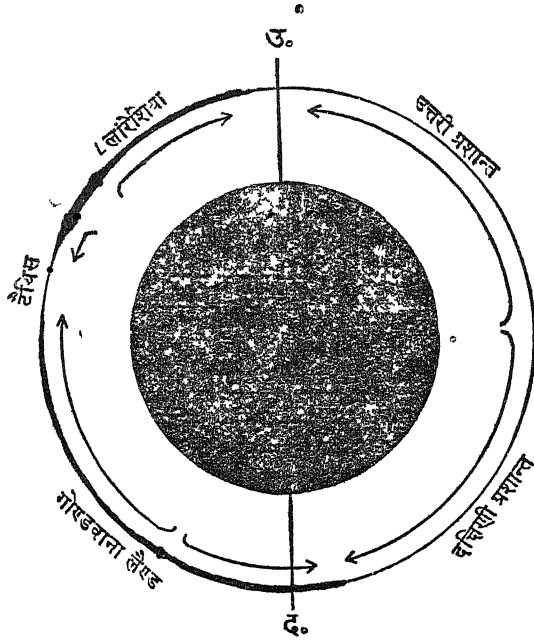
चित्र २३—सवाहन की धाराओ से आल्प्स हिमालय तथा प्रशान्त के तटीय पर्वत बनना

सवाहन के प्रवाह का वेग सदैव एक सा नही रहता। उसमे वृद्धि और पतन हुआ करता है। जब किसी प्रवाह-व्यवस्था का पतन हो जाता है तब नवीन प्रवाह-व्यवस्था नवीन भाग मे स्थापित होती है।

निम्नाकित तालिका मे सवाहन-चक्र (Convection cycle) और पर्वती-करण-चक्र (Orogenic cycle) की विभिन्न अवस्थाओ का पारस्परिक सम्बन्ध प्रदर्शित किया गया है —

सवाहन चक्र	पर्वतीकरण चक्र
प्रथम अवस्था—सवाहन की धाराओ मे धीरे-धीरे वेग-वृद्धि का दीर्घ-युग	नीचे की ओर प्रवाहित होनेवाली धाराओ के ठीक ऊपर भूद्रोणी के धँसने का लम्बा काल।
द्वितीय अवस्था—अपेक्षाकृत वेगवान धाराआ का लघु-युग।	पर्वतमूलो के बनने और क्षैतिज दबाव से स्वय पर्वतो के बनने का लघु काल।
तृतीय अवस्था—चक्रान्त के लिये उत्तर-दायी क्रमश क्षीण होने वाली धाराओ का युग।	क्रमिक ऊर्ध्वगति का काल।

ग्रिग्स (Griggs) ने प्रयोगो द्वारा इस सिद्धान्त की पुष्टि की है । उन्होंने पृथ्वी की एक छोटी प्रतिकृति (Model) तैयार की। इसकी रचना उन्होंने ऐसे पदार्थों से की जो पृथ्वी से मिलते जुलते थे। सवाहन की धाराओं के स्थापन के लिये इन्होंने दो घूमनेवाले अथवा परिभ्रामी डिडिमो (Rotating Drums) की व्यवस्था की। जब इन डिडिमो को चित्र २४ मे अंकित तीरो
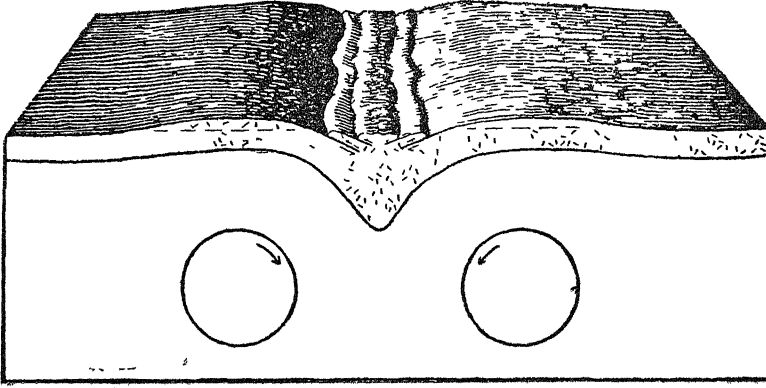
चित्र २४—होम्स के सिद्धान्त की प्रायोगिक पुष्टि

की दिशा मे घुमाया जाता है, तब उनके ऊपर की पर्पटी बीच मे नीचे धँसती है। जैसे-जैसे परिभ्रमण का वेग घटाया जाता है, वैसे वैसे नीचे धँसी हुई पर्पटी पुन. ऊपर उठती है। पर्वतीकरण की क्रिया इसी प्रकार होती है।

प्रश्नावली

1. Discuss the theories that have been advanced to explain mountain folding. (Banaras M.Sc. Geol 1951).

2. Write a concise account of the origin of the various types of mountains of India (Agra M.A. Geography 1950).

3. Write an essay on the origin of mountains with special reference to the Himalayas.

(Banaras M Sc. Geol. 1950).

4. Discuss concisely the various theories which have been advanced to explain the origin of forces respousible for mountain building. Give examples.

(Agra M.A Geography 1949).

5. Elucidate the idea of 'Magmatic Cycles.'

(Banaras M.Sc. Geol. 1949).

6. 'Out of the geosynclines have come the mountains' Elaborate this statement with reference to either the Himalayas or the Alps. (Agra M A. Geography 1947)
(Banaras M.A. and M Sc. Geography 1948).

7 Give an account of the role of Isostasy in mountain building. (Banaras M A and M Sc Geography 1947)

8. Give a short account of the history of a folded mountain range What other agencies may be respousible for mountain formation. Give examples preferably from India. (Agra M A Geography 1948)

9. Discuss in details the theory of Magmatic Cycles by Holmes. (Banaras M Sc Geol. 1941).

10. Give the full life history of a geosynclinal region, tracing the various stages in the epeirogenic and orogenic phases of development. (Banaras M.Sc Geol. 1948).

11 Explain any one important theory of mountain formation What are the different phases in mountain-building ? Discuss. (Allahabad M A. Geography 1947).

12 Discuss the following statement with special reference to the Himalayas —

'Out of the geosynclines have come the mountains'
(I. A S Competition Examination 1953)

13. Discuss the Thermal Contraction Theory of Jeffreys and appreciate how far it has solved the problem of mountain building. (Allahabad M A. Geography 1952).

14. Discuss fully Holmes' convectional current theory.
(Allahobad M,A. Geography 1951).

15 Critically examine Daly's hyphothesis of sliding continents. How far has it solved the problem of mountain building. (Allahabad M A. Geography 1953).

16. Describe phases in the formation of a fold mountain. How do you explain the long period of geosynclinal sedimentation followed by compression and elevation ?
(Banaras M A and M.Sc. Geog. 1953).

17. Describe theories put forward to explain the origin of tectonic mountains. (Banaras M.Sc. Geog. 1953).

षष्टम परिच्छेद

पूर्वकालीन हिमयुगों के कारण

(CAUSES OF THE PAST ICE-AGES)

भूमिका

पृथ्वी के इतिहास मे अनेक बार हिमयुग हुए है। हिमयुग से तात्पर्य है— तापमान के घट जाने से किसी भूखण्ड का हिम से ढक जाना। भूगर्भ-शास्त्र के प्रमाण यह सिद्ध करते है, कि एलगोनकियन युग मे उत्तरी अमेरिका, निम्न कैम्ब्रियन युग मे नॉरवे, चीन और सम्भवत आस्ट्रेलिया एव द० अफ्रीका भी, डिवोनियन युग मे द० अफ्रीका, परमियन युग मे द० अमेरिका, द० अफ्रीका, भारतवर्ष, आस्ट्रेलिया और सम्भवत योरप तथा उ० अमेरिका भी तथा प्लीस्टोसीन युग मे अनेक बार ससार के विभिन्न भागो मे हिमयुग हुए है। इन पूर्वकालीन हिमयुगो के स्पष्टीकरण के लिये अनेक सिद्धान्त और वाद प्रस्तुत किए गये है। उन सबका विस्तृत विवेचन यहाँ पर सभव नही है। केवल कुछ प्रमुख सिद्धान्तो की रूप-रेखाये नीचे दी जा रही है।

१. सौर-विकिरण की विभिन्नता

सिद्धान्त—सूर्य-कलक के चक्रो (Cycles of sun-spots) के अध्ययन से यह विदित हुआ है कि सौर-विकिरण की मात्रा सदैव एक सी नही रहती। इससे विद्वानो ने यह निष्कर्ष निकाला है, कि सभव है, दीर्घ कालान्तर मे सौर-विकिरण की मात्रा में बडे अन्तर हो जाते हो। इस सिद्धान्त के अनुसार, जब सौर-विकिरण अत्यन्त क्षीण हो जाता है, तभी पृथ्वी पर हिमयुग होते है।

समीक्षा—इस सिद्धान्त के विषय मे सबसे बडी कठिनाई यह है कि हमारे पास वे साधन ही नही है, जिनसे इसकी सफलता अथवा असफलता कुछ भी प्रमाणित की जा सके। अतएव यदि यह सिद्धान्त सही भी हो, तो भी इस समय यह एक मधुर कल्पना ही है।

२. सूर्य का शीतल क्षेत्र में प्रवेश

सिद्धान्त—हिमयुगो के सम्बन्ध मे ज्योतिष की यह दूसरी अवधारणा है। इसके अनुसार कभी कभी सूर्य ऐसे ग्रहो के क्षेत्र मे प्रवेश करता है, जहाँ उसे पर्याप्त ताप नही मिलता।

समीक्षा—ज्योतिष का आधुनिक अध्ययन इस अवधारणा को सही नही मानता।

३ कैपलर का नियम

सिद्धान्त—पृथ्वी की धुरी की उत्केन्द्रता (Eccentricity)[1] स्थिर नही है। उसमें अन्तर होते रहते है। इस सिद्धान्त के अनुसार ये परिवर्तन पूर्वकाल मे तापमान के क्षीण होने मे सहायक हुए है।

समीक्षा—वास्तव मे पृथ्वी की धुरी की उत्केन्द्रता के परिवर्तन आवर्तीय (Periodical) है, अतः यदि यह सिद्धान्त सही होता तो पृथ्वी मे अब तक आवर्तीय रीति से सैकडो हिमयुग हुए होते, जिनका कोई प्रमाण नही है।

४ महाद्वीपीय प्रवाह

सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के अनुसार वे सभी प्रदेश जो समकालीन हिमनदियो से प्रभावित हुए है, पूर्वकाल मे एक दूसरे से जुडे हुए थे। उदाहरण के लिये, अफ्रीका, प्रायद्वीपीय भारत तथा आस्ट्रेलिया मे परमो-कारबोनिफैरस युग (Permo-Carboniferous Period) की हिमनदियो के चिह्न मिले है। इस सिद्धान्त के अनुसार इस युग मे ये सभी महाद्वीप एक दूसरे से जुडे हुए थे (चित्र १५) और गौण्डवानालैण्ड नामक महान् स्थलखण्ड का निर्माण करते थे कालान्तर मे वे एक दूसरे से पृथक हो गये।

समीक्षा—(१) महाद्वीपों के प्रवाह के लिये, जो बल आवश्यक है, उनका स्पष्टीकरण अभी तक नही हो सका है।

(२) यह सिद्धान्त सागर-नितल के स्थायित्व (Permanency of ocean-basins) की अवधारणा के प्रतिकूल है।

(३) इस सिद्धान्त से कुछ हिमयुगो का स्पष्टीकरण तो अवश्य हो जाता है, पर सबका नही।

५ घनवातिकीय (Meteorological) सिद्धान्त

सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के अनुसार घनवातिकीय दशाओं मे अन्तर होने से हिमयुग होते है।

समीक्षा—इस विज्ञान में अभी तक इतना अनुसन्धान नही हो सका है, जिससे पूर्वकालीन हिमयुगो का सन्तोषप्रद स्पष्टीकरण हो सके।

---

1. Eccentricity is the distance of the centre of a planet's orbit from the centre of the sun.

६ ध्रुवों की विचलन

सिद्धान्त—बहुत से विद्वानो की यह धारणा है कि उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवो की स्थिति मे परिवर्तन होने से हिमयुग हुए है ।

समीक्षा—(१) ध्रुवो के विचलन के लिये आवश्यक बल कहाँ से आये ?

(२) पृथ्वी इस्पात के समान कठोर है। पूर्वकाल मे ध्रुवो की स्थिति मे यदि कोई महान् अन्तर हुआ होता, तो उसका पृथ्वी की सरचना पर कोई न कोई प्रभाव अवश्य पडता, किन्तु इसके कोई प्रमाण नही मिलते।

(३) ज्योतिष-वेत्ताओके अनुसार ध्रुव अपनी केन्द्रीय स्थिति से किसी भी दिशा मे अधिक से अधिक २१ मिनट अर्थात् लगभग २३ मील ही विचलित हो सकते है, अधिक नही।

७. ज्वालामुखीय धूलि का सिद्धान्त

सिद्धान्त—ज्वालामुखियो के उद्‌गार से लावा आदि पदार्थों के अतिरिक्त धूलि भी प्रचुर परिमाण मे निकलती है। यह धूलि भूपृष्ठ पर आवरण के रूप में छा जाती है और सूर्य की किरणो के मार्ग मे बाधक होती है । यह उनके ताप का शोषण कर लेती है, जिससे भूपृष्ठ का तापमान घट जाता है । इस सम्बन्ध मे ऐसे अनेक प्रमाण मिलते है, जिनसे विदित होता है कि परमियन और प्लीस्टोसीन काल के हिमयुगो के पहले ज्वालामुखियो के उद्‌गार असाधारण रूप से हुए है।

समीक्षा—(१) जब हम प्लीस्टोसीन युग की आग्नेय क्रिया (Igneous Activity) और उस युग कीहिमनदियो की अग्र और पश्च गतियो मे पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करते है,तो हमे सफलता नही मिलती।

(२) इसके अतिरिक्त परिमाणात्मक आपत्तियाँ भी है। अन्य शब्दो में ज्वालामुखीय धूलि तापमान के घटाने मे आशिक रूप से सहायक भले ही हो किन्तु केवल उसके कारण हिमयुग होना सम्भव नही है ।

८. पृथ्वी का कार्बन डाइ ऑक्साइड से ढक जाना

सिद्धान्त—वायुमण्डल मे कार्बन-डाइ-ऑक्साइड विद्यमान है। यह पृथ्वी के आन्तरिक ताप के विकिरण को रोकती है । चैम्बरलिन ने यह प्रदर्शित किया है कि यदि वायुमण्डल मे कार्बन-डाई-आक्साइड की मात्रा बढ़ जावे तो पृथ्वी का तापक्रम भी बढ़ जाता है । इसके विपरीत यदि इसकी मात्रा घट जावे, तो तापक्रम भी घट जाता है । ऋतुक्षरण (Weathering) की प्रक्रिया मे कार्बन-डाइ-आक्साइड उपभुक्त होता है । स्थलखण्डो के अचानक ऊपर उठ जाने से ऋतुक्षरण बढ़ जाता है । इस प्रकार

कार्बन-डाइ-आक्साइड के घट जाने से शीतल जलवायु का आविर्भाव होता है और कभी कभी विशेष दशाओ मे हिमयुग भी हो जाते है। ऋतुक्षरण की प्रक्रिया से वायुमण्डल के वाष्प की मात्रा भी घट जाती है, जिससे पृथ्वी का तापमान और भी कम हो जाता है। कालान्तर मे जव वायुमण्डल को कार्बन-डाइ-ऑक्साइड पुन प्राप्त होती है, तब हिमयुग समाप्त हो जाता है। कार्बन-डाइ-ऑक्साइड अनेक स्रोतो से मिलती है, जैसे (१) प्रत्यक्ष रूप से—महासागरो द्वारा (बहुत से सागरीय जीवो के शरीर से चूना निकलता है। इस चूने से कार्बन-डाइ-ऑक्साइड बनती है)। (२) परोक्ष रूप से हिमावरण द्वारा जो शिलाओ का ऋतु-क्षरण रोकता है।

समीक्षा—इस सिद्धान्त के प्रणेता हम्फ्रे ने स्वय स्वीकार किया है कि कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की वर्तमान राशि मे १०० प्रतिशत वृद्धि अथवा ५० प्रतिशत न्यूनता पृथ्वी के तापमान पर कोई भी महत्वपूर्ण प्रभाव न डाल सकेगी। फिर भी सभव है कि यदि इसकी मात्रा मे बहुत अधिक कमी हो जाय, तो हिमयुग का आविर्भाव हो सके।

९. अन्य भौगोलिक एवं भौमिकीय सिद्धान्त

सिद्धांत—इन सिद्धान्तो के अनुसार पूर्वकालीन हिमयुग निम्नलिखित कारणो से हुए है—

(१) जल तथा स्थलखण्डो के वितरण और विन्यास मे परिवर्तन।

(२) स्थलखण्डो की ऊँचाई मे परिवर्तन।

(३) हवाओ और जलधाराओ की दिशाओ मे परिवर्तन।

समीक्षा—(१) यह सत्य है कि प्रोटरोजोयक, परमियन तथा प्लीस्टोसीन हिमयुगो के पहले स्थलखण्डो मे ऊपर उठने और नीचे धँसने की गतियाँ बहुत हुई है, किन्तु इनमे और हिमयुगो मे पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने मे सफलता नही मिलती।

(२) प्लीस्टोसीन हिमयुग तो हाल ही की बात है। तब से लेकर आज तक हवाओ और जलधाराओ की दिशा मे तथा स्थलखण्डो के वितरण और विन्यास मे ऐसे कौन से महान् परिवर्तन हुए है?

अतएव यह सिद्धान्त आशिक रूप मे भले ही हिमयुगो का कारण हो, किन्तु केवल इसी से हिमयुग सम्भव नही है।

१०. आधुनिक धारणायें

सिद्धान्त—हिमयुगो के विषय मे आधुनिक धारणायें रूसी वैज्ञानिको की है। इन्होने यह ज्ञात किया है कि पिछले सौ वर्षो मे हिम ध्रुवो की ओर और खिसक गई है। इनका कथन है कि समस्त पृथ्वी का औसत तापक्रम पिछले तीस वर्षों

में बढा है। रूसी वैज्ञानिको ने यह भी ज्ञात किया है कि वायुमण्डल मे ३० किलोमीटर की ऊँचाई के बाद ओजोन (Ozone) का एक पृथक स्तर है
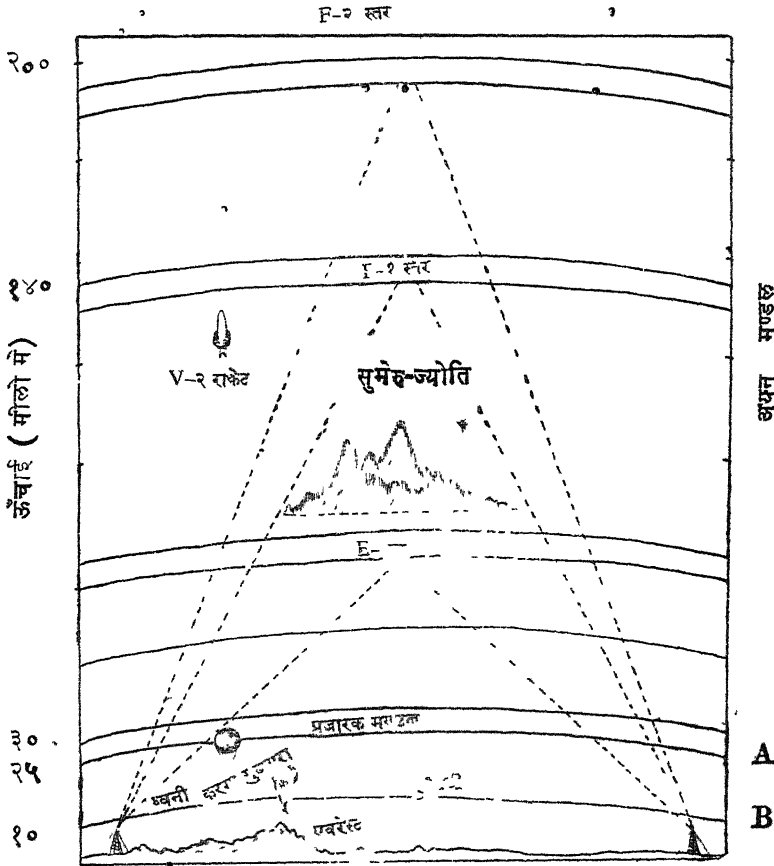
चित्र २५—नवीन अवधारणा के अनुसार वायुमण्डल के स्तर[1]

(चित्र २५)। प्रयोगो द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि ओजोन का स्तर सामान्यतः सौर-विकिरण का पाँचवाँ भाग शोषण कर लेता है। वायुमण्डल के ओजोन की मात्रा स्थिर नहीं है। वह घटती बढती रहती है। तदनुसार पृथ्वी का तापमान भी बढता घटता रहता है। जब इस प्रकार पृथ्वी का तापक्रम अत्यन्त क्षीण हो जाता है, तभी हिमयुगो का प्रादुर्भाव होता है।

समीक्षा—कार्बन-डाइ-ऑक्साइड के सिद्धान्त के समान सम्भव है यह

A समताप मडल। B परिवर्त-मडल।

सिद्धान्त भी आशिक रूप से तापमान नीचा करने मे सहायक होता हो किन्तु केवल ओजोन की न्यूनता से हिमयुग होना सम्भव नही प्रतीत होता ।

निष्कर्ष

उपर्युक्त सभी सिद्धान्तो पर विचार करने के उपरान्त भी हम हिमयुगो के सम्बन्ध मे कोई निश्चित मत स्थिर करने मे अपने को असमर्थ पाते है। कोई भी एक सिद्धान्त सभी हिमयुगो का सन्तोषप्रद स्पष्टीकरण करने मे असमर्थ है—उदाहरण के लिये सौर-विकिरण के विभेदन वाले सिद्धान्त से जहाँ प्लीस्टो-

चित्र २६—प्लीस्टोसीन हिमनदियो की अग्र और पश्च गतियो का सौरविकिरण के विभेदन से सम्बन्ध
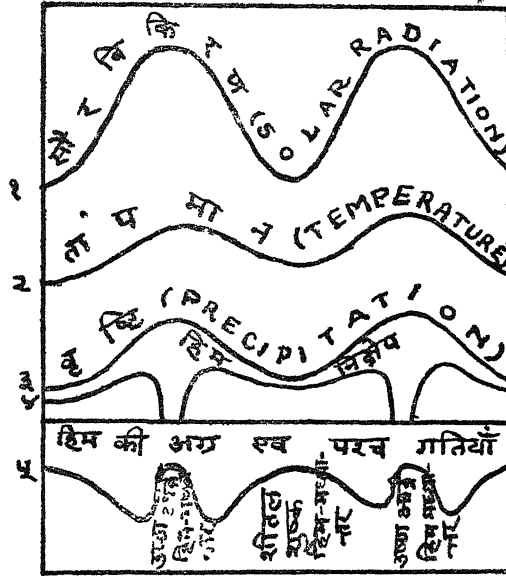
उपर्युक्त चित्र मे—

वक्र १—सौर-विकिरण के दो पूर्ण चक्र प्रदर्शित करता है।

वक्र २—इन चक्रो के समय ससार का औसत तापक्रम प्रदर्शित करता है।

वक्र ३—वृष्टि का वक्र है। यह सौर-विकिरणके वक्र के अनुरूप है।

वक्र ४—उच्च-अक्षांशो मे हिम-निक्षेप का द्योतक है

वक्र ५—आल्प्स के चार हिमानी और तीन अन्तर्हिमानी काल प्रदर्शित करता है।

सीन युग की हिमनदियो की अग्र और पश्च गतियाँ तक स्पष्ट हो जाती है, (चित्र २६) वहाँ यही सिद्धान्त परमियन और प्लीस्टोसीन हिमयुगो के मध्य का दीर्घ कालान्तर समझाने मे असमर्थ है। सम्भव है, उपर्युक्त सिद्धान्तो मे निहित बहुत-सी दशाएँ मिलकर हिमयुगो का कारण हो। ज्योतिष और घनवातिकी (Meteorology) के वर्तमान अध्ययन द्वारा हम किसी भी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने मे असमर्थ है। जब तक ये दोनो विज्ञान इस विषय मे पर्याप्त उन्नतिशील नही हो जाते, तब तक हिमयुगो के सम्बन्ध मे निश्चित परिणाम पर पहुँचना असम्भव नही तो महाकठिन अवश्य है।

प्रश्नावली

1. How have the changes of climate in past pliocene times been explained ? (Agra M A Geography 1953).

2, How do you account for ice-ages in the geological history of the earth ? (Banarss M.Sc. Geol. 1949).

3. Discuss the various theories that have been put forward to explain the existence of ice-ages. (Banaras M. Sc. Geol. 1945).

4. Explain fully the various causes of the worldwide lowering of temperature in the past geological ages. (Banaras M.Sc. Geol. 1939).

5. Discusss the various theories put forward for explaining the phenomena of ice-age. (Banaras M.Sc. Geol. 1943).

6. Describe Pleistocene ice-age and suggest eauses of ice-age. (Allahabad M.A. Geography 1953).

सप्तम परिच्छेद

"प्रवाल्याओं की संरचना"

(STRUCTURE OF ATOLLS)

'प्रवाल्याओ (Atolls) का विकास किस प्रकार हुआ ?'—यह प्रश्न बड़े ही महत्त्व का है। इस सम्बन्ध मे विद्वानो ने अनेक मत प्रकट किये हैं। इनमे से तीन प्रमुख विचारधारायें नीचे दी जा रही हैं :—

१. डारविन (Darwin) का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार, सबसे पहले मूंगे का कीड़ा अथवा प्रवाली पर्वीक (Coral Polyp) किसी द्वीप के चारों ओर अनुतट-प्रवाली (Friging
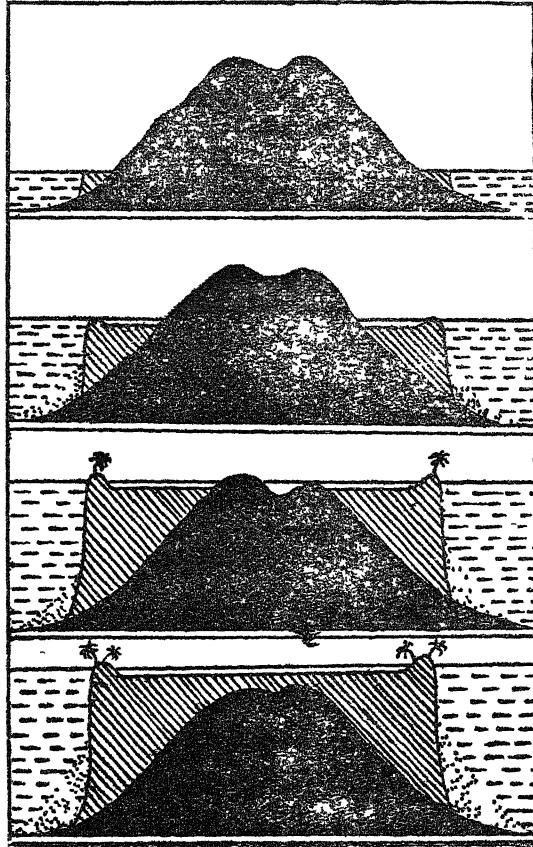
चित्र २७—डारविन के अनुसार प्रवाल्याओ की रचना

reef) बनाना आरम्भ करता है। सागर पृष्ठ से तीस या चालीस फुट नीचे¹ यह क्रिया आरम्भ होती है। जब तक स्थल और जल के आपेक्षिक समतलो मे अन्तर नही होता, अनुतट-प्रवाली विकसित होती रहती है। किन्तु यदि किन्ही कारणो से द्वीप नीचे धँसता है, तो प्रवाली भी जल मे उतने नीचे और डूब जाती है। इसके बाद प्रवाली फिर ऊपर की ओर विकसित होने लगती है। प्रवाली का विकास बाहर की ओर सबसे अधिक होता है क्योंकि वहाँ उसे भोजन की सबसे अधिक सुविधा होती है। भोजन से कैलशियम कार्बोनेट (Calcium Carbonate) का तात्पर्य है। प्रवाल का जीवन इसी पर निर्भर है। प्रवाल इसे सागर जल से खीचता है। बाहर की ओर प्रवाली का विकास अधिक होने का एक कारण यह भी है कि वहाँ पर उसे अवसाद (Sediments) से ढक जाने का डर नही रहता। अतएव, जब द्वीप नीचे धँसता है, तो प्रवाली का बाहरी भाग ऊपर उठा रहता है और मध्य का शेष भाग डूब कर उपहृद (Lagoon) मे परिणत हो जाता है। नीचे धँसने की क्रिया की वृद्धि के साथ ही साथ उपहृद की गहराई और विस्तार भी बढ़ते जाते है। कालान्तर मे समस्त द्वीप जलमग्न हो जाता है और यदि प्रवाली द्वीप के चारो ओर हुई तो अन्त मे उसका वलय (Ring) शेष रह जाता है जिसके मध्य मे जलमय उपहृद रहता है। इस प्रकार प्रवालया (Atoll) अस्तित्व मे आती है।

सिद्धांत के पक्ष में प्रमाण :—इस सिद्धान्त के अनुसार प्रवालयाये केवल उन क्षेत्रो मे पाई जाना चाहिये, जहाँ सागर-नितल की अवनति हुई हो। ऐसे अनेक सबल प्रमाण मिलते है, जिनसे इस कथन की पुष्टि होती है। उदाहरण के लिये बृहद्-परातट-प्रवाली (Great Barrier Reef) के अन्तर्गत क्वीसलैण्ड के तट पर ऐसी अनेक समुद्रान्तर घाटियाँ पाई जाती है, जो स्वय निमज्जन Subsidence) की द्योतक है। बहुत सी वलयाकार प्रवाली-रचनाओ के बीच मे स्थित द्वीप के किनारे भी इसी प्रकार कटे हुए है और थोडी ही अधोगति उन्हे प्रवालया (Atoll) मे परिणत करने मे समर्थ होगी।

विपक्ष में प्रमाण—प्रशान्त महासागर मे बहुत सी प्रवालयाये ऐसे क्षेत्रो में पाई जाती है, जहाँ न केवल निमज्जन के कोई चिह्न नही है, प्रत्युत उन्मज्जन (Elevation) के निश्चित प्रमाण विद्यमान हैं। पैल्यू आदि द्वीप समूह में स्थल का उन्मज्जन निश्चित रूप से हुआ है। अनेक प्रमाणो से इसकी पुष्टि होती है। सोलोमन द्वीप की प्रवालयाये ऐसी लाल चिकनी मिट्टी पर स्थित है, जो

१—मूगे का कीडा प्रवाली शृंखला का निर्माण १२० फुट से अधिक गहराई में नही करता, क्योकि इससे नीचे की परिस्थितियाँ प्रवाली के विकास के लिये अनुकूल नहीं हैं।

केवल अथाह महासागर मे पायी जाती है। उन्मज्जन का इससे अधिक ज्वलन्त और यथार्थ प्रमाण अन्य क्या हो सकता है? केवल निक्षेप से इतने अधिक मात्रा मे उन्मज्जन कदापि सभव नही है।

२. मरे (Murray) का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार प्रवाली का विकास ऐसे समुद्रान्तर पठारो (Submarine Plateaus) पर होता है, जिनका ऊपरी धरातल सागर-पृष्ठ से १२० फुट से कम गहराई पर होता है। प्रवाली रचना का आन्तरिक भाग अपेक्षाकृत नीचे रहता है और बाहरी भाग पूर्वलिखित कारणो से अत्यन्त वेग से विकसित होता है और कालान्तर मे सागर-समतल मे भी ऊँचा उठ जाता है। इस प्रकार प्रवाली-रचना एक ऐसे घेरे का रूप धारण कर लेती है जिसके बीच मे उपहृद (Lagoon) रहता है। ऐसी अवस्था मे जीवित प्रवाल सागर की ओर रहते है और आन्तरिक भाग मे मृतक प्रवालो का बाहुल्य होता है। कारण स्पष्ट है। मृत प्रवाली के घुलने से उपहृद और भी अधिक गहरा और विस्तृत होता जाता है। दूसरी ओर प्रवाली का बाहरी भाग ऊपर की ओर विकसित होता रहता है। इस प्रकार प्रवाली का वलय क्रमश आकार मे बढता जाता है। अतएव प्रवाल्याओ की आयु-निर्धारण मे आकार का भी महत्त्व है।
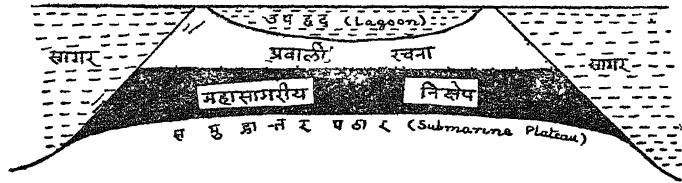
चित्र २८—मरे के अनुसार प्रवाल्याओ की रचना

पक्ष में प्रमाण—(१) बहुत से उथले सागरो मे समुद्रान्तर पठारों पर प्रवाल्याये (Atolls) पाई गई है।

(२) यह तो डारविन तक ने स्वीकार किया है कि उथले सागर मे प्रवाली रचनाओ का स्वाभाविक बाह्य-विकास, उन्हे प्रवाल्या का रूप देने मे समर्थ होगा। डारविन के अनुसार पश्चिमी हिन्द—महासागर की प्रवाल्याये, धाराओ द्वारा एकत्र किये गये अवसाद (Sediments) के तटो पर, इसी प्रकार बनी है।

(३) अनेक प्रवाल्याओं के परीक्षण से ज्ञात होता है, कि उनके प्रवाली-निक्षप २०० फुट से अधिक गहरे नही है। सीलोमन द्वीप समूह का सैण्ट अन्ना तथा जावा के दक्षिण मे स्थित क्रिश्चियन द्वीप इसके उदाहरण है।

(४) यह उल्लेख तो पहले ही हो चुका है कि पैल्यू, सोलोमन आदि द्वीप समूहो मे उन्मज्जन के निश्चित प्रमाण मिले है ।

विपक्ष में प्रमाण--(१) मरे के अनुसार प्रवाल्या का केवल ऊपरी २०० फुट के लगभग भाग प्रवाल से बना होगा, शेष नही । परीक्षा से ज्ञात होता है कि अनेक दशाओ मे यह सत्य नही है ।

(२) अधिकतर प्रवाल्याओ के बाहरी तट बडे प्रपाती (Steep) होते है। मरे की उपकल्पना इनका स्पष्टीकरण नही करती ।

(३) इस सिद्धान्त के अनुसार प्रवाली श्रृखला का विकास ऐसे समुद्रान्तर पठारो पर हुआ जिनका ऊपरी धरातल या तो अपक्षरण (Erosion) द्वारा नीचा होकर अथवा निक्षेपण (Deposition) द्वारा ऊपर उठकर सागर-समतल से लगभग ३० फैदम गहरा हो गया । अतएव प्रवाल्याओ की गहराई ३० फैदम ही होना चाहिये, किन्तु प्राय वह ४० फैदम से भी अधिक होती है ।

३ डैली का हिमनियंत्रण का सिद्धान्त (Daly's Theory of Glacial Control)

सन् १९०९ ई० मे हवाई द्वीपो की प्रवाली-रचनाओ का निरीक्षण करते समय डैली का ध्यान उनकी सकीर्णता की ओर आकर्षित हुआ । इसके अतिरिक्त मौना-की (Mauna-Kea) मे उसने अभिनवकालीन[1] हिमनदियो के चिह्न भी देखे । इससे उसने अनुमान किया कि प्रवाली-विकास और तापक्रम मे सम्बन्ध अवश्य है । आजकल जाडे के दिनो मे इन सागरो का तापमान प्रवाली-विकास के लिये आवश्यक तापमान से थोडा ही अधिक रहता है । इससे उसने यह अनुमान किया कि हिमयुग मे यहाँ का तापमान प्रवाली विकास के लिए आवश्यक तापमान की अपेक्षा बहुत कम होगा, अतएव उस काल में इनका विकास न हो सका होगा। इस प्रकार वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि हवाई-द्वीपो की प्रवाली-रचनाये हिमयुग के बाद की रचनाये है। अब तो सभी लोग यह मानते है कि प्रातिनूतन हिमयुग (Pleistocene Ice Age) मे सागर-समतल मे उच्चावचन (Fluctuations) हुए है--अर्थात् कभी वह ऊपर उठा है तो कभी नीचे चला गया है । सागर समतल के नीचे जाने से उसका तापमान भी घट गया होगा, जिसका प्रभाव ससार भर पर पडा होगा। डैली के अनुसार प्रातिनूतन हिमयुग मे सागर समतल लगभग २०० फुट नीचे चला गया था। जब सागर पृष्ठ अधिक से अधिक नीचा होगा, उस समय समुद्र की तरंगो ने हिमयुग से पहले की ऊपर निकली हुई प्रवाली रचनाओ का अपक्षरण किया होगा, जिसमे वे समुद्रान्तर फलकियो (Submarine

1. Recent.

Benches) मे परिणत हो गई होगी। इसके बाद जब तापक्रम बढा होगा और हिम-टोपियाँ (Ice-caps) पिघली होगी और उनका पानी समुद्र मे प्रवाहित
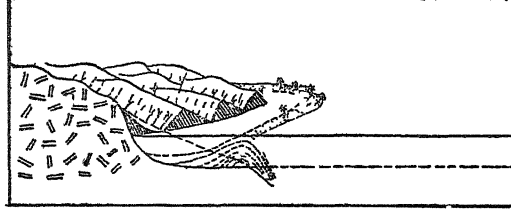
चित्र २९ डैली के अनुसार प्रवाल्याओ की रचना

हुआ होगा, तब सागर-समतल फिर ऊपर उठा होगा और पानी का तापमान भी बढ गया होगा। अत्यन्त तीव्र हिमयग मे भी जो प्रवाल जीवित रह जाते है, वे निम्नसमतल के अपघर्षण (Low Level Abrasion) से बनी समुद्रातर फलकियो पर नवीन रचनाओ की सृष्टि करते है। पूर्वलिखित कारणो से प्रवाली बाहर की ओर अधिक विकसित होती है और कालान्तर मे प्रवाल्या की आकृति ग्रहण कर लेती है।

अनुकूल प्रमाण—(१) प्रवाल्याओ के ऊपरी धरातल का चपटापन इस सिद्धान्त क अनुकूल है। इस सिद्धान्त मे निम्न समतल के अपघर्षण (Low Level Abrasion) की जो कल्पना की गई है, उसके फलस्वरूप चपटा धरातल ही अस्तित्व मे आयेगा।

(२) हिमयुग मे महाद्वीपीय हिमखण्डो के विकसित होने और पिघलने से महासागर के जलपृष्ठ का ऊपर उठना और नीचे चला जाना सर्वमान्य तथ्य है।

प्रतिकूल प्रमाण—(१) प्रवाल्याओ के उपह्रदो की गहराई के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि वे प्रातिनूतन युग मे सभव अधिक से अधिक गहराई से भी अधिक गहरे है।

(२) अपक्षरण द्वारा अधिकाश जलमग्न तटो का इतना अधिक नीचा होना शक्य नही प्रतीत होता, जितना कि अपेक्षाकृत कम विस्तार वाले तट हुए है।

(३) इस सिद्धान्त के अनुसार उच्छृगो (Cliffs) की सृष्टि अत्यन्त अनिवार्य है। यदि यह भी मान लिया जाय कि कुछ उच्छृग सागर-समतल के ऊपर उठने से डूब गये होगे, तो भी कुछ तो शेष बचना चाहिये। सत्य तो यह है कि प्रवाली सागरो मे उच्छृग पूर्णत अनुपस्थित है।

निष्कर्ष

उपलब्ध प्रमाणो की विरोधी प्रवृत्ति के कारण किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है। इतना तो निर्विवाद कहा जा सकता है कि प्रवाल्या अनेक

प्रकार से अस्तित्व मे आये—कुछ निमज्जन के क्षेत्रो में विकसित हुए और कुछ ऐसे भागो मे जहाँ निमज्जन नहीं हुआ ।

इस समस्या के हल के लिये दक्षिणी प्रशान्त मे फ्यूनाफूटी नामक टापू के एक प्रवाल्या के वलय मे लगभग १११४ फुट गहरा सछिद्रण (Bore) किया गया। सछिद्रण से निकले पदार्थों के परीक्षण से यह विदित हुआ कि उसका प्राय: समस्त भाग प्रवाल द्वारा रचित हैं । स्पष्ट है कि यह प्रयोग डारविन की उपकल्पना के अनुकूल हैं । किन्तु यह तो केवल परोक्ष (Indireot) प्रमाण हुआ। इसे हम निश्चयात्मक प्रमाण तो नही कह सकते ।

दूसरी ओर इस बात के भी निश्चित प्रमाण मिलते है कि प्रवाल्याये ऐसे क्षेत्रों मे भी पाई जाती है, जहाँ सागर-नितल का निमज्जम नही हुआ है। यही नही ऐसे क्षेत्रो मे भी प्रवाल्याये पाई गई है, जहाँ नितल मे निश्चित उन्मज्जन हुआ है।

कोई भी एक सिद्धान्त समस्त प्रवाल्याओ के लिये घटित नही होता । कुछ विशेष प्रवाल्याओ मे सछिद्रण अपेक्षित है। कुछ प्रवाल्याओ का विस्तृत अध्ययन भी आवश्यक है। अनुसन्धान के लिये इस दिशा में काफी क्षेत्र पडा है, फिर भी इतना सकेत कर देना उचित होगा कि अभी तक डारविन को ही सबसे अधिक समर्थन प्राप्त है।

डेविस अपने 'प्रवाली शृखला की समस्या' नामक ग्रन्थ में इस निष्कर्ष पर पहुँचे है :—

'डारविन का निमज्जन का सिद्धान्त तथा डेली का हिम-नियन्त्रण का सिद्धान्त—दोनो मिलकर प्राय: सभी प्रकार के प्रवाली-श्रखलाओ के स्पष्टीकरण के लिये सबसे अधिक समर्थ है ।'

प्रश्नावली

1. Write an essay on the coral reef problem.
(Agra M.A. Geography 1949).

2. 'Subsidence is better able to explain atolls and barrier reefs than any other postulate.' Discuss.
(Banaras M.A. and M.Sc. Geography 1949).

3. Describe the more important theories for the formation of attols. (Allahabad M.A. Geography 1952).

4. Write a critical note on the problem of coral reefs.
(Allahabad M.A. Geography 1948).

5. Discuss the Glacial Control Theory of the origin of coral reefs. (Banaras M.A. and M.Sc. Geography 1953).

अष्टम परिच्छेद

चक्रवातों की उत्पत्ति

(ORIGIN OF CYCLONES)

भूमिका—चक्रवात (Cyclone) समभार रेखाओ (Isobars) की एक विशेष व्यवस्था है, जिसमे समभार रेखाये प्राय वृत्ताकार (Circular) अथवा दीर्घ-वृत्ताकार (Elliptical) होती है, इसके मध्य मे वायु का दबाव सबसे कम होता है और वह चारो दिशाओ मे क्रमश. बढता जाता है । चक्रवात प्रायः कभी भी स्थिर नही रहते । सामान्यत वे प्रचलित वायु की दिशामें गतिशील होते है। चित्र ३० मे उत्तरी गोलार्ध का एक चक्रवात प्रदर्शित किया गया
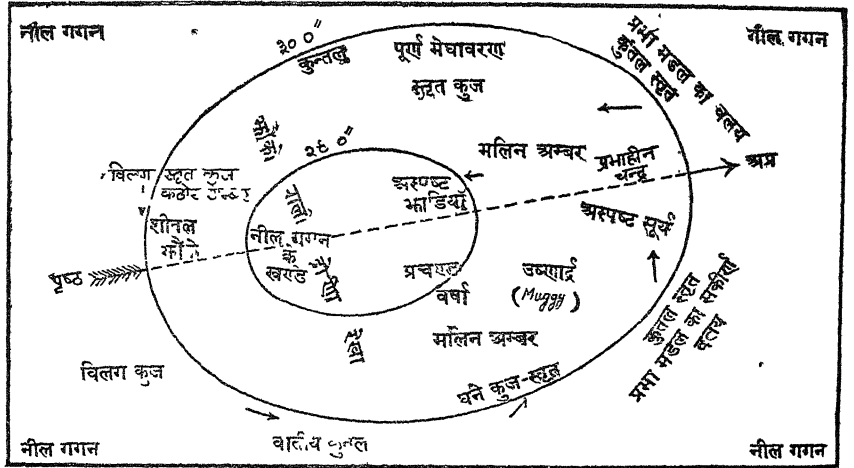
चित्र ३०—उत्तरी गोलार्ध का एक चक्रवात

है । उससे स्पष्ट होगा कि न्यूनतम भार चक्रवात के बिल्कुल बीचों बीच नहीं होता है, वरन् कुछ पीछे हटा हुआ होता है । केन्द्र से गुजरने वाली और गति की दिशा के प्रति समकोण बनाने वाली रेखा को द्रोणी (Trough) कहते है। द्रोणी के आगे का भाग अग्र (Front) कहलाता है और पाछे का भाग पृष्ठ (Back) कहलाता है । वायु सदैव अधिक भार से कम भार की ओर प्रवाहित होती है। चक्रवात के मध्य मे वायु का भार सबसे कम होता है, अतएव उसकी ओर चारो दिशाओ से वायु प्रवाहित होती है। फैरल के नियम के अनुसार ये हवाये उत्तरी गोलार्ध मे अपनी दाहिनी ओर और दक्षिणी गोलार्ध मे अपनी बायी ओर मुड जाती है । चित्र ३० से

स्पष्ट होगा कि उत्तरी गोलार्ध के चक्रवात के अग्र (Front) मे हवाये अधिकतर दक्षिण से प्रवाहित होती है और पृष्ठ (Back) मे अधिकतर उत्तर मे। वायु का तापमान भी दिशा के अनुसार ही होता है अर्थात् दक्षिण मे आनेवाली वायु उष्ण होती है और उत्तर से आनेवाली वायु अपेक्षाकृत शीतल। अग्र की अपेक्षा पृष्ठ की हवाये अधिक शक्तिशाली होती है।

शीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवात (Temperate Cyclones)

इनकी उत्पत्ति के स्पष्टीकरण के लिये अनेक सिद्धान्त उपस्थित किये गये है। इनमे ध्रुवीय अग्र का सिद्धान्त (Polar Front Theory) सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

इस सिद्धान्त के अनुसार वायु की दो राशियाँ—एक उष्ण और दूसरी अपेक्षाकृत शीतल सस्पर्श मे आती है। इन राशियो को, उद्गम के अनुसार, क्रमश विषुवतरेखीय और ध्रुवीय वायु कहते है। यह तो स्पष्ट ही है कि विषुवत्-रेखीय वायु उष्ण और आर्द्र होगी और ध्रुवीय वायु शीतल और शुष्क। वायु की ये दो भिन्न राशियाँ समानान्तर किन्तु विरुद्ध दिशाओ मे प्रवाहित होती है। (चित्र ३१) विषुवत रेखीय वायु दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर चलती है और ध्रुवीय वायु उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की ओर। इन दोनो हवाओ को पृथक करनेवाली रेखा को ध्रुवीय अग्र (Polar Front) कहते है। इसी शब्द के आधार पर इस सिद्धान्त का नामकरण भी हुआ है। उष्ण और शीतल वायु के मिलने की दूसरी अवस्था भी चित्र ३१ मे दर्शायी गई है। इस क्षेत्र को जहाँ पर उष्ण वायु शीतल वायु से टकराती है, उष्ण अग्र (Warm Front) कहते है। इसी प्रकार उस क्षेत्र को जहाँ शीतल वायु उष्ण वायु के नीचे घुसकर टक (Wedge) बनाती है, शीतल अग्र (Cold Front) कहते है। जब उष्ण वायु पृथ्वी के धरातल पर ध्रुवीय अग्र से मिलती है तब वह शीतल वायु के ऊपर चढ जाती है। ऊपर जाने से वह ठण्डी होती है और उसकी भाप जल मे परिणत होकर वर्षा का रूप ग्रहण कर लेती है। जब समस्त उष्ण वायु ऊपर उठ जाती है तब यह कहा जाता है कि चक्रवात अधिधारित (Occluded) हो गया। उस रेखा को जिसके अनुसार उष्ण वायु पृथ्वी का परित्याग करती है, अधिधारण की रेखा (Line of Occlusion) कहते है। उष्ण और शीतल हवाओ को पृथक करनेवाला तल ध्रुवीय-अग्र (Polar Front) पर बिल्कुल उदग्र (Vertical) नही रहता। वह उत्तर की ओर झुका रहता है अन्य शब्दो मे ध्रुवीय अग्र के उत्तर मे भी कुछ दूर तक उष्ण विषुवत्-रेखीय वायु पायी जाती है। शीतल वायु के ऊपरी भाग मे उष्ण वायु के प्रविष्ट हो जाने से एक उभार सा बन जाता है, जैसा कि चित्र ३१ (द्वितीय अवस्था) से स्पष्ट है। इस चित्र मे ध्रुवीय अग्र (Polar Front) की पहले की

स्थिति विन्दुओ से दिखलाई गई है और पहले के शीतल और उष्ण

प्रथम अवस्था]
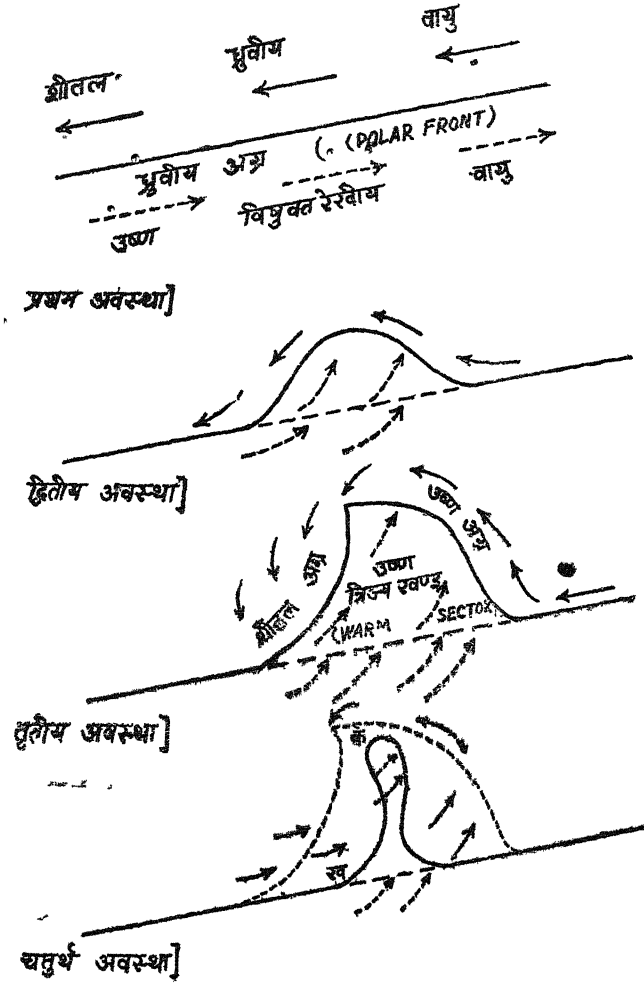
चित्र ३१—चक्रवात के विकास की विभिन्न उत्तरोत्तर अवस्थायें

अग्र टूटी रेखाओ से दिखलाये गये हैं। उष्ण वायु शीतल वायु की अपेक्षा हल्की होती है, अतएव वह उसके ऊपर चढ़ती जाती है, विशेषकर उत्तर की ओर झुके हुए पार्थक्य-तल (Surface of Separation) पर। उष्ण अग्र (**Warm Front**) पर उष्ण वायु शीतल वायु से टकराकर ऊपर उठती है। दूसरी ओर शीतल अग्र पर ध्रुवीय वायु (अपेक्षाकृत भारी होने के कारण) उष्ण-वायु के नीचे घुसकर चेटक (**Wedge**) बनाती है, जिससे वाँह की उष्ण-वायु ऊपर जाने को विवश होती है। इस प्रकार उष्ण

त्रिज्यखण्ड (Warm Sector) का आकार क्रमश घटता रहता है और अन्त मे एक ऐसी अवस्था आ जाती है जब समस्त उष्ण-वायु के ऊपर उठ जाने से वह बिल्कुल लुप्त हो जाता है (चित्र ३१—चतुर्थ अवस्था) यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि उस रेखा को जिसके अनुसार उष्ण-वायु पृथ्वी के धरातल का परित्याग करती है अधिधारण की रेखा (Line of Occlussion) कहते हैं। चित्र ३१ [चतुर्थ अवस्था] में क ख ऐसी ही रेखा है।
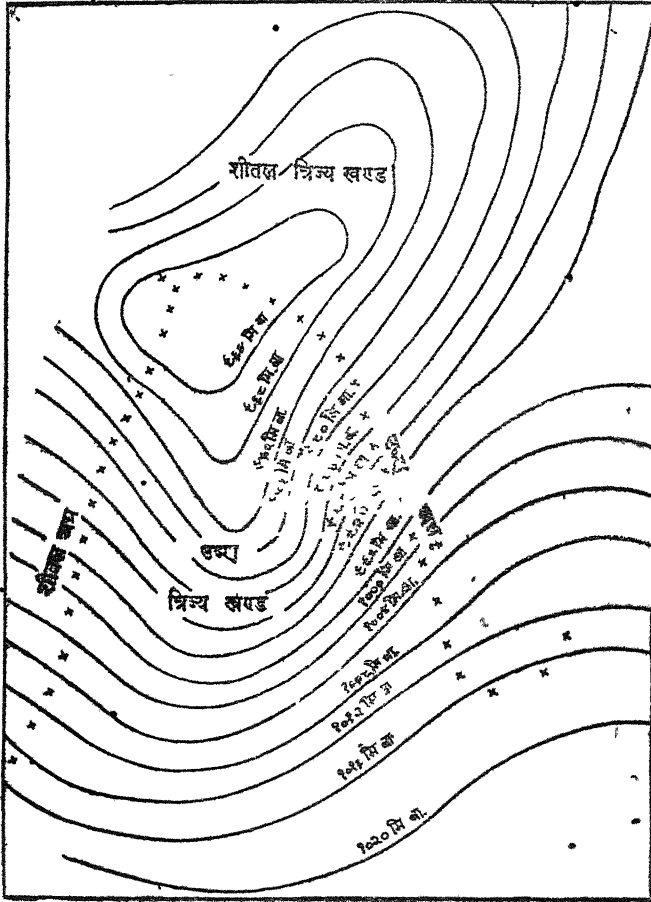
चित्र ३२—ध्रुवीय अग्र का सिद्धान्त (Polar Front Theory)

उष्ण कटिबन्ध के चक्रवात (Tropical Cyclones)

(हरीकेन, टाइफून इत्यादि)

उष्ण कटिबन्ध के चक्रवातो में निम्नलिखित विशेषतायें होती है, जिनकी

सहायता से हम इनमें और समशीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवातों (Temperate Cyclones) मे भेद कर सकते है और प्रत्येक को पहचान सकते है :—

(१) उष्ण कटिबन्ध के चक्रवात का व्यास शीतोष्ण कटिबन्ध चक्रवात के व्यास से कम होता है ।
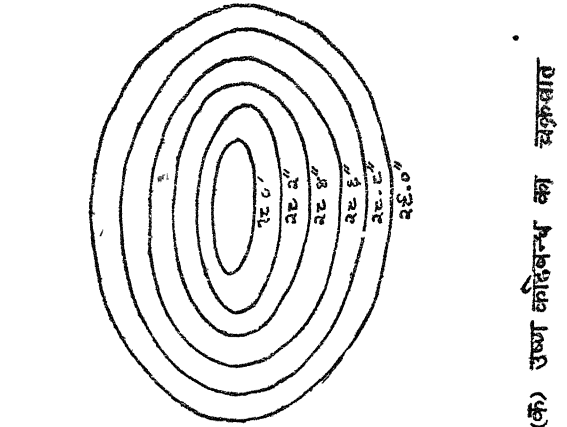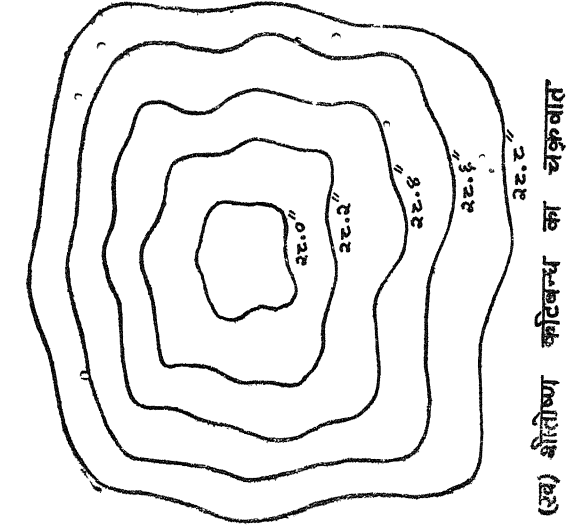
चित्र ३३ उष्ण तथा शीतोष्ण चक्रवातों का अन्तर

(२) उष्ण कटिबन्ध के चक्रवात की समभार रेखाये (Isobars) अपेक्षाकृत अधिक सममित (Symmetrical) और वर्तुल (Circular) होती है ।

(३) उष्ण कटिबन्ध के चक्रवात मे समभार रेखाये अधिक पास-पास होती है, अतएव उनमे वायु का वेग अधिक होता है । असली हरीकेन मे वायुवेग ७५ मील प्रति घण्टे से भी अधिक होता है ।

(४) उष्ण कटिबन्ध के चक्रवात मे तापमान का वितरण केन्द्र के चारो ओर सर्वत्र एक सा होता है। शीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवात के अग्र (Front) और पृष्ठ (Back) मे तापमान का काफी अन्तर होता है।

(५) उष्ण कटिबन्ध के चक्रवात मे वर्षा अपेक्षाकृत अधिक मूसलाधार (Torrential) होती है और वह केन्द्र के चारो ओर समान रूप से वितरित होती है [यद्यपि दूसरा गुण गतिशील आँधि (Moving Storms) की अपेक्षा स्थिर आँधी (Stationary Storms) मे अधिक पाया जाता है]

(६) इनमे वायु के अकस्मात परिवर्तन नही होते है।

(७) उष्ण कटिबन्ध के चक्रवात जाडो की अपेक्षा गर्मियो मे अधिक आते है।

(८) हरीकेन का केन्द्र अपेक्षाकृत शान्त और वर्षारहित होता है। इसक व्यास सामान्यत ५ मील से लेकर ३० मील तक होता है। इसे आँधी की आँख (Eye of the storm) भी कहते है।

(९) उष्ण कटिबन्ध के चक्रवात के साथ प्रतिचक्रवात (Anti Cyclone) नही रहते।
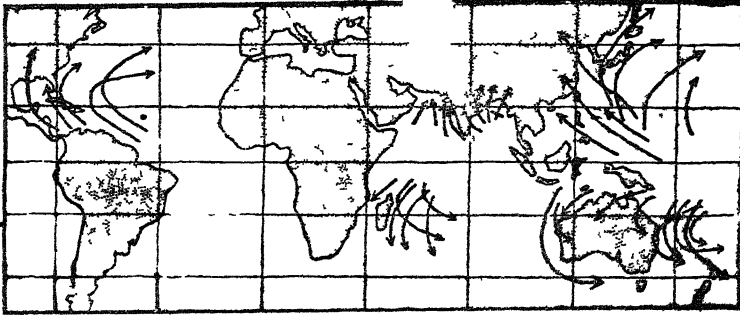
चित्र ३४—उष्णचक्रवातो के पथ

(१०) शीतोष्ण कटिबन्ध के चक्रवात सामान्यत पूर्व दिशा की ओर अग्रसर होते है। उष्ण कटिबन्ध के चक्रवात का पथ ऐसा परवलय (Parabola) है, जिसकी अक्ष (Axis) भूमध्यरेखा के समानान्तर रहती है और नतोतर पार्श्व (Concave Side) पूर्व की ओर रहता है (चित्र ३३)।

उष्ण कटिबन्ध के चक्रवातों की उत्पत्ति

उष्ण कटिबन्ध के चक्रवातो का अभी तक बहुत कम अध्ययन हुआ है। इनकी उत्पत्ति के विषय मे ऋतुविशेषज्ञो मे बडा मतभेद है। प्रचलित धारणाओं में निम्नलिखित विचार को अधिक महत्त्व मिला है :—

उष्ण कटिबन्ध के चक्रवात महासागर मे उत्पन्न होते है । इसका कारण यह है कि वहाँ पर दो बातो की सुविधा है । एक तो वहाँ आर्द्रता (Moistuxe) बहुत रहती है और दूसरे वहाँ वायु का सघर्षज प्रतिरोध (Frictional Resistance) कम होता है । अधिकतर इनका विस्तार उत्तरी गोलार्द्ध में डोलड्रम की उत्तरी सीमा और दक्षिणी गोलार्ध मे डोलड्रम की दक्षिणी सीमा तक ही होती है । इसमे सन्देह नहीं कि इनकी उत्पत्ति मे डोलड्रम-प्रदेश का स्थानीय ताप और नमी सहायक होती है, किन्तु अन्य कारण भी महत्त्वपूर्ण है । डोलड्रम के शान्ति कटिबन्ध मे चक्रवात तभी पाये जाते है, जब वह विषुवत रेखा से दूर खिसक जाता है । जिस समय वह विषुवतरेखा के निकट आ जाता है, उस समय इसमें चक्रवात नही होते । सभवत. इसका कारण यह है कि विषुवतरेखा के निकट पृथ्वी के परिभ्रमण (Rotation) का वेग इतना कम है कि वह वायु मे उतना घुमाव या भँवर (Whirl) पैदा करने मे असमर्थ है, जो चक्रवात की रचना के लिये आवश्यक है । इस प्रकार इस तथ्य का स्पष्टीकरण हो जाता है कि 'उष्ण कटिबन्ध' के चक्रवात डोलड्रम की ध्रुवीय सीमाओ (Polar Margins) में ही और वह भी केवल गर्मी और पतझड ऋतु मे (जब यह कटिबन्ध भूमध्य-रेखा से सबसे अधिक दूरी पर होता है) पाये जाते है । ट्रेड वायु के प्रभाव मे आ जाने से ये चक्रवात पहले पश्चिम की ओर जाते है और उसके बाद ध्रुवो की ओर मुड जाते है । जैसे ही ये मध्य-देशान्तरो (Middle latitudes) मे अथवा स्थलखण्डो के ऊपर प्रवेश करते है वैसे ही इनकी तीव्रता (Intensity) कम हो जाती है और ये फैलकर बाह्य उष्ण प्रदेशीय (Extra Tropical) चक्रवात के लक्षण ग्रहण कर लेते है । यद्यपि उष्ण कटिबन्ध के हरीकेन मे धरातल के अग्र (Surface Fronts) नही देखे गये है, तथापि ऋतुविशेषज्ञ इस विषय में एकमत है कि इनकी उत्पत्ति अग्र से ही होती है । हरीकेन की वायु के ऊपरी स्तरो के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि वहाँ पर विपरीत गुणो के वायुपुज (Contras ting Air Masses) पाये जाते है और धरातल के बहुत ऊपर अग्र भी मिलते है ।

प्रश्नावली

1. Discuss the principal theories of the origin of cyclonic depressions. (Agra M.A. Geography 1947).

2. Give a concise account of the important theories of the origin of cyclonic depressions developing in both tropical and temperate latitudes. (Agra M.A. Geography 1949).

नवम परिच्छेद

ज्वार-भाटा विषयक सिद्धान्त

(THEORIES ABOUT TIDES)

इनमे दो अधिक महत्वपूर्ण है —

(क) प्रगामी तरग का सिद्धान्त (Progressive Wave Theory)

(ख) स्थावर तरग का सिद्धान्त (Stationary Wave Theory)

(क) प्रगामी तरंग का सिध्दान्त

(Progressive Wave Theory)

यदि पृथ्वी के गोले पर जल का आवरण सर्वत्र समान होता, तो चन्द्रमा की गति के अनुसार ज्वार की भी पूर्व से पश्चिम की ओर प्रगति होती, किन्तु महाद्वीप तथा अन्य स्थल-खण्ड इसमें बाधक होते है। दक्षिणी अण्टार्कटिक सागर मे, स्थल-खण्डो का अभाव होने के कारण ज्वार की प्रगति ठीक चन्द्रमा की गति के अनुसार होती है। इसमे १८०° देशान्तर के अन्तर पर दो लहरे बन जाती है, जो पूर्व से पश्चिम की ओर बढती है। जैसे ही ये तरगे उत्तम आशा अन्तरीप (Cape of Good Hope) के निकट अटलाण्टिक महासागर मे प्रवेश करती है वैसे ही उनमे से एक शाखा निकलकर उत्तरकी ओर बढ़ती है। प्रशान्त और हिन्दमहासागर मे भी इस प्रकार की शाखायें बन जाती हैं। प्रधान लहर (Primary Wave) की ये शाखाये गौण लहरे (Secondary Waves) कहलाती है। इनसे ही अटलाटिक महासागर के तट पर ज्वार निर्धारित होते है। ये गौण लहरे स्वतन्त्र रूप से आगे बढती है—हाँ गहराई का इनकी गति पर प्रभाव अवश्य पडता है। इन्हे जन्म देनेवाली प्रधान लहर की गति चन्द्रमा के अनुसार होती है। प्रगामी लहर (Progressive Wave) के सिद्धान्त के अनुसार अटलाण्टिक महासागरकी ज्वार-तरगे चित्र ३५ मे समज्वार रेखाओं (Cotidal Lines) द्वारा दर्शायी गई है। समज्वार रेखाये वे कल्पित रेखाये है जो सागर के उन स्थानो के मिलाने से बन जाती है, जहाँ दीर्घज्वार (Spring Tide) एक ही समय पर आता है। रेखाओ के ऊपर जो अंक दिये गये है, वे पूर्णमासी के दिन दीर्घज्वार का (ग्रीनविच के अनुसार) समय दर्शाते है। इस मानचित्र से और उपर्युक्त सिद्धान्त से स्पष्ट है कि अटलाण्टिक

की ज्वार-तरगे किनारे के उथले भागो की अपेक्षा बीच के गहरे भागों में अधिक वेगवती है ।
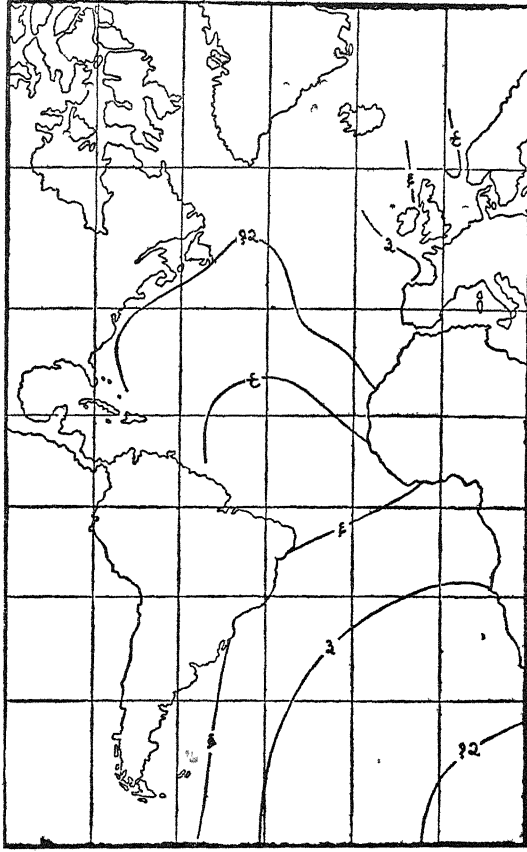
चित्र ३५—प्रगामी-तरग के सिद्धान्त के अनुसार अन्ध महासागर की समज्वार रेखाये

(ख) स्थावर तरंग का सिद्धान्त

(Stationary Wave Theory)

आधुनिक खोज से यह ज्ञात होता है कि ससार भर के ज्वार-भाटे के अध्ययन के लिये हमे पृथक-पृथक सागरो का स्वतत्र अध्ययन करना चाहिए । इस सिद्धान्त में यह कल्पना की जाती है कि प्रत्येक सागर मे एक स्थावर तरग होती है ।यह कथन नीचे लिखे प्रयोग से स्पष्ट हो जायगा :—

प्रयोग --किसी आयताकार पात्र में थोडा पानी ले लीजिए, फिर उसके एक किनारे को शीघ्रता से ऊपर उठाकर नीचा कर दीजिए। ऐसी अवस्था मे, जब पानी दाहिनी ओर ऊपर उठ जाता है, तब बायी ओर नीचे दब जाता है और इसी प्रकार जब बायी ओर ऊपर उठ जाता है, तब दाहिनी ओर नीचे दब जाता है। यही क्रम चलता रहता है। ऐसी मध्यवर्ती रेखा को जिसके सन्दर्भ मे पानी ऊपर उठता और नीचे जाता है हम पात-रेखा (Nodal Line) कहते हैं और इस प्रकार अस्तित्व मे आई हुई तरग को स्थावर तरंग (Stationary Wave) कहते है।
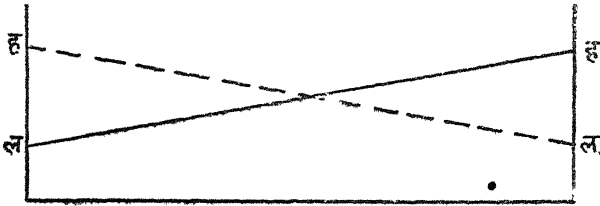
चित्र ३६—स्थावर तरग (Stationary Wave) की उत्पत्ति

स्थावर तरग के प्रदोलन का आवर्तकाल (Period of oscillation) निम्नलिखित सूत्र से निर्धारित होता है --

$$अ = \frac{२\ ल}{\sqrt{भ\ ग}}$$ जहाँ

- अ = प्रदोलन का आवर्तकाल (Period of Oscillation)
- ल = जलपात्र की लम्बाई
- भ = स्वाकृष्टि त्वरण (Acceleration due to gravity)
- ग = जल की गहराई

इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक जलाशय का अपना एक निश्चित प्रदोलन का आवर्तकाल होता है, जो उसकी लम्बाई और पानी की गहराई पर निर्भर है।

इस शताब्दी के आरम्भ मे हैरिस नामक विद्वान ने ज्वार के स्पष्टीकरण के लिये स्थावर तरग के उपर्युक्त सूत्र को अपना आधार बनाया। इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न सागरो की स्थावर तरगो के फलस्वरूप ही विवृत महासागर (Open Ocean) मे ज्वार आता है। इन पृथक सागरो को मिलाकर संयुक्त रूप से प्रदोल-प्रणाली (Oscillation system) कहते है। इनमे से प्रत्येक का अपना एक निश्चित प्रदोलन का आवर्तकाल (Period of oscillation) होता है जो गणित की सहायता से निश्चित किया जा सकता है। चित्र ३७ में हिन्द महासागर की प्रदोल-प्रणालियाँ दर्शायी गई है।
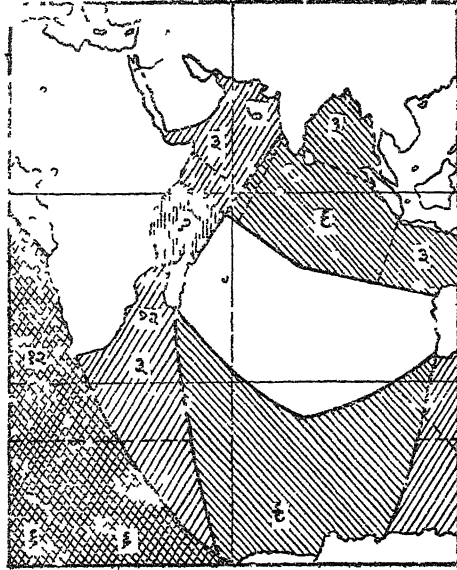
चित्र ३७—हिन्द महासागर की प्रदोलन-व्यवस्था

- इस चित्र में अंकित अंक उच्च-जल (High Water) का समय दर्शाते हैं। यह समय चन्द्रमा के ग्रीनविच की देशान्तर को पार करने के बाद व्यतीत हुए चान्द्र-घण्टो (Lunar Hours) में दिया गया है। पाद-रेखायें (Nodal Lines) विन्दुओं से दिखलाई गई हैं। उन क्षेत्रों को खाली छोड़ दिया गया है जहाँ ज्वार की मात्रा अत्यन्त नगण्य है।

इस सिद्धान्त के अनुसार महासागरों में कुछ ऐसे स्थल अवश्य होने चाहिए, जहाँ ज्वार बिल्कुल नहीं होता। इन विन्दुओं से समज्वार रेखायें चारों दिशाओं में प्रसृत (Diverge.) होती हैं। हैरिस ने इन्हें अज्वार विन्दु (Amphidromic Points) कहा है।

उत्तरी अटलाण्टिक में एक स्थावर तरंग है, जिसकी दिशा उत्तर-दक्षिण है। गणित द्वारा यह ज्ञात होता है कि अटलाण्टिक में आनेवाले ज्वार इस तरंग के प्रदोलन के अनुसार होते हैं।

प्रश्नावली

1. How are tides caused? Discuss the various theories of tides. (Agra M.A. 1952).

2. Discuss as clearly as possible the phenomenon of tides. (I. A. S. Competition Examination 1953).

3. Discuss fully the various theories of tides. (Allahabad M.A, Geography 1951).

दशम परिच्छेद

भूद्रोणियाँ (GEOSYNCLINES)

परिभाषा तथा वर्गीकरण--भूपृष्ठ के उन लम्बे, सकरे और निचले क्षेत्रो को —

(१) जिनमें नदियों द्वारा लाये गये अवसाद (Sediments) एकत्र होते रहते है।

(२) जो अवसाद के वृहद भार से दबकर क्रमश धँसते रहते है।

और (३) जिनमें कालान्तर मे पर्वत-श्रेणियाँ बन जाती है भूद्रोणी (Geosynclines) कहते है। सक्षेप मे हम भूद्रोणी को पर्वतो का पलनी (Cradle of mountains) कह सकते है।

भूद्रोणी की अवधारणा का श्रेय हॉल (Hall) तथा डाना (Dana) नामक विद्वानो को है, किन्तु इस सिद्धान्त का विकास, वास्तव मे, हॉग (Haug) ने ही किया है। इन्होंने प्राचीन युगो के पुराभौगोलिक मानचित्र (Palaeo geographical Maps) बनाये है, जिनमे उन युगो की भूद्रोणियाँ दर्शायी गई है। कालान्तर मे इन्ही भूद्रोणियो के स्थान पर पर्वत खडे हो गये है। इन भूद्रोणियो में अवसाद एक विशेष ढंग से एकत्र होता है। भूद्रोणियों के किनारे उथले होते हैं, अतएव वहाँ पर पतला वेलाप्रदेशीय निक्षेप (Littoral Deposits) एकत्र होता है। ये निक्षेप महाद्वीपीय [illegible] (Continental Shelf) के अनुरूप होते है। इनकी रचना अनेक बातों पर निर्भर है जैसे—अपक्षरित शिलाओ (Erodod Rocks) की सरचना, सागर के जलपृष्ठ के उच्चावचन (Fluctuations) लहरें, धाराये आदि। उदाहरण के लिये आल्प्स भूद्रोणी के उत्तरी निक्षेप के अध्ययन से यह विदित होता है कि वे एकान्तर क्रम से आगे बढे और पीछे हटे है।

भूद्रोणियों के बीच का भाग गहरा होता है और वहाँ निक्षेप भी नियमित रूप से एकत्र होते है। यदि किसी भूद्रोणी मे दो विरुद्ध दिशाओ से दबाव पडता है, तो उसका मध्यवर्ती भाग उभार के रूप मे ऊपर उठ जाता है। इसे हम भू-चाप (Ge-anticline) कहते है। भू-चाप मे न केवल भूद्रोणी के अवसाद ही, वरन् उसका नितल भी ऊपर उठ आता है। यदि भू-चाप की ऊँचाई इतनी अधिक हुई कि वह हवा और लहरो के प्रभाव-क्षेत्र मे आ जाय, तब निक्षेपण

की क्रिया मे बाधा पड़ना स्वाभाविक है। अतएव ऐसी दशा मे अपेक्षाकृत स्थूल अवसाद एकत्र होते है। पहाड़ो की विगुप्त शिलाओ (Exposed rocks) के अध्ययन से भूद्रोणियो के अवसादो का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

हॉल ने सर्वप्रथम भूद्रोणियो और पर्वतश्रेणियो के सम्बन्ध पर प्रकाश डाला। उन्होने ज्ञात किया कि यदि किसी पर्वत श्रेणी का विश्लेषण किया जाय और उसकी शिलाओं को मौलिक प्रक्रम के अनुसार रखा जाय, तो वे सागर को केवल पाट ही न देगी, वरन् कुछ ऊपर भी उठ जायँगी। इससे वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा—

'अवसादन के साथ-साथ सागर-नितल भी नीचे धँसता जाता है'

भूद्रोणियो के विकास का विचार करते समय हॉल ने दो बातो पर बडा जोर दिया है :—

(१) भूद्रोणी गहरे जल के क्षेत्र थे।

(२) चौडाई की अपेक्षा इनकी लम्बाई बहुत अधिक थी।

हॉग (Haug) के अनुसार भूद्रोणियाँ सागर के वे लम्बे सकरे क्षेत्र है, जिनमे अवसाद नियमित रूप मे एकत्र होते रहते है, किन्तु वास्तव मे भूद्रोणी का विकास इतना सीधा-सरल नही है। सागर नितल मे विशेषकर किनारों की ओर कभी-कभी क्षैतिज (Horizontal) अथवा उदग्र (Vertical) गतियाँ भी होती रहती है और उनकी उपेक्षा नही की जा सकती।

यद्यपि भूद्रोणी शब्द का व्यवहार बहुत होता है तथापि उसकी वैज्ञानिक परिभाषा के विषय मे मतभेद है। जे० डबल्यू० इवेन्स (J. W. Evans) ने तो यहाँ तक कह डाला है कि यह शब्द इतने भिन्न अर्थो मे प्रयुक्त होता है कि इसकी कोई एक वैज्ञानिक परिभाषा करना असभव है। हॉग के अनुसार भूद्रोणियाँ लम्बे और सकरे सागर है, जैसा कि इनके बनाये हुए पुराभौगोलिक मानचित्रो (Palaeogeographical maps) से स्पष्ट है। बहुत से विद्वान् इसी मत के अनुयायी है किन्तु कुछ ऐसे भी है, जो इसे नही मानते। उदाहरण के लिये शुशर्ट (Shuchert) ने तीन प्रकार की भूद्रोणियाँ मानी है :—

(१) एक-भूद्रोणी (Mono-Geosyncline)—ये महाद्वीपों के अन्दर अथवा किनारों पर लम्बे और सकरे सागर है। इनमे काफी निमज्जन (Subsidence) हुआ है। इसका प्रमाण अपेलेशियन के पदार्थो की वृहद् मोटाई है। भूद्रोणियो के विषय मे हॉल और डाना की भी यही कल्पना है।

(२) बहु-भूद्रोणी (Poly-Geosyncline) यह एक-भूद्रोणी

(Mono-Geosyncline) की अपेक्षा अधिक चौडी होती है और इसका इतिहास भी अपेक्षाकृत जटिल होता है। इसकी स्थिति एक-भूद्रोणी के समान ही होती है किन्तु इसमें प्राय एक अथवा अधिक भू-चाप (Ge-anticlines) मिलते हैं। इसका उदाहरण रॉकी पर्वत की भूद्रोणी है।

(३) मध्य-भूद्रोणी (Meso-Geosyncline)—ये भी लम्बे और सकरे सागर होते हैं जो प्राय दो महाद्वीपों के मध्य में स्थित होते हैं—जैसे भूमध्य-सागर। इनकी गहराई बहुत अधिक होती है और इनका इतिहास भी लम्बा और जटिल होता है।
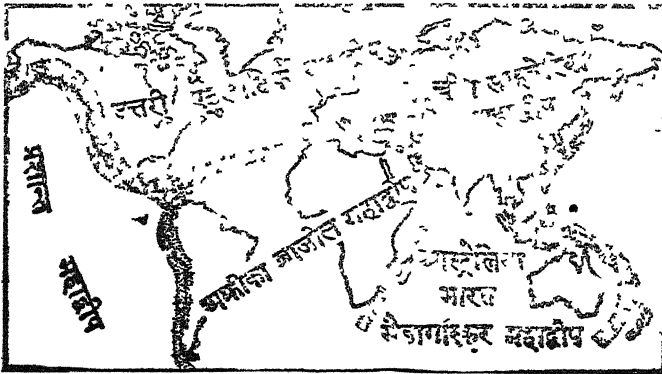
चित्र ३८—मैसोजोयक काल की भूद्रोणियाँ (इस चित्र मे छायादार भाग भूद्रोणियों का द्योतक है)

हॉग की अवधारणा वास्तव में मध्य भूद्रोणियों की अवधारणा है। इनके अनुसार मध्य कल्प (Mesozoic Era) की भूद्रोणियाँ चित्र मे ३८ मे दर्शायी गई है।

आलोचना—चित्र ३८ से स्पष्ट होता है कि मध्यकल्प मे आजकल की अपेक्षा सागर-जल की मात्रा कम थी। ऐसा क्यो था? शेष जल कहाँ चला गया था? हॉग ने इस प्रश्न का कोई भी संतोषजनक उत्तर नही दिया है।

जे० डबल्यू० इवेन्स (J. W Evans) के विचार

यह तो कहा ही जा चुका है कि भूद्रोणी की परिभाषा के विषय मे बडा मतभेद है। जे० डबल्यू इवेन्स इसे 'अवसादन की अधोगति' (Sedimentation subsidence) कहना अधिक उचित समझते हैं। इनके अनुसार भूद्रोणी की आकृति मे अन्तर हो सकते है—कभी वह द्रोणी के समान धनुषाकार होती है, कभी उसका ऊँचे-नीचे अनियमित गड्ढे का रूप होता है और कभी अपेक्षाकृत चपटा नितल भी हो सकता है। इनकी स्थिति भी अनेक प्रकार की हो सकती है। ये

(i) किसी बडी नदी के मुहाने के सामने
(ii) दो महाद्वीपो के बीच मे
(iii) किसी चौडे महासागर के पहाडी तट के निकट, अथवा
(iv) किसी पर्वत अथवा पठार के निकट मैदान मे,
कही भी स्थित हो सकती है ।

जहाँ भी इतने अधिक मात्रा मे अवसाद एकत्र होते है, वहाँ ही उनके वृहद् भार के कारण क्षेत्र का निमज्जन अथवा अधोगति (Subsidence) अवश्य होती है । और फिर कालान्तर मे एक ऐसा समय आता है जब अवसाद पर दो विरुद्ध दिशाओ से दबाव पडता है और उसमे भजन (Folding) हो जाता है । इवेन्स का विचार है कि यह क्रिया उन क्षेत्रो मे अधिक सुविधा और सरलता से होती होगी जिनमे भार के कारण भूपर्पटी अधिक नीचे धँस जाती है । नीचे के स्तरो का ऊँचा तापमान भी इसमे सहायक होता है । यह निमज्जन चाहे अवसाद के वृहद् भार के कारण हो अथवा क्षैतिज दबाव के कारण—इसका यह प्रभाव तो पड़ता ही है कि नीचे का सिमा (Sima) हट जाता है जिससे भूसन्तोल की अवस्था मे व्यतिक्रम (Disturbance) हो जाता है। किन्तु भजित अवसाद सिमा की अपेक्षा हल्के होते है अतएव नीचे धँसने की अपेक्षा वे ऊपर उठ जाते है और इस प्रकार पर्वत-श्रेणियाँ अस्तित्व मे आ जाती है ।

इस प्रकार हम भूद्रोणी के इतिहास को तीन भागो मे बाँट सकते है ।—

(१) अवसादन और अधोगति के फलस्वरूप हुआ विकास ।

(२) नियमित विकास मे व्यतिक्रम होना जैसे किसी भाग का ऊपर उठ जाना अथवा नीचे धँस जाना, भू-चाप (Ge-anticlines) आदि का बनना आदि ।

(३) भूद्रोणी का पतन ।

(ग) होम्स का दृष्टिकोण

होम्स के अनुसार भूपर्पटी मे निम्नलिखित स्तर विद्यमान है :—

(१) सबसे ऊपर १०-१२ किलोमीटर मोटा ग्रेनो-डायोराइट (Grano Diorite) का स्तर है ।

(२) उसके नीचे २०-२५ किलोमीटर मोटा एम्फिबोलाइट (Amphibolite) का स्तर है।

और (३) सबसे नीचे एक्लोजाइट (Eclogite) का स्तर है।

होम्स के अनुसार भूद्रोणियाँ तीन प्रकार की है :—

(१) कुछ भूद्रोणियाँ इस प्रकार बन गई है कि उनके नीचे के एम्फिबोलाइट (Amphibolite) के स्तर से द्रव-पदार्थ अन्य दिशाओ मे खिसक गया

है और इस प्रकार उनमे निमज्जन (Subsidence) हुआ है। आधुनिक काल के रॉस (Ross) और टसमान (Tasman) सागर तथा भूतकाल में प० कॉर्डिलेरा की भूद्रोणी इसी श्रेणी के अन्तर्गत है।

(२) दूसरी प्रकार की भूद्रोणियो के बनने का मुख्य कारण सियाल (Sial) के स्तर का खिचकर पतला पड जाना है। इस खिचाव के दो प्रमुख कारण हैं —

(क) किसी स्थल खण्ड का फैलना। यूरल पर्वत की भूद्रोणी इसी प्रकार बनी है।

अथवा (ख) अनुपर्पटी (Substratum) मे अपसृत धाराओ (Diverging currents) के कारण ऐसे दो खण्डो का पृथक हो जाना। उदाहरण टैथिस सागर।

(३) तीसरे प्रकार की भूद्रोणियाँ वे है, जिनके निर्माण का मुख्य कारण नीचे के पदार्थ मे रूपान्तरण (Metamorphism) के कारण घनत्व का बढ जाना है। इसी से निमज्जन अथवा अधोगति (Sudsidence) होती है। किसी पर्वत-प्रणाली के दो निकट आनेवाले अग्र-प्रदेशो (Forelands) के मध्य का क्षेत्र इस श्रेणी के अन्तर्गत है। उदाहरण—पश्चिमी भूमध्यसागर, बण्डासागर (Banda sea) आदि।

भूद्रोणियो की एक श्रेणी और की जा सकती है। ये भूद्रोणियाँ पर्वत श्रृंखला के अग्रप्रदेश (Foreland) की दिशा मे होती है। इनके बनने का मुख्य कारण गिरि-निर्माण के लिये उत्तरदायी भजन की क्रिया (Folding) है। इस प्रकार की भूद्रोणियों के उदाहरण फारस की खाडी और सिन्ध-गगा का मैदान है।

कोबर का भूद्रोणीय गिरि-निर्माण का सिद्धान्त—

(The Geo-Synclinal Orogen Theory of Kober)

हॉग (Haug) और कोबर (Kober) की भूद्रोणी विषयक धारणाओ मे अन्तर है। हॉग के अनुसार भूद्रोणी सकरे और लम्बे क्षेत्र थे। कोबर का कथन है कि ये काफी चौडे प्रदेश थे। इनके अनुसार अवसादो के भजन का मुख्य कारण यह था कि दो स्थलखण्डो के अग्रप्रदेश एक दूसरे के निकट आये। इनमे से एक का गति-वेग दूसरे से अधिक था। इनके निकट आने से बीच की भूपर्पटी सिकुडी और इस प्रकार इन अग्रप्रदेशो के किनारो पर श्रेणियाँ बन गई। इन्हे किनारे की श्रेणियाँ (Border Ranges) अथवा Rand Ketten कहते है। यदि सिकुडन की मात्रा बहुत अधिक हुई तो दोनो अग्रप्रदेश एक दूसरे के

बिल्कुल निकट और कभी-कभी संस्पर्श (Contact) में आ जाते हैं। ऐसी दशा में दोनों ओर की किनारे की श्रेणियाँ एक रेखा पर मिलकर और ऊपर उठ जाती हैं। इस रेखा को Narbe कहते हैं। स्विजरलैण्ड की आल्प्स श्रेणी इसका उदाहरण है। दूसरी ओर जब एक दिशा का दबाव दूसरे की अपेक्षा
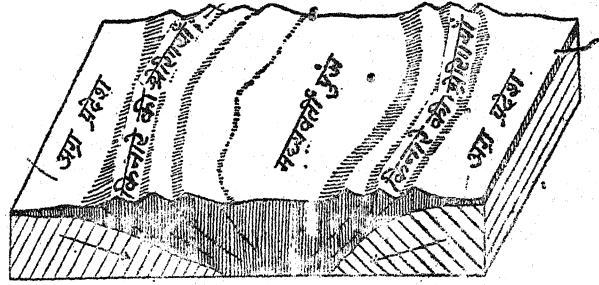
चित्र ३९—कोबर के अनुसार पर्वतों की उत्पत्ति

कम होता है, तब किनारे की श्रेणियों के बीच में जो प्रदेश सिकुड़न की क्रिया से प्रभावित नहीं होता और पहले जैसा ही बना रहता है, मध्यवर्ती पुञ्ज (Median Mass) कहलाता है। कार्पेथियन और डिनारिक आल्प्स के मध्य में हंगेरी का मैदान ऐसा ही मध्यवर्ती पुञ्ज (Median Mass) है।

कोबर और स्वैस की कल्पनाओं में मौलिक भेद है। जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है, दो विरोधी दिशाओं से दबाव पड़ता है। स्वैस के अनुसार पर्वत श्रेणियों का निर्माण केवल एक ही दिशा के दबाव से होता है। इनके अनुसार पृष्ठ प्रदेश (Hinterland) की ओर से दबाव आता है और अग्रप्रदेश (Foreland) उसे रोकता है। उदाहरण के लिये हिमालय पहाड़ के निर्माण के लिये तिब्बत पृष्ठ प्रदेश था और दक्षिणी पठार अग्रप्रदेश। तिब्बत की ओर से दबाव आया और दक्षिणी पठार ने उसे रोका, जिससे वे भंज (Folds) बन गये जिन्हें हिमालय श्रेणियाँ कहते हैं।

प्रश्नावली

1. Write a short essay on Geosynclines.

(Lucknow M.Sc. Geol. 1948).

2. Explain fully the Geosynclinal-Orogen theory of Kober, Show how it differs from older views and from the other recent views on this subject.

(Banaras M.Sc. Geol. 1941).

3. 'The concept of geosynclines is due to Hall and Dena but the theory of their development is really to Haug' Elaborate this statement and describes briefly by giving examples, the three types of geosyncline as distinguished by Schuchert (Allahabad M A Geography 1945)

4 Discuss fully the origin of geesyncline in the light of J. W. Evan's term 'Sedimentation subsidence.'

(Allahabad M.A. Geography 1951)